

खड़ीबोली का लोक-साहित्य

[प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० सत्या गुप्त

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

इलाहाबाद



प्रथम संस्करण

१९६५

मूल्य पन्द्रह रुपया

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन



मुद्रक

लीडर प्रेस

इलाहाबाद

स्वर्गीया माँ को

प्रकाशकीय

सक्रमण काल में जब सस्कृति नवरूप धारण कर रही है तब अपने अपौरुषेय वाङ्मय से परिचित हो लेना अत्यन्त आवश्यक है । इसे मुडकर पीछे देखा जाना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोक-जीवन और उसकी सहज अभिव्यक्ति नित्य नवीन और चिर-सामयिक है । हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पिछले वर्षों में लोक-साहित्य सम्बन्धी कई ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं । प्रकाशन की उसी परम्परा में डॉक्टर सत्या गुप्त का यह शोध-ग्रन्थ “खडीबोली का लोक-साहित्य” है जिस पर लेखिका को प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिन्० की उपाधि मिली है ।

डॉक्टर सत्या गुप्त ने बड़े मनोयोग से, सग्रह सम्बन्धी अनेक असुविधाओं को झेलते हुए इस शोध-ग्रन्थ का प्रणयन किया है । इस महत्वपूर्ण शोध-कार्य के लिये वह हिन्दी जगत् की बधाई की पात्र है ।

खडीबोली आज हमारे साहित्य की भाषा है । किंचित आश्चर्य होता है कि इस बोली के लोकरूप पर पहले किसी का ध्यान क्यों नहीं गया ? किन्तु ऐसा होता रहा है । साहित्य-भाषा के रूप में समादृत भाषा को विकासोन्मुख करने की चिन्ता में, उसके मूल रूप और उसमें निहित अभिव्यक्तियों को हम कभी-कभी विस्मृत कर जाते हैं । वह विस्मृत अंश आज प्रस्तुत है, डॉक्टर सत्या गुप्त ने उसे जागृत किया है । विदुषी लेखिका ने लोक-साहित्य के स्वीकृत सभी अंगों पर सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया है । निश्चित ही उनके इस प्रयास से खडीबोली और प्रदेश की भाषा तथा सस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में जानकारी प्राप्त होगी । विश्वास है, यह ग्रन्थ लोक-साहित्य के अध्येताओं, जिज्ञासुओं तथा भाषाविदों को अपने-अपने प्रयोजन के लिये उपयोगी सिद्ध होगा ।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

इलाहाबाद

दिनांक, ३१ दिसम्बर, १९६४

विद्या भास्कर

सचिव तथा कोषाध्यक्ष

विषय-सूची

परिचय	डॉ० धीरेन्द्रवर्मा पृ० इ-उ
पूर्व-भूमिका	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० ऊ-अ
भूमिका	पृ० १-११
अध्याय १	पृ०-१३-२५

खडीबोली-लोक साहित्य का परिचय और पृष्ठभूमि

खडीबोली का नामकरण, खडीबोली के अन्य नाम, आदर्श खडीबोली, खडी-बोली क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा का परिचय, खडीबोली का अन्य बोलियों से साम्य तथा पार्थक्य, खडीबोली की भाषागत सीमा, भौगोलिकता तथा ऐतिहासिक परिचय, खडीबोली प्रदेश का सांस्कृतिक परिचय, समाज के विभिन्न स्तर, जीवनयापन के साधन ।

अध्याय २	पृ०-२७-१०८
----------	------------

खडीबोली के लोकगीतों का अध्ययन

खडीबोली के लोकगीतों का वर्गीकरण, आनुष्ठानिक गीत (संस्कार सम्बन्धी लोकगीत), धार्मिक गीत—व्रत, त्यौहार अनुष्ठान सबंधी, देवी-देवताओं से संबधित लोकगीत, ऋतु-सम्बन्धी लोकगीत, श्रम-गीत (स्त्री वर्ग और पुरुष वर्ग), बालगीत ।

अध्याय ३	पृ०-१०९-१६९
----------	-------------

खडीबोली के लोकगीतों में समाज

लोकसमाज में आदर्श सतीत्व, खान-पान, रहन सहन, अंग प्रसाधन, लोकगीतों में राजनैतिक पक्ष, हास-परिहास के सम्बन्ध, लोकगीतों में भावाभिव्यक्ति तथा कलात्मकता—भय, कलापक्ष, करुणरस आदि, लोकगीतों में कथा-तत्त्व—पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, काल्पनिक तथा प्रेम सम्बन्धी गीत कथाएँ, लोकगीतों में संगीत पक्ष, लोकगीतों में सहायक लोक-वाद्य ।

अध्याय ४

पृ०-१७१-२३३



खडीबोली की लोककथा

सरल, जटिल लोककथाएँ, वर्गीकरण—(वार्मिक, ऐतिहासिक, अलौकिक, सामाजिक, नीतिकथा, हास्य, पशु-पक्षी सम्बन्धी), लोक-कथाओं के मुख्य अभिप्राय, लोक-कथाओं में भावाभिव्यजना, खडीबोली की लोककथाओं का कथा-शिल्प (कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण आदि) ।

अध्याय ५

पृ०-२३५-२५०

खडीबोली की लोक-गाथा

खडीबोली की लोकगाथाओं का वर्गीकरण, लोकगाथाओं के वर्ण-विषय, लोक-गाथाओं में प्रयुक्त होनेवाली भाषा, लोकगाथाओं का संगीत पक्ष, लोकगाथाओं में वर्णित वार्मिक स्वरूप तथा अमानवीय तत्व, लोकगाथाओं में पात्र, लोकगाथाओं का जन्म, उद्देश्य और विशेषता, लोकगाथाओं की विशेषताएँ, लोकगाथाओं में कथातत्व ।

अध्याय ६

पृ०-२५१-२९७

खडीबोली का प्रकीर्ण-साहित्य

लोकोक्तियों की परम्परा, परिभाषाएँ, खडीबोली की लोकोक्तियाँ, वर्गीकरण, खडीबोली की लोकोक्तियों का वर्गीकरण—सामाजिक कहावतें (जाति सम्बन्धी, नारी सम्बन्धी, ऐतिहासिक, सामाजिक व्यवहार-ज्ञान सम्बन्धी, भाग्य सम्बन्धी कहावतें), खान-पान तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, लोक-विश्वास सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, कथा सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, भाषा-विज्ञान सम्बन्धी लोकोक्तियाँ, प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ, मुहावरें, मुहावरों की परम्परागत व्यापकता, शकुन सम्बन्धी मुहावरें, खडीबोली की पहेलियाँ, शरीर सम्बन्धी पहेलियाँ, जीव सम्बन्धी पहेलियाँ, प्रकृति सम्बन्धी पहेलियाँ, खान-पान सम्बन्धी पहेलियाँ, प्रकाश पहेलियाँ, गाहे-पल्हाये (मल्हौर), दार्शनिक पक्ष, दोहामाहित्य (पत्रों में लिखे जाने वाले दोहे) ।

खडीबोली का लोक-नाट्य

नौटकी, रूप योजना-प्रसाधन, वेशभूषा, रंगमंच, वाद्य, कथोपकथन, तर्ज-लय, स्वाँग का आधुनिक रूप, खोडिया, साँगी बेहूसिह, खडीबोली के लोकनाट्यो की विशेषता, लोकनाट्यो के रचयिता—लोक-कवि ।

खडीबोली की लोक-संस्कृति

लोकधर्म, लोकविश्वास मनुष्य सम्बन्धी, तिथि, वार और मास सम्बन्धी लोकविश्वास, पशु-पक्षी-सम्बन्धी लोकविश्वास पशुओ की बीमारियो के लोकोपचार, प्रकृति सम्बन्धी (वृक्ष), स्वास्थ्य सम्बन्धी लोकविश्वास तथा उनके उपचार, मिश्रित लोक विश्वास, पौराणिक लोकविश्वास, मंत्र व टोने-टोटके, टोने टोटके की मान्यता, खडीबोली प्रदेश मे धर्म का व्यवहारिक पक्ष, पूजा उपासना (सरस्वती, देवी, चडी देवी, आदि की उपासना), व्यावसायिक नृत्य, (धार्मिक, सामाजिक), खडीबोली प्रदेश की वेशभूषा तथा खान-पान, लोक-भाषा और लोकशब्द, खडीबोली प्रदेश के लोगो का स्वभाव, मनोरंजन तथा मेले ।

परिशिष्ट

पृ०—४१५—४९४

सहायक ग्रंथ-सूची

हिन्दी

पृ०—४१७—४२३

अंग्रेजी

पृ०—४२४—४२८

पुत्रजन्म सम्बन्धी एवं विवाहादिक अन्य गीत

पृ०—४२९—४६२

लोकशब्दावली

पृ०—४६३—४८३

स्त्री-पुरुषो के प्रचलित नाम

पृ०—४८४

प्रकाशित लोक-कथाएँ एवं अन्य सामग्री

पृ०—४८५—४८८

तालिका

पृ०—४८९—४९४

मानचित्र

१—खडी बोली प्रदेश

२—हिंदी प्रदेश

चित्र

३—१३

परिचय

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदी प्रदेश में साम्प्रतिक जागरण उत्तरप्रदेश के पूर्वी भाग में प्रारंभ हुआ—प्रारंभ में मुख्य केन्द्र काशी और प्रयाग थे तथा बाद में लखनऊ, आगरा और गोरखपुर में भी कार्य प्रारंभ हुआ। सबसे अधिक उपेक्षित भाग खड़ीबोली प्रदेश, अर्थात् मेरठ-बिजनौर का भूमिभाग, तथा उसके पश्चिमी और पूर्वी सीमान्त प्रदेश हरियाणा और रोहिलखंड रहे। इसका एक मुख्य कारण कदाचित् यह था कि इस प्रदेश का प्रधान आधुनिक नगर मेरठ दिल्ली के इतने अधिक निकट है कि वह स्वतंत्र सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित नहीं हो सका—दिल्ली ने उसे हर तरह से दबा दिया।

उपर्युक्त स्थिति के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य से संबंधित अध्ययन भी अवधी भाषा और साहित्य से प्रारंभ हुआ, शीघ्र ही भोजपुरी (काशी-गोरखपुर प्रदेश की बोली) की ओर विद्वानों का ध्यान गया और उसके बाद ब्रजभाषा साहित्य का प्रकाशन और आलोचनात्मक अध्ययन प्रारंभ हुआ। यह विचारणीय है कि हिंदी के दो प्रमुख मध्यकालीन महाकाव्यों में रामचरित मानस के तो अनेक वैज्ञानिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, किंतु सूरसागर का वैज्ञानिक संपादन अभी प्रारंभ भी नहीं हो पाया है। फलतः मेरठ-बिजनौर की खड़ीबोली भाषा और उसके प्राचीन साहित्य का अध्ययन अत्यंत उपेक्षित रहा। यह प्रसन्नता की बात है कि हिंदी प्रदेश की इस महत्वपूर्ण भाषा खड़ीबोली तथा उसके लोकसाहित्य और मध्ययुगीन नागरिक साहित्य की ओर अब धीरे-धीरे विद्वानों और विद्यार्थियों का ध्यान जा रहा है। यह ग्रंथ भी इसी प्रवृत्ति का एक प्रमाण है।

प्रस्तुत अध्ययन लेखिका ने प्रयाग विश्वविद्यालय के डी० फिल० थीसिस के लिये तैयार किया था। मुझे प्रसन्नता है कि अब यह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहा है और हिंदी प्रेमी इससे लाभ उठा सकेंगे। ग्रंथ का मुख्य विषय खड़ीबोली प्रदेश के लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य तथा लोकोक्तियों, मुहावरों आदि प्रकीर्ण सामग्री का अध्ययन है। प्रथम अध्याय विषय की भूमिका स्वरूप है तथा अंतिम आठवें अध्याय में इस जनपद की लोक-संस्कृति पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। लेखिका ने यह आशा दिलाई है कि इस अध्ययन की मूल सामग्री,

अर्थात् खडीबोली प्रदेश के लोकगीत, लोककथाएँ तथा लोकशब्दावली आदि, शीघ्र ही स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित होगी ।

अपने देश में वैदिक ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल में कुत्-पचाल, हिंदी प्रदेश के चौदह महाजनपदों में अग्रणी थे । आज यह मेरठ-बरेली कमिश्नरियों का प्रदेश सांस्कृतिक विकास में सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है । खडीबोली प्रदेश में स्थित नगर दिल्ली, प्रादेशिक न होकर अखिल भारतीय क्या अन्तराष्ट्रीय केन्द्र बन गया है । आगरा पश्चिमी उत्तरप्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में अवश्य विकसित हो रहा है किन्तु वह ब्रज प्रदेश में स्थित है तथा शूरसेनजनपद की प्राचीन राजधानी मथुरा नगरी को एक तरह से स्थानापन्न कर रहा है । फिर मुगलकालीन स्मारकों तथा ताजमहल किले आदि के महत्व के कारण दबा जा रहा है । विदेशी यात्रियों के लिये तो आगरा और ताजमहल एकार्थवाची से हो गये हैं । पश्चिमी हिंदी प्रदेश में दिल्ली-आगरे के महत्व के कारण मेरठ-बरेली का भाग अत्यंत उपेक्षित रहा—न यहाँ कोई विश्वविद्यालय बन सका है, न कोई अच्छी साहित्यिक संस्था है, न उच्च स्तर के दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र आदि ही यहाँ से निकलते हैं, न प्रथम श्रेणी के राजनीतिक नेता हैं और न बड़े उद्योग केन्द्र ही स्थापित हो रहे हैं ।

किंतु इस प्रदेश में अब जागरण के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं । डॉ० सत्या गुप्त का खडीबोली प्रदेश के लोकसाहित्य का यह अध्ययन भी इस नव जागरण की ओर ही एक कदम है । इसके लिये मैं सुयोग्य लेखिका को हार्दिक बधाई देता हूँ । प्रस्तुत अध्ययन अत्यंत सतुलित और नवीन सामग्री से पूर्ण है । मूल सामग्री में सबधित इसके परिशिष्ट ग्रंथ की हम लोग अत्यंत उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे ।

सागर विश्वविद्यालय,

सागर

२०-१२-६४

धीरेन्द्र वर्मा

पूर्व-भूमिका

‘खडीबोली का लोक साहित्य’ शीर्षक शोध-प्रबन्ध का स्वागत करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। इसमें सुश्री डा० सत्या गुप्त ने बहुत परिश्रम पूर्वक प्राचीन कुरु-जनपद की छानबीन की है। कौरवी बोली को ही आजकल खडीबोली कहा जाता है। इस बोली ने ही अधिकांश राष्ट्रभाषा एवं अर्वाचीन हिन्दी का साहित्यिक रूप ग्रहण किया। इस बोली का एक छोर ब्रजभाषा से और दूसरा हरियाणा की बाँड्डू-भाषा से मिला है। इसका शुद्ध रूप मेरठ जनपद के गाँवों में पाया जाता है। वहाँ से उसकी शुद्ध व्याकरण शब्दावली एवं लोक-साहित्य का सर्वांगीण संग्रह अभी नहीं हो पाया है। मेरा अपना जन्म भी मेरठ जिले के एक गाँव में हुआ है, जो हापुड और गाजियाबाद के बीच में पिलखुआ से लगभग १॥ मील पर है। अतः मुझे विदित है कि कौरवी बोली के शुद्ध रूप में वर्णों को द्वित्व करने की परिपाटी नहीं है, वहाँ के निजी उच्चारण में शुद्ध रूप ‘लोटा’ है लोट्टा नहीं, किन्तु हमें यह भी न भूलना चाहिये कि इस जनपद के बीच-बीच में ऐसे गाँव भी हैं जिनकी बोली पर जाटू या बाँड्डू-भाषा का प्रत्यक्ष प्रभाव है। ज्ञात होता है कि कुरु-जनपद में वहाँ की जन परिपाटी और बोलियों पर किसी समय जाट जाति या उनकी बोली का विशेष अनुप्रवेश हुआ और दोनों परस्पर घुल मिल गया। किन्तु जाटों और ठाकुरों द्वारा प्रयुक्त मातृभाषाओं में आज भी अन्तर बना हुआ है जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है जिससे कि खडीबोली के शुद्ध रूप का उद्धार किया जा सके। मेरठ की भाषा और साहित्य सम्बन्धी कार्य करने वाली किसी केन्द्रीय संस्था की अभी तक कमी है। मेरठ जनपद से बाहर रहने के कारण मैं स्वयं इस विषय में कार्य न कर सका और फिर मेरा कार्य क्षेत्र संस्कृत भाषा के महान् साहित्य की ओर मुड़ गया। श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी से मैंने इस सबंध में विस्तृत बात चलाई थी किन्तु उनके हाथ में भी अन्य कार्य होने से वे इस ओर ध्यान न दे सके। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की कल्पना और कार्यशक्ति विलक्षण थी, उन्होंने अवश्य इस ओर ध्यान दिया। ‘आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत’ ऐसा ही संग्रह था जिसने अनेक लोगों का ध्यान खींचा। मुझे ज्ञात हुआ है कि डॉक्टर कृष्णचन्द्र शर्मा ने एक शोध-प्रबन्ध के रूप में मेरठ जनपद के लोकगीतों पर सुन्दर कार्य किया है, किन्तु वह अप्रकाशित है और उसे मैं देख नहीं पाया हूँ।

अपने एक विशिष्ट लेख 'गाहा पल्हाया' (जनपद, जनवरी १९५३ पृ० ७०-७४) में मैंने कुरु-जनपद को एक ऐसे लोकसाहित्य का परिचय दिया था जिसकी पम्परा वैदिक युग से आजतक सुरक्षित रही है और जिसका संग्रह श्री गोड ने अपने एम० ए० के शोध निबन्ध के लिये किया था । इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० २३ पर किया गया है । अपने परिचय के आधार पर मैं यह निश्चय से कह सकता हूँ कि मेरठ जनपद गीतो, कहानियों और कहावतों की खान है । लेखिका सत्या गुप्त ने गीतो एवं कहानियों के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है । बच्चे के जन्म के समय छटी पूजन मेरठ जनपद का विशेष उत्सव है । उस समय जाजमातृ (पृ० ४२) का पूजन किया जाता है । वह प्राचीन काल की जातहारिणी देवी मालूम पड़ती है । इसका विस्तार से वणन काश्यप संहिता के खेती कल्प में आया है । यह बच्चों की अविष्ठात्री देवी थी और उसके सैकड़ों नाम और भेद थे किन्तु इसकी सर्वसामान्य सज्ञा जातहारिणी थी । मेरठ जनपद में नामकरण संस्कार को दसूतन (दशोत्थान) कहते हैं । उस अवसर के गीत बहुत ही रोचक होते हैं । किन्तु मेरठ जनपद की सबसे बड़ी विशेषता विवाह संस्कार है, उसके अनेक अंग दोनों पक्षों में मनाए जाते हैं जैसे—सगाई, छेई बान, हलदतेल, मढा-भात, घुडचढी आदि । इन अवसरों के गीत बन्ने कहलाते हैं । बारात के जाने के बाद वर-पक्ष के घर की स्त्रियाँ खोडियाँ बनाती हैं और उस समय धूम-धाम के साथ नाचना-गाना किया जाता है । उन गीतों में फूहड़ गीत भी होते हैं । ज्ञात होता है, इस प्रकार के खोडियों के गीतों के नमूने अथर्ववेद के २० वें काण्ड में संग्रहीत बच गए हैं । व्याह के समय अनेक देवी-देवता पूजे जाते हैं, जैसे ऊत पितर, माता, चामड देवी, जाहर पीर, भूले-बिसरे, मीरा और इनमें से हर एक के अलग-अलग गीत हैं । कजैतन या हथ लगिन जो मगल-मारी के रूप में व्याह सबधी सब मागलिक कृत्य करती है, वह बीध उठाती है अर्थात् उडद की पिट्ठी पीस कर खाट पर दो बीध रखती है और दूध, हल्दी, चावल, रोली से छीटे मारकर उसकी पूजा करती है । फिर और हथलग्नी खाट पर, पीढे पर टोकरे पर पखे पर और चढाई पर उडदी तोडती है । देव पितरों के नाम के चावल पिट्ठी लेकर पिये जाते हैं । चूल्हे पर जोत अर्थात् देवताओं की हँडिया रहती है । हँडिया में सज्जी का पानी औंटाया जाता है । उससे पापड बनाने की पिट्ठी माडी जाती है, फिर पापड की लोई मिसी जाती है तब पापड बनते हैं जो छकडे नामक विशेष हण्डो में (छाक या भोजन सामग्री के हण्डे) लडकी के ससुराल भेजे जाते हैं । बान छेई के समय गोरी-पूजन बत्तासो से और गुड की भेली से किया जाता है । एक चलती बरात की ओर

दूसरी आवती बरात की गौर अच्छा सा दिन देख कर खेत में सदाई जाती है । सात बन्दनवार बनाने की रीति है—कपडे की, रेशमी जाल की, फुन्दन की, फल की, गिदोडो की, मेवे की, पान की और फूल की । ये तोरण या द्वार पर मण्डप में और कोठार में बाँधी जाती है । व्याह में आठ गोद भेजने की प्रथा है । दो लगन पर (एक लगन की, एक बान की), दो पहुँचते ही गौरी-पूजन के समय, दो पैरो पर और दो कगने पर । उनमें से एक खाली और एक भरी होती है । ओर भी बरी पुरी, सोहगी, दिखावा, भात, कुआपूजन, चाकपूजन, सखर माँट, छकैडा तियल आदि के अनेक रिवाज हैं । इन में भात के गीत बहुत ही रोचक होते हैं । कन्या के भात में मामा चुदरी और आँछू बटवे लाता है । इनमें सभी अवसरों पर गीत गाये जाते हैं । भात की रीति को बहुत मागलिक मानते हैं । एक ब्राह्मण पीले कागज में बधे हुए खाँड के गिदोडे को, जिसे सुहागपूडा भी कहते हैं, मण्डप में बाँध कर लटकाता है । मामा के यहाँ से कन्या के लिये पाँचगजी धोती आती है, जिससे सात सुहागिने कन्या का चोला उसी समय फेरो से पहले सीती है । वर पक्ष की ओर से सात सुइयाँ फेरो से पहले भेजी जाती हैं, उसे सुई का सगुन कहते हैं । उसी सगुन के साथ रोली-मेहदी, छडे पैसे, लाल चूंदरी, सुगन्धित तेल, सिन्दोर-सिन्दोरी, लखा और दो गोद भी भेजी जाती हैं । इन सब लोकप्रथाओं के पीछे अनेक प्रकार के गीतों का भण्डार भरा हुआ है । मण्डप में वर को चौकी पर बैठा कर उसकी पूजा की जाती है । उससे पहले जनवासे में ही फेत बट-हरी या बैसाखी वर पक्ष को दी जाती है, फिर चढत के समय द्वारचार होता है । वर कन्या के अलकरण को हल्द-बान, तेल और ईछ कहते हैं । स्त्रियों की दृष्टि में इनका महत्त्व गीतों के रूप में ही होता है । थापा लगाकर देवता की स्थापना करते हैं । मण्डप के नीचे कन्या का पूजन किया जाता है, जिसे पैर पुजी भी कहते हैं । कन्या से बड़े स्त्री-पुरुष व्रत-उपवास रख कर मण्डप के चारों ओर घूमते हुए धान बोते हैं, उसे धान बोआई कहा जाता है । मण्डप में विवाह से पूर्व कन्या का पूजन ही वास्तविक गौरी-पूजन है । कन्या की सिर-गुदी भी महत्त्वपूर्ण है । वर, सिन्दूर से उसे टीका लगाता है और माँग-भरता है, इसे सुमगली प्रथा कहते हैं जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है । इनके अतिरिक्त व्याह की और भी छोटी-मोटी प्रथाएँ हैं जिनमें भँवर सप्तपदी अश्वा-रोहण, अरुन्धती दर्शन और छायादान मुख्य हैं । छायादान का सबध कृत्या निवारण से है जिसका उल्लेख ऋग्वेद के विवाह सूक्त (१०-८५) में आया है । वहाँ यह कल्पना की गई है कि स्त्री एक चलती-फिरती कृत्या है जिसके दो रूप हैं—एक अशिव और दूसरा भद्र । जो भद्र रूप है, वही वर के नूतन गृहस्थ में

प्रविष्ट होना चाहिये । छायादान के द्वारा लोक में इसी भावना की पूर्ति की जाती है । थापे या देवता के आगे वर को वैदिक छन्द पढ़ने होते थे किन्तु आज कल उसका केवल विकृत रूप रह गया है । सम्भव है, इस अवसर पर कुछ लोक गाथाएँ सुनाई जाती हों ।

ऋग्वेद में विवाह के अवसर पर गायी जाने वाली गाथाओं या गीतों का उल्लेख है—१—रैभी २—अनुदेयी ३—न्योचनी नाराशसी । आजकल के जो व्याहले गीत हैं उनमें इन तीनों प्रकारों को इस प्रकार पहचाना जा सकता है । रैभी वे गाथाएँ हैं जो भवर या फेरो के अवसर पर गीत गाई जाती हैं । अनुदेयी गाथाएँ विदा के गीत हैं, इस समय कन्या के पिता की ओर से बहुत सा दान देहज दिया जाता है । इसी से अनुदेयी शब्द सार्थक होता है । तीसरी न्योचनी नाराशसी के गाथाएँ हैं जो बहु लेने या बधावे के गीत कहे जाते हैं । जब बहु अपनी ससुराल में आती है तो उस क्रिया को न्योचनी समझनी चाहिये । उस अवसर पर समझा जाता है कि वर, कन्या की विजय करके वापस आया है और उसके पूर्वजों या बड़े बड़ों के साथ उसका भी यशोगान किया जाता है । उन्हीं गाथाओं के लिये प्राचीन काल में नाराशसी न्योचनी शब्द का प्रयोग सम्भवतः किया जाता था । अब वे ही बधावे के गीत हैं । प्रत्येक सग्रह कर्त्ता को उचित है कि वे इन तीन प्रकार के गीतों का अलग-अलग सग्रह करके उनकी विशेषताओं का अध्ययन करें । सम्भव है, इससे उनकी प्राचीन रूढ़ियों एवं विशेषताओं का कुछ उद्धार किया जा सके ।

दूसरी रोचक प्रथा मेरठ जनपद में प्रचलित 'बहो' की है । विवाहित कन्या के जीवन को नयी परिस्थिति के अनुकूल बनाने की एक प्रथा है जिसे बहो कहते हैं । ससुराल के नए ससार में कन्या किस प्रकार अपना निभाव करेगी और कैसे सबसे हिल-मिल कर रह सकेगी, यही बहो के इन बोलों का तात्पर्य है । कुछ बहो के नाम इस प्रकार हैं—

१. राह उजाला—व्याह के साल कन्या अपने घर पर ही रहती हुयी, एक दिया रोज जला कर बाहर मार्ग में रख आती है जिससे रास्ता चलतो को उजाला हो जाय । ३६५ पेडे बनाकर लडकी ससुराल भेजती है ।

२. बाट सिलाना—कन्या एक लोटा पानी और थोड़े दाने लेकर बाट सिलाती हुयी जाती है—

सिलवर सिलवर बाट सिलाऊँ ।

सासू नन्द कू चीर उढाऊँ ।

३. सूरज भवारा—कन्या नित्य नहाकर एक लोटा जल सूरज को चढ़ाती है ।

४. दातन कन्या—चार बजे (ब्राह्ममुहूर्त में) उठ कर दातन करके तब बोलती है और ऐसा ही साल भर नियमित करती है ।

५. कौड़ी गल्ला—एक छोटा सा घर (चाँदी का) बनाकर और एक पुतली चाँदी की बनाकर ससुराल भेजी जाती है । कन्या प्रतिदिन एक कौड़ी या पैसा डालती थी और साल के बाद वह ससुराल को भेज दिया जाता था ।

६. चिडिया चुगाई —कुछ दूर में घरती लीप कर उस पर बाजरा बखेर कर चिडिया चुगाई जाती है और नन्द के लिये वर्षान्त में इजार ओली चिडिया चुगाने की निशानी भेजी जाती है ।

७. फूफस के थुआ देना—निम्न पद्य कह कर बहू फूफस को गुड की भेली देती है—

ससुरे बहन बलम की फुआ ।

मेरे लेखे मट्टी की थुआ ॥

८. सासू की हँसाई—कडी बात कह कर सासू को रुष्ट करना ।

९. सासू जिमाई—सासू को जिमाकर प्रसन्न करना ।

१०. ससुर जिमाई—ससुर के कन्धे पर दुशाला डाल कर मेवा भर देते हैं और दो चार रुपये डाल देते हैं—

ससुर मेरा वाला भोला ।

भर मेवा का झोला ।

११ ससुर को पिन्नी देना—‘दमकन पिन्नी चमकन सुसरा’ यह कहा जाता है ।

१२ लेले पिया मिसरी , मेरे मन से कभी न बिसरी ।

१३ जेठ जिठानो का बहा—

आयत यापत धरी मिठाई ।

जेठ जिठानी रिल मिल खाई ।

१४ भगन का बहा—

चार कचौड़ी ऊपर जीरा ।

कदी ना बनू मोरी का कीरा ॥

१५ जेठ का बेटा—

चार कचौरी ऊपर दही ।

जेठ के बेटे ने चाची कही ॥

१६. देवर—

थाली भरे बदामा ।
देवर भाभी का गुलामा ॥
थाली भरे बतासे ।
देवर करे तमासे ॥

१७. खुती चीर—बहन-भाई जब उपस्थित हो तब एक चादर तानकर नवागता बधू ऐसा कहती है और वह चादर चावल ओर रुपये बहिन को देती है—

आले चावल खुंटी चीर ।
चिर जीवे नन्दी तेरा बीर ।

१८—सासू का बहा—

ले सासू गठरीं
दिखा अपनी गठरी ।

इस बहे में बहू सास की गठरी देख कर झकझोर लेती है । इन बहो में कन्या के लिये मनोरंजन और शिक्षण की सामग्री रहती है और छोटी-मोटी गृहस्थियों में सुखद अवसर उपस्थित करते हैं । यहाँ तक कि घर की भगन का भी सत्कार-सम्मान करना नई बहू के लिये आवश्यक था ।

लेखिका ने धार्मिक गीतों का भी अच्छा संग्रह और अध्ययन किया है । इनमें गणेश और तुलसी पूजा के गीत हैं, जो प्रायः सभी जनपदों में गाये जाते हैं । इनमें सावन के गीत सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं । मेरठ जनपद में कुछ लोकगाथाएँ भी गायी जाती हैं । इनमें चँदना, चन्द्रावल, निहालदे, गुग्गा पीर, गोपीचन्द भरथरी आदि की लोककथाएँ बड़े रस से गायी जाती हैं । फाल्गुन में गाये जाने वाले होली के गीत भी आकर्षक होते हैं, जब कच्ची इमली गदराती है अर्थात् युवती स्त्री में मस्ती छा जाती है । ज्ञात होता है कि ये प्राचीन काल से चले आते हुए चॉचर या चर्चरी के गीत थे जिन्हें गाती हुई युवती कन्या अपनी सखियों के साथ शिवपूजन के लिये निकलती थी । 'काँटा लागो रे देवरिया मोपै गैल चलो ना जाय'—यह मेरठ जनपद का प्रसिद्ध बोल है जो गाँव-गाँव में सुनाई पड़ता है । चक्की पनघट और खेती के गीत भी स्त्रियों में प्रचलित हैं । इसी प्रकार पुरुषों में कोल्हू और कुआँ चलाते समय मल्होर और पल्हाए नामक गीत हैं जिनका कुछ संग्रह इस ग्रन्थ में (पृ० ९३-९४) आया है । मल्होर को 'बावली मल्होर' भी कहा जाता है क्योंकि इनके गाने वाले ऐसे दोहे कहते थे जो अनबूझ पहेली-सी जान पड़ती थी, मानो कोई बावला निर्गुणिया व्यक्ति

अपना अनुभव सुना रहा हो । लड़के-लड़कियों के बालगीत, टेसू के गीत, साँझी के गीत, जिनमें साँझी या गौरी पार्वती का वर्णन आता है, किसी समय बड़े उमर से गाये जाते थे । खड़ीबोली के इन लोकगीतों में सामाजिक चित्रों का भी अध्ययन किया गया है ।

मुझे यह देख कर प्रसन्नता है कि शोध-प्रबन्ध में कौरवी की लोककथाओं के अध्ययन पर भी पर्याप्त सामग्री एकत्रित की गयी है । जो लोकसाहित्य अब शनैः शनैः नई शिक्षा की कूँची के पोत से मिट रहा है उसे समय रहते लिपिबद्ध कर लेना और यान्त्रिक उपायों से सुरक्षित कर लेना आवश्यक है । अतः पहली दृष्टि से यह अध्ययन सर्वथा स्वागत योग्य है । यदि इसके फलस्वरूप मेरठ जनपद में लोक-वार्ता सबधी अध्ययन की कोई प्रेरणा मिल सकी तो सब के लिये प्रसन्नता की बात होगी ।

१८।१२।६४

वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चाराणसी—५

भूमिका

खडीबोली-प्रदेश मेरी जन्मभूमि है। इसी कारण यहाँ का लोकसाहित्य मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। अवस्था के अनुरूप इससे मेरा सम्पर्क दिन-प्रतिदिन घनिष्ठ होता गया और एम० ए० के बाद जब मैंने 'ब्रज-शोकसाहित्य' तथा 'भोजपुरी-लोकसाहित्य का अध्ययन' प्रबन्ध देखे तो मेरे मन में अपने प्रदेश के लोकसाहित्य पर कार्य करने की आकांक्षा हुई। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा भी मेरी इस इच्छा को बल मिला। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि तुम तो इस प्रदेश की लडकी हो, सामग्री का सकलन करना तुम्हारे लिए कठिन कार्य नहीं। तत्पश्चात् जब मैंने अपने मन की बात पूज्यवर डॉ० वीरेन्द्र वर्मा से कही तथा इस सम्बन्ध में पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना की तो डॉ० साहब ने अपनी स्वीकृति देकर मेरी इस इच्छा को संरक्षण प्रदान किया।

उस समय मैंने पर्याप्त सकलन कर लिया था परन्तु सकलन वैज्ञानिक ढंग पर न होने के कारण, बहुत सी भूलें रह गयी थी जिसका निराकरण करने में मुझे अतिरिक्त श्रम करना पड़ा। वह सकलन वैसे भी इतना नहीं था कि उसके आधार पर यह अनुसंधान-कार्य किया जा सकता। मैंने ओर उत्साह से सकलन कार्य करना आरम्भ कर दिया परन्तु बीच-बीच में अत्यन्त अस्वस्थ हो जाने के कारण व्यवधान पड़ते रहे। सकलन कार्य में भले-बुरे कितने ही अनुभव हुए जिनकी ओर सकेत कर देना यहाँ अनुचित न होगा। इस काल में ऐसे भी क्षण आये जब अपनी अस्वस्थता तथा कार्य का विस्तार देख कर हताश हो जाना पड़ा परन्तु गुरुजनो के सतत प्रोत्साहन से पुन-पुन कार्यरत होनी रही।

जो सबसे बड़ी कठिनाई मेरे मार्ग में आयी, वह थी विषय की व्यापकता तथा मेरी सीमाएँ। मुझे गाँव-गाँव तथा घर-घर सामग्री एकत्रित करने जाना पड़ता था। ग्राम की महिलाएँ कभी-कभी मुझे प्रश्नभरी दृष्टि से देखती थीं। उनकी समझ में नहीं आता था कि मैं गीतो, कहानियों को बेचूंगी या तवे (रेकार्ड) भरवा कर जगह-जगह सुनाती फिळूंगी। कई बार पुरुषों से बात करते हुए देख कर उन्हें मेरी लज्जाहीनता पर क्षोभ भी होता था। मुझे ऐसी स्थिति का भी सामना करना पड़ा जब मेरे मेजबान हँस कर (बगड) आँगन में घुस गये और मैं बाहर ही

खड़ी रह गयी। उस समय मेरी सुरक्षा के लिए धर के पुरुष ही आये और उन्होंने महिलाओं को मेरे सबब में आश्वस्त करके मेरा काम करवाया। कई स्थानों पर आशीर्वचन के साथ भी मुझे सामग्री प्राप्त हुई। सबसे अधिक कठिनाई मुझे पुरुष-वर्ग से सामग्री एकत्रित करने में हुई। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि यदि स्त्रियाँ परदा नहीं करती तो वहाँ के पुरुष पर्दा कर लेते हैं। इसका कारण यह भी था कि पुरुषों से सबवित लोकसाहित्य का बहुत-सा भाग अश्लील भी है। पल्हाये, गीत तथा कुछ साग इसी प्रकार के साहित्य में आते हैं। इस समय मुझे अपने पुरुष सबवियों से सहायता लेनी पड़ी। उनकी अपनी सीमाएँ थी, इसीलिए मैं उनकी सहायता से इतनी ही सामग्री प्राप्त कर सकी जितनी स्त्री होने के कारण मेरे लिए अप्राप्य थी। दानों की कहानियाँ, विक्रमादित्य से सबधित कहानियाँ, शेखचिल्ली की कहानियाँ, स्थानीय लोक-कथाएँ, लोकोक्तियाँ, लोकगाथा, लोकनाट्य, मंत्र, रीति-रिवाज, अनुष्ठान तथा जोगियों के गीत आदि—यह सब मैंने स्वयं ही पुरुष जाति से एकत्रित किए। इसीलिए पुरुष वर्ग की सामग्री अधिकांश मात्रा में तो उपलब्ध नहीं हो सकी, लेकिन उस सामग्री से आवश्यकतापूर्ति हो गयी। बालकों से सबधित सामग्री प्राप्त करने में अपेक्षाकृत अधिक सरलता रही। प्रारम्भ में तो बालक झिझके और शरमाये परन्तु बाद में उनमें बताने के लिए होड़-सी लग गई। अधिक आनन्द इन्हीं की सामग्री एकत्रित करने में आया। अपने तथा सामग्री सकलन के सम्बन्ध में इतना सब कुछ कह देने पर विषय का परिचय देना भी अत्यन्त आवश्यक है।

डॉ० ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक^१ में सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बिजनौर तथा बुलन्दशहर के कुछ भाग को खड़ीबोली-प्रदेश का क्षेत्र माना है। इसी प्रदेश को कुछ विद्वानों ने कोरवी^२ प्रदेश भी कहा है। खड़ीबोली के लोकसाहित्य से हमारा तात्पर्य इसी प्रदेश के लोकसाहित्य से है। इस लोकभाषा का हिन्दी जगन् से बहुत ही घनिष्ठ सबब है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी की उत्पत्ति इस भाषा से ही हुई है। इस प्रदेश की लोकभाषा को साहित्यिक हिन्दी का अपभ्रंश रूप भी माना जाता है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उपनिषदों के विकास में खड़ीबोली का

१ Linguistic Survey of India, Vol 9, Part I, Dr G A. Grierson, P 63

२—आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीते—राहुल सांकृत्यायन।

महत्वपूर्ण योगदान माना है।^१ श्री शितिकठ मिश्र^२ ने तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए सम्पूर्ण श्रेय खड़ीबोली को ही दिया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने राष्ट्रभाषा खड़ीबोली को ही माना है। वस्तुतः खड़ीबोली को बहुत-सी स्थितियों में से निकलना पड़ा है, तब ही यह इस स्थान तक पहुँच पायी है। यही कारण है कि इसने अनेक भाषाओं के शब्द लेकर उनसे समझौता कर लिया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा^३ के कथनानुसार इसमें फारसी-अरबी के शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियों की अपेक्षा अविक है। यही कारण है कि इस भाषा का प्रसार खड़ीबोली प्रदेश में ही न रह कर देश के अविर्काश भागों में हो गया है। इस भाषा के महत्व तथा विस्तार को देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि अब तक इसका लोकसाहित्य पूर्णरूप से उपेक्षित रहा है। वैसे यदा-कदा इस पर विद्वानों की दृष्टि जाती रही है परन्तु इस प्रदेश का पूर्णरूप से सिंहावलोकन नहीं हो पाया। खड़ीबोली-प्रदेश तथा इसके लोकसाहित्य का सर्वांग रूप से परिचय तो पहले अध्याय में कराया गया है परन्तु विषय-प्रवेश हेतु मैं यहाँ पर भी परिचय के रूप में कुछ कह देना आवश्यक समझती हूँ।

खड़ीबोली का लोकसाहित्य, उसके अध्ययन की आवश्यकता और महत्व—वस्तुतः किसी भी देश के लोकसाहित्य का अध्ययन उसकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्य, सामाजिक जागरण एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है।

साधारणतः लोकसाहित्य के अध्ययन का महत्व अब सभी को ज्ञात है, यहाँ पर मैं सभी भाषाओं के लोकसाहित्य के सबंध में न कहकर केवल खड़ीबोली लोक-साहित्य के अध्ययन के महत्व को ही स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रही हूँ।

खड़ीबोली आज राष्ट्रभाषा के स्थान पर है, अतः उसकी मूलभूमि को और विगत-संस्कृति को जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। यह साहित्य के द्वारा नहीं जानी जा सकती और लिखित साहित्य अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है, जो लिखा भी गया है उसका रूप-रंग केवल उपलब्ध साहित्य सबंधी सामग्री ही के माध्यम से समझा जा सकता है।

इसी कारण विविध जनपदों के लोकसाहित्य का अध्ययन किया जा रहा है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बघेली, गढ़वाली, हरियाणी तथा राजस्थानी आदि लोक-

१—सम्मेलन पत्रिका, भाग ४०, मख्या ४, आश्विन-स ० २०११ पृ० १५

२—खड़ीबोली का आन्दोलन—शितिकठ मिश्र, पृ० १

३—ग्रामीण हिन्दी—धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १९-१७

साहित्य पर अनेको विद्वानों ने कार्य किया भी परन्तु सम्पूर्ण लोकसाहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिए यही पर्याप्त नहीं है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण कड़ी खड़ीबोली का लोकसाहित्य, अभी तक अछूता ही रहा है। हाँ, मेरठ जनपद^१ के लोकगीतों पर अवश्य कार्य हुआ है। परन्तु वह भी इस कड़ी को पूर्ण रूप से पूरा नहीं करता।

सत्य तो यह है कि 'ग्रामवासिनी'^२ हिन्दी या आदि' हिन्दी के जनसाहित्य का सबसे बहुत पहले सग्रह और प्रचार हो जाना चाहिये था किन्तु इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

लोकसाहित्य से संबंधित सामग्री का सकलन तथा उसका अध्ययन विशेषतः इसलिए किया जाता है कि मानव-विज्ञान और जन-संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन का वह एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सके।

समस्त विश्वासों तथा प्रथाओं के पीछे भी जानी-अनजानी कहानी छिपी होती है। संपूर्ण संस्कारों—जन्म, जीवन, मरण आदि पर लोकसाहित्य मुखर है, इसीलिए बिना इस साहित्य का गंभीर अध्ययन किए जन-जीवन और लोक-संस्कृति के मूल तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसी से मानव के सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक अध्ययन में सहायता मिलती है। जनजीवन और मानव-विकास के अध्ययन में लोकसाहित्य की इसीलिए अत्यधिक महत्ता है। यह लोककलाओं तथा लोक-संस्कृति में संपर्क बनाये रखने के लिए सेतु है, जिसके सहारे कला तथा संस्कृति विकास के लक्ष्य तक पहुँचती है।

लोकसाहित्य में प्रयुक्त लोकशब्दों, सारगर्भित मुहावरों तथा लोकोक्तियों के द्वारा ही हिन्दी साहित्य अधिक समृद्धिशाली तथा अभिव्यक्ति पूर्ण हो सकता है। लोकसाहित्य में जटिल भावों को व्यक्त करने के लिए सरल, सहज एवं सटीक शब्द भरे पड़े हैं। साहित्यिक भाषा को पुष्ट करने के लिए भी लोकसाहित्य की आवश्यकता है। शब्दों की उत्पत्ति एवं परम्परा ज्ञात करने के लिए लोकसाहित्य की सहायता ली जाती रही तथा भविष्य में भी उसकी आवश्यकता है। जिन भावों को साहित्यिक हिन्दी के शब्द व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं उनको लोकशब्द, उक्तियाँ तथा उपमाएँ सहज ही में व्यक्त कर देती हैं।

लोकसाहित्य में विशेषतः जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती हैं। इसीलिए लोकसाहित्य के

१—मेरठ जनपद के लोकगीत—डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा (शोध प्रबन्ध) अप्रकाशित।

२—आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें—राहुल सांकृत्यायन, पृ० २

अध्ययन मे भावभूमि का विशेष महत्त्व है। लोकगीतो की लोकभावना का प्रतिनिधित्व जीवन के स्तर और अवसर, भाव और अभाव मे मानव जीवन को प्रभावित करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा सामाजिक लोकजीवन गीतमय है। मानवीय चेतना के विभिन्न रूपो मे राष्ट्रीयता, धार्मिकता, सामाजिकता और साहित्यिकता के आधार पर इनका निर्माण हुआ है।

लोकसाहित्य की भाव-संगति सपूर्ण लोक की मंगलकामना के रूप मे ही उद्भासित होती है। लोकसाहित्य लोकमंगल के अतिरिक्त कोई भी मर्यादा नहीं मानता। लोकमानस की इस भावात्मक भावभूमि मे जड़-पदार्थ भी चेतन हो उठते है तथा पशु-पक्षी भी मानव भाषा मे बोलते है। लोकसाहित्य मे ऐसा समाजवाद है जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सर्वोच्च उदाहरण है। वहाँ जड़-चेतन, देवी-देवता, मनुष्य-दानव—सब ही एक तल पर आ जाते है।

मानवोचित सब ही भावनाएँ यहाँ पर साकार है। लोकसाहित्य मे निकृष्ट से निकृष्ट भावनाओ को भी उतना ही स्थान मिला है, जो उच्च से उच्च भावना को मिला है। लोकसाहित्य, लोक की मंगलकामनाओ की विराट् सौन्दर्यामि-व्यक्ति है जिसमे किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आ सकती। इस विराट् सौंदर्य को, जो ससार मे भी हर लोक मानव तथा लोकसमाज की पृष्ठभूमि मे समानरूप से जीवित है, समझने और जानने के लिए इस भावभूमि को समझना अत्यधिक आवश्यक है।

अध्ययन के आधार—खड़ीबोली प्रदेश का लोकसाहित्य अत्यन्त व्यापक विषय है जिसके विस्तार तथा वर्गीकरण के सबब मे उल्लेख किया जा चुका है। अब प्रश्न यह है कि इस प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन किस-किस दृष्टि से किया जा सकता है। अध्ययन के दृष्टिकोण के अनुसार मतभेद होना स्वाभाविक है। मेरी दृष्टि से मुख्य दृष्टिकोण निम्नलिखित माने जा सकते है जो इस प्रकार है —

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक पक्ष—सामाजिक के अन्तर्गत कौटुम्बिक सबब, आदर्श प्रेम, नारी की परतत्रता तथा रीति-रिवाज आते है। जातियो के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य से बढकर कोई विषय नहीं। इसके अन्तर्गत सामाजिक आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा सामाजिक कुरीतियो आदि का भी उल्लेख मिलता है। इससे मनुष्य के जीवन और उद्गम के सबब मे ज्ञात होता है।

लोकसाहित्य के अध्ययन मे हमे नैतिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक तथा भौगोलिक शास्त्र सबधी तथ्य भी उपलब्ध होते है। लोकसाहित्य का अध्ययन

किसी भी देश की सभ्यता, सस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एव साहित्यिक-सामाजिक जागरण तथा आकाक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है। लोकसाहित्य में प्रस्तुत समाज का नैतिक पक्ष, सामाजिक जीवन के मन्त्र में भिन्न नैतिक मान्यताएँ, उनसे सबवित लोककथाएँ व गाथाएँ भी इसी लोक-साहित्य में आती हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन बहुत आवश्यक है। यह सामाजिक रीति-रिवाजों की रीढ़ की हड्डी है।

१ धार्मिक पक्ष—लोकजीवन पूर्णतया धर्म के ऊपर ही आधारित है। अपने जीवन-धर्म तथा जीवनदर्शन के अनुरूप ही उनके आचरण भी होते हैं। इसमें देवी-देवताओं की कहानियाँ, अनेक प्रकार के व्रत-उपवास, मन्त्र-मन्त्र इत्यादि का वर्णन भी मिलता है। पूजा, अनुष्ठान, व्रत, लोककथाएँ, अवविश्वास, टोने-टोटके तथा इनसे सम्बन्धित लोककलाएँ सर्वांगरूप से लोकसाहित्य में मुखरित होती हैं जो लोकमानव की कडी से कडी मिलती चलती हैं।

२ भौगोलिक पक्ष—लोकमानव का वाह्य सत्कार से अधिक सम्पर्क नहीं रहता परन्तु वह लोककथाओं, लोकगीतों तथा अनेक लोकोक्तियों द्वारा अपना कार्य चला ले जाता है। वह जानता है कि कौन शहर किस स्थान पर तथा किस दिशा में स्थित है और वहाँ कौन-कौन-सी वस्तुएँ होती हैं तथा मौसम कैसा रहता है आदि। स्थान-विशेष की महत्ता और उसके धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष सबको वह जानता-समझता रहता है। लोकगीतों का परदेसी सब दिशाओं में भटकता फिरता है, इसी कारण वह देश-देशान्तरो के गढ़, किले तथा अनेक मुख्य स्थानों से परिचित रहता है।

३ ऐतिहासिक पक्ष—लोकसाहित्य इतिहास के पृष्ठों का सबसे बड़ा संरक्षक है। जिन तथ्यों को इतिहास जानता भी नहीं, वह लोकसाहित्य में सुरक्षित रहते हैं। अनेकों ऐसे तथ्य मिल जाएँगे जिनको सुनकर दाँतोंतले उगली दबानी पड़ती है। ऐतिहासिक कहानियों में 'सिकन्दर' कहानी का उदाहरण है, इस कहानी के आधार पर सिकन्दर को अत्याचारी घोषित किया गया है। जिसका इतिहास में कोई उदाहरण नहीं मिलता।

४. शैक्षिक पक्ष—लोककथाओं, लोकोक्तियों तथा लोकनाट्यों का यह पक्ष बड़ा ही सबल है। नीतिकथाओं तथा लोकोक्तियों में मनुष्य के आचरण एवं उसके व्यवहार के प्रति हर स्थान पर शिक्षा मिलती है जिसके प्रति लोक-मानव अत्यधिक आस्थावान् होता है। सभी प्रान्तों के लोकसाहित्य की तरह खड़ीबोली का लोकसाहित्य भी बहुत समृद्ध है तथा गद्य एवं पद्य-मिश्रित गीतों के रूपों में उपलब्ध है।

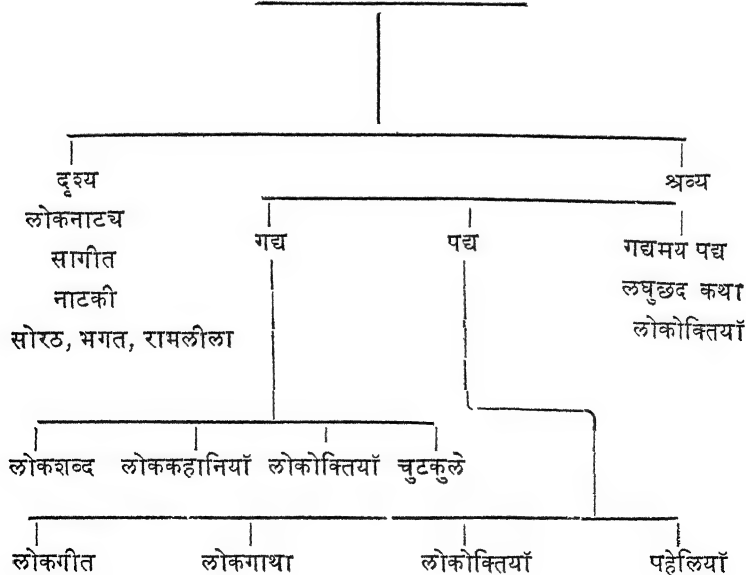
५ वैज्ञानिक तथा भाषाशास्त्र सबही पक्ष—लोकसाहित्य के द्वारा भाषातत्त्व का पता चलता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन में यह सग्रह सहायक है। लोकसाहित्य, क्योंकि सहज लोकभाषा में कहा जाता है अतः उसमें कृत्रिमता का अंश नहीं होता। इसमें स्थानीय भाषा का शुद्ध रूप मिलता है जो भाषा-विज्ञान के अध्ययन में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। यह भाषाशास्त्र का अक्षय-भण्डार है।

इस लोकसाहित्य की मौखिक-वार्ता में बुढ़िया पुराण आता है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबके यहाँ उपलब्ध होता है। इसमें वह यथार्थवादी वस्तुएँ मिलती हैं जो इतिहास को प्रभावित करनेवाली होती हैं। इसमें आदिकाल से लेकर अब तक के इतिहास की सामग्री मिलती है।

लोकसाहित्य से परिचय कराने के लिए हम दो तालिकाएँ नीचे दे रहे हैं। इस प्रदेश के लोकसाहित्य की स्थूल रूपरेखा इन तालिकाओं के द्वारा स्पष्ट हो जायेगी। पहली तालिका में सम्पूर्ण सामग्री का साधारण वर्गीकरण है तथा दूसरी तालिका में व्यक्तियों के अवस्था-भेद के आधार पर वर्गीकरण किया गया है क्योंकि अधिकांश सामग्री इस अवस्था-भेद से संबंधित व्यक्तियों में ही उपलब्ध हो सकी है।

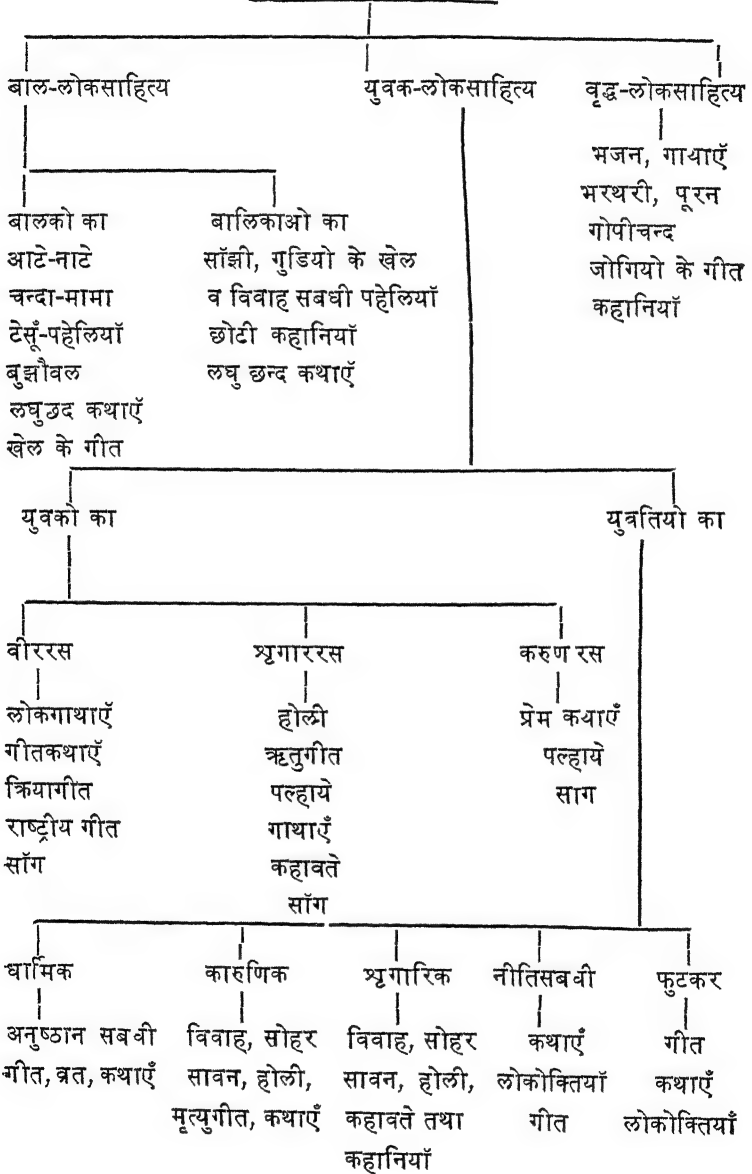
तालिका न० १

खड़ीबोली का लोकसाहित्य



तालिका न० २

खड़ीबोली का लोकसाहित्य



संपूर्ण प्रबन्ध में लोकसाहित्य के विभिन्न अंगों का उल्लेख है और विभिन्न अध्यायों में क्रम से इनका उल्लेख किया गया है।

अध्याय एक में 'खड़ीबोली' से तात्पर्य, उसका भौगोलिक क्षेत्र, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व, जनसंख्या तथा क्षेत्र का मानचित्र है। अध्याय दो में खड़ी-बोली के लोकगीतों का अध्ययन है जिसके अन्तर्गत सकलन के आधार पर वर्गीकरण किया गया है तथा, सस्कार सबंधी, धार्मिक व्रत-त्योहार सबंधी, ऋतु-संबंधी, श्रम-गीत व बालगीतों की विवेचना की गयी है। अध्याय तीन में भी लोकगीतों का ही अध्ययन किया गया है। इसमें लोकगीतों में सामाजिक चित्रण, पारिवारिक संबंधों का उल्लेख, सामाजिकता तथा राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण, आदर्श सतीत्व, राजनैतिक पक्ष, हास-परिहास सबंध और लोक-वाद्यों की आवश्यकता, उनका उल्लेख तथा इसके साथ-साथ संगीत-पक्ष भी संक्षेप में दिया गया है। अध्याय चार में लोककथाओं पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है, समग्र हीत सामग्री के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है तथा अभिप्रायों और कथा-शिल्प और भावाभिव्यक्ति का भी अध्ययन करने की कुछ चेष्टा की गयी है। अध्याय पाँच में लोकगाथाओं का अध्ययन किया गया है। लोकगाथाओं की उपलब्ध सामग्री का वर्ण्यविषय, पात्रउद्देश्य तथा प्रकाशित सामग्री का उल्लेख मिलता है।

इसी प्रकार अध्याय छ में लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ तथा स्फुट-सामग्री का अध्ययन है। लोकोक्तियों का वर्गीकरण, और उनका महत्व, मुहावरे और पहेलियों का वर्गीकरण तथा महत्व और स्फुट सामग्री के अन्तर्गत लोकसमाज में प्रचलित मल्हार तथा दोहा-साहित्य का उल्लेख है। अध्याय सात में लोक-नाट्यों पर प्रकाश डाला गया है। लोकनाट्यों की स्थानीय विशेषताएँ, वर्ण्य-विषय, प्रसाधन, वेशभूषा, रंगमंच, कथोपकथन, आधुनिक रूप तथा एक स्वांग-लेखक का उदाहरण सहित विस्तृत उल्लेख है। अध्याय आठ में खड़ीबोली जनपद की लोकसंस्कृति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी है। इसके अन्तर्गत लोक-विश्वासों की व्यापकता, सामाजिक आधार-विचार, धार्मिक स्वरूप, लोककला, लोक-नृत्य, वेशभूषा, खान-पान, लोक-भाषा व शब्द, यहाँ के निवासियों का स्वभाव, मनोरंजन तथा मेलो आदि का उल्लेख किया गया है। अतः संपूर्ण मूल प्रबन्ध आठ अध्यायों में ही है। अतः में सहायक हिन्दी-अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची है।

परिशिष्ट अधिक विस्तृत हो जाने के कारण मूल-प्रबन्ध से स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, सकलित लोकशब्दावली है।

अपनी कठिनाई का उल्लेख तथा विषय का परिचय देने के पश्चात् अत्यन्त बहुमूल्य कार्य आभार-प्रदर्शन का वचन रहता है। वास्तव में अपने गुरुजना तथा शुभचिन्तकों के प्रति धन्यवाद के शब्द कहना अपने आप ही को चोर बनाना है, परन्तु शब्दों की सीमाओं और भावनाओं की प्रबलता देख कर अतः मैं इसी का सहारा लेना पड़ता है।

श्रद्धेय गुरुदेव डॉ० वीरेन्द्र वर्मा के प्रति जिनके पाण्डित्यपूर्ण पथ-निर्देशन में रह कर तथा जिनकी कृपा से मैं इस प्रबन्ध को प्रस्तुत करने योग्य हुई, मैं आजन्म ऋणी रहूँगी। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अमूल्य परामर्श से मेरी सीमित शक्तियों को सदैव बल मिला, इसके लिए मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ। डॉ० सत्येन्द्र मेरे गुरुतुल्य हैं, उनके परामर्श तथा समय-समय पर उनकी सहायता के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। डॉ० वामुदेवशरण अग्रवाल से यद्यपि मैं केवल एक बार ही मिल सकी, परन्तु उनके द्वारा एक ही बार दिए गए सुझावों ने मेरा सदैव जो मार्गप्रदर्शन किया है उसके लिए मैं अपना आभार ही प्रकट कर सकती हूँ।

पूज्यवर प० रामनरेश त्रिपाठी हमारे लोकसाहित्य-परिवार के सबसे वयो-वृद्ध व्यक्ति हैं। उन्होंने इस क्षेत्र में अर्जित किये अपने अनुभव-ज्ञान का भाग जो मुझे दिया, उसके प्रति आभार प्रकट करने में अपने आप को असमर्थ पा रही हूँ।

डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा जो इस प्रदेश के लोकसाहित्य पर प्रबन्ध रूप में कार्य करने वालों में अगुआ रहे हैं। इसी नाते उन्हें मैं अपना बड़ा भाई मानती हूँ और इसी आत्मीय सबब के कारण मुझे उनमें किसी भी समय कोई भी सहायता लेने में कभी कोई सकोच नहीं हुआ और वह भी मुक्त तथा उदार-हृदय से सदैव तत्पर रहे। उनके प्रति मैं आभार ही प्रकट कर सकती हूँ।

डॉ० उदयनारायण तिवारी तथा डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने समय-समय पर पुस्तकों तथा आवश्यक सुझावों के द्वारा मेरा कार्य सरल किया और प्रोत्साहन दिया, उसके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के अवकाश ग्रहण करने के बाद उनका कार्यभार संभाला और उस पद पर आने के बाद से उन्होंने मेरे प्रति जो अपना उत्तरदायित्व सहर्ष निभाया एवं सतत कार्यशील रहने की प्रेरणा दी, इससे मुझे अतिरिक्त बल मिला। उनको मैं सादर धन्यवाद देती हूँ।

उन सभी अवस्थाओं के ग्रामवासियों की, जिनके संपर्क में आकर मैंने यह सकलन किया, जिन्होंने अपनी गुप्त-निधि में से हिन्दी साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया, जिनके सदय सहयोग के बिना मैं इस दुरूह कार्य को करने

मे सर्वथा असमर्थ ही रहती तथा अपनी आकाक्षा को कार्यरूप में परिणित ही नहीं कर सकती थी—उन सभी व्यक्तियों की मैं बहुत कृतज्ञ हूँ ।

प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग संग्रहालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, नेशनल-लाइब्रेरी, कलकत्ता, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा, आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा, मेरठ कालेज, मेरठ के पुस्तकालयों के अधिकारीगण धन्यवाद के पात्र हैं जिनसे अध्ययन काल में आवश्यक सहायता व सुविधा प्राप्त हो सकी ।

इनके अतिरिक्त उन सभी ज्ञात-अज्ञात सहयोगियों का, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में पृष्ठभूमि में रह कर मेरे शुभचिन्तक रहे और पग-पग पर मेरे पथ को सुगम और प्रशस्त बनाने में सहायता की, उन सबका मैं हृदय से आभार स्वीकार करती हूँ ।

इस विषय-काल की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों की भी धन्यवाद के समय उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

अपने विश्वविद्यालय का आभार प्रकट करने के मोह को भी मैं सवरण नहीं कर पा रही हूँ, जिसके महत्वपूर्ण गरिमामय बरगद की एक पत्ती को स्पर्श करने का मुझे भी सौभाग्य मिल सका तथा जिसके ज्ञान मण्डित वातावरण में मैं साँस लेती रही ।

अतः मैं अपनी सीमित क्षमता तथा बुद्धि के कारण हुई त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

सत्यागुप्त

२३ अगस्त, १९६१

हिन्दी-विभाग,

प्रयाग विश्वविद्यालय,

प्रयाग ।

खड़ीबोली-लोकसाहित्य
का
परिचय और पृष्ठभूमि
१

खडीबोली का नामकरण—‘खडीबोली’ शब्द से तात्पर्य खडीबोली-प्रदेश मे बोली जानेवाली जनपदीय लोकभाषा से है। भूमिका मे यह स्पष्ट किया जा चुका है।

खडीबोली प्राचीन कुरु जनपद मे बोली जानेवाली कौरवी का ही अधिक प्रचलित नाम है। मूलतः यह दिल्ली, मेरठ की प्रादेशिक तथा ठेठ बोली है। पश्चिमी हिन्दी की विभाषाओ मे खडीबोली का विशिष्ट स्थान है।

“खडीबोली उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और मेरठ—इन पाँच जिलो, रामपुर रियासत और पंजाब के अम्बाला जिले मे बोली जाती है। यह भूमिभाग प्राचीन समय मे कुरु जनपद था। यह बात कुतूहलजनक है कि इस बोली का शुद्ध रूप अब भी उसी स्थान के निकट मिलता है जिस स्थान पर कुरु-देश की प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर थी। खडीबोली हरिद्वार से प्रायः १०० मील नीचे तक गंगा के किनारे की बोली कही जा सकती है।”

हिन्दी के जिस स्वरूप को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिया गया है वह न सूरसागर की हिन्दी है न ‘मानस’ की, बल्कि ‘खडीबोली’ हिन्दी है। गोरख की इस चोटी तक पहुँचने के लिए उसे अनेक सघर्षों से होकर गुजरना पड़ा है। यह तो निर्विवाद हो गया है कि दिल्ली, मेरठ, प्राचीय विभाषा के आधार पर ही वर्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास हुआ, परन्तु आरम्भ मे इसका नाम खडीबोली क्यों पड़ा, यह विद्वानो के तमाम प्रयत्नो के बाद भी विवादग्रस्त ही है।

जहाँ तक ज्ञात हो सका है, खडीबोली शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग सन् १८०३ ई० मे लल्लूलाल जी और सदल मिश्र ने फोर्टविलियम कॉलेज, कलकत्ता मे किया। और उसी वर्ष उन्ही प्रयोगो के आधार पर गिलक्रिस्ट ने भी खडीबोली शब्द का चार बार प्रयोग किया। इसके पूर्व इस भाषा का कोई विशेष नाम नहीं था और न नामकरण की आवश्यकता ही समझी गयी। हिन्दुस्तान की बोलचाल की भाषा को बहुत दिनों से ‘हिन्दुस्तानी’ कहा जाता था। इस बोली

के लिए आवश्यकता पड़ने पर इन्द्रप्रस्थ की बोली, दिल्ली की बोली या हरियानी बोली कहा जाता था और इसका अर्थ भी सहज ही समझ में आ जाता था क्योंकि किसी प्रान्त या देश के नाम पर वहु या वहाँ की बोली भाषा का नामकरण भी होते देखा गया है जैसे—हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, शोरमैनी, भोजपुरी, बंगला, तामिल आदि। मरन्तु खडीबोली, प्रान्त या देश का नाम नहीं है, अतः कुरु प्रदेश की 'बोली' के लिए प्रयुक्त यह विशेषण स्थानपरक न होकर गुणपरक ही होगा, क्योंकि विशेष गुणों के आधार पर भी भाषाओं के नाम चल पड़ते हैं। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, रेखता आदि इसी प्रकार के नाम हैं।^१

इस समय सर्वसम्मत मत यही है कि मेरठ, बिजनौर की खडीबोली, उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिन्दी दोनों ही की मूलधार हैं।^२

'खडीबोली पश्चिम में रोहिलखंड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला जिले की बोली है। खडीबोली तथा हिन्दी, उर्दू आदि का सबब ऊपर बतलाया जा चुका है। मुसलमानी प्रभाव के निकटतम होने के कारण ग्रामीण खडीबोली में भी फारसी, अरबी शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक है किन्तु ये प्रायः अर्द्ध-तत्सम अथवा उद्भव रूपों में ही प्रयुक्त करने से खडीबोली में उर्दू की झलक आने लगती है।

साहित्यिक कौरवी को हिन्दी, उर्दू और दक्खिनी हिन्दी कहा जाता है। लोकभाषा के रूप में बोली जानेवाली कौरवी के लिए कई नाम प्रचलित करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ० ग्रियर्सन ने इस पश्चिमी (हिन्दी) को 'देशज हिन्दुस्तानी' कहा। पंडित राहुल सांकृत्यायन ने जनपद के आधार पर कुरु जनपद की मातृभाषा होने के कारण तथा खडीबोली साहित्यिक हिन्दी से पृथक् करने के लिए इसका नामकरण 'कौरवी बोली' किया जो यद्यपि बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है पर अधिक प्रचलित नहीं है।

इस प्रबंध में हमने कुरु-प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन करते समय इस बोली का नाम 'कौरवी' न लेकर 'खडीबोली' ही प्रयुक्त किया है। इसका कारण है इसका सर्वप्रचलित व अधिक परिचित होना। 'खडीबोली' नाम से वैसे भी उसकी प्रकृति का परिचय मिलता है।

खडीबोली के अन्य नाम—खडीबोली के अन्य नाम भी प्रचलित हैं, पर वह खडीबोली के पर्यायवाची नहीं कहे जा सकते हैं। उनमें कुछ न कुछ अंतर अवश्य है। जनसाधारण को इनसे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। ये नाम इस प्रकार

१ खडीबोली का आन्वीक्षण, शितिकठ मिश्र, पृ० १-२

२ ग्रामीण हिन्दी डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, १७-१८

है—बागरू, जाटू, हरियानी, पश्चिमी बोली, वनकियूलर हिन्दी। खड़ीबोली के भी मुख्य दो भेद हैं— पूर्वी ओर पश्चिमी। पश्चिमी खड़ी, हरियानी, बागरू कहलाती है। बागरू, सरस्वती ओर यमुना के बीच बसे हुए लोगों की बोली कही जा सकती है। बागरू ओर खड़ीबोली की सीमा रेखा यमुना ही है। वास्तव में बागरू देश कुरुजनपद का ही अंश है और बागरू खड़ीबोली का रूपान्तर मात्र है। यही बोलीगत अन्तर केवल 'है' और 'सौ' 'हूँ' 'सू' का है। हरियानी गुडगाँव, रोहतक तथा अम्बाला जिले की बोली है। हरियानी और बागरू को पृथक् करने वाली कोई सीमान्त रेखा नहीं है। दोनों ही बोलियाँ एक-दूसरे से प्रभावित मिलती हैं। हरियानी को 'स' और 'ह' के भेद से दो भाग नहीं कह सकते। कुरु-पंचाल के पश्चिमी हिस्से में अब भी 'स' बोलते हैं तथा 'स' जाटो के मुख्य कुरु प्रदेश में भी बोलते हैं।

आदर्श खड़ीबोली—खड़ीबोली का शुद्ध रूप मेरठ, दिल्ली के गाँवों में अब भी सुरक्षित है। यद्यपि मुसलमानों के प्रभावों से उसमें अन्तर आ गया है, पर फिर भी जाट, गूजर, हिन्दू, मुसलमान रागड़ों में अधिक भेद नहीं है। शहरो की भाषा अवश्य अशुद्ध हो गयी है। यमुना के किनारे की भाषा जटवाड़े के नाम से प्रसिद्ध है। बागपत बडौत की बोली शुद्ध खड़ीबोली प्रतीत होती है।

खड़ीबोली क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा का परिचय—यह शक्ति सम्पन्न जाति व प्रदेश की बोली है। इसका प्रत्येक स्वर और व्यंजन इसके बलिष्ठ उच्चारण से फूटा पड़ता है। यह अपनी कर्कशता में भी आकर्षक और दीर्घता में भी मधुरता रखती है। खड़ीबोली, पंजाब की तरह आकारान्त बोली है। इसमें द्वित्व की प्रवृत्ति भी बहुत मिलती है। इसी प्रवृत्ति के कारण रोटी, खाती, जीजा, घोती, होता आदि का उच्चारण मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर आदि कुरु प्रदेश के जिलों के मूलनिवासी रोटी, खाती, जिज्जा, घोती आदि करते हैं। वही इसका पूर्ण प्रभाव देखा जाता है।

खड़ीबोली के ध्वनि मध्यवर्ती 'ह' का लोप हो जाता है। उदाहरण के लिए—'सैर कितनी दूर है, 'यहाँ पर शहर शब्द के बीच की 'है' ध्वनि का लोप हो गया। वह 'ए' में परिवर्तित हो गया। 'तुम्हारी' का 'तुमारी' हो जाना भी इसी का उदाहरण है। इसमें महाप्राण वर्णों का अल्पप्राण हो जाना भी साधारण बात है। उदाहरण के लिए 'मुझे दो' का 'मुजे दो'।

'ड' 'ढ़' साहित्यिक बोली से भिन्न रूप में प्रयुक्त होते हैं, यथा—गाडी, बडा न कह, गाडी, बडा कहा जाता है।

इसमें तद्धित का भी बहुत प्रयोग है। उदाहरण के लिए—जाट के नाई के कू

कहियो । आकारान्त शब्दो का वर्तमान, भूत और भविष्य काल मे निम्नलिखित रूप हो जाता है—

आवै — जावै

वर्तमानकाल

वो जावै

हम जावै

तू जावै

मै जाऊँ

भूतकाल

वो जावै था

वो जावै थी

भविष्यकाल

वो जावैगी

तुम जइयो

मै जाऊँ क्या

हम जावे क्या

वो जावे क्या

वो जा रह्या

वो जा रा

वे जा रे

वे जा रये

हम जा रे

हम जा रये

तू जा रहा

तू जा रा

खडीबोली के क्षेत्र मे द्विरुक्ति भी बहुत है । इस पर पजाब का भी बहुत प्रभाव है । यथा—रोटी-वोटी, खावें-वावें, दाल-वाल, चाय-वाय, लौडे-लारे । अ और आ के बाद ई के बदले य होता है यथा—आई, जाई के स्थान पर आय, जाय तथा भविष्यत् मे आय है, जाय है ।

खडीबोली मे अव्यय के प्रयोग इस प्रकार है—अक, मैका, हैगे, जद, नू ही, इधै, तिधै, किधै, उधै आदि । खडीबोली मे 'ही' का स्थान बहुधा 'ई' ले लेती है । यथा—किसने कही को, किसने कई हो जाता है । खडीबोली मे स्वरागम, स्वरलोप तथा स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं । तुम का तम, इकट्ठा का कट्ठा, मिठाई का मिट्ठा, मीठे को मी मिठाई कहते हैं । साहित्यिक हिन्दी का न खडीबोली ण मे तथा ल-क मे परिवर्तित हो जाता है ।

मूर्धन्य व्यजन वर्णों का अत्यधिक व्यवहार होता है । मध्यम तथा अन्यत्र दन्त्य न, व, ल क्रमशः ण और क मे परिवर्तित हो जाते हैं यथा—सोहना, सोहणा, मनुष्य-माणस बरधा-बकध

स्वराघात वाले दीर्घ स्वर के पश्चात् का व्यजन द्वित्व हो जाता है—व्यजन

के पूर्व ई, ऊ इ—उ में बदल जाते हैं। आ किंचित् ह्रस्व हो जाता है। उदाहरणार्थ—धीसा, धिस्सा मीठा-मिठ्ठा ऊपर-उप्पर खाता-खात्ता बोली-बोल्ली।

सज्ञाओं के विकारी रूप बनाने के लिए ओ या ऊ लगा दिया जाता है। 'घर में-घरौ मा, घर जा रह्यो-घरौ जा रह्यो।

क्रिया में 'ह' या 'था' की अन्तर्भुक्ति हो जाती है—आवै, जावै, खावै, करै।

खड़ीबोली में सबोधन इस प्रकार है—री-अरी, अरे, अरी, बोव्वो-मैन्ना, अबे-ओबे।

खड़ीबोली में सबधवाची शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं। खड़ीबोली भाषा, शब्दों में व उसके अर्थों में बहुत स्पष्ट है। इसका प्रभाव वहाँ के निवासियों के जीवन पर भी पड़ा है। यथा—भाई-भामी, बहन-बहनोई, साला-सलहज, साली-साढू, ननद-नन्दोई, ननद-नन्दौत, बहन-भाजा, पूत-पोता, धी-धेवना, मा-मावसी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, तायसरा, पीतसरा, मौसस, मौलसरा, सास-ससुर, पीहर-मैका, ननिहाल-सासरे।

खड़ीबोली में प्रयुक्त होनेवाले कुछ सार्थक शब्द जिनका प्रयोग साथ-साथ होता है, उनका निकट सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। यथा बणिये-बाम्मन, जाट-गुज्जर, साग-भाज्जी, गाना-बजाना, रोना-धोना, बुनाई-सिलाई, उठना-बैठना, जीना-मरना, खुशी-गमी।

स्वराघात युक्त दीर्घस्वर के बाद के व्यंजन का इसमें द्वित्व हो जाता है, तब दीर्घस्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। यद्यपि इसका उच्चारण भी किंचित् ह्रस्व ही हो जाता है। द्वित्व करने की प्रवृत्ति भी अधिक है। उदाहरणार्थ—बाप-बाप्पू, बासन-बास्सन, गाड़ी-गड्डी, बेटा-बेट्टा, रोटी-रोट्टी, लोगो पै-लोगो पै।

खड़ीबोली का अन्य बोलियों से साम्य तथा पार्थक्य

खड़ीबोली का पंजाबी से बहुत निकट का सम्बन्ध तथा समानता है। पंजाबी से समानता का कारण है 'ग' और 'आ' का प्रयोग। पंजाबी भी आकारान्त है। यह सगी बहने प्रतीत होती है। इनमें द्वित्व तथा द्विरुक्ति में साम्य मिलता है। उदाहरणार्थ—घोडा, जब कि ब्रज में ओकारान्त है घोडौ।

खड़ीबोली आकारान्त बहुला है। इसमें मधुरता का भी अभाव है। द्वित्व व टवर्ग का प्रयोग कर्णकटु हो जाता है। इसमें दीर्घान्त पदों की प्रवृत्ति है।

सार्थक के साथ निरर्थक शब्दों का प्रयोग, यह पंजाबी प्रभाव व साम्य है। दाल-दूल, रोटी-बोटी, सैर-सूर, माया-वाया, पानी-बानी।

खड़ीबोली की भाषागत सीमा, भौगोलिकता तथा ऐतिहासिक परिचय कौरवी भाषा, उत्तर में सिरमौरी (गढ़वाली), पूर्व में पंजाबी (रहेली),

दक्षिण में कन्नौजी तथा ब्रज और पश्चिम में मारवाड़ी तथा पंजाबी भाषाओं से घिरी है। इसके पश्चिम में अम्बाला कमिश्नरी के घग्घर नदी तथा पटियाला और फिरोजपुर जिले हैं। उत्तर में हिमालय के पहाड़ और सिरमौर तथा गढ़वाल जिले, पूर्व में रामपुर और मुरादाबाद जिलों के अवशिष्ट भाग तथा बदायूँ जिला, दक्षिण में बुलन्दशहर का अवशिष्ट भाग तथा गुडगाँव और अलवर के कौरवी भाषी अंश हैं।

यह प्रायः सम्पूर्ण अम्बाला और मेरठ कमिश्नरियों की भाषा है। गंगा और यमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर जिलों का सम्पूर्ण भाग एवं गंगा के पूर्व बिजनौर और यमुना के पश्चिम करनाल रोहतक, हिसार, और दिल्ली कौरवी भाषी हैं। उत्तर में देहरादून और अम्बाला, पूरब में मुरादाबाद और रामपुर, दक्षिण में बुलन्दशहर और गुडगाँव के बहुसंख्यक लोग यही भाषा बोलते हैं। मेरठ जिले की तहसील बागपत को टकसाली कौरवी भाषा का क्षेत्र माना जाता है, जो कौरवी क्षेत्र के प्रायः बीच में पड़ता है।^{११}

खडीबोली प्रदेश का ऐतिहासिक महत्व देखने के लिए हम भौगोलिक स्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः हम दोनों पक्षों का अध्ययन करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

खडीबोली प्रदेश विशेषकर सहारनपुर जिला, हरिद्वार में पहाड़ों से घिरा है। बिजनौर जिले में भी नजीबाबाद के पास पहाड़ ही हैं। मेरठ, मुजफ्फरनगर अवश्य पहाड़ों से कुछ दूर हैं पर फिर भी निकट ही हैं। अतः यहाँ की जलवायु पर इन पहाड़ी प्रदेशों का प्रभाव है। यहाँ की जलवायु बहुत अनुकूल रहती है। ठंड अधिक होती है तथा गर्मी पूर्वीय जिलों की अपेक्षा कम व सहनीय होती है। यहाँ पर गंगा नदी प्रायः हर जिलों में या उसके पास बहती है। हरिद्वार में तो गंगा पहाड़ों से निकल कर मैदान में प्रथम बार ही आती है। सहारनपुर जिले में भी गगानहर रुडकी तक है और मुजफ्फरनगर में शहर से लगभग ७ मील दूर पर शुक्रताल नामक स्थान में भी गंगा बहती है। मुजफ्फरनगर और बिजनौर इन दोनों जिलों के बीच की तो सीमा रेखा गंगा ही है, अतः दोनों जिले ही उसके प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित हैं। मोटर के द्वारा मुजफ्फरनगर से मेरठ जाते समय रास्ते में यमुना नहर जाती है। गंगा बुलन्दशहर जिले में अनूपशहर से लगभग ८ मील दूर पर कर्णवास नामक स्थान से होकर बहती है। मेरठ से २६ मील दूर गढ़मुक्तेश्वर नामक स्थान से होकर गंगा बहती है। इसी कारण यहाँ के

लोक साहित्य में जनता की गंगा के प्रति आस्था गीतो, व्रतो व कहानियों के रूप में व्यक्त हुई है।

खडीबोली प्रदेश का सांस्कृतिक परिचय

खडीबोली लोकसाहित्य पर यहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बहुत प्रभाव पड़ा है। पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए हमें सांस्कृतिक इतिहास पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिये।

‘यही यमुना और गंगा के बीच कुरुओ की भूमि है जिसमें तथागत ने अनेक गभीर उपदेश दिए थे। ‘प्रतीत्य समुत्पाद’ और ‘महानिदान’ जैसे तथागत के दर्शन सारभूत सूत्र यही पर उपदिष्ट हुए थे। कुरु की भूमि से तथागत की जन्मभूमि काफी दूर है। यहाँ से श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह और वाराणसी पहुँचने में महीनों लगते हैं। लेकिन सबसे गभीर उपदेशों को तथागत ने कुरुभूमि में दिया था। इससे इस भूमि का महत्व मालूम होता है। बुद्धिल, हीनयान और महायान, दोनों सूत्रों और विनय के ज्ञाता थे। वह बतलाते थे, पुराने आचार्यों ने इन सूत्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि कुरुदेश की भूमि इतनी सुंदर, वहाँ का जलवायु इतना अनुकूल है जिसके कारण यहाँ के लोग बड़े बुद्धिमान् और विद्याव्यसनी होते हैं। यहाँ की पतिहारियाँ भी पनघट पर पहुँच कर गभीर धर्म और आदर्श की चर्चा करती हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस भूमि में भगवान् ने अपने अनात्मवाद के गभीर दर्शन का उपदेश किया, उसी भूमि में उनसे कुछ ही शताब्दियों पहिले प्रवाहण और याज्ञवल्क्य ने आत्मवाद का उपदेश दिया था। आत्मवाद (उपनिषद् का तत्त्वज्ञान) जहाँ से निकला, उसी भूमि में जाकर तथागत ने अनात्मवाद का सिहनाद किया।”^१

‘मध्यप्रदेश के महाजनपदों में प्राचीनतम कुरु-पंचाल थे। कुरु जनपद की राष्ट्रीय भूमि, गंगा और यमुना की घाटियों के ऊपरी भाग में थी। इस जनपद के मूल सस्यापक कदाचिद् वैदिककालीन ‘पुरु’ जन थे। ये लोग ‘भरत’ जन के नाम से भी प्रसिद्ध थे। पुराणों की अनुश्रुति के अनुसार कुरु शासकों का सबघ पुरुरवा द्वारा स्थापित ऐल तथा चद्रवश से था। कुरुजनपद की राजधानी मेरठ के निकट गंगा के किनारे हस्तिनापुर या आसदीवत थी। बाद को पश्चिमी कुरु या कुरु जागल की पृथक् राजधानी जमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ हो गयी थी। आधुनिक दिल्ली नगर इन्द्रप्रस्थ के स्थान पर ही बसा है। ब्राह्मणग्रन्थों, महाभारत तथा पुराणों में अनेक प्रसिद्ध पौरव अर्थात् कुरुजनपद के राजाओं के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें

नहुष, ययाति, दुष्यन्त, भरत, हस्ती, अजमीढ, कुरु, शान्तनु, धृतराष्ट्र, परीक्षित तथा जनमेजय प्रधान थे ।”^१

महाभारत में वर्णित युद्ध का मूल कारण कुरुजनपद के चचेरे भाइयों के झगड़े ही है । दुर्योधन आदि कौरव धृतराष्ट्र के पुत्र थे । युधिष्ठिर आदि धृतराष्ट्र के छोटे भाई पाण्डु के पुत्र थे । कुरुजनपद के राज्य के लिए इन दोनों में झगड़ा हुआ और अन्त में कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें अनुश्रुति के अनुसार आर्यावर्त के लगभग समस्त जनपदों के राजाओं ने एक—दूसरी ओर भाग लिया था । श्रीकृष्ण ने युद्ध के सबध में शांति के लिये बहुत यत्न किया था और इस प्रयत्न में असफल होने पर स्वकर्तव्य विमुख मोहग्रस्त अर्जुन को भगवद्गीता के रूप में सुरक्षित कर्मयोग का उपदेश दिया था ।

कुरुजनपद आज कल अम्बाला, दिल्ली, मेरठ तथा बिजनौर के आस-पास का भाग खड़ीबोली का प्रदेश है और उसकी बोली रहन-सहन तथा उपजातियों का एक विशेष व्यक्तित्व है । उदाहरण के लिए ब्राह्मणों में गौड ब्राह्मण, कुरुजनपद से सबध रखते हैं । गंगा की बाढ़ के कारण हस्तिनापुर के नष्ट हो जाने पर बाद में कुरु-शासकों ने प्रयाग के निकट यमुना के किनारे कौशाम्बी को अपनी राजधानी बना लिया था । पंचाल, काशी तथा मगध जनपदों के शासक कदाचित् मूल कुरुजन से सबध थे, अतः ये जनपद कुरु-जनपद की शाखाएँ माने जा सकते हैं ।

‘जनपद काल में ‘कुरु-पंचाल’ विशुद्ध भाषा, यज्ञ सबधी नियम, धर्म, शील और आचार की दृष्टि से आदर्श जनपद माने जाते थे । यह इस बात की ओर संकेत करता है कि कदाचित् ये प्राचीनतम आर्यजनों के प्रतिनिधि थे ।^२

“पूर्वी पंजाब की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई कुरुजनपद थी । वस्तुतः इसके तीन हिस्से थे । कुरु राष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरु जागल—ये तीन इलाके एक-दूसरे से सटे हुए थे । थानेश्वर के चारों ओर का प्रदेश कुरुक्षेत्र, हिसार का कुरुजागल और हस्तिनापुर का कुरु राष्ट्र था । मोटेटौर पर सरस्वती से गंगा तक का प्रदेश कुरु-जनपद के अन्तर्गत था ।”^३

संस्कृत भाषाकाल में जो ६०० ई० पू० से प्रारम्भ हुई और पाली भाषा काल में ६०० ई० पू० से १००० तक रही । यह भारत का सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक

१. मध्यदेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १६

२. मध्यदेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १७

३. भारत की मौलिक एकता—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४७

केन्द्र था। यह न केवल ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड की ही वरन् उपनिषदों के आत्मवाद की भी मुख्य भूमि रही।

साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में जो प्रदेश अगुआ रहा, वह अन्य आचरण में भी सस्कृति के दूसरे अंशों में भी अगुआ रहा। यद्यपि बुद्ध के समय में यह दार्शनिक विचारों में ही प्रधानता रखता रहा। दूसरी बातों में काशी, कौशल, मगध आदि बढ़ गए, क्योंकि राजनैतिक प्रभुता उधर जा रही थी, राजनैतिकता के केन्द्र मगध ने, सारे भारत का केन्द्रीकरण किया। करीब ई० पू० चौथी शताब्दी से लेकर ईसवी की १२वीं सदी तक इसका कोई महत्व नहीं रहा, फिर जब दिल्ली राजधानी रही, मुस्लिमकाल में इसका भाग्योदय हुआ। यह बोलचाल की भाषा रही। उपेक्षित रहने पर भी बीच में जो प्रकाश पड़ा उससे पता चलता है कि यही विद्या की कद्र थी। यद्यपि यह राजनैतिक कारणों से उपेक्षित रहा पर विद्या में उपेक्षित नहीं रहा।

यहाँ मूर्तिकला विशेष नहीं मिलती और न ही उसका अधिक अध्ययन हुआ है। चित्रकला भी अधिक नहीं मिलती।

लोकसाहित्य में कुछ ऐसे उद्धरण हैं जिससे वैदिक काल के लोकमानस की समानता हो सकती है। उदाहरणार्थ—‘पल्हाये’ जिनमें इनका आभास मिलता है। इनका प्रचलित रूप प्रश्नोत्तर ही है—

प्रश्न—ए जी कौन जगत में एक है

बीरा कौन जगत में दोय

कौन जगत में जागता

ए जी कौन रह्या पड सोय।

उत्तर—ए जी राम जगत में एक है

बीरा चन्दा सूरज दोय

पाप जगत में जागता

ऐ जी कोई धरम रह्या पड सोय।^१

“सप्तसिन्धु की भाषा का सर्वश्रेष्ठ माना जाना स्वाभाविक था क्योंकि यहाँ आर्यों की वह पवित्र भूमि थी, जिसकी नदियाँ तथा कूपों तक का यश पाणिनि के समय ई० पू० चौदहवीं सदी तक गाया जाता था। वेदकाल में सप्तसिन्धु हमारे देश का सबसे बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र रहा। कुरुपंचाल सप्तसिन्धु के बहुत

१ यह रात्रि के समय कोल्हू चलाते समय प्रश्नोत्तर के रूप में गाये जाते हैं।

निकट था। सप्तसिन्धु का सबसे पूर्वी भाग अर्थात् यमुना और सतलज के बीच का भाग कुरु या कुरुजागल के नाम से प्रसिद्ध था।

उपनिषद्काल के सबसे महान् ऋषि प्रवाह जाबालि, सत्यकाम, याज्ञवल्क्य कुरु-पंचाल के रहनेवाले थे। ब्रह्मज्ञान के अखाड़े में कुश्ती मारने के लिए कुरुपंचाल के मल्ल विदेह तक पहुँचते थे, यह उपनिषद् हमें बताता है, कुरुपंचाल उपनिषदों की भूमि थी।^१

समाज के विभिन्न स्तर

जनपदों में लोक-जीवन का सामाजिक जीवन, आदर्श जीवन होता है। समाज में रहने वालों के लिए जो भी विशिष्ट गुण आवश्यक हैं, वह सभी इनमें मिलते हैं। इनके जीवन में महान् आदर्श होते हैं और उन्हीं के अनुसार यह आचरण भी करते हैं तथा मर्यादानुकूल होते हैं। इनके जीवन में नैतिकता का विशिष्ट स्थान होता है तथा नैतिक आदर्श भी महान् होते हैं। इनके विचार सरल व शुद्ध होते हैं जिनको वह अपने जीवन में व व्यवहार में भी लाते हैं। यद्यपि लोकजीवन में पुस्तकीय अध्ययन अधिक मिलता है पर उनके जीवन दर्शन का तथा मानवीय हृदय का और अपने दैनिक जीवन से संबंधित व्यावहारिक दर्शन शास्त्र का उनका बहुत सूक्ष्म अध्ययन होता है। यह यद्यपि पढ़ना नहीं जानते हैं पर जीवन में सीखे हुए को गुनना अवश्य जानते हैं जिसका आधुनिक लोगों में नितान्त अभाव मिलता है। यह व्यावहारिक होते हैं इसी कारण इनकी लोकोक्तियों, कथाओं तथा गीतों में एक प्रकार का अनुभव जन्य ज्ञान पाते हैं जो उनका निजी है। उनके जीवन में व्यस्तता होती है। वह अपने कर्मठ जीवन में मानसिक व शारीरिक शिथिलता को स्थान नहीं देते। उनका नियमित जीवन होता है जिसके फलस्वरूप जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी सुलझे हुए ही रहते हैं।

समाज किसी भी देश-विशेष के व स्थान-विशेष के जनसमुदाय की प्रचलित परम्परा व आचार-विचारों के आधार पर ही बनता है। जनसमुदाय से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यहाँ पर खडीबोली प्रदेश के समाज के विभिन्न स्तरों की व्याख्या हम वहाँ के जनजीवन की विभिन्न जातिगत विशेषताओं, विभिन्नताओं तथा उनके जीवनयापन के आर्थिक साधनों से एवं धार्मिक आचार-विचारों के आधार पर ही कर सकते हैं। लोकसाहित्य का समाज से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। लोकसाहित्य लोक-समाज में होने वाले कार्यकलाओं का लेखा-जोखा है जो यथार्थ व अनुपम है। लोकसाहित्य में हम क्या करते व पाते हैं, इसका

विस्तृत वर्णन हमको उसके विभिन्न सामाजिक स्तर में स्पष्ट मिल सकता है। सामाजिक स्तर क्या है? हमारे समाज में वर्ग-विभाजन का एक विशेष महत्व है जिसका परम्परा से चला आता हुआ कारण है। समाज में जो वर्ग-विभाजन है, वह सर्वप्रथम तो जन्म के उपरान्त ही हो जाता है। पर वह दृढ़ जीवनयापन के निश्चित और विशिष्ट साधन अपनाने पर ही होते हैं।

जीवनयापन के साधन—भारत का यह भाग कृषिप्रधान है। यहाँ अधिकतर कृषक हैं और कृषि तथा उद्योग ही उनके जीवन-यापन के साधन हैं। बनियों का आर्थिक स्तर विशिष्ट तथा उच्च है। यह समाज का व्यापारी वर्ग है तथा अन्य निम्न जातियों को रुपये का लेन-देन भी इनके जीवनयापन का माध्यम है।

अधिकतर वैष्णव और शैवधर्म के मतानुयायी हैं, वैसे मेरठ, सहारनपुर, बिजनौर में आर्य समाज का भी बहुत प्रचार है। मुसलमानों की संख्या भी पहले बहुत अधिक थी तथा ईसाई धर्म का अपने समय में प्रचुर मात्रा में प्रचार हुआ था। जैन मतাবलंबी भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

यह अपने मत व धर्म के अनुसार धार्मिक आस्था रखनेवाले भी होते हैं तथा अघविश्वासी व भाग्यवादी भी होते हैं। कर्म में पूर्ण विश्वास होता है। जीवन में विशेष आस्था रखने के कारण ही उनके आचार-विचार श्रद्धायुक्त सच्चे तथा धर्मपरायण होते हैं। यह देश, सुख, सुविवासम्पन्न तथा समृद्धिशाली है जिसके फलस्वरूप यहाँ के लोग स्वस्थ, सुखी तथा सन्तोषी होते हैं।

किसी भी जाति व प्रदेश पर उसके भौगोलिक कारणों का भी बहुत महत्व होता है और वे उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। कुछ प्रदेश बहुत ही घनधान्य पूर्ण देश हैं तथा यहाँ की जलवायु बहुत ही स्वास्थ्यवर्द्धक और घरती भी बहुत उपजाऊ है।

अतः हम देखते हैं कि इस प्रदेश के अधिकांश लोग अधिक शक्तिशाली होते हैं और सामर्थ्यवान होते हैं। इनका आर्थिक स्तर भी पूर्वी जिलों से अधिक सम्पन्न है, जो उनके रहन-सहन, खान-पान तथा व्यावहारिक लेन-देन, रीति-रिवाजों को देखने से ज्ञात होता है। यह स्वास्थ्य तथा खान-पान का भी प्रभाव होता है कि इस प्रदेश के निवासी अधिकतर प्रसन्न वदन, साहसी, आस्थावान, आत्मविश्वासी प्रतीत होते हैं। ये मन के साफ स्पष्टवादी, सच्चे व सरल हृदय होते हैं, इसी कारण ये अक्खड़ प्रकृति के होने के लिए कुख्यात हैं साथ ही यह व्यवहार कुशल भी है। ये स्वतंत्र प्रकृति के होते हैं जिसका मुख्य कारण वातावरण व जलवायु है।

खड़ीबाली के लोकगीतों
का
अध्ययन
२

लोकगीत, लोकजन द्वारा, विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा सस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत ही लोक-जीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है। जीवन के सभी पहलुओं व भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के मानसिक तथा शारीरिक व्यापार जैसे भी होते हैं उनका यथार्थचित्रण इन्हीं में मिलता है। लोकगीतों में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है तथा जीवन में समय-समय पर होने वाली सामयिक क्रान्तियों का आभास मिलता है। लोकगीतों में जनता के जीवन का इतना विशद चित्रण होता है कि उनमें किसी देश की मूल सस्कृति तथा जन-जीवन के दर्शन का पूर्ण चित्रण मिल जाता है। इन लोकगीतों में ही भारत की मूल सस्कृति को लोक सस्कृति का नाम दे कर धरोहर के रूप में सदा सजो कर रखा है।

लोकगीतों के द्वारा हमें जनजीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और उनके दर्पण में हम विशिष्ट जनसमुदाय की भावनाओं को प्रत्यक्ष देख लेते हैं। हर जाति या जन समाज के अपने गीत होते हैं जिनमें किसी समाज विशेष की जीवनानुभूति की अभिव्यक्ति होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था से, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त लोकगीत अपनी ही प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्ति दिया करते हैं।

लोकगीतों से व्यवहारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है जैसे काम के बोझ को हल्का करना, अत्याचार का विरोध करना तथा सामान्य जनता का मनोरंजन करना।

यह अशिक्षित, सामान्य जनो के उपयोग का कला माध्यम है। उन्हीं के जीवन से इनको विषयवस्तु प्राप्त होती है और वे ही इसमें सक्रिय भाग लेते हैं, श्रोता मात्र नहीं बने रहते। लोकगीतों का शिल्प भी इनके अनुसार ही होता है जो अधिक ग्राह्य और गेय होता है। इन्हीं के द्वारा अनेकों पौराणिक अन्तर्कथाएँ भी प्रस्फुटित हुई हैं यद्यपि इनके नामों तथा घटनाओं पर स्थानीय रंग चढ़ा रहता है। इन गीतों में निम्नवर्ग के तत्व ही अधिकांश पाये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि पर्वों, त्योहारों

तथा विभिन्न ऋतुओं में सामाजिक स्तर भेद को लोकगीत ही मिटाते रहे हैं।

खडीबोली के लोकगीतों का वर्गीकरण—खडीबोली के लोकगीतों में भी विभिन्न बोलियों के समान बहुमुखी विषयों का समावेश है। लोकगीतों में मानवीय भावों, विचारों तथा परिस्थितियों की समानता दृष्टिगत होती है।

खडीबोली प्रदेश के लोकसाहित्य में ऐसे अनेक सकेत मिलते हैं जिनके द्वारा हम उनका सबंध सुदूर अतीत की संस्कृतियों से जोड़ सकते हैं। यह धरती के गीत है अतः धरती से भिन्न उनका अस्तित्व नहीं है।

खडीबोली के लोकगीतों में जीवन की महान् घटनाओं का समावेश है। मनुष्य के जीवन में मुख्य प्रभावशाली तीन ही घटनाएँ हैं, वे हैं—जन्म, विवाह तथा मृत्यु। इन्हीं तीनों से मानव-जीवन की सभी भावनाएँ ओतप्रोत हैं। वह इन घटनाओं की उपेक्षा किसी भी देश अथवा परिस्थिति में नहीं कर सकता। इसी से अधिकांश लोकगीतों का वर्ण्य-विषय इनसे सबंधित होता है। “लोक एक अविभाज्य सत्ता है अतः यथार्थ अर्थों में लोकगीतों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।”^१

शुद्ध वर्गीकरण के लिए दो वस्तुओं को परस्पर सबंधित नहीं होना चाहिये, पर लोकगीतों में हम ऐसा नहीं कर पाते उनका लोकजीवन के हर पहलू से अन्योन्याश्रित सबंध रहता है अतः उनको एक दूसरे से नितान्त अलग रखना संभव नहीं। लोकगीतों का सबंध मानवीय भावनाओं से होने के कारण वह सर्वत्र समान है पर फिर भी वह परिस्थितियों के कारण परिवर्तनशील होते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण करने में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ आती हैं, अनायास ही वह दुहराये जाते हैं। उदाहरण के लिए—

संस्कार संबंधी गीतों में कुछ गीत केवल एक ही संस्कार विशेष से सबंधित नहीं हैं। उनको दूसरे अवसरों पर भी गाया जाता है। जैसे—पुत्रजन्म पर गाये जाने वाले गीत ही मुडन, कनछेदन, जन्मदिवस तथा जनेऊ आदि अवसरों पर गाये जाते हैं। उनका इन अवसरों पर गाया जाना उपयुक्त है न कि निषिद्ध।

रसानुभूति की दृष्टि से भिन्न-भिन्न संस्कारों व अवसरों के गीत एक ही वर्ग में समाविष्ट हो जाते हैं। अधिकांश गीतों में एक साथ ही कई रस आ जाते हैं। होली के गीतों में शृंगार रस व हास्य रस दोनों ही आते हैं तथा वह ऋतु-गीतों से भी आ सकते हैं, और जातिगत गीतों में भी, क्योंकि अधिकतर चमारों की होली इस प्रदेश में प्रसिद्ध है।

गीतो का जातिगत वर्गीकरण करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि गीतो पर किसी भी जाति का एकाधिकार होना सम्भव नहीं है। यह अवश्य है कि उनमें किसी भी जाति की विशिष्टता व चेतनता का अपेक्षाकृत अधिक आभास मिल जाता है।

इसी प्रकार श्रम-परिहार के लिए क्रिया गीतो की रचना हुई, कुछ विशिष्ट गीत, विशिष्ट क्रियाओं को करते समय गाये जाते हैं पर उनमें भी कोई नियम नहीं है। क्रियागीतो में बहुत प्रकार के गीतो का समावेश है। व्यवहारिक क्षेत्र में उन्हें, गाने के अवसर के आधार पर, किसी एक विशिष्ट क्रिया से संबंधित नहीं किया जा सकता। प्रायः कुछ विशिष्ट गीत हर अवसर पर भी गा लिए जाने का प्रचलन है। अतः हम इन व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लोकगीतो के अध्ययन के लिये एक निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

यहाँ पर हमने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अध्ययन की सुविधा के लिए स्थूल रूप से कुछ विभेद करने का प्रयत्न किया है। जो इस प्रकार है—

१—अनुष्ठानिक गीत—जिसके अंतर्गत सस्कार संबंधी तथा धार्मिक गीत आते हैं।

२—लोकगीतो में ऋतु-वर्णन (होली, सावन)

३—खडीबोली के लोकगीतो में स्त्री-पुरुषों के विशेष तथा विभिन्न क्रिया-कलापों का उल्लेख, श्रम-गीत।

४—बाल-गीत—इसके अन्तर्गत लड़के-लड़कियाँ दोनों ही के गीत आते हैं।

अनुष्ठानिक गीत (सस्कार संबंधी लोकगीत)—सस्कार और मानवीय कार्यकलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं जिनसे होकर जीवन-धारा प्रवाहित होती रहती है। यही दो किनारे धारा को मर्यादित सतुलित तथा नियमित होने में सहायता करते हैं। इनका अतिक्रमण साधारण रूप से नहीं होता, यदि होता है तो उसको सामाजिक, धार्मिक तथा ऐसी ही किसी क्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है। हिन्दू जीवन सांस्कारिक अधिक है। इसमें भिन्न-भिन्न सस्कार अपने-अपने समय पर आते रहते हैं ये इसी प्रकार के विभिन्न सस्कार हिन्दू जीवन के नियामक का कार्य करते हैं।

पहले ये सस्कार जीवन में पथ-प्रदर्शन का कार्य करते थे तथा जीवन के

अनिवार्य अंग हो गये थे। सस्कारो के द्वारा ही जीवन में नियमितता तथा व्यवस्था आती है।

वास्तव में हमारी भारतीय सस्कृति का मुख्य ध्येय है मनुष्य के विचारों का परिष्कार करना तथा आदर्श बनाना। परिष्कार करने के हेतु ही हिन्दू धर्म में विशेषतः सस्कारों का समावेश है, जो जीवन के प्रथम चरण से आरम्भ होते हैं और अंत तक रहते हैं।

“मानव की प्रायः प्रत्येक सस्कृति में व्यक्ति की जीवनयात्रा के विभिन्न सक्रमणकालों का विशेष महत्व होता है। जन्म-विवाह-एव-मरण इस प्रकार की तीन मुख्य स्थितियाँ हैं जिनके आस-पास मानव-समूह विश्वासों, रीति-रिवाजों और व्यवहारों का एक ऐसा जटिल ताना-बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस सस्कृति का पूर्ण चित्रण प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त नामकरण, वयसन्धि, रजोदर्शन आदि की स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण होती हैं और अनेक सस्कृतियों की समाज-व्यवस्था में उन्हें पार करने से व्यक्ति भी समाजिक स्थिति एवं उसके अधिकारों और कर्तव्यों में मूलभूत परिवर्तन हो जाते हैं। समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यों की दिशा निश्चित करता है।”^१

प्राचीन काल में मनुष्य के जीवन से संबंधित १६ सस्कारों का विधान था जो सभी शास्त्रीय थे जिनका सबंध जीवन के आरम्भ से लेकर अंत तक के काल से था।

“सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय सस्कार सोलह हैं, यद्यपि विभिन्न ग्रन्थों में उनकी संख्या भिन्न-भिन्न है। आधुनिकतम पद्धतियों में यह संख्या स्वीकृत कर ली गयी है।”^२

इस समय जन-समाज में यह समस्त सस्कार तो प्रचलित नहीं हैं किन्तु कुछ किसी न किसी रूप में अब भी अवश्य ही पाये जाते हैं। प्रत्येक सस्कार के दो रूप पाये जाते हैं—शास्त्रीय या पौरोहित्य तथा लौकिक। लौकिक सस्कार का सबंध अनुष्ठानिक गीतों से है जिनमें निश्चित विधान नहीं होता और जिसका समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतों के द्वारा ही करती हैं। इन गीतों का मन्त्रोच्चारण से पृथक्, महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान है। ये औपचारिक गीत, अपना मांगलिक महत्व रखते हैं।

खड़ीबोली के लोकगीतों में हमें सभी शास्त्रीय सस्कारों का उल्लेख तो नहीं

१. मानव और सस्कृति, श्यामाचरण दूने, पृ० २५३।

२. हिन्दू संस्कार, राजबली पाण्डेय, पृ० २३।

मिलता, किन्तु मुख्य दो सस्कारो का उल्लेख अवश्य है—ये है जन्म और विवाह। मृत्यु जो जीवन की मुख्य घटना है, उससे सबधित गीतो का भी उल्लेख मिलता है पर वह सुखद नहीं है, अतः वह नगण्य है क्योंकि “इसके मूल में यह धारणा थी कि अन्त्येष्टि एक अशुभ सस्कार है और शुभ सस्कारो के साथ इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। सम्भवतः यह तथ्य भी इसका कारण था। कि मृत्यु के साथ ही व्यक्ति की जीवन-कहानी का अंत हो जाता है। मरणोत्तर सस्कारो का व्यक्तित्व के परिष्कार पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतीत नहीं होता।”^१ इतना होते हुए भी अन्त्येष्टि एक सस्कार के रूप में ही माना गया है।

मनुष्य जीवन की यह तीन महान घटनाएँ हैं जिनमें प्रथम दो तो मनुष्य-जीवन के विकास, उत्साह व हर्ष से सम्बद्ध हैं तथा अंतिम शोक से। और उसी भावना को व्यक्त करने वाले गीत यथासमय गाये जाते हैं। शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीत ‘शगुन’ के गीत कहलाते हैं। सस्कारों की दृष्टि से हम लोकगीतों को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं —

जन्म-सस्कार—“यह सिद्धान्त भी प्रचलित था कि उत्पन्न होते समय प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है, अतः पूर्ण विकसित आर्य होने के लिए उसका सस्कार व परिमार्जन करना आवश्यक है।”^२

जन्म-सस्कार मानव-जीवन का प्रारम्भिक सस्कार है। अतः जब से बच्चा गर्भ में आता है उससे कुछ ही महीनों पश्चात् से ही कोई न कोई अनुष्ठान प्रारम्भ हो जाता है। गर्भाधान के नौ महीने तक की संपूर्ण अवधि जन्म-सस्कार के अन्तर्गत आ जाती है।

पुत्रजन्म, परिवार तथा पुत्र दोनों के लिए ही एक विशेष-सस्कार होता है। परिवार के लिए तो ये सस्कार उसके जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाते हैं। विभिन्न जातियों तथा प्रदेशों में पुत्र के गर्भ में आने से जन्म तक वैसे तो कई सस्कार होते हैं, परन्तु खडीबोली-क्षेत्र में जन्म से पूर्व अधिक सस्कार प्रचलित नहीं हैं—साधु पूजना आदि एक-दो सस्कार ही ऐसे हैं जो जन्म से पूर्व होने वाले सस्कारों के अंतर्गत आते हैं। जन्म के पश्चात् के लौकिक सस्कारों में ‘छठी’ और ‘दशूटन’ विशेष हैं। ‘दशूटन’ प्राचीन पौरोहित्य नामकरण सस्कार ही है।

१ हिन्दू सस्कार—राजबली पाण्डेय, पृ० २६।

२ वही—पृ० ३४।

मुडन, कनछेदन सस्कार जन्म के पश्चात् के है जो आयु के विशेष-वर्ष में मुहूर्त निकाल कर किए जाते हैं ।

शिक्षारम्भ-सस्कार—यह बालक की शिक्षा आरम्भ करवाते समय होता था—‘गणेशपूजा’, ‘गुरु-पूजा’ आदि मुख्य था, जो लोकभाषा में ‘पट्टी पुजना’ कहलाता है ।

जनेऊ—‘यज्ञोपवीत सस्कार’ को कहते हैं जो कभी-कभी विद्यारम्भ के अवसर पर या १२ वर्ष की अवस्था में स्वतंत्र रूप से या फिर विवाह से पहले किया जाता है ।

विवाह—विवाह के पूर्व तथा बाद में होने वाले सस्कार—कन्यापक्ष तथा वरपक्ष दोनों ही ओर अपनी-अपनी भाँति किये जाते हैं । इन सस्कारों में प्रदेशीय भिन्नता के साथ-साथ जातिगत भिन्नताएँ भी पायी जाती हैं ।

मृत्यु-सस्कार—इससे हमारा तात्पर्य यहाँ केवल उसी गीत से है जो वृद्ध की मृत्यु के बाद स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं—यह शोकगान है ।

ऊपर दिये गये चार मुख्य सस्कारों के आधार पर हम लोक-सस्कारों का विशद रूप से अध्ययन करेंगे—

पुत्र-जन्म—मनुष्य में सतान के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है । यह मानव-संरक्षण का शास्त्रीय प्रयोजन है । बालक के जन्म के पूर्व दो सस्कार होते हैं गर्माधान—तथा पुसवन ।

गर्माधान सबसे पहला सस्कार है । इसके द्वारा माता-पिता अच्छी सतति पाने की कामना करते हैं । इस सस्कार के आरम्भ में वैदिक मन्त्रों के द्वारा ध्वनि करके देवताओं का आह्वान किया जाता था और उनसे प्रार्थना की जाती थी कि वे माता के गर्भ में योग्य सतान धारण करा दें । इस सस्कार से माता-पिता के मनो-विकारों की शुद्धि होती थी । प्रवान रूप से यह इन्हीं दोनों का सस्कार होता था और उनके द्वारा माता के गर्भ में आने वाले शिशु का सस्कार भी होता था, पर यह अब प्रचलित नहीं है ।

इसके पश्चात् पुसवन सस्कार है । इस सस्कार का उद्देश्य गर्भ के शिशुओं को पुत्र रूप देने का है । गर्माधान के दो-तीन माह बाद सस्कार सम्पन्न किया जाता था ।

तीसरा सस्कार है सीमन्तोन्नयन, जो पुसवन के बाद माँ व बालक की कुशलता के लिए किया जाता है और इसमें माता-पिता पुत्र पाने की अपनी कामना प्रकट करते हैं । स्त्री को आभूषणों व वस्त्रों से सुसज्जित कर उसकी नारियल, सुपारी आदि पचमेवों से व शुभ वस्तुओं से, गोद भरी जाती है ।

यह प्रथम बार गर्भाधान के सातवे मास में होता है। स्त्रियो में अब भी इसका रूप मिलता है जिसे लोकाचार में 'साध-पूजना' कहते हैं। यह शुद्ध लौकिक रूप है इसे 'साध पहराना' भी कहते हैं। साध-पूजने की प्रथा का प्रचलन अब कम है पर फिर भी कुछ परिवारों में अब भी मिलती है।

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में पुत्र-जन्म की कामना व्यक्त की जाती है तथा भावी माता को सौभाग्यशालिनी बताया जाता है और पुत्र-जन्म की कामना से ही प्रसन्नता प्रकट की जाती है। यहाँ पर जन्म के साथ पुत्र जोड़ देना आवश्यक है। कारण कि अभी भी भारत की जनता कन्या के जन्म को महत्व तथा प्रसन्नता का स्थान देने को तैयार नहीं। कन्या के जन्म की परिस्थिति पुत्रजन्म की परिस्थिति से विपरीत होती है। कन्या के जन्म के साथ ही विषाद का भी जन्म होता है और कन्या की जननी को अपराधिनी, अभाग्यशालिनी के रूप में ही समझा जाता है। इसी से कन्या के जन्म सबंधी गीतों का उल्लेख साधारणतः नहीं मिलता है—यद्यपि अपवादस्वरूप कुछ उदाहरण अवश्य हैं, लेकिन इनमें भी कन्या की उपेक्षा, कन्या-जन्म की अनिच्छा, तथा उससे संबंधित समाज के विचारों का ज्ञान होता है। यहाँ स्त्री-पुरुष परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसके द्वारा कन्या के प्रति उनकी धारणा स्पष्ट होती है—

गूँद ला री मलनियाँ हार,

जच्चा मेरी कामनियाँ

राजा रानी दो जने री आपस में बँद रहे होड

जो गोरी तुम धीय जनोगी, महलो से करदू बाहर

जच्चा मेरी कामनियाँ

जो गोरी तुम पूत जनोगी, सब कुछ ले लो इनाम

जच्चा मेरी कामनियाँ

इस प्रकार की भावना अन्य गीतों में भी मिलती है। यहाँ पर वह पूरा न देकर दो पक्तियाँ ही उद्धृत की जाती हैं—

सास सपूती ने बँटा सिखाया, धमा-चौकड़ी मची

जो गोरी तुम धीय जनोगी, तमै खैच दू गली

इसी प्रकार अन्य गीत हैं जिनमें जन्म से पूर्व की होड, पति-पत्नी का परस्पर समझौता, तत्पश्चात् उत्तरार्ध में पुत्र-जन्म होने पर, तत्काल उसकी प्रतिक्रिया का बहुत ही सजीव व यथार्थ चित्रण है।

मेरी मालन गूँद लाई हार, जच्चा लवकावनिया

धन पुरुष मसलत वारें मेरे राजा जो

कोई क्या कुछ हमको काज
 जो गोरी तुम धीय जनोगी-गोरी जी
 कोई सड़को पै बिछाऊ खाट
 कोई सीरे की पिलाऊ पात
 कोई जेवर लूगा काढ
 जो गोरी तुम पूत जनोगी—गोरी जी
 कमरो मे बिछाऊ तेरी खाट
 बूरो की पिलाऊ तुझे पात
 पीहर से लूगा बुलाय
 कोई हरदम ताबेदार
 कोठे के नीचे उतरी कोई होय पडे नन्दलाल
 कोई बज रहे तबल निशान, जच्चा लचकावनिया
 न्हाय धोय ठाढी भयी, कोई लाओ हमारी होड
 जच्चा लचकावनिया ।
 होड उतारू तेरी सेज पै
 कोई दूजा जनोगी नन्दलाल, जच्चा लचकावनिया

साध पूजने के समय गाये जाने वाले गीतों मे स्वप्न से सम्बन्धित गीत भी उपलब्ध है—स्वप्न पूर्वाभास कराते है तथा प्रतीक के रूप मे उनसे अर्थ निकाले जाते हैं। सरल वधू जो स्वय अनुभवहीन है, अपनी अनुभवी सास से अपने स्वप्नों के सबध मे बताकर शका-समाधान कराती है—

सपने मे जौ का खेत
 हरी-हरी दूब लहरे लेय रे
 सासू सपने का अरथ बताओ
 सपने मे हरी-हरी दूब
 जौ का खेत लहरे ले रह्या
 बहू होगे तुम्हारे नन्दलाल
 जौ का हरा-हरा खेत जो देखिये
 सासू किस बिधि होगे नन्दलाल
 इसकू बी हमे बताइये
 कोठे मे सिर बहू, चुल्ह ही मे टाग
 आँखो मे पट्टी बाधिये

इसी प्रकार एक अन्य स्वप्न है —

सासु सपने मे अबुआ का पेड
तो झलर झलर करे
सुनियो मेरी सासु, कवर जी की अम्मा
ए चतर जी की अम्मा री
सासु सुपने मे अबुआ का पेड तो झलर झलर करे
चुपकर बहु मेरी चुपकर, बैरी ना सुने,
दुसमन ना सुनै री

बहु ये बडे भाग हमारे, ललन जी के सोहले
कवर जी की अम्मा, चतर जी की अम्मा

साध पूजते समय निम्नलिखित गीत गाये जाने की प्रथा है—

गगाजल जमुना मैने बोई थी चौलाई री
अरी सासू तो बूझे बहु कद की तू न्हाई री
अरी पडवा तो पुन्नो मै तो दोग्यज की न्हाई री
अरी ससुरा तो बुझेरी बहु क्या कुछ भावै री
अरी पहली तो साध मेरा सौरा री पुरावै जी
उच्चे तो नीच्चे मुझे महल चिनावै जी
दूजी तो साध मेरी जेठ पुरावै री
ऊंचे तो री नीचे मुझे परदे चलावै री
मथुरा के पेडे मुझे लावै खिलावै री
तीजी तो साध मेरे देवर पुरावै री
पाचवी चौथी तो साध मेरा राजा पुरावै जी
अरी इकसठ राज मेरा राजा रजावै री
अरी साध री साध मेरी अम्मा भेंजी री

साध मे सात वस्तुएँ होती है—मेहदी, रोली, चूडी, आस-आटे की लम्बी मठडी, सिन्दूर, (सिमरक) एव कपडे व कलावे (लाल डोरी) सूत जो अत्यन्त शुभ माना जाता है ।

गर्भिणी स्त्री की उस काल की खान-पान सबधी सभी इच्छाओं को 'दोहद' कहते हैं। दोहद को पूर्ण करना पति के लिए आवश्यक होता है। इसके सबध मे बहुत-सी लोककथाएँ प्रचलित हैं। किस प्रकार पत्नी की इच्छा दुर्लभ वस्तुओं की होती है और पति अपने प्राण सकट मे डाल कर भी पत्नी की इच्छा पूरी करते पाये जाते हैं। साधारणतः इन गीतों मे गर्भवती स्त्रियों की खाने मे रुचि-

का ही सकेत मिलता है। उदाहरण के लिए एक-दो गीत यहाँ पर देना आवश्यक है जो इस प्रकार है—

मेरा मन माँगे ताजी बडी, सरस मन माँगे ताजी बडी
कचैरी बैठन्ते सौहरे हमारे, लौग करू अक बडी
मुढले बैठन्ती सास हमारी, लौग करू अक बडी
मेरा मन माँगे ताजी बडी

इसी प्रकार है —

खट्टी नौरगिया मन भावै मोरे राजा
मिट्ठी नौरगिया मन भावै मोरे राजा

साध के गीतो मे अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा मेवा की अधिक चर्चा होती है। मेवा का सेवन करने से ही भावी सतान प्रतिभावान होती हैं। इन गीतो का वर्ण्य-विषय साधारणत तीन प्रकार का होता है —

- १—गर्भस्थिति का पूर्वाभास कराने वाले गीत,
- २—गर्भ निश्चय प्रकट करने वाले गीत;
- ३—गर्भिणी की इच्छा व रुचि मे परिवर्तन करने वाले गीत ।

गर्भिणी के लिए कुछ निषेध इस प्रकार है—वह नये कपडे नही धारण कर सकती तथा नई चूड़ियाँ नही पहन सकती, मेहदी नही लगा सकती, स्याही, बिंदी भी नही लगा सकती । 'साध पहरने' का दिन निश्चित हो जाने पर ५ या ७ दिन पहिले से स्नान व श्रृगार नही कर सकती । इस अवसर पर स्नान करने को मैल छुडाना कहते है । बहू के मायके से वर-वधू के लिए कपडा आता है । 'आस बिराई' मे नाना प्रकार के फल व मिठाई आदि होते है । जिनके पीहर मे साध नही चलती उन के लिए माँग कर किसी के घर से 'आस' मँगाई जाती है । इसको 'आस औलाद' कहते है ।

पुत्रजन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो को खडीबोली-प्रदेश मे 'व्याही' कहते है । यह प्रसन्नता प्रकट करने के लिए जन्म से लेकर दशूटन के दिन तक गायी जाती है । इनमे मुख्यत गर्भाधान की अवस्था का, शारीरिक व मानसिक स्थिति के परिवर्तन का, प्रसव-पीडा का, नेग लेन-देन, गुप्त प्रेम, लडाई-झगडा आदि से सबधित तथा प्रसन्नतासूचक गीत मिलते है । भारत की आदर्शवादी परम्परा का वास्तविक रूप हमे इन लोकगीतो मे दृष्टिगत होता है । धार्मिक वातावरण का भी अमिट प्रभाव मिलता है । इसी से पुत्रजन्म सबधी गीतो मे बालक का

राम-कृष्ण के सदृश होने का उल्लेख मिलता है।^१ पुत्र को जन्म देने वाली जननी को ही धन्य समझा जाता है।^२ इन गीतो में गर्भवती स्त्री के शारीरिक हाव-भाव का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है।^३ माँ की रुचियाँ भी बड़ी विलक्षण होती हैं। -

गर्भवती स्त्री की इच्छा खाने की किसी विशेष-वस्तु के लिए होती है। उसकी इस समय की खाने-सबधी हर इच्छा पूरी हो जाना आवश्यक समझा जाता है। इसका उल्लेख गीतो में बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से मिलता है।^४ इन गीतो में हास्य समस्या के रूप में दिखाया गया है। दूसरो से इस आपत्ति-काल में सहायता माँगने की समस्या उत्पन्न होती है। उनकी इस असह्य स्थिति का बड़ा सजीव वर्णन मिलता है।

१—‘हमरे तो पीड उठी, नणदल हसती डोले’

२—‘हो पडे नन्दलाल क्ये पै कौन मिभाले सिर की गगरिया’

पुत्रजन्म के समय हिन्दू-परिवारो में विशेष प्रसन्नता का अवसर समझा जाता है और इस समय गाये जाने वाले गीतो में परिवार के सभी लोगो के प्रसन्न होने का उल्लेख भी मिलता है। पुत्र को जन्म देने वाली माता को सौभाग्यशालिनी की पदवी मिलती है। ‘धन है उस मात को जिसने कवर पैदा किये,’ यह एक मनोवैज्ञानिक बात है। यह गीत पुत्र की लालसा से तो प्रेरित नहीं, जितने बध्यात्व के कलक से निवृत्त होने की प्रेरणा से। वह भगवान की बहुत कृतज्ञ है और कहती है—

चदा जैसी चाँदनी, गुलाब जैसा फूल

सूरज जैसी किरन मोहे राम दिया ललना

गीतो में जच्चा का तथा उसके खान-पान का भी वर्णन मिलता है। इस समय जच्चा का और उसके खाने-पीने का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा उसको दूध

१ अ—जनमें राम खुशी हुई मोरे मन में

ब—अजुध्या में राम भयो, दसरथ घर बाजत बधाये

कृष्ण सबधी—किशन मथुरा में जाके पैदा हुए।

२ ‘धन्य है उस मात को जिसने कवर पैदा किये।’

३ ओठ सूखे मुख पीला जी महल में,
मैं पूछू मेरी गोरी किस गुन मुख पीला महल में।

४ श्री मुझै पहिला री लगा सासू,
मेरा मन चने के साग में।

हलीरा^१ आदि पौष्टिक-पेय पदार्थ स्वास्थ्यलाभ करने के हेतु दिये जाते हैं। सोठ, पीपल, हलीरा आदि से सबधित गीत इस अवसर पर गाये जाते हैं। पुत्रजन्म की सचना फूल की थाली बजा कर की जाती है।

बालक के जन्म के अवसर पर प्रसूता को अपनी स्त्री-सबधियों की जिनमे सास ननद, जिठानी आदि की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इनमे से इस अवसर पर या बाद मे भी सभी के कार्य पृथक्-पृथक् होते हैं। सभी स्त्री सबधियों का, जो ससुराल के द्वारा सबधित हैं उदाहरणार्थ—सास, जिठानी, ननद आदि का—अपना-अपना निजी स्थान होता है जहाँ पर वह अपने को महत्व-पूर्ण अनुभव करती हैं। दाई का बच्चे जनवाना, सास का चरुआ^२ रखना, ननद का सतिये^३ रखना तथा जिठानी का पलग बिछाना आदि कार्यों का भी गीतो मे उल्लेख मिलता है। ननद-भावज के बीच होने वाले मनोमालिन्य के प्रमाण भी मिलते हैं। जच्चा की उदारता व अनुदारता के दृष्टान्त भी देखने मे आते हैं। ये गीत बहुत रोचक और मनोवैज्ञानिक होते हैं। इन विविध-क्रियाओ के करने पर उनको उचित नेग मिलता है। सब काम प्रसन्नतापूर्वक व कुशलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने पर प्रसन्न होकर जच्चा यथायोग्य तथा सामर्थ्यानुसार पारिश्रमिक व प्रसन्नतासूचक के रूप मे आमृषण व वस्त्र देती है, ऐसी प्रथा प्रचलित है, इसी को 'नेग देना' कहते हैं। 'नेग लेना' और 'नेग देना' दोनों ही प्रसन्नता व सौभाग्य के विषय समझे जाते हैं। ननद तो अपनी भाभी से बालक के जन्म के पूर्व ही प्रतिज्ञा करवा लेती है कि अगर पुत्र होगा तो मैं अमुक वस्तु लूंगी। इनकी 'होड' बदन के उल्लेख विविध गीतो मे विविध रूपो मे मिलता है। ननद-भावज के शर्त बदन के गीतो मे से एक का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है—

ननद भवजिया का साथ, झिलमिल चरखा जो काते

भाबो जी होंगे नन्दलाल, हमे क्या दोगी

मेरे हाथ का कगन है भारी, वो ही तुमै दूगी

नेग के गीतो मे जच्चा की उदारता और अनुदारता दोनों ही के चित्रण मिलते हैं।

१ हलीरा—सोठ, जीरा, धी, मेवा, गुड, आदि अनेक वस्तुओं द्वारा बनाया गया पेय-पदार्थ जो इस अवसर पर पुत्रवती माँ को पिलाना आवश्यक समझा जाता है।

२ चरुआ—एक मिट्टी का घडा होता है जिसमें अनेक घरेलू औषधियों को डाल कर जच्चा के लिए पानी औटा कर उसके कमरे मे ही रखा जाता है। उस पर गोबर से कुछ स्वस्तिक व चक्र भी बनाये जाते हैं।

३ स्वस्तिक बनाना।

अब अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप तथा सुविधानुसार जहाँ पर बालक का जन्म अस्पतालो मे होने लगा है, वहाँ पर सास तथा अन्य स्त्री-सबधी अपने को अपमानित व उपेक्षित अनुभव करती है, ऐसा उल्लेख नवीन गीतो मे मिलता है—

मेरी छोटी-सी जच्चा ने जुत्तम किया,

के अंग्रेजी जाण्या परसद किया

सासु का बुझाना बद किया,

के अम्मा का बुझाना परसद किया

समय-समय पर जच्चा के नखरो का वर्णन तथा व्यग्य मिलता है जिसमे विरोधाभास और अतिशयोक्ति होती है—

जच्चा मेरी लडना ना जानै री

साप मार सिरहाने रक्खा

बिच्छुमार बगल मे री

जच्चा मेरी लडना न जानै री ।

छठी के गीत—बालक के जन्म के छठे दिन जच्चा प्रसूति-गृह से बाहर निकलने लगती है। इस दिन प्रसूता की शुद्धि तथा स्नान होता है और पूजा होती है। छठी से पहिले बच्चे को कपडे नही पहनाये जाने। छठी को 'बै' की पूजा सायकाल के समय की जाती है। सौर-गृह के द्वार पर एक गोले मे थोडा नाज, गुड व तीहल डाली जाती है और प्रसूता को शिशु समेत बाहर निकाला जाता है। यह कार्य देवर (पति का छोटा भाई) करता है जिसका उसे नेग मिलता है। इस कार्य को 'बाहरी' कहते है। इसके पश्चात् जच्चा को फिर सौरगृह मे उसकी चारपाई के समीप सिरहाने की ओर पृथ्वी पर बिठा कर 'बै' की पूजा कराई जाती है जो गोबर की बना कर दाई लाती है। खाट के पाये मे चाँदी की हँसुली डाली जाती है और उसके बाद थोडा नाज डाल कर उस पर तेल का दिया जलाया जाता है। वही चार रोटियाँ और उनके ऊपर चावल तथा शक्कर रख दी जाती है। तभी जच्चा हल्दी के छीटे लगाकर 'बै' की पूजा करती है और रोटियाँ मनसकर दाई को देती है। छठी के दिन से ही रोटी-दाल खाने को दी जाती है। छठी के दिन ही स्याही सरसो के दीपक पर झाड कर पहली बार बच्चे की आँख मे डाली जाती है, किन्तु उस दीपक का प्रकाश बच्चे को नही देखने दिया जाता।

'सौबर' मे जब तक गदगी रहती है, उन्हे प्रेत-बाधा का भय रहता है। 'सतवाह' या छठी इसी प्रकार की एक निशाचरी है जिसको सन्तुष्ट करने के लिए प्रसव के छठे दिन प्रसूता से यह पूजा करायी जाती है। गदगी को दूर करने के लिए

ही 'छठी पूजन' किया जाता है। इस प्रकार हमारे इस टेहले में भी आदिमानव के विश्वासों की छाया वर्तमान है। इस देवी का एक नाम चंचिका देवी भी है। इस दिन ननद की विशेषता रहती है वह 'सतिये' रखती है जिसके लिए उसको उचित नेग मिलता है। कहीं-कहीं पर इसी दिन कुआ पूजने की भी प्रथा है। पर यह तब होता था जब गावों में घर ही में कुआँ होता था। इस दिन से सूतक नहीं माना जाता और जच्चा को सब कोई छू सकते हैं।

कुछ बालकों की छठी इस अवसर पर न मनायी जाकर उसके विवाह से पहिले मनायी जाती है। इसमें भी गीत 'व्याही' ही गायें जाते हैं। इस दिन सबधियों का तथा परिचितों का प्रीतिभोज होता है और लेनदेन की प्रथा है। बालक को इस दिन सर्वप्रथम देख कर सब आशीर्वाद देते हैं तथा सामर्थ्यानुसार भेट भी देते हैं।

'छठी' के गीतों में बड़ी विविधता है। इस वर्ग में दाई, जच्चा, पर्दा, जीरा, खिचड़ी, कठुला, पालना, ननद, जिठानी नाम के अनेक गीत गायें जाते हैं। इन गीतों में लोकाचार का वर्णन, हास-विनोद तथा प्रसता का मनोविज्ञान सुंदर रीति से प्रकट हुआ है। पुत्र की माता का मान, पुत्र-कामना तथा सास-ननद के झगड़ों का वर्णन भी इनमें रहता है।

यह जन्म देने वाली जाजमातृ के हेतु गायें जाते हैं। इस 'जाजमातृ' को ही लोक भाषा में 'वैमाता' कहते हैं। देवी का आह्वान इस प्रकार किया जाता है—

ऐसी बिहाई मेरे नित उठ आओ
आओ बिहाई तुम्हें पूजूगी रोली
तुझे जगाई मेरे ससुर की पौरी
आओ बिहाई तुझे पूजूगी पेठा
तुझे बुलाये मेरे देवर जेठा
आओ बिहाई तुमे पूजूगी मेहदी
तुझे बुझाई परदेसन ननदी
आओ बिहाई तुमे पूजू बतावै
तुझे दिखावे हमे खेल तमासे

जन्म-गीतों में लवकुश की व्याहियाँ भी हैं तथा कृष्ण सबधी भी हैं। सीता के वनवास तथा लवकुश के जन्म के सबध में इस गीत में बहुत अच्छा वर्णन है। यह बहुत विस्तृत गीत है, अतः इसको यहाँ संपूर्ण नहीं दिया जा रहा है।

भाभी पहले तो ननद को बहुमूल्य वस्तु देने का वायदा कर लेती है, बाद में प्रायः घर की स्थिति देखकर या लालच में पड़कर कजूसी के कारण ननद की

मनचाही वस्तु देने से मुकर जाती है। इसके सबध मे भी कई गीत बहुत प्रसिद्ध है जो बहुत रोचक है। यह गीत पुत्र जन्म के अवसर पर छठी, दशूटन आदि के दिन बालक की बुआ अपनी ओर से गवाती है। इसका आशय संभव है इस अवसर को अधिक मनोरंजक बनाना है और हर ननद-भावज को स्मरण दिलाना है। ये गीत 'जगमोहन' और 'मनरजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इन गीतो मे ननद-भावज का झगडा, नारी की सकुचित मनोवृत्ति, भाई-बहन का स्नेह तथा विवेक-शून्य व्यक्ति के निरादर की बात बड़ी स्पष्टता से कही गयी है। इन गीतो मे स्त्रियो का मनोविज्ञान प्रकट होता है। और उनकी व्यावहारिक बुद्धि प्रबध-क्षमता तथा सरस, कोमल भावनाओ का सुंदर समन्वय हुआ है। इस गीत मे स्त्री का आभूषण प्रेम, उसका हठ, उसका अपने भाई-बहन तथा पितृगृह की हर वस्तु से मोह तथा सभी लोकाचारो का विस्तृत वर्णन है।

विवाह के बाद से ही स्त्रियो मे मातृत्व की भावना का उदय हो जाता है और वह उसके लिए अनेको कामनाएँ करने लगती है। उनकी पूजा-आराधना के मूल मे यही अभिलाषा निहित रहती है। वह अपने मन मे उसके सामाजिक महत्व को भलीभाँति समझती रहती है। पर अगर दुर्भाग्यवश उनके बालक नहीं होता है तो उनका समाज तिरस्कार करता है और 'वध्या' घोषित कर देता है। 'वध्या' का दुख बहुत ही व्यापक होता है, उसको कही पर भी स्नेह व सतोष नहीं मिलता और वह अपना जीवन निरर्थक मानने लगती है। उससे सबधित करुण रस के गीत है, इन गीतो का नाम 'साड-फाँसे' है।

यह कृष्ण-जन्म सबधी गीत है जिसमे बताया गया है कि ससार मे अन्य सभी वस्तुएँ सुलभ है, उधार मिल सकती है, मोल मिल सकती है, पर बालक नहीं।

दशूटन (नामकरण संस्करण)—यह साधारणत तो बालक के जन्म के दसवे दिन ही होता है, पर कभी-कभी किन्ही अशुभ नक्षत्रो मे बालक का जन्म होने के कारण दसवे दिन न होकर अन्य किसी शुभ दिन भी होता है। 'मूल नक्षत्र' मे बालक का जन्म होने से बालक को माता-पिता के लिये अशुभ माना जाता है। ऐसी अवस्था मे २७ दिन बाद विधि-विधान से मूल-शांति होने के बाद ही दशूटन होता है तथा नामकरण किया जाता है। अभी तक के सब कार्य को स्त्रियाँ स्वयं ही सम्पन्न करती आयी है पर दशूटन पर पुरोहित को बुलाकर यज्ञ करवाया जाता है। इस अवसर पर लौकिक और शास्त्रीय, दोनो ही क्रियाएँ होती है। इस दिन जच्चा के पीहर से उसका पिता या भाई बालक के लिए वस्त्र, आभूषण तथा अन्य निकट सबधियो के लिए भी वस्त्र व खानपान की सामग्री

लाते हैं जिसको 'छूछक' या 'खिचड़ी' कहते हैं। यह समारोह बहुत उत्साह और धूमधाम से मनाया जाता है, खान-पान तथा प्रीतिभोज होता है और लेनदेन की प्रथा है। दशूटन के दिन प्रायः सभी सबधी व परिचित, बालक को प्रथम बार देखकर कुछ न कुछ उपहारस्वरूप देते हैं और आशीर्वाद देते हैं। इस दिन भी 'व्याही' गाये जाने की प्रथा है।

पुत्र-जन्म से सबधित गीतों में कुछ सामान्य अभिप्राय मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं —

१—पुत्र-जन्म की कामना और वध्या-स्त्री की मनोव्यथा, समाज में उसका उपेक्षित जीवन जिसकी चरम सीमा है—जीवन का अंत तक कर देने का विचार, सपत्नी का आगमन।

२—पुत्र-जन्म से पहले की सुखद कल्पनाएँ, ननद भावज का परस्पर होड़ बढ़ लेना।

३—पुत्र-जन्म सबधी गीतों में ननद, सास और दाई से बहू का विरोध।

४—नेग के सबध में ननद, सास और दाई के द्वारा बहू का विरोध।

५—पति को बुलवाकर प्रसव की पीड़ा को बाँटने के लिए पत्नी की प्रार्थना।

६—पुत्र-जन्म सबधी गीतों में राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या तथा नन्द-यशोदा की प्रधानता।

७—पुत्री के जन्म पर उपेक्षा की भावना और जच्चा को कष्ट देना।

८—कुल, मर्यादा, स्वाभिमान और निष्ठा से सबधित लोकगीत।

इन गीतों में पुत्र-कामना की अभिव्यक्ति देवी-देवताओं से की जाती है। राम, सूर्य, गंगा, देवी आदि इस प्रार्थना के लिए इष्ट माने गये हैं।

मुडन—यह बालक के पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है। जन्म के बाद पहली बार बालक के बाल किसी मंदिर के पास, गंगा के पास या थान^१ आदि पर बहुत धूमधाम से कटवाये जाते हैं। मुडन बुआ की गोदी में होता है। मुडन के समय लडके की बुआ, आटे की लोई लेकर बैठ जाती है और जैसे झालर गिरती जाती है वैसे वह उसको आटे में गूँथती जाती है। इसमें बालक के माता-पिता रुपये या मोहर रख देते हैं। यह नेग बुआ को ही मिलता है। बाल उतरवाने के लिए तो भिन्न-भिन्न स्थानों की मनौती भी मानते हैं। उदाहरण के लिए, शाकुम्बरी देवी के मंदिर पर, बालासुंदरी, गढ़ की गंगा पर, हरिद्वार में। मुडन के अवसर पर गाये

१ थान—किसी सिद्ध पुरुष को समाधि के स्थान को कहते हैं। यह स्थान का ही बिगड़ा हुआ रूप है।

जाने वाले गीत अवसर-विशेष के होते हैं तथा कभी-कभी पुत्रजन्म सबधी भी गाते हैं—कुछ विशेष गीत भी गाये जाते हैं ।^१

कनछेदन—मुडन के बाद कनछेदन-सस्कार होता है । लडकियो के कान तो साधारणत छिद जाते हैं और कोई विशेष आयोजन नहीं किया जाता, पर लडको का तो कनछेदन-सस्कार बहुत धूमधाम से मनाया जाता है । इसमें भी देन-लेन व खानपान की प्रथा प्रचलित है । गीत प्राय 'व्याही' ही गाये जाते हैं ।

जनेऊ—'जनेऊ' शब्द यज्ञोपवीत का ही अपभ्रंश है । जब बालक १२ वर्ष का होता है तो उसका यज्ञोपवीत सस्कार होता है । यह विवाह के समान ही धूमधाम से मनाया जाता है । प्राचीनकाल में इसके बाद से ही विद्यारम्भ होता था । पर अब यह प्रथा भी कुछ ब्राह्मण-परिवारों में ही प्रचलित रह गयी है । जनेऊ में तीन तार होते हैं जिनका आशय मानते हैं कि ये निम्न-वस्तुओं के द्योतक हैं—

१—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ, २—ऋषि-ऋण, देवऋण और पितृऋण से मुक्त होने का सकल्प, ३—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों ही वर्णों के लोग यज्ञोपवीत के अधिकारी हैं ।

जनेऊ को बहुत पवित्र मानते हैं । लोकविश्वास है कि उसमें विष्णु जी का वास होता है । इसी से शौच जाते समय दाहिने कान में लपेटने की प्रथा है ।

आधुनिक समाज में कुछ तो आर्थिक कठिनाइयों के कारण और कुछ महत्व की कमी के कारण उस सस्कार को अलग से पूर्ण महत्व न देकर केवल विवाह के पहले ही किया जाने लगा है । इस प्रकार समय, श्रम व अर्थ की सुविधा व बचत रहती है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत अलग नहीं होते — इसमें व्याही तथा 'बन्ने' आदि गीत ही गा लेते हैं ।

विवाह-सस्कार—जन्म आदि सस्कारों के पश्चात्, सब से अधिक महत्वपूर्ण सस्कार विवाह ही होता है । यह आशावाद और उल्लास का सुखद अवसर माना जाता है । इसमें जीवन के नवीन तथा महत्वपूर्ण अध्याय में प्रवेश करते समय की जाने वाली मंगल-कामनाएँ व मंगल-कार्य सम्मिलित रहते हैं । इस अवसर पर परिवार के सभी निकट व दूर के सबधी एकत्रित होते हैं । विवाह के अवसर पर विशेष रूप से, स्त्रियों के मन में विशेष उल्लास रहता है । इसका प्रमाण हमें उनके

१. घुबरवाले बाल लला के,

दादा भी रहसै, दादी भी रहसै

हस के करै हैं गरब-लाल के ।

[इसी प्रकार सभी सबधियों का उल्लेख करते हैं ।]

समय-समय पर गाये जाने वाले मागलिक गीतो मे मिलता है, जो उन्ही के द्वारा बनाये व गाये जाते है ।

विवाह सस्कार सामाजिक तथा धार्मिक, दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है । यह गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के लिये तोरण-द्वार है, जिसके पार विशाल कर्म-क्षेत्र मनुष्य की प्रतीक्षा करता रहता है । इस कर्म-भूमि मे स्त्री-पुरुष दोनो को ही समान रूप से एक-दूसरे की आवश्यकता होती है । इस अवसर पर ही लोक-मान्यताओ, लोक-विश्वासो तथा लोक-भावनाओ को उचित अभिव्यक्ति मिलती है । इनका प्रादुर्भाव धार्मिक पुस्तको अथवा शास्त्रो से नही होता, अपितु ये देश, काल, जाति के बनाये हुए लोकाचार तथा परंपराएँ होती है इसीलिये उनमे देश, काल, जाति के अनुसार भिन्नताएँ भी मिलती है उदाहरणार्थ—पूर्वी उत्तरप्रदेश मे ‘परछन’ के समय (वधू के प्रथम बार ससुराल आगमन के समय) सास, वधू को लक्ष्मी मानकर उसके चरण-स्पर्श करती है, परन्तु खडीबोली-प्रदेश मे यह प्रथा इसके बिल्कुल विपरीत है ।

संपूर्ण विवाह मे शास्त्रीय सस्कार तो केवल पाणिग्रहण सस्कार ही है जिसको कि निश्चित मूहूर्त मे विद्वान पंडित ही वैदिक मंत्रो द्वारा सम्पन्न कराता है, अन्य तो लौकिक, सामाजिक व सांस्कृतिक महत्व की प्रथाएँ ही है । इनमे से अधिकांश का सबंध नारीजगत् से है पर कुछ का पुरुषो से भी है । इस को हम दो विभागो मे विभाजित कर सकते है—कन्या-पक्ष के यहाँ सम्पन्न होने वाली प्रथाएँ तथा वर-पक्ष के यहाँ होने वाली लोकाचार सबंधी प्रथाएँ । हर पक्ष मे भावनाओ की भिन्नता होने के कारण रीति-रिवाजो मे भी पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है ।

कुछ सामाजिक व लोकाचार सबंधी प्रथाएँ तो विवाह निश्चित होने के दिन से ही आरंभ हो जाती है । इनमे सब से पूर्व **रोपना**, अथवा, **रोकना**, नामक प्रथा है । ‘रोपना’ से बीजारोपण का अर्थ लगाया जाता है । ‘रोकना’ अर्थात् लडके तथा लडकी को एक-दूसरे के लिये प्रतीक्षा करने के लिये रोक देना —के अर्थो मे प्रयुक्त किया जाता है । इस अवसर पर वर-पक्ष की कुछ स्त्रियाँ व पुरुष, कन्या को देखने जाते है तथा कन्या को आमूषण, जोडा, कुछ फल, खिलौने, मेवा-मिठाई, चूडी-बिन्दी आदि शृंगार की वस्तुओ से उसकी गोद भरते है । और फिर कन्या-पक्ष वाले वर को यथासामर्थ्य धनराशि, मिठाई तथा फल आदि भेंट करते है । इस प्रकार ‘रोकना’ प्रथा होती है । तत्पश्चात् कुछ समय के बाद सुविधानुसार सगाई या वाग्दान-सस्कार होता है ।

सगाई—इस अवसर पर कन्या पक्ष वाले धन, फल, मिठाई जोडे तथा अन्य वस्तुएँ यथासामर्थ्य भेजते है तथा उसके साथ ही साथ या कभी-कभी कुछ दिन

बाद एक पत्र भेजा जाता है जिसको 'लगन' या 'टेवा', 'टेहवा' कहते हैं जिसमे कन्या-पक्ष, वर-पक्ष से प्रार्थना करता है कि वह अमुक तिथि को विवाह के लिये पधारे। 'सगाई' का अर्थ सम्वत निकट सबधी अथवा सगे हो जाने से है। वर-पक्ष वाले अपने मित्र व सबधियों को बुलवाकर सगाई दिखलाते हैं तथा उसके बदले में 'सजोया' भेजते हैं। 'सजोये' में कन्या के लिये जोडा, आभूषण, मेहदी, बिंदी, श्रृंगार का सब सामान, फल, मेवा, खिलौने सजोये जाते हैं। इसमें केवल कन्या से सबधित आवश्यक वस्तुएँ 'शुभ' के लिये रख ली जाती हैं और अधिकांश बापिस कर दी जाती हैं। इसी सामान से कन्या की 'सिरगुट्टी' (बाल बनाने की क्रिया) की जाती है। इस अवसर पर महिलाएँ 'सुहाग' गाती हैं।

यदि विवाह तथा सगाई के बीच में अधिक विलम्ब होता है तो कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को 'त्यौहारियाँ' भी भेजनी पड़ती हैं। विवाह के बाद भी एक वर्ष तक कन्या के घर मुख्य त्यौहारों पर सामान जाता है, उदाहरण के के लिये सावन में सिघारा, फागुन में 'फगुआ', दिवाली आदि पर मिठाई। विवाह के पूर्व और भी बहुत से लोकाचार होते हैं जिनमें हलद, बान, मढा, तेल भात आदि मुख्य हैं।

हलद—यह ८, ७ या ५ दिनों की होती है। इसमें नायन तथा अन्य सबधी भी लडकी के शरीर पर हल्दी चढाते हैं। हल्दी बहुत गुणकारी है। इसका प्रयोग अनेक रोगों में किया जाता है तथा इसके प्रयोग से छूत की बीमारी होने की आशंका भी नहीं रहती। विवाह के अवसर पर लडके व लडकी को नये ग्राम व शहर में जाना होता है। उनकी आबहवा बदलती है तथा हर प्रकार के व्यक्तियों से स्पर्श होता है—इसी से रोगों से बचाव के हेतु ही इसका यह वैज्ञानिक प्रयोग—बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। इससे त्वचा मुलायम, साफ तथा सौन्दर्यपूर्ण भी हो जाती है।

तेल—दूब से चढाया जाता है, यह बान भी ५, या ७ होते हैं। इनके बाद प्रति-दिन कन्या को उबटना मला जाता है। (उबटना सुवासित सामग्री से बनाया हुआ सौन्दर्य-प्रसाधन है। चमेली के तेल में मिलाकर शरीर पर मलते हैं) इसका उद्देश्य कन्या की सौन्दर्य-वृद्धि करना और उसको आकर्षक बनाना ही होता है।

मढा—मढा बारात जाने अथवा आने से पहले दिन अथवा एक दिन पूर्व चढता है। इसमें सब सबधी खानदान के लोग भाग लेते हैं। मढे में ५ अथवा ७ सरकडे होते हैं, सराई में सुपारी, हल्दी की गाँठ रखकर तथा लाल कपडा रखकर कलावे में पिरोकर दोनों सिरों पर बाँध देते हैं तथा उन सरकडों में पाँच, सात अथवा नौ स्थानों पर कलावे से गाँठ लगा दी जाती है, फिर उसको उठा कर टेहले वाले

कमरे के बाहर खूटी पर रख दिया जाता है। कन्या के विवाह में इसका अर्थ लिया जाता है कि कन्या का विवाह छप्पर के समान है जिसको सब मिलकर कंधे पर उठाते हैं। इस प्रकार, लड़की के विवाह में सभी मिलकर कार्य करते हैं। 'मढे' में एक सफेद चादर भी ऊपर बाँध दी जाती है, उसको 'मढा' बाँधना कहते हैं। इस पर स्वस्तिक चिह्न बना होता है तथा चावल, हल्दी, सुपारी आदि भी म गलिक वस्तुएँ उसके बीच में ऊपर डाल देते हैं।

भात—कन्या तथा पुत्र के विवाह की तिथि निश्चित होने के बाद माँ अपने पीहर भाइयों को विवाह में आने का निमन्त्रण देने जाती है। साथ मिसरी के कूजे, मेवा, मेहदी, कलावा, रोली, एक चिट्ठी आदि ले जाती है, इसको 'भात न्यौतना' कहते हैं। भात के अवसर से संबंधित इसी वर्ण्यविषय के बहुत से गीत हैं जिनमें 'नरसी का भात', 'नीदना भात' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका वर्ण्य-विषय होता है भाई से विवाह में सहायता देने की प्रार्थना करना। इनमें बहिन अपनी आर्थिक असमर्थता तथा सामाजिक कटु-आलोचनाओं के भय का भी उल्लेख करती है। भाई यथाशक्ति अपने सामर्थ्यानुसार आभूषण व वस्त्र लेकर विवाह के एक-दो दिन पहिले पहुँचता है और वहाँ पर उसका उचित स्वागत होता है। लड़की के विवाह में वह जोड़ा पायजेब, बिछुए, नथ आदि तो लाता ही है, इसके अतिरिक्त, सामर्थ्यानुसार और भी वस्तुएँ लाता है। बहिन द्वार पर भाई तथा भाई के परिवार की आरती करके घर में प्रविष्ट कराती है। घर में भाई को बूरा तथा सुहाली खिलाई जाती है और नाई उस समय भाई का अगूठा घोंटा है जिसका कि उसको उचित नेग मिलता है। इस अवसर पर भाई को 'सीठने' भी दिये जाते हैं जो कन्या की चाची, ताई, मामी आदि सबघी देती है—उदाहरण के लिये—

भातियो की मूछ जैसे कुत्ते की पूछ

मत पाडियो रे लाल, वो तो बिचारा गरीबडा

तथा—

भातियो के कान जैसे फुट्टी दुकान

गधे मत बाडियो रे लाल, वो तो बिचारा गरीबडा

इसी प्रकार, सभी अगो से संबंधित और भी 'सीठने' दिये जाते हैं। लड़के के विवाह में मामा अधिक सामग्री नहीं ले जाता—'घुडचढी' का पूरा जोड़ा ले जाना आवश्यक होता है।

अभीतक लड़की के विवाह से पूर्व की प्रथाओं का उल्लेख किया जो कन्या-

पक्ष में मनायी जाती हैं। इसी अवसर पर वर-पक्ष के यहाँ भी कुछ समारोह होते हैं।

सगाई चढ़ना—‘लगन आना’, ‘तेलबान’, ‘मढा’ वा ‘मात’ आदि। इनमें अधिक अंतर नहीं होता। लगभग दोनों पक्षों में समान ही होते हैं, गीत अवश्य कुछ भिन्न होते हैं—जिन्हें ‘घोड़ी बन्ने’ कहा जाता है।

वर-पक्ष के यहाँ विवाह के पहिले दिन ‘घुड-चढी’ का विशेष महत्वपूर्ण आयोजन होता है।

घुड-चढी—विवाह के पहले दिन या उसी दिन वर की घुड-चढी होती है। घुड-चढी के पश्चात् वर अपने घर वधू को बिना साथ लिये नहीं लौटता। अतः किसी मित्र के घर या मंदिर में रात्रि में ठहर जाता है और वही से वह वर-यात्रा में सम्मिलित होता है। प्राचीन काल में आधुनिक काल के समान यात्रा-यात के सुगम साधन नहीं थे। इसलिये वर घोड़े पर जाता था और अन्य सबघी लोग रथ या बहेलियों में यात्रा करते थे। वर को सर्वप्रथम घोड़े पर चढ़ाकर मंदिर में ले जाया जाता है तथा वहाँ उससे पूजा व दान कराया जाता है। घुड-चढी के अवसर पर लडके के सभी सबघी टीका करते हैं और गीत गते हैं—यह घोड़ी-बन्ना, सेहरा आदि कहलाते हैं। तत्पश्चात् यात्रा आरम्भ होती है, लडके के विवाह में सभी सबघियों के मन में अधिक उत्साह रहता है। इसमें लडकी के विवाह से भिन्न मन स्थिति रहती है, अतः इन गीतों की लय, वर्ण्य-विषय तथा लडकी के विवाह में गाये जाने वाले गीतों में भेद पाया जाता है। इस अवसर पर वर के साथ छोटा भाई या छोटी बहिन को भी घोड़े पर बैठाया जाता है। इसी अवसर पर माँ कुँ में पैर डाल कर बैठती है, दूध पिलाई का ‘नेग’ माँगती है और सब आधि-व्याधियों को सराई में बन्द कर के बारात लौटने तक रखती है जिससे यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो। भाभी काजल डालती है तथा राई-नैन से नजर उतारती जाती है।

बारात जाने के बाद, उसी दिन रात्रि में सब घर की व पड़ोस की स्त्रियाँ मिलकर एक प्रथा मनाती हैं जिसको ‘कोयल’ कहते हैं। इसमें सब से पहिले ‘सोव्बो’ लिखा जाता है जो निम्न प्रकार का होता है—

एक ब्राह्मणी नाई बन जाती है और समघनों को आकर बारात का हाल सुनाती है। घर की सब स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठ जाती हैं और पूछती हैं कि ‘बाग’ में क्या-क्या दिया? दावत कैसी की है? तब वह ब्राह्मणी, जो नाई बनती है, तरह-तरह की गदी बातें बोलती है जैसे ‘चौदा सौ’ रुपये दिये हैं इत्यादि।

इस अवसर पर वह शब्दों को बिगाड़कर बोलती है जिससे उनका दूसरा अर्थ लग जाता है, ज. प्रायः अश्लील होते हैं।

इसके बाद माँग, बनाई जाती है। एक लम्बा-सा डंडा लेकर 'नाई' माँग घोटता है। माँग घोटते-घोटते वह गाना गाता जाता है तथा मस्ती में झूमता रहता है।

इसके बाद एक ब्राह्मणी नाई बनकर आती है और आकर कहती है कि मुझे बारात में लडके की माँ, बुआ इत्यादि की खबर लाने के लिये भेजा है। उस समय एक गाना-गाती है—

मैं तो दूरों से आया री माई रामलीला
मुझे जगदीश ने भेजा री माई रामलीला
बहु की सुध लादे री माई, सुखी की खबर ला दे
मुझे पास ही सुला दे री माई—रामलीला

इसी प्रकार घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर उसकी स्त्री के साथ मजाक होता है।

इसके बाद 'चूड़ी' पहनी जाती है। एक ब्राह्मणी मनहार का वेश बना कर हरी चूड़ियाँ, बैजनी चूड़ियाँ, कहकर आवाज़ लगाती है और उसे घर में बुला लिया जाता है। घर में आने पर उससे सब से पहिले बहू का जोडा बँधवाते हैं। 'चूड़ियाँ वाली' बहुत मजाकिया स्त्री बनती है। चूड़ियाँ पहनाते समय वह कहती है—ये हरी-हरी चूड़ियाँ तुम पहनो सुहागन चूड़ियाँ, इसके बाद चूड़ी पहनाती जाती है और घर के प्रत्येक पुरुष का नाम ले-लेकर उसकी स्त्री को उसकी चूड़ियाँ पहनाती है। स्त्रियाँ अपने-अपने देवरो, पुत्रों के नाम की भी चूड़ियाँ पहनती है। चूड़ी पहनाते समय चूड़ीवाली यह गाना गाती है—

जगदीश की पौड़ी पौड़ा रे मनहार लला
कला का हाथ हठीला रे, मनहार लला
कला पहिरन बैठी रे मनहार लला
बो तो बड़ी ही हठीली रे मनहार लला

ये चूड़ियाँ सचमुच में नहीं पहनाई जाती है, यह सब झूठ-मूठ का अभिनय होता है। पर बहुत ही सफल अभिनय होता है।

चूड़ियाँ पहनने के बाद, आधी स्त्रियाँ छत के ऊपर चली जाती हैं और आधी नीचे चौक में बैठी रहती है फिर 'कोयल' बुलाई जाती है। नीचे वाली स्त्रियाँ बोलती है—

“मत बोलौ री बहनो”

इसी प्रकार, घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर बोलती जाती है और ऊपर वाली स्त्री 'मत बोलो री बहनो' कहती जाती है। इस प्रकार, 'कोयल' समाप्त हो जाती है। कहीं-कहीं पर इस क्षेत्र में 'कोयल' के बाद बहू-बहने भी बनाये जाते हैं और उनके फेरे कराये जाते हैं। आपस में ही घर की लडकी बन्ना बनती है और कोई भी बहू, बहू बनती है। उन्हीं स्त्रियों में से एक पंडित बनता है और उनके फेरे कराये जाते हैं। यह एक प्रकार का स्वांग होता है। वेशभूषा पात्रों के अनुरूप ही पहनी जाती है। इस समय 'सुहाग' गाये जाते हैं। ऐसा मानते हैं कि 'सुहाग' इसलिये गाने चाहिये क्योंकि बहू को इस समय 'सुहाग' चढता है और फेरे होते हैं। 'कोयल' में अब इतना ही होता है।

बारात जाने के अगले दिन दोपहर को स्त्रियाँ गाना-बजाना व नृत्य करती हैं। यह लडके के विवाह की मुख्य प्रथा होती थी जिसका प्रचलन अब कम हो गया है। इसमें लगभग सभी प्रकार के गाने गाये जाते हैं, जो चलते हुए तथा हँसी, मजाक व नृत्य के होते हैं। इसको 'खोडिया' कहा जाता है।

'खोडिये' के बाद 'बधावा' गाया जाता है। घर की व खानदान की सब स्त्रियों के नामों को ले-लेकर उनको बधाई दी जाती है, क्योंकि उन्होंने ऐसे सुपुत्र को जन्म दिया है। यह 'बधावा' बधाई-गीत इस प्रकार का होता है कि इसमें वह लडके की माँ का नाम लेकर गाते हैं, उदाहरण के लिये—

बधावा है 'कमला' की कोख

जिसने जाया है हरि सा पूत

उधर कन्यापक्ष के यहाँ जब बारात पहुँचती है तो उसको सादर 'जनवासे' में (एक निश्चित स्थान पर) ठहराया जाता है। दोपहर के खाने में चटनी या रायता नहीं दिया जाता है—यह खटाई है। अभी सबघ बनने से पूर्व ही उनमें 'खटाई' न पड़े। संभव है, इसमें यही धारणा हो। फेरो से पूर्व लडकी का बाप जनवासे में नहीं जाता।

बारात पहुँचने के पश्चात्, सबसे पहिली तथा महत्वपूर्ण प्रथा 'बाग' होती है। इसको 'न्यौतनी' भी कहते हैं। इस समय लडकी वाला अपने पुत्र व अन्य सबधियों के साथ कुछ भेट भेजता है। लडकी का भाई वर की पूजा करता है तथा भेट देता है और अपने घर पर सादर पधारने का निमन्त्रण देता है। तब बारात 'बारद्वारी' अथवा सेवल के लिये सज कर चलती है। इसको 'चढत' भी कहते हैं।

'न्यौतनी' से पूर्व वर-पक्ष का नाई बाजा लेकर कन्या-पक्ष के घर जाता है

तथा उनको सूचना देता है। कहीं-कहीं इसे 'सुहाग पूजा' भी कहा जाता है। इसके पश्चात् ही कन्या-पक्ष वाले उनको लेने जाते हैं।

'बाग' की प्रथा भी परिस्थितिजन्य प्रथा थी। पहिले बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ एव कोठियाँ नहीं होती थी, इसलिये बारात बागो में ही ठहरती थी। इस समय ग्रामवासी वधू के भाई को लेकर पूजा करते थे, यही 'बाग' की प्रथा अब भी अवशेषरूप में मिलती है।

जब बारात घर आ जाती है तो वर की 'सेवल' या पूजा होती है। इस समय लडका द्वार पर पड़ी हुई चौकी पर खड़ा होता है। वधू की भाभी अथवा बड़ी बहन 'सेवल' या 'आरता' करती है। यह चौकी जिस पर वर खड़ा होता है, यह वर के बहनोई को मिलती है। इसके पश्चात् खान-पान के बाद पाणिग्रहण-संस्कार होता है।

पाणिग्रहण संस्कार—ये संस्कार निश्चित मुहूर्त में विद्वान् पंडितों द्वारा वैदिक मंत्रों के द्वारा ही कराया जाता है। इस समय वर-वधू अग्नि के सम्मुख समाज को साक्षी मानकर प्रतिज्ञाएँ करते हैं। इस संस्कार को कहीं-कहीं 'कन्यादान' भी कहा जाता है।

कन्यापक्ष में गुरुजन (कन्या से सबध में बड़े सभी सबधी) पूरे दिन व्रत रखते हैं तथा कन्यादान सम्पन्न हो जाने के पश्चात्, भोजन करते हैं। व्रत के पीछे दो भावनाएँ निहित रहती हैं। उनमें से एक यही है कि कन्यापक्ष में गुरुजन उपवास रखकर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी कन्या सुखी तथा धन-धान्य से पूर्ण रहे। दूसरी भावना इस संकल्प की परिचायक होती है कि गुरुजनों ने कन्या के विवाह के सबध में संकल्प किया है कि वे कन्या को सुपुत्र के हाथों में सौंपकर ही निश्चिन्ततापूर्वक तथा शांति से भोजन करेंगे।

विवाह के समय अन्य विधि-विधानों के अतिरिक्त 'कन्यादान' मुख्य होता है। विवाह के अन्तर्गत जितने छोटे-बड़े संस्कार होते हैं उन सभी का केन्द्ररूप यही संस्कार है। कन्यादान का दृश्य बहुत ही कारुणिक होता है। पिता अपनी लड़की को सदा के लिये परायें हाथों में दे देता है—कन्यादान को लोकगीतों में सूर्य-ग्रहण और चन्द्रग्रहण से भी अधिक कष्टप्रद बताया गया है। इस समय माता-पिता की बहुमुखी भावनाएँ होती हैं, एक ओर तो वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति की भावना से प्रसन्न होते हैं, पर साथ ही दूसरी ओर वरपक्ष का आतंक भी बना रहता है तथा वह कन्या के भविष्य की अनिश्चितता के सबध में कल्पना करके भी काँप उठता है। इसी समय जब पिता, वर को कन्या का हाथ पकड़ाता है तो कन्या का भाई पानी की धार गिराता है, उस समय भाई को

पानी की धार न टूटने देने का आदेश दिया जाता है। इसका तात्पर्य कदाचित् यह है कि उस समय वर-वधू दोनों कुलो का सबध एकरस ही बना रहे। कन्यादान के समय भाई के हाथ से पानी गिरवाने से यह आशय भी रहता है कि बहन के विवाह के बाद उसका माँ के यहाँ सबध बनाये रखना भाई के ऊपर ही निर्भर करता है। इसी समय भाई वर-वधू को हाथ में खील भी देता है। 'खील' का शुभ-संस्कारो मे बहुत महत्त्व माना जाता है, इसका उल्लेख साहित्यिक कृतियों मे भी मिलता है।

कही-कही इसी अवसर पर या कुछ पहिले ही कन्या के हाथ पीले किये जाते है। यह क्रिया एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। "हाथ पीले करना" तो कद्दावत के रूप मे भी लडकी के विवाह के लिये ही प्रयुक्त होता है। घर तथा बाहर का जिन स्त्रियो से लेन-देन होता है वह हल्दी से लडकी के हाथ पीले करती है और हाथ मे छल्ला, अगूठी तथा रुपये देकर जाती है। हाथ पीले कराई के अवसर पर आये सब रुपये व आमूषण लडकी को ही दिये जाते है।

वर का जीजा या फूफा गठबवन करता है। गाँउ मे साबुत सुपारी तथा एक टका मी बाँवते है। इसके बाद सप्तपदी भाँवरे होती है। 'सप्तपदी' के बाद लडकी, लडके के वामभाग मे आ जाती है। इस अवसर पर स्त्रियाँ एक बहुत हो करुण गीत गाती है जिसमे वह कहती है कि अभी पहली ही भाँवर है अभी तो बेटा बाप की है, अभी दूसरी ही भाँवर है, इसी प्रकार छ भाँवर तक तो बेटा बाप की ही रहती है परन्तु सातवी भाँवर के होने ही वह पराई हो जाती है। मानो अपनेपन की सीमा छ भाँवरो तक ही होती है।

सप्तपदी के बाद जब वधू पूर्णत वर की हो जाती है और इसका सूचक होता है उसके वाम भाग मे बैठना। इस अवसर पर 'छायादान' करने की प्रथा है। दो काँसे की कटोरियो में गर्म घी करके दो-दो आने पैसे डाल दिये जाते हैं। दोनों उस घी मे अपना मुँह देखते है। ये घी और पैसे सहित दोनों कटोरियाँ 'मड्डरी' या 'डकौत' को दे दी जाती है। यह बहुत भारीदान समझा जाता है, अत मड्डरी के अतिरिक्त इस दान को कोई नहीं लेता। इसके बाद वर-वधू दोनों के पिता यथा-शक्ति दान करते है। इसके पीछे देवी-देवताओ की वर-वधू पर अनुकम्पा बनाये रखने का प्रयत्न ही रहता है तथा इस शुभ-अवसर पर प्रसन्नता अभिव्यक्त करने का एक माध्यम भी माना जाता सकता है।

यह संस्कार सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वर-वधू घर के अन्दर ले जाये जाते है। 'थापे' के सम्मुख दोनों को बैठा दिया जाता है, तथा वर से 'छन' अथवा 'छन्द' सुनाने को कहा जाता है। यह परम्परा, लोकजन की सगीत तथा हास्य-

प्रियता की परिचायक है तथा इसी अवसर पर नारी-समाज वर की बुद्धि-परीक्षा भी लेता है। इसी समय वर के साथ अनेक मजाक भी किये जाते हैं जैसे—वधू के जूतों को वर से पुजवा लेना। इस समय वर-पक्ष के लोगो को सीठने अथवा गालियाँ भी दी जाती हैं। 'छन' सुनकर वर को यथासामर्थ्य भेंट करते हैं, रुपये व आम्रभूषण। 'छन' के रुपये वर की निजी सम्पत्ति होती हैं। अगले दिन सवेरे कुँवर 'कलेवा' अथवा 'बासडा' होता है। इस समय वर के साथ उसके छोटे भाई तथा भतीजे आदि भी आते हैं। अधिकतर घरों में इस अवसर पर बासी खाना खिलाने की प्रथा है। जिन बर्तनों में वर भोजन करता है, वह वर के साथ ही भेज दिये जाते हैं। इसी समय कँगना भी खिलता है—'कगना' भाभी खिलवाती है जिसका उसको 'नेग' मिलता है। इस समय वर से तथा उसके सबधियों से जी भर कर मजाक होता है। जिसके द्वारा वह स्त्री-सबधियों से मली-भाँति परिचित हो जाता है। सभी महिलाएँ स्वयं वर से परिचय कर लेती हैं तथा हर प्रकार से वर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं। 'कगने' पर भी वर को बहुत-सा सामान भेंट स्वरूप मिलता है। इसी दिन शाम को बहुत बढिया खाना खिलाने की प्रथा है, जिसको 'बडार' कहते हैं। खाना खाते समय स्त्रियाँ पदों के पीछे से वरपक्ष के लोगो को खूब 'सीठने' देती हैं जिसको कोई भी बुरा नहीं मानता यद्यपि यह अश्लील भी होते हैं। तीसरे दिन विदा का आयोजन होता है। अब प्रायः विदा दूसरे ही दिन करने लगे हैं, अतः बडार की प्रथा कम हो गई है।

विदा—विदा से पहले लडकी को दिया जाने वाला पलंग बिछाया जाता है। उस पर वर-वधू को बैठाकर, सूप में धान रख दिये जाते हैं। सर्वप्रथम पुरोहित वर-वधू को तिलक करता है तथा रुपये देता है और पाँव छूता है। इसके बाद वर के जितने भी बडे होते हैं, तिलक कर के पाँव छूते हैं व रुपये और नारियल देते हैं। इसके बाद लडकी के माँ-बाप, चाचा-चाची, भाई-भाभी धान बोते हैं, ये क्रिया गठबँधन करके ही की जाती है। धान बोने के बाद वर उठकर चला जाता है और वधू को भी उठाकर अन्दर ले जाते हैं, फिर उसको उन्ही कपडों में विदा करते हैं। मंडप में बिखरे हुये धान उठा कर रख लिये जाते हैं और जब लडकी अपनी ससुराल से विदा हो जाती है तो इन्हीं धानो को लेकर माता-पिता गंगा जी में बहा देते हैं और बेटी व्याह के गंगा नहाते हैं। 'गंगा-नहाना' एक मुहावरा-सा बन गया है। किसी महत्वपूर्ण सकल्प व अनुष्ठान के सकुशल पूर्ण होने पर प्रायः लोग 'गंगा' नहाते हैं। धान बोना इस सत्य का परिचायक है। जिस प्रकार धान बोने के बाद, उग आने पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रोप

दिये जाते हैं, इसी प्रकार कन्या भी होती है—जो पलती है एक स्थान पर, फूलती है दूसरी जगह । धान वैसे शुभ भी माने जाते हैं ।

विदा से पूर्व पिसी हुई मेहदी को घोलकर या गेरू से टेढ़ले वाले कमरे के दोनों ओर दीवार पर दो-दो 'थापे' लडकी से लगवाये जाते हैं । इसके बाद कमरे की 'देहली' का लडकी से 'पूरी-बूरा' या चावल-गेहूँ सुहाली, कुछ पैसे रख कर पूजन करवाया जाता है । इसको 'देहली पूजना' कहते हैं । इसका अर्थ है कि जिस घर को छोड़कर वह जा रही है वह सुख-शांति से पूर्ण रहे, अपने घर की तथा भाई-भतीजों की शुभ बनाती है । 'थापे' का आशय संभवतः यह था कि तब फोटो का रिवाज न था—वैज्ञानिक उन्नति से पूर्व तो पुत्री की स्मृति-स्वरूप उसकी हाथ की छाप माँ दीवारों पर लगवा लेती थी । विदा से पूर्व बेटों तथा बर को भंडार में ले जाकर मिठाई खिलाते हैं ।

कन्या का विदाई का दृश्य बहुत ही कारुणिक हो जाता है । सम्पूर्ण नारी और पुरुष समाज के आत्मसंयम की इस समय परीक्षा हो जाती है । जो पिता जीवन के बड़े से बड़े सकट के समय भी धैर्य नहीं खोता और अपने ऊपर पूरा संयम रखता है, वही पिता कन्या की विदाई के समय घरातियों और बरातियों के सामने बच्चा की तरह बिलख उठता है । उसका सारा संयम टूट जाता है और माँ तो यहाँ तक कहती है कि कन्या से तो मेरा घर भी खाली, पेट भी-खाली, अतः अब मैं भविष्य में कन्या कभी नहीं जूँगी । अपनी कोख को खाली करते समय उसको जो मार्मिक वेदना होती है उसका वर्णन असंभव है । इस करुण अवसर को और भी करुण बनाते हैं, इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत । इन गीतों में कन्या सभी सबधियों के स्नेह की तुलना करती है जिनमें माँ का स्नेह ही सर्वोपरि ठहरता है ।

कन्या-पक्ष वाले तो अपना सब कुछ अर्पण कर चुके होते हैं, अब आँसुओं के अतिरिक्त उनके पास शेष रह ही क्या जाता है । उधर कन्या अपने लखपती बाप से व्यग्रपूर्ण प्रश्न करती है कि किस कारण मुझे यह परदेश मिल रहा है । यह भाव इस गीत में बहुत ही भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है—

काहे को व्याही विदेश, रे लखी बाबुल मेरे

भइयो को दीहे महल दुमहले, हमको दियो परदेस रे

विदा के समय बाहर 'ध्यानो' की जिनमें फूफा तथा दामाद आते हैं तथा मामा समधी आदि की 'मिलाई' होती है । सब पुरुष सबधों—ग्राम के गोहरे तक जाते हैं और वही पर अंतिम विदाई होती है तथा इस समय लडकी को डोली में रखे दिये जाते हैं ।

लडकी की विदाई की तुलना रहस्यवादी कवि इस लोक से उस लोक में जाने से करने है। उसके लिये इस जग के मातृ-गृह का अस्तित्व समाप्त होता है। यह पुनर्जन्म के समान ही होता है, एक वातावरण, परिवार तथा रागात्मकता की छाया से दूसरे ही प्रकार की छाया में जाती है। उनकी प्रसन्नता मिश्रित वेदना, प्रसव-वेदना के समान होती है। इस प्रकार पूर्ण विवाह-संस्कार विशेष कर, कन्यापक्ष वालों के लिए हर्ष और विषाद का अद्भुत अवसर होता है।

इधर कन्यापक्ष वाले अपनी 'कच्चे दूधो' से पाली नादान बेटों को विदा करते हैं और घर और पेट से खाली होते हैं। उधर वर-पक्ष विजयी के समान सुख-सम्पत्ति के साथ वधू का गृह-प्रवेश कराता है। इस समय का उसके घर का उल्लास व हर्ष दर्शनीय होता है। हर प्राणी-नयी बहू को देखने को उत्सुक होता है। वर-वधू के स्वागत के लिए सभी मांगलिक लक्षण प्रस्तुत किये जाते हैं—सुहागिन स्त्री, मंगलकलश, शखध्वनि, चौक पूरना आदि। माँ, मामा आदि बहू को बहुत प्यार से डोली से उतारती है तथा घर के मुख्य द्वार पर माँ, चौमुखे दिये से आर्त करती हैं, न्योछावर करती हैं, बलैया लेती हैं। बेटा-बहू माँ के पाँव छूते हैं, माँ अर्शाष देती हैं अन्य स्त्रियाँ बधावे गाती हैं। पर फिर जैसे ही गृह-प्रवेश करने लगते हैं तो बहने 'राह' रोकती हैं, भाई उन्हें 'बार रुकाई' के रुपये देता है। इस प्रथा के मूल में संभवतः यह भावना हो कि बहनें जो अब तक भाई की आकर्षण तथा स्नेह की केन्द्रबिन्दु रही अब कहीं मामा के आने से उपेक्षित न हो जाएँ—भाई उनको भेट देकर आश्वासन देता है कि नही तुम्हारा स्थान पूर्ववत् रहेगा। माँ, बेटा-बहू को 'धापे' के आगे ले जाता है और वहाँ पर दोनों से पूजा कराई जाती है, रुपये का थैलो में बहू का हाथ डलवाया जाता है तथा मीठे चावला से उसका 'मुँह जुठायी' जाता है, फिर वहीं मीठे चावल सभी खाते हैं। तत्पश्चात् बहू की 'मुँह दिखाई' होती है और सब सबका बहू का मुँह देख कर उसको आशीर्वाद देते हैं तथा यथा संभव भेट देते हैं। इस अवसर पर छोटे देवर या किसी बालक को बहू की गोदी में बिठाया जाता है जिसका आशय है, शीघ्र ही समय आने पर बहू की गोद बालक से भरे।

अगले दिन 'कगना' तथा 'सटी' खेलते हैं। यह फूल की सट होता है। इस दिन कुछ क्षण के लिए बहू को समानाधिकार प्राप्त होता है—वह जो भरण पति को पिटाई कर सके और फिर जीवन भर पिटने के लिए तैयार हो जाती है। फूल की सटी कामदेव के पुष्पबाण की परिचायक भी है। इस सटी के प्रयोग का दोनों को वैसे भी समानाधिकार है।

दो-चार दिन वधू मेहमान की तरह रहती है, फिर शुभ मुहूर्त में बहू का छोटा

भाई आकर उसको अपने घर लिवा ले जाता है और इस अवसर पर बहू के भाई का बहुत स्वागत होता है। इस प्रकार विवाह-संस्कार सम्पन्न होता है।

गौना—इसके बाद गौने की प्रथा होती है जिसमें लड़का तथा कुछ विशेष सम्बन्धी प्रायः सख्या में पाँच—एक निश्चित समय पर शुभ-मुहूर्त में बहू को विदा करा कर ले आते हैं। इस समय भो। पर्याप्त लेन-देन होता है तथा गीत भो। पहले जब बाल-विवाह की प्रथा थी तो वास्तविक विदा का दृश्य इसी समय उपस्थित होता था क्योंकि कन्या, विवाह के बाद ५-६ वर्ष बाद प्रथम बार स्वसुराल जाती थी पर अब गौने का महत्व कम हो गया है और या तो विवाह के साथ ही गौना हो जाता है जिसको 'पटडा फेर' कहते हैं और या कुछ ही दिन, एक या दो मास पश्चात्। इस अवसर पर लड़की के घर 'सुहाग' और लड़के के घर 'घोड़ी बन्ने' गाये जाते हैं।

मृत्यु-संस्कार—मनुष्य शरीर से सबधिन, अन्तिम संस्कार यही है। जो व्यक्ति अच्छी-बड़ी अवस्था में अपने बेटों, पोतों के सामने स्वामाविक मृत्यु पाता है, उसकी अर्थी को खूब सजाया जाता है। इस सर्ज हुई अर्थी को 'विमान' कहते हैं, विमान की कलना भी स्वर्गलोक जाने के लिए ही करते हैं। इस 'विमान' को गाजे-बाजे के साथ श्मशान तक ले जाते हैं। इस समय मृतक के पौत्र चर्वर डुलाते हैं। इसके पीछे धारणा रहती है कि भौतिक जीवन की संपूर्ण सुविधाओं का उपभोग कर मानो वह अन्य अच्छे लोक के लिए महायात्रा कर रहा है। यह केवल परिवर्तन है उत्पत्ति के लिए, न कि कोई दुख का विषय है। इसी से इसका सबव शोक से नहीं बल्कि प्रसन्नता से है। यह गाना, बजाना व सजावट उस मृतक व्यक्ति के बेटों, पोतों तथा अन्य सबधियों के लिए शुभ समझा जाता है। छोटे-छोटे बालकों को ऐसे वृद्ध मृतकों के विमान अथवा अर्थी के नीचे से निकाला जाता है क्योंकि ऐसा करने में वह दीर्घायु को प्राप्त होंगे। इसी विचार से जिनके बालक नहीं जाते, वह बालकों की टोपी अथवा कुरता बनाने के लिए श्मशान से विमान का कपडा ले आते हैं। इस प्रकार यहाँ वृद्ध की मृत्यु पर शोक नहीं मनाया जाता है।

'शव' को गाँव के 'गोहरे' ले जाकर उतारा जाता है। वहाँ पर घट फोड़ दिया जाता है। यह घट, क्रिया करने वाला बड़ा पुत्र हाथ में लिए रहता है। शव के ऊपर जितने भी शाल-दुशाले ढके रहते हैं, वह भगी को दे दिए जाते हैं। शव-यात्रा के समय बहुत से लोग रुपये, पैसे की बखेर भी करते हैं। अन्त्येष्टि-क्रिया बड़ा पुत्र करता है और उसको क्रिया के समय बहुत नियम-समय से रहना पड़ता है। तख्त पर सोना तथा एक समय भोजन करना आवश्यक है। इन दिनों

परिवार में काले उडद की दाल बनती है तथा बिना छने आटे की रोटी। बारह दिन तक कढ़ाई नहीं चढ़ती। निकट के पुरुष सबधी दसवे तक हजामत भी नहीं बनाते। श्मशान में सध्या को दीपक जलाने तथा घट भरने दसवे तक जाते हैं।

दसवे दिन महाब्राह्मण को पुत्र, यथाशक्ति दान देता है। इस दान में के सभी वस्तुएँ होती हैं जो जीवनकाल में मृतक की आवश्यकता थी व प्रिय थी। उसी दिन सभी परिवार के लोग हजामत बनवाते हैं तथा स्त्रियाँ भी सिर से स्नान कर सिंदूर आदि लगाती हैं। कुछ परिवारों में इन दिनों गायत्री का जाप तथा गरुडपुराण का पाठ होता है। तेरहवीं के दिन घर की शुद्धि होती है तथा ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है।

यद्यपि इस समय साधारणतः गीतों का विधान नहीं होता पर स्त्रियों का इस समय का रुदन एक लय में होता है और उसके साथ जो शब्द वे कहती हैं, वह प्रायः मृत-व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम लेकर शोक प्रकट करती हैं। इनको इस प्रदेश में 'उलाहणी' कहते हैं। यह गीत यद्यपि बहुत कम प्रचलित है, पर इनके द्वारा हमें पूरी प्रथा का पता चल जाता है—यह परंपरागत प्रथाओं का द्योतक है।

इन शोक-गीतों के वर्ण्य-विषय, मृतक तथा उससे संबंधित वस्तुओं व स्वभाव से होते हैं। ये जीवन की परिस्थितियों की तथा सांसारिक सबधों की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हैं और मृतक के संबंधियों तथा उसके व्यवहार में आने वाली पदार्थों का मार्मिक वर्णन कर कष्टों की लहर उत्पन्न करते हैं। इनमें अकाल मृत्यु पर खेद तथा मृतक में लौटने तक का आग्रह किया जाता है तथा इनमें मृतक का रूप-गुण वर्णन मिलता है और उस समय होने वाले अपशकुनों का भी वर्णन रहता है। एक उलाहणी का उदाहरण हम यही पर दे रहे हैं जो वृद्ध की मृत्यु के अवसर पर गाया जाता है—

ए चन्वन रूख कटाइयोणी, ऐ बाढ़ी बेग बुलाइयोणी
ऐ सात्तो बाज्जे बाजियाणी, ऐ बेट्टो मूड मुडाइयाणी
ऐ बहुये खेस खिंडाइयाणी, ऐ पोत्तो चवर डुलाइयोणी,
ऐ दोहत्तो रास कराइयोणी, ऐ भर बजारो काढ़ोणी
ऐ चुदरी पडे दिसावरोणी, ऐ मरना री बुड्डे का
ऐ पैसे बहुएं पावलियाणी, ऐ बाग्यो साड़ी साहणी
ऐ क्या क्या पुन्न कराइयोणी, ऐ गऊए पुन्न कराइयोणी
ऐ सोन्ने खुरी मडाइयोणी, ऐ चादी सींग मडाइयोणी।

वृद्ध की मृत्यु पर नायन जिस गीत को गाती है, वह 'उठावणी' भी कहलाती है। उठावणी का तात्पर्य है अस्थी उठाने के अवसर पर गाया जाने वाला गीत—मृत्यु के समय 'पल्ले लेकर' राने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

सधवा तरुणी स्त्री की मृत्यु पर भी विलाप का गीत मिलता है। वैसे सधवा सौभाग्यवती स्त्री की, जिसके पति जीवित हो, उसकी मृत्यु बहुत ही अच्छी मानी जाती है। 'पति के कंधे पर चढ़ कर जाना' मुहावरा भी बन गया है।

वृद्ध की अर्थी उठ जाने के बाद फाटक तक स्त्रियाँ भी पीछे-पीछे जाती हैं तथा जिसका बूढ़ा मरता है वह 'नायन' को रुपया देती है, बाद में समझिन देती है और फिर सब सबधी व परिचित जो उपस्थित होती है एक-एक या दो-दो पैसा देकर 'बेल' बढवाती है। यह सब बेटों आदि का नाम ले लेकर वश-वृद्धि करती हैं। यह जीवित लोगों के लिए शुभ की कामना करवाने का एक रूप है।

छोटे बालक के मरने में, सायकाल यदि कोई स्त्री रोती है तो ऐसा लोक-विश्वास है कि माँ रोवे तो बालक को कष्ट होता है; क्योंकि यमराज के 'यहाँ छोटे-छोटे बालक पानी भरने का काम करते हैं। जब दिन भर वह पानी भर कर निबटते हैं तो मजूरी के रूप में उनको पानी पीने के लिए दिया जाता है। यदि ऐसे समय बालक की माता रो उठे, तो जितने आँसू गिरे, उतना ही जल बालक को नहीं मिलेगा। इसलिए उसकी माँ को कदापि रोना नहीं चाहिये।

खड़ीबोली के सस्कार सबधी गीतों में जन्म से मृत्यु तक के सभी प्रमुख सस्कारों का उल्लेख मिलता है तथा इनके लोकमहत्व का पता चलता है। लोकजीवन में उनका क्या महत्व है, इनसे यह भी पता चलता है। इन गीतों में जीवन का पूर्णरूपेण यथातथ्य-चित्रण है।

धार्मिक गीत व्रत, त्योहार, अनुष्ठान सबधी

धर्म, लोकजीवन की विरासत है। लोकमानव, धर्म की चादर के नीचे अपने को सुरक्षित समझता है। उसके सम्मुख जो भी कुछ कठिनाई आती है, उस समय धर्म का भोला विश्वास ही उसका साथी बनता है। धर्म, लोकजीवन में इसीलिए जीवित है कि लोकमानव का इसके अतिरिक्त न अपनी बुद्धि पर विश्वास है और न ही पृथ्वी की और किसी शक्ति पर। लोक मानव के ये अविश्वास तथा प्रथाएँ, वेदों तथा शास्त्रों द्वारा बोले वाक्य ही प्रतीत होते हैं। धर्म ही उसको भाग्यवादी बना कर विषम परिस्थितियों में भी हारने नहीं देता। भाग्य को दोष देकर फिर वह कर्म में रत हो जाता है।

लोकजीवन में धार्मिक भावना होने के कारण धर्मभीष्टों की भावना भी

सदा बनी रहती है। वह प्रकृति के हर अवयव की पूजा करता है क्योंकि हर समय प्रकृति उसकी सहचरी है। वह वृक्ष, सरिता, सर्प सभी की निष्ठा से पूजा करता है। प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व आकर उसकी इन धार्मिक भावनाओं को जागृत करता रहता है। इन सभी पर्वों के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है। देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार “लोकगीतों का बचपन धर्म की छाया में व्यतीत होता है। अनेक गीत ऐसे मिलेंगे कि जिनका जन्म, पूजा, व्रत, त्यौहार के साथ होता है। लोकजीवन के देवी-देवता, व्रतो, उत्सवों को समझने के लिए लोकजीवन के आदिम काल के विश्वासों की थोड़ी जानकारी आवश्यक है। जो देवता, प्रागैतिहासिक काल के जाने-पहचाने ऐतिहासिक पुरुष है—जैसे राम-कृष्ण, उनसे संबंधित उत्सव तो उनकी स्मृति में मनाये जाते हैं अन्य उत्सवों का सबब मानव के आदिम विश्वासों से है। लोक-विश्वासों के कारण ही अनेक देवताओं के प्रति लोकजन में निष्ठा वर्तमान थी। इस निष्ठा ने ही आगे चल कर शक्ति का रूप ले लिया। उनके लिये नदियाँ पालक तथा ध्वसक दोनों ही थी, इसीलिए वह उनको पूजता था। खडीबोली के लोकगीत इन्हीं धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत होते हैं और इनमें भाग्यवाद की झलक स्पष्ट दीखती है। ससार में मनुष्य की बनाई हुई विषमताओं को भी वह भाग्य का ही कारण समझते हैं।

धार्मिक लोकगीतों में भाग्यवाद का तथा कर्मवाद का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। कभी-कभी तो कर्म और भाग्य दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हो जाते हैं। हिन्दू समाज में कर्मवाद का सिद्धांत अपना प्रबल प्रभुत्व जमाये हुए है। साधारण जनता का इस कर्म में अटल विश्वास है कि जो जैसा करता है वैसा फल पाता है—‘कर्मप्रबान विश्व करि राखा’ तुलसीदास जी की इस चौपाई की प्रतिध्वनि हमें लोकगीतों में मिलती है।

किसी भी देश की सजीवता, समृद्धि और उसके जीवन का ठीक-ठीक अनुमान उसके त्यौहारों और उत्सवों ही से लगाया जाता है। जो देश जितना ही अधिक उत्सव-प्रिय होगा, उतना ही अधिक सुखी और समृद्ध होगा। हमारा देश सदा से अपने उत्सव और त्यौहारों-मेलों के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही उत्सव-प्रियता उसके पूर्व गौरव को सूचित करती है। इस समय हमारा देश पूर्ववत् सुखी और समृद्ध तो नहीं, परन्तु फिर भी यह उत्सव-प्रियता का अवशेष ही है या परम्परा का निभाना ही है। उत्सव को अधिक रोचक और सफल बनाने में लोकगीतों का विशेष हाथ है। इन धार्मिक गीतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं —

१—देवी-देवताओ से सबधित लोकगीत ।

२—व्रत-त्योहार सबधी तथा दैनिक फुटकर गीत ।

३—जोगियो के गीत ।

देवी-देवताओ से सबधित लोकगीत—

इस प्रकार के लोकगीतो मे अनेक देवताओ की उपासना का उल्लेख मिलता है । राम, कृष्ण, शिव, देवी, माता, साँझी आदि सभी गीतो पर हम दृष्टिपात करेगे । प्रत्येक हिन्दू के घर मे तथा मन्दिर के मुखद्वार पर गणेशजी की प्रतिमा अवश्य रहती है । कोई भी कार्य आरम्भ करते समय गणेश-स्तुति की जाती है जो इस प्रकार है—

सिमरु गौरी पुत्र गनेस

नाम लिये से सकट सब भागे ...

तथा इसी प्रकार—

सिमरत कटे है कलेस

माता तुम्हारी पारबती पिता तुम्हारे महेस

धूपदीप पकवान मिठाई भोग लगाऊ हमेस

सिमरु गौरी पुत्र गनेस ।

कुछ देवी-देवता सबधी गीत, शीतला माता, दुर्गा आदि से सबधित, राम-कृष्ण, शिव, हनुमान, भैरौ से सबधित गीत तथा विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले दई-देवता के गीत भी मिलते हैं जिनमे इनकी आराधना की जाती है ।

स्त्रियो की श्रद्धा जितनी देवियों के प्रति है, उतनी देवताओ के प्रति नहीं । जब घर मे कोई बीमार होता है, कोई अपशकुन होता है अथवा कोई आपत्ति आती है तो उस समय वह भगवती देवी, दुर्गा या काली की प्रार्थना करती है । शीतलादेवी इन देवियो मे प्रधान है । माली, शीतलादेवी का परम भक्त माना जाता है, अतएव उनकी कृपा के लिए उसकी सहायता आवश्यक होती है । देवी के गीत दो भागो मे विभक्त किये जा सकते हैं—प्रथम, वह जो स्त्रियाँ घर मे या जागरण मे गाती है । यह स्फुट भी होते है तथा प्रबध भी, दूसरे, भगत कहलाते है ।

स्फुट मे देवी की प्रार्थना, उसकी स्तुति, उसके पराक्रम का उल्लेख, उसके स्थान तथा शोभा का वर्णन, जात की तैयारी, तथा यात्रियो की कठिनाइयो का वर्णन मिलता है । यह गीत स्त्रियाँ विशेषरूप से चैत्र या क्वार मे गाती है । चैत्र तथा क्वार मास के शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा से लेकर नवमी तक व्रत रखे जाते है ।

इस प्रदेश में अनेको देवियों की पूजा होती है जिनमें सात मुख्य हैं और शीतलादेवी उनमें प्रमुख तथा उल्लेखनीय है ।

शीतला देवी—विज्ञान चेचक को एक रोग मानता है परन्तु लोकविश्वास में उसे शीतलादेवी कहा जाता है । इतने भयंकर रोग का जिसमें शारीरिक तपन की चरम सीमा होती है, उसका नाम शीतला सुनकर आश्चर्य होता है । डॉक्टर तारापुरवाला के मत से, मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह नीच और भयंकर वस्तु को किसी सुंदर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है । इस भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं । चेचक के प्रकोप के साथ उनकी पूजा भी होती है । साधारण अवस्था में स्त्रियाँ उनका बहुत आदर करती हैं । देवी के गीत अनन्त हैं, उनमें से एक-दो का उदाहरण हम परिशिष्ट में दे रहे हैं । बासीड़ा पूजने का भी एक विशेष गीत है ।^१

लडकी व लडके के विवाह के अवसर पर जो लोकगीत गाये जाते हैं, उनमें देवी-देवताओं के आवाहन से संबंधित गीत मिलते हैं । हमारा समाज धर्मभीरु है, इसी से वह अनिष्ट की आशंका से, पहिले से ही बचाव करता है, जिस प्रकार कि किसी भी सक्रामक रोग के पहिले उसके बचाव का उपाय कर लेते हैं । आधुनिक-युग तो बचाव में बहुत विश्वास करता है पर स्त्रियाँ तो पहिले से ही उसके निवारण का उपाय कर देती थीं । इसीलिए किसी भी मंगल कार्य के आरंभ में मंगलाचरण होता है जिसमें सभी देवी-देवताओं को विवाह में आमंत्रित करते हैं । लगन लिखे जाने से पहिले स्त्रियाँ देवी-देवताओं के जो गीत गाती हैं, उन गीतों में इन सब बातों का उल्लेख रहता है । इन गीतों में भूमियाँ, मीरा, जौहर, सेती, चावण, बूडे बाबा आदि लोक देवताओं से संबंधित गीत हैं ।

विवाह के अवसर पर पूजित देवी-देवताओं को राजसी अथवा तामसी प्रवृत्ति का माना जा सकता है । पूजा के इस आनुष्ठानिक आयोजन में टोने-टोटके का बाहुल्य है जो स्पष्टतः व्यक्त करता है कि सामान्य नारी-मानस की स्थिति आदिम युग की मानवीय सभ्यता से अधिक विकसित नहीं हो पाई । मानवतत्त्वसृष्टि के विभिन्न पदार्थों में देवत्व की कल्पना कर भय और विस्मय की भावना से उपासना एवं प्रार्थना करने की प्रवृत्ति असभ्य और अर्ध-सभ्य जातियों की देन है । बहुदेववाद की भावना निम्नतर स्तर के लोगों में विभिन्न रूप से मिलती है । ऐसे लोगों में अधविश्वास के कारण देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जादू-टोने एवं अनेक

१. एक विशेष माता का त्योहार—जिसमें देवी की पूजा ठंडे खाने से, वासी खाने से की जाती है । विशेष वस्तुएँ हैं—मीठा चावल, गुड़, पुये आदि ।

विभिन्न अभिचारो का प्रचलन हो जाता है। वह प्रकृति में, पाषाण में, जल में, वायु में, मनुष्यों द्वारा निर्मित चित्र एवं मूर्तियों में—दूसरे वृक्ष, पशु, पक्षी और मनुष्य के सारे चेतन पदार्थों में देवी-देवता के अस्तित्व को मानते हैं। प्रेत और आसुरोशक्ति से मनुष्य सदा ही भयभीत होता है। अपनी सुरक्षा के लिए अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयास किया करता है। इस चेष्टा में अज्ञान और विस्मय भाव दोनों ही हैं।

भूत-प्रेत एवं अन्य अनिष्टकारी शक्तियों से हट कर मनुष्य ने उन रूपविहीन तत्वों को भी साकारता देकर अपने जीवन को मंगलमय एवं निर्विघ्न बनाने के लिए अनुष्ठान एवं लौकिक विधियों की रचना की। यहाँ तक कि भयकर रोग भी देवता बन गये। उदाहरण के लिए शीतलादेवी, छोटी माता देवी आदि।

विवाह के मागलिक अवसर पर विघ्न और अनिष्ट को आशका के निवारण की ओर अधिक प्रवृत्त होना स्वामाविक ही है। भारतीय परम्परा की सामान्य देवी लक्ष्मी और सरस्वती, इस पर मुला दो जाती हैं। केवल शक्ति की परिचायक विभिन्न नामधारिणी देवियों का अर्चन होता है। रतजगे में मातृदेवी, कुलदेवी, दुर्गा, चामुंडा आदि का आह्वान और पूजन करते हैं।

पूर्वज-पूजा—पितर-पौर, सती, शीतला, भैरो, मृतसौत, कुलदेवी, गीत के स्वरूप में विद्यमान हैं तथा अम्बा, माता, काली, कराली, दुर्गा का पूजन करते हैं। देवी को प्रसन्न करने के लिए रात्रि-जागरण भी किया जाता है। प्रसाधन बहुत सरल होते हैं, लौ जलती है। अखड़ जोत जलाई जाती है जिसका तात्पर्य है सौभाग्य अखड़ रहने की कामना करना। रात्रि जागरण होता है तथा गीतो का क्रम चलता है।

देवी के गीत जो विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं, उनका वर्ण्य-विषय नख-शिख वर्णन होता है। अनन्त सौंदर्यमयी नारी रूप किसी स्वर्णकार की कृति है। स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर पूर्वजों को निमंत्रण देती हैं व श्रद्धा के साथ उनका स्मरण करती हैं। वह सौत तक से भी भयभीत रहती हैं, अतः वह सौत का भी पूजन करती हैं। शीतला की पूजा परिवार में वैभव, वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति है। वह भैरो को पूजा भी करती हैं।

इस संपूर्ण पूजा-आराधना में तथा टोने-टोटके में सब देवी-देवताओं का आवाहन करना, किसी को रुष्ट न करने व सब का सहयोग पाने की भावना निहित रहती है।

जनपदों में पंचदेवी की उपासना को घरेलू रूप में लिया गया है। स्वास्तिक, सूर्य-पूजा का चिह्न है। विवाह में कोई मागलिक कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें

पहिले हल्दी या रौली से स्वस्तिक चिह्न न बनाया जाता हो।

धार्मिक गीता एवं व्रतो में देवी-देवताओं आदिके गीत हैं। स्त्रियों के जीवन का तो यह विशेष अंग है। पहले जब स्त्रियों का क्षेत्र घर तक ही सीमित था, व्रतो-त्यौहारों आदि का विशेष महत्व इसी कारण था कि वे जीवन में इनके द्वारा कर्मण्यता लाती थीं तथा इसी के कारण घर में एक उल्लासपूर्ण और व्यस्त वातावरण रहता था। व्रतो का विधान आत्म-शुद्धि के उद्देश्य का भी द्योतक है।

व्रतो, अनुष्ठानों आदि का स्त्री-लोकसमाज में विशेष महत्व है। वह इनको अधिकतर पति, पुत्र या भाई की मंगलकामना के लिये ही करती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह उपयोगी है। इसके अतिरिक्त व्रत में खाई जाने वाली भिन्न-भिन्न वस्तुएँ भी जिनका चुनाव मौसम के अनुसार ही निर्धारित किया गया होगा, गुणकारी होती है। व्रता आदि में जो वस्तुएँ दान की जाती हैं, वह भी निरर्थक नहीं होती। व्रतो के करने में जीवन में पवित्रता, सयम, नियम आदि गुणों का समावेश होता है। अपनी जिह्वा पर भी नियंत्रण हो जाता है। अतः हर दृष्टि से व्रतो से लाभ ही होता है। उनके कारण दिनचर्या में कुछ विभिन्नता भी आ जाती है। इन्हीं व्रतो के विधिपूर्वक करने से अनायास ही उनका भावपक्ष और कलापक्ष-निखर आता है और जीवन में अकर्मण्यता और नीरसता भी नहीं आने पाती। कुछ व्रता का तो सामाजिक महत्व है जिनको सामूहिक रूप से मनाने की प्रथा प्रचलित है। जैसे—श्रावण में तीजों के दिन झूलने की प्रथा सामूहिक रूप से की जाती है। इस दिन स्त्रियाँ आपस में समी के घर जाती हैं तथा एक ही स्थान पर इकट्ठी होकर झूला झूलती हैं। उस समय गाये जाने वाले गीत सामाजिकता का पाठ भी पढ़ाते हैं, साथ ही आहार-व्यवहार में भी सुधार करते हैं। इनमें ऐतिहासिक तथ्य भी मिलते हैं जिनसे पुरातन आदर्शों का भास होता है और पुरातनप्रियता का पता चलता है। ये गीत प्रायः भजन ही होते हैं जिनका निर्माण समयानुसार भिन्न-भिन्न अवसरों पर होता है।

व्रत-त्यौहारों में 'साँझी' का बहुत महत्व है। साँझी, कुमारी कन्याओं का एक आनुष्ठानिक त्यौहार है। राजस्थान, पंजाब और ब्रज में कुछ हेर-फेर के साथ वही रूप मिलता है।

आश्विन मास की प्रतिपदा से कुंवारी कन्याएँ साँझी का व्रत आरम्भ करती हैं जो पितृ-पक्ष में नौ दिन तक चलता है। कई स्थानों पर प्रतिदिन सध्या को घर के बाहर द्वार के किसी भी ओर थोड़ी सी ऊँचाई पर गोबर से भूमि लीप कर सूर्यास्त के पहिले साँझी की आरती के हेतु साँझी तैयार की जाती है। साँझी के श्रृंगार के हेतु अपरिमित सामग्री एकत्रित की जाती है।

साँझी, दीवार के कुछ भाग को लीप कर उस पर गोबर की ही रेखाओं द्वारा अकित का जाने वालो आकृतियों को कहते है । गोबर की इन रेखाओं पर गुलाब, गुलबॉस, कनेर आदि की पखुरियाँ चिपकाकर उन्हे सजाया जाता है जिससे आकृतियों मे रंगो का सामजस्य पैदा हो जाता है । आश्विन मास के सपूर्ण पितृपक्ष मे ये आकृतियाँ प्रतिदिन क्रमश मिटाकर नयी बनाई जाती है। इस समय प्रकृति भी पूर्णरूप से प्रफुल्लित होती है और सौंदर्यमयी होती है । वह साँझो के श्रृंगारार्थ मिन्न-मिन्न प्रकार के उपकरण एकत्र कर लेती है । इस प्रकार साँझी के आकृतिगत पक्ष के द्वारा कुंवारी कन्याओं को आवश्यक रूप से रेखाकन एव रंग मिश्रण का ज्ञान उपलब्ध होता है । इन्ही आकृतियों के सम्मुख खडी होकर वे प्रतिदिन मन्त्रा को साँझी के गीता द्वारा पूजन करती है, । नैवेद्य चढाती है और उसे बाँट कर खाती है ।

साँझी की आकृतियों को प्रतीक मान कर पूजन किया जाता है । साँझी की आकृतियाँ मिन्न-मिन्न जातियों, सस्कारो और भावनाओ से प्रभावित होती है । ये बालिकाओं के मानसिक विकास और स्वर को प्रकट करती हुई प्रागैतिहासिक मानव के पश्चात् विकसित कृषि-सभ्यता के सकेतो और प्रतीक चिह्नों से अपना सबब भी स्थापित करती है । अकन की प्रेरणा मनुष्य मे स्वामाविक है, अवविश्वास, प्रयाएँ, और धार्मिक रीति-रिवाजो को चित्राकन की प्रवृत्ति से रूप प्राप्त हुआ और कुछ आकृतियाँ आनुष्ठानिक हो गयी । (चित्र देखे)

साँझी की आकृतियों से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि कुंवारी कन्याएँ अपने दैनिक जीवन को उपयोगी वस्तुओ का ही-अकन करती है जैसे, चाँद सूरज, तारे, चिडियाये, नाई, नायन, चाटवाला, घोबी आदि । साँझी का आनुष्ठानिक पक्ष बालिकाओं के भावी जीवन की सौभाग्य-कामना से सबधित है । भावी मंगलकामना के लिए वह आराधना करती हैं, यह सौभाग्य का आदर्श प्रतीक है । साँझी के गीतो का स्थूल वर्गीकरण इस प्रकार है—आरती के गीत, साँझी की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के गीत, परिचयात्मक गीत, साँझी का रूप वर्णन तथा साझी के विदा के गीत ।

साँझी के गीतो की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है—सामूहिक गान, लय, लघुचरण द्रुतगामी, सवादात्मकता, लघुकथा सूत्र टेकपूर्ण तथा दोहरा-दोहरा कर गाना । इनमे आदर्श के प्रति श्रद्धा होती है । विनोद गौण होता है और कुतुहल रस-प्रधान ।

व्रत-त्यौहार कुछ इस प्रकार के भी होते है जिनकी अवधि एक दिन न होकर सपूर्ण मास तक होती है, उदाहरण के लिए कार्तिक, माघ, बैसाख मास तथा

पु षोत्तम मास जिसे 'मलमास' भी कहते हैं। इन पूरे महीनो में विशेष प्रकार का यम, नियम, स्नान, पूजन, खान-पान का विधान है और उसो का माहात्म्य होता है। कुरु प्रदेश में गंगा का ही विशेष महत्व है। कार्तिक मास में या इन अन्य महीनो में महिलाएँ मामूहिक रूप से गंगा-स्नान करने जाती हैं—सबसे ४ बजे ही—तारो की 'छड़ियाँ' में। उस समय जाने में उनको सरलता रहती है, अवकाश होता है तथा उस समय जल भी गर्म रहता है। फिर सूर्य की किरणों के साथ-साथ जल ठंडा होता जाता है। गंगा-स्नान करने जाते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, वह प्रभाती कहलाती हैं—

राम नाम लीजो मेरी सग की सहेली,
मेरी बैहण भैणली राम चरण छूती

तथा—

कही मिलते राम चरण छूती,
मै तो बागो गई थी वहाँ भी ना मिले...

इन गीतों में भगवान सबधी, राम-कृष्ण सबधी भजन होते हैं। उदाहरण के लिए—

जागो प्यारे मोहन, अब तुम जागो
भोर भई चिड़िया चोचाई, नन्ददुलारे
काले काले कागा बोले, पछी बोलन लागे

'प्रभाती' भजनो में स्त्रियाँ केवल करुण और शृंगार के ही गीत नहीं गाती अपितु समय-समय पर भक्ति से ओतप्रोत गीत भी गाती हैं जहाँ उनका हृदय, शृंगार तथा करुणा से भरा रहता है। वही उसमें भक्ति की भी कुछ कम मात्रा नहीं रहती। इन गीतों में भक्ति की प्रधानता रहती है। कहीं-कहीं पर इनमें मनुष्य जीवन की नश्वरता का वर्णन रहता है, तो कहीं भगवान के बाल रूप का सुन्दर चित्रण। इन गीतों में रहस्यवाद की गंभीर व्यंजना भी मिलती है। इन्हीं में कुछ गीत मूरदास और तुलसीदास आदि कवियों के भी अपभ्रंश रूप में उपलब्ध होते हैं।

कार्तिक मास में नहाने के समय भी स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं—

उठ मिल लो राम भरत आये
भूरी सी हथिनी पैं जरद अम्बरी ऊपर चवर डुलत आये
राह रघुवर अगन लिपाया
मोतिधन चौक पुरत आये
बहिया पसार मिले चारो भइया
नैनो से नीर ढलत आये ।

यह दोहा नहते समय या किसी भी नदी में स्नान करते समय कहती है—

गंगा बड़ी गोदावरी तीरथ बड़ा प्रयाग ।

महिमा बड़ी समन्द की पाप कटे हरद्वार ॥

ऊपर के दोहे के बाद कहती है 'जल मिलै सोहर मिलै' और बाद में कहती है—

धोऊ सीस मिलै जगदीस

धोऊ नैन मिलै सुख चैन

धोऊ कान मिलै भगवान

धोऊ कठ मिलै बैकुंठ

धोऊ काया मिलै माया

प्रभाती के समान ही सध्या को भी दोनों समय मिलने पर वह गीत गाती है जिन्हें सही साँझ के गीत कहती है। इनमें प्रभात व सध्या के समय का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन होता है। इनका वर्ण्य-विषय प्रभाती के समान ही हरि-गुण-गान या प्रकृति-वर्णन होता है—

दोनों बखत मिलै हर का गुन गाय लौ रे

यो ससार ओस का मोती धूप पड़े ढल जाय रे

गंगास्नान आदि के अतिरिक्त वनस्पति पूजने का बहुत महत्व है। इनमें पीपल तथा तुलसी का विशेष महत्व है। कार्तिक मास में तो तुलसी-पूजन का विशेष महत्व है। पूरे महीने तुलसी के पाँवे पर दीपक चढ़ाते हैं और आरती करते हैं तथा देव-उठानी एकादशी को या किसी भी दिन 'तुलसी-विवाह' भी करते हैं। तुलसी का घर-घर में बहुत महत्व होता है। तुलसी पूजन के अवसर पर स्त्रियाँ यह दोहा कहती हैं तथा आरती करती हैं—

तुलसी रानी नमो नमो

हर की पटरानी नमो नमो

तथा—

मैं तुमसे बूझू तुलसा दे राणी

मधुवर्ण किस गुण पाये

तथा—

तुलसा माता तू मुझी की दाता

दिवला सीधू मैं तेरा, कर निस्तारा मेरा

इस प्रकार वनस्पति पूजन में तुलसी और पीपल का विशेष महत्व है।

जोगियों के गीत—जोगियों, और भिखारियों के गीत लोकसाहित्य का एक

महत्वपूर्ण अंग है। इनके द्वारा लोक को सदा ही उद्बोधन प्राप्त होता रहा है। मुसलमान मिखारी साई कहलते हैं और हिन्दू मिखारी जोगी। यहा पर जोगियों के गीत भी इसी के अतर्गत आ जाते हैं।

मिखारियों के गीतों का वर्ण्य-विषय साधारणतः चेतावनी सबधी होता है कि किस प्रकार माया-मोह से लिप्त जीव को ससार की नश्वरता का उपदेश देना चाहिये। इसमें काया, माया की अस्थिरता का तथा साँसारिक सबबों की व्यर्थता का कथन होता है।

यह ब्रह्म जीव सबध पर प्रकाश डालते हुए निस्सग जीवन व्यतीत करने के आदेश अथवा सत्य, परोपकारादि गुणों से परिपूर्ण स्वच्छद जीवन व्यतीत करने का उपदेश देते हैं।

यह दया-धर्म प्रेरक होते हैं और प्राचीन सत्पुरुषों की जीवन-गाथा तथा हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रह्लाद, हसन-हुसैन आदि की लोक-गाथाएँ भी सुनाते हैं। इनके गीतों में कुछ मनोरंजक स्थल भी हैं जो निम्नस्तर के हैं। हिन्दू मिखारियों पर सिनेमा का प्रभाव भी पड़ा है तथा कबीर और गोरखपथी साधुओं का भी प्रचुर मात्रा में प्रभाव है। इनकी भाषा मिली-जुली होती है। मुसलमान फकीर तो प्रायः जुमेरात व जुम्मे को ही अधिक दिखायी देते हैं पर हिन्दू तो सभी दिन भीख माँगते दिखायी पड़ते हैं। वह कहते हैं—

“करो रे मन वा दिन की तदवीर”

मुसलमान फकीर कहता है—

“अल्ला की प्यारी दुनिया, दम के दीदार”

सासारिक ऐश्वर्य, धन, माल, जीव को पतित बनाने वाले हैं इसलिए इनका उपभोग सोच-विचार कर करना चाहिये। दान-भोग और नाश लक्ष्मी की यही तीन ही गति हैं। इस लोक में दान के त्वरित फल का वर्णन गंगा घाट पर ‘बिछुए’ बजा कर माँगने वाले ‘गंगापुत्र’ नामक मिखारी किया करते हैं—

हो तेरी पडौसन कर रहमन

तू क्या देखे मेरी जजमान—हर गंगा

छल्ला देवे लल्ला पावे

पेठा दे, बेटा ले जाय—हर गंगा

जोगी अथवा योगी नाम के संप्रदाय के जन्मदाता सत गोरखनाथ जी थे। भरथरी व नादिया जोगी प्रायः कस्बों और नगरों में भीख माँगते दिखायी देते हैं। भरथरी जोगी गाकर माँगते हैं। वह प्रायः भरथरी गोपीचन्द और महादेव के गीत गाते हैं। इसके अतिरिक्त लोग श्रृंगार तथा वीररस भी गाते हैं जिनमें

हीर-राज्ञा, कवर निहालदे, अमरसिंह राठौर, दयाराम गूजर आदि की कीर्ति-कथाएँ हैं। जोगियो के गीतो को इस प्रदेश में साका और पवाडे कहते हैं। 'साका' असाधारण कार्य है और 'पवाडे' लोकजीवन की वस्तु है।

वर्णन-सौंदर्य, कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं का विस्तार, हिन्दू सस्कृति के शौर्य चिह्न तथा हठयोगी के सकेत साको में है। मोरी तथा दरवाजो के कथन में प्रतीकात्मकता का आश्रय ग्रहण कर सूफी और योगियो की साधना-पद्धति की उत्तमता से अभिव्यजना को गयी है। नारी के शकाकुल स्वभाव तथा भाई-बहन के स्नेह का जो गम्भीर चित्रण लोकगीतो में होता है, वह अनुपम है। इनमें अतीत बोलता है। आज कल जोगी लोग सेढू और फूलसिंह की प्रकाशित रचनाएँ गाते हैं। इनमें मुख्य यह है— अमरसिंह का नौमहुला, गोराबादल, राजा रत्नसेन, जयमल फते, जगदेव पमार, जसवत रजपूत का साका।

जोगियो के गीतो के मुख्य दो राग होते हैं—बैवेहुए राग, बेल के राग। 'जाहर का साका,' नामक गीत में दोनों ही प्रकार के राग हैं। एक रामचन्दर नाम के जोगी के मुख से सुना सुदरबाई के सबध में है। वह 'दाह' गाँव, जिला मेरठ का रहने वाला है और आयु ५० वर्ष है। वैसे यह गीत बुल्ली साँगी का गीत है, इन गीतो को जोगी सारगी पर गाते हैं।

जोगी प्रायः वैराग्य सबधी भजन गाते हैं। जोगी की वेशभूषा गाने की शब्दावली तथा लय, सभी से श्रोता के सम्मुख एक विशेष प्रकार का वातावरण उपस्थित हो जाता है, और उसमें भी शब्द और ध्वनि से प्रभावित होकर कुछ समय विशेष के लिए वैराग्य की भावनाएँ जागृत होने लगी हैं, जोगियो के गीतो का गृहस्थजीवन में समय-समय पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है, इनके उदाहरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।

लोकगीतो में पूरा हिन्दू दर्शन वर्णित है। इनमें प्रभु की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता का भास होता है। मनुष्य के कर्मों का महत्व व उनके परिणामों पर भी प्रकाश पड़ता है। जोगियो के गीतो में प्रायः निर्गुन पद भी मिलते हैं जिनमें ज्ञान और वैराग्य होता है। पहले तो जोगी बारात में भी जाते थे। प्रातः काल क़क़ारों की और जोगियो की सदाएँ व दुआएँ सुन पड़ती हैं और मनुष्य सहसा सचेत हो उठता है। आत्मनिरीक्षण तथा अनुकूल व्यवहार की इससे बलवती प्रेरणा मनुष्य को और कहीं कभी नहीं मिलती। भिखारियों की यह सस्था जीवन में नियमित-व्यवहार और शुद्धाचार की नियामिका रही है।

भिखारियों के पदों को हम निर्गुन पदों में रख सकते हैं। निर्गुन पद भक्ति-भावना से ओतप्रोत होते हैं। इनमें प्रधानतया ससार की नश्वरता का वर्णन

रहता है। निर्गुण का विषय तो भजनो में मिलता है, पर उसकी एक विशेष-लय होती है, जो बैरागिया कहलाती है। यह बहुत मधुर होती है। इन्हें सुनकर श्रोतागण आनन्द-विभोर हो जाते हैं। निर्गुण गाने वाले कबीर के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित हैं और इनको लोकजीवन से भी जोड़ दिया गया है। इनमें भक्तिभावना का भी उल्लेख हुआ है। ईश्वर को प्रियतम मान कर माधुर्यभाव की भक्ति-परम्परा, सतों में प्राचीनकाल से ही विद्यमान है। इन निर्गुण गीतों का प्रधान विषय ईश्वर पर विश्वास और ससार की निस्सारता का वर्णन करना है।

लोकगीतों में कहीं-कहीं पर रहस्यवादी भाव भी मिलते हैं। भक्तिभाव में अपनेपन को भूल कर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है, तब जिस कविता का उद्गम होता है वह काव्यकला और कविता सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण होता है। यद्यपि रहस्यवाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक ही होते हैं पर इनमें अभिव्यक्ति पारलौकिक ही होती है। इनमें रहस्यवाद तथा बैराग्य भी छिपा होता है।

ऋतु सबधी लोकगीत—

भारत कृषिप्रधान देश है। जिसमें ऋतुओं का विशेष स्थान है। यहाँ का लोकजीवन इसी पर आश्रित है। अतः उनके मनोरंजन रीति-रिवाज, कार्य-कलाप भी इसी के अनुसार विभाजित हैं। भारत में चार ऋतुएँ प्रचलित हैं— शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु। इसमें भी जहाँ तक लोक गीतों का सबंध है, वसन्त—अर्थात् होली सबधी तथा वर्षाऋतु सबधी सावन के गीत ही अधिक उपलब्ध हैं। ये अवसर क्रमशः फाल्गुन-चैत्र मास तथा सावन-भादों में ही आते हैं। इनमें शृंगार व करुणा का ही पुट अधिक है। यहाँ पर हम पहले श्रावण सबधी गीतों का उल्लेख व अध्ययन करेंगे।

सावन के गीत—सावन का महीना मनभावना कहलाता है अतः इसे गीतों का महीना भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। ऋतु-गीत वैसे तो सभी ऋतुओं में मिलते हैं परन्तु खडीबोली-प्रदेश में सर्वोपयोगी और सर्व सुंदर ऋतु होने के कारण वर्षा ऋतु के गीत बहुत हैं जो बहुत ही मनोहारी हैं। अन्य ऋतुओं से सबंधित गीत बहुत कम हैं। श्रावण का महीना आते ही खडीबोली प्रदेश के जन-जन में संगीत मुखर हो उठता है। वर्षा हो चुकी होती है। चारों ओर हरियाली छा जाती है, प्रकृति संगीतमय हो जाती है तथा संपूर्ण वातावरण आह्लादकारी हो उठता है। स्त्रियाँ इस वातावरण से प्रभावित हो कर जीवन के प्रति सजग हो उठती हैं और उल्लासमग्न होकर प्रकृति को सहयोग देती हैं और घर-घर में तथा

बागो मे पेड़ो को डालियो पर रग-विरगे कपडे, विशेषतया हरी साडिया, (प्रकृति से मेल मिलाने के लिए) पहन कर झूलती है और प्रकृति के साथ आत्मसात् हो जाती है—यह दृश्य बहुत ही सुखदायक और आकर्षक होता है। देखनेवालो का मन भी उस दृश्य से आह्लादित होकर उसमे भाग लेने को लालायित हो उठता है। प्रतिदिन एक-न-एक नये गीत और नये-नये स्वर इस मास मे सुनने को मिलते है। विविध भावो का उद्वेलन झूले के दोलन के साथ होता है। सावन का झूला उनके अन्तर की प्रसन्नता का प्रतीक बन कर सम्मुख आता है। प्राकृतिक सौंदर्य से आत्मविभोर हो कर बाल, युवा, वृद्ध—सभी का हृदय गा उठता है और प्रकृति से तादात्म्य हो जाता है। इनमे प्रकृति वर्णन बहुत उच्चकोटि का मिलता है। विभिन्न ऋतुओ का, ऋतु-परिवर्तन का मन पर क्या प्रभाव पडता है तथा उनके अनुरूप सयोगावस्था और वियोगावस्था मे मन पर क्या-क्या प्रतिक्रियाये होती है, इसका खडीबोली के लोकगीतो मे बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। किस प्रकार मन की भावनाओ तथा परिस्थितियो के कारण सयोगावस्था मे प्रिय लगनेवाली वस्तुएं वियोगावस्था मे अप्रिय और असहनीय हो जाती है तथा मनुष्य अपनी ही भावनाओ के अनुरूप विश्व को किस प्रकार देखता है, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण इन लोकगीतो मे मिलते है।

प्राचीनकाल मे कछ व्यापारी लोगो को अन्य उद्योग-वन्धो के लिए परदेस जाना होता था। अत्यधिक वर्षा के कारण कार्य मे भी कठिनाई होती थी और यातायात मे सुविधाएँ न होने के कारण 'चानुमासि' मे परदेस गए हुए पति अपने घर लौट आते थे। सभी प्रोषित-पतिकाएँ इस महीने मे अपने पति की बाट जोहती थी और उनके आ जाने पर आनन्दमग्न हो जाती थी। कभी सुविधा पाकर वह अपनी माँ के घर भी चली जाती थी। वहाँ माँ की छत्रछाया मे अतीत की सुखद स्मृतियो के साथ तथा अपनी बहन, मामी व चिरपरिचित सखियो के साथ वह एक बार स्वयं को भी भूल जाती थी और उनकी स्वसुराल की सब यातनाएँ, व्यथा, घुटन आदि का एक मौखिक निकास हो जाता था। इस प्रकार हँस-गाकर अपनी व्यथा मुखरित कर वह तन-मन से अपेक्षाकृत स्वस्थ अनुभव करती थी। सावन ऋतु का विशेष पर्व—तीज होता है। इस अवसर पर विवाहिता, सौभाग्यवती तथा कुमारियाँ रग-विरगे वस्त्रो से सुसज्जित होकर एक-दूसरे से मिलती है, घर जाती है तथा एक स्थान पर बाग व घर मे ही पेड के नीचे पडे हुए झूले पर सामूहिक रूप से झूला-समारोह होता है। यह हास्य-उल्लास का अवसर होता है। इससे जीवन मे प्रेरणा मिलती है, उमग उत्साह का यह वातावरण मानसिक जीवन को स्वास्थ्य प्रदान करता प्रतीत होता है।

इन गीतों का मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मन में विषम-परिस्थितियों के तथा अनुभवों के कारण जो अनेकों गुणधियाँ पड़ जाती हैं, उनको किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्ति तथा प्रदर्शन होना ही चाहिए। यह मानसिक रोगों के उपचार में भी सहायक होता है। बालक तो अपनी मानसिक गुणधियों को खेलों द्वारा तथा अन्य हास्य व रुदन के द्वारा निकालते हैं लेकिन वयस्क इतनी सरलता से नहीं निकाल सकते। उनको अन्य साधन भी चाहिये। आधुनिक पढ़े-लिखे लोग जो इन मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित होते हैं, वह अपनी भावनाओं पर बुद्धिमानी का आवरण चढ़ा कर छिपाने में निपुण होते हैं। वह चित्रकारी तथा लेखनकला के द्वारा कुछ अंश में अपनी वास्तविकता को छिपाते हैं तथा अपने मनबहलाव के वाह्य परक्षणिक साधन, सिनेमा, रेस, क्लब आदि में जाकर अपना मनोरंजन करते हैं पर लोकमानव आधुनिक सभ्यता से भी अनभिज्ञ है और न ही उन्हें मनबहलाव के कृत्रिम-साधन उपलब्ध हैं और न उनकी आर्थिक सामर्थ्य है। इनका उपयोग करने की है। वह सहज और सरल हृदय है विशेषतः नारी, का अपने पारिवारिक व्यस्त जीवन में अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों में निरन्तर तपते रहने के कारण मन व शरीर मँज जाता है। यह समय-समय पर लोकगीत व लोककथाओं के द्वारा अपनी व्यथा को व्यक्त करती है। उनको व्यथा के प्रदर्शन का तथा मनोभावा को व्यक्त करने का यही सीधा-सादा माध्यम है जिसके कारण इनकी अधिकतर गुणधियाँ सुलझ जाती हैं। इसके लिए इनको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। आधुनिक सभ्यता में हम कुछ ऐसे रंग गये हैं कि प्रकृति के साथ हम लोग सामंजस्य कर ही नहीं सकते, और न प्राकृतिक आवश्यकता की ओर ही हमारा ध्यान जाता है। कारण, आज का जीवन कुछ ऐसा यत्रवत् हो गया है कि प्रकृति की ओर ध्यान देने का कुछ तो अवसर ही कम मिलता है और कुछ इस ओर से उदासीन भी हो गये हैं। कोई भी वस्तु क्यों न हो हम उसका उसी के अनुरूप मनोरंजन नहीं कर पाते जब कि हमारे ग्रामीण महिलाओं में यद्यपि पहले की अपेक्षा कम है पर अब भी प्रकृति के अनुरूप जीवन का ढालने की क्षमता है व यथासंभव प्रकृति का साथ भी देती है। विशेषतः हॉली व सावन आदि का तो वह मुक्त हृदय से स्वागत करती है। इसका महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि यह मास ग्रीष्म और शिशिर के बाद आते हैं। ये ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ प्रसन्नता और उत्साह के प्रतीक हैं। दुख के बाद सुख अपेक्षाकृत और भी सुखद लगता है। सावन में अनेक दुःखों को गीतों के रूप में बाहर निकालने का सुअवसर मिल जाता है। झूले की पैगों के साथ सभी स्त्रियाँ अपनी अवस्था के अंतर को भूल कर जब अपने-अपने हृदयों को खोलती हैं तो ऐसा

प्रतीत होता है कि यह अवसर उनको प्रकृति ने उनकी शिकायतो के सुनने के लिए ही निश्चित किया है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओ का वर्णन रहता है ।

सावन के गीत भावप्रधान होने के साथ-साथ वर्णनात्मक अधिक है । इनमे चम्पेबाग का उल्लेख मिलता है । 'इंदरराजा' वर्षाऋतु के देवता माने गये है, बिजली बादल तथा उसको गरजन उनके विशेष अस्त्र है, जो लोकनारी के हृदय पर सबसे अधिक प्रभाव डालते है जिनसे डर कर वह अपने प्रियतम के लिए कामना कर उठती है । इसका उदाहरण हमको निम्नलिखित गीत मे दृष्टिगोचर होता है—

“इन्दर राजा बागो मे झूल रहे जो”

रिमझिम मेह, नन्ही-नन्ही बूँदे, पपीहा की पिउ-पिउ, कोयल की कूक, मोर का शोर, घनघोर घटा, बिजली की चमक—सभी हृदय को ही नहीं शरीर को भी थरथरा देते है और पति की कामना के लिये उद्दीपन का कार्य करती है । वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन गीतो मे मन की कूठा, कृत्रिम तथा सामाजिक आदर्शों के भार से उत्पन्न आकुलता, इष्ट वियोग तथा अनिष्ट सयोग अथवा अकस्मात् मिलन या क्रियाविदग्धानायिकाओ की चातुरी (छल-छद्म) और गुप्त अभिसार के वर्णन होते है । इनमे नायिकाओ मे विविध प्रकार स्वकीया, परकीया, सामान्या, ऊँडा, अनूठा, मुग्धा, मध्या, प्रौढा, अभिलषित वासक-सज्जा तथा कलहान्तरिता, सभी के चित्र मिलते है । इनमे स्थानीय व सांस्कृतिक प्रभाव भी है ।

सावन के गीतो मे बारहमासो का विशिष्ट स्थान व महत्व है । बारहमासो मे विशेषत वियोग के गीत है । वियोग के उत्ताप मे वर्ष के विविध महीनो का वियोगिनी के लिए क्या रूप हो जाता है बारहमासा मे अभिव्यक्त होता है । इनमे प्रत्येक ऋतु की विशेषता के साथ ही उसकी विरहिणी पर प्रतिक्रिया भी प्रकट की जाती है । साहित्य मे जो षट्ऋतु का वर्णन है, वही लोककाव्य मे बारहमासा माना जाता है ।

सावन के गीतो मे प्रकृति से सामजस्य स्थापित किया गया है । गीतो मे बिजली, बादल, पुरवइया आदि को संबोधित किया गया है, जो इस बात का द्योतक है कि नारी उनसे साहचर्य की भावना का अनुभव करती है । राधा, कृष्ण, ब्रज के गोप, यह सब लोकनारी के अपने ही जीवन से संबधित है और जो कुछ भी उनके जीवन मे घटता है उससे वह सादृश्य स्थापित कर लेती है । इसमे शृंगार और करुणा, इन्ही दो रसो की प्रधानता मिलती है ।

इन अधिकांश गीतो का आधार प्रेम ही होता है और घटनास्थल बाग या पन-घट होता है । पशु-पक्षी भी इस ऋतु मे मिलन तथा विरह की भावना को और

अधिक उत्तेजित करते हैं। बारहमासा आसाढ मास के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इनके वर्ण्य-विषय में वर्ष भर के प्रत्येक माह के विशेष त्योहारों का महत्व मिलता है। प्रत्येक माह में प्रिय की अनुपस्थिति कितनी दुःखदायी होती है, इसका भी वर्णनात्मक उल्लेख बारहमासों में पर्याप्त मिलता है। विशेषतया सावन-मास में प्रिय का न होना असहनीय हो उठता है। सावन में प्रिय की अनुपस्थिति से विरह चरमसीमा पर पहुँच जाता है। गत ग्यारह मास से वह जीवन को सारी विषमताएँ इसी आशा पर सहती है पर जब यह आशा भी दुराशा में परिणत हो जाती है तो धैर्य का बाँव टूट जाता है। इसी से गीतों में उल्लेख मिलता है— “बीते है ग्यारह जो मास”। नारी जीवन का, नारी हृदय का, तथा उसकी मनोगत सभी प्रकार की भावनाओं, आशका, भय, क्रोध तथा ईर्ष्या का जितना सर्जीव और स्वभाविक चित्रण हमें ऋतु-गीतों में मिलता है, वह अन्यत्र मिलना कठिन है।

श्रावण के गीतों का सबब विशेषण स्त्रियों से ही है। ‘ये बारहमासे’ नारी जीवन के आस-पास घूमते रहते हैं तथा उससे सबधित होते हैं। इनका केन्द्र नारी जीवन ही होता है। इसमें राम-कृष्ण से सबधित गीत भी हैं। इनका उदाहरण परिशिष्ट में दिया जा रहा है, जिसमें भाई के प्रेम, भावज के तिरस्कार तथा देवर आदि सभी सबधियों के व्यवहार का बहुत ही रोचक वर्णन है। सावन के गीतों में बारहमासों के अतिरिक्त कथागीतों का भी बहुत महत्व है। इनमें ऐतिहासिक महत्व भी होता है जिनमें आल्हा, जाहरपीर, गोपीचन्द, भरथरी, मखन, चन्दना, हसाराव, चन्द्रावल, नर सुलतान, गुग्गापीर, आदि कुछ लोकगाथाओं के रूप में प्रचलित हैं। ये लोककथा-गीत ही परिवर्द्धित होकर लोकगाथा का रूप ले लेते हैं। इस ऋतु की प्रमुख लोकगाथा ‘आल्हा’ है। ‘आल्हा’ में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द के आपस के झगड़ों का विशद वर्णन है। इसमें ‘आल्हा’ तथा उसके भाइयों के वीरतापूर्ण कार्यों का उल्लेख किया गया है। बहुत-सी अलौकिक घटनाएँ इसके अन्तर्गत मिलती हैं जिनमें पशुपक्षियों का भी महत्वपूर्ण योग है तथा दैवीय शक्तियों का भी प्रभाव रहा है। सावन मास में जब हल्की-हल्की फुहार पड़ती है तो लोक की ताल पर ‘आल्हा’ चौपालों तथा अमराइयों में गूँज उठता है। इसमें लोकजन के अवविश्वासों तथा आदर्शों को पूर्णरूप से अभिव्यक्ति मिली है। इसीलिए यह उनकी सबसे अधिक लोकप्रिय गाथा है।

इनमें स्थानीय और सांस्कृतिक प्रभाव भी रहता है। कंवर निहाल, की प्रेम-कथा में लोकलाज और मर्यादा का विचार अतीव प्रभावकारी है। स्त्रियाँ नरवरगढ़ के हाकमा, नर सुलतान और निहालदे की इस प्रेमकथा को भी बड़े उत्साह से

गाती है। स्त्री के लिए प्रेम, जीवन और पुरुष के लिए प्रेम, खिलवाड़ है। नरसुलतान और निहालदे की प्रेमकथा ऐतिहासिक है। इन प्रणयकथाओं में तथा वीरगाथा में स्त्री वीरता, सतीत्व की रक्षा के हेतु आत्म बलिदान तथा प्रिय मिलन के लिए सर्वस्व त्याग करनेको प्रस्तुत रहती है। इस प्रकार नारी-चरित्र की विशिष्टता का उल्लेख इनमें मिलता है। इन प्रेमकथाओं में से कुछ का उल्लेख निम्न रूप में है।

चन्दना—यह बहुत प्राचीन गीत है। चन्दना ऊढा नायिका है। चन्दना अपने पीहर में है। वहाँ पर उसका प्रेम किसी सुनार से हो जाता है। माँ उसे हर तरह से समझाती है कि वह उससे सबव न रखे। चरखा कात कर मन बहलाने का सूझाव देती है पर चन्दना कहती है मुझसे चरखा नहीं काता जाता, कातने से देह में पीड़ा होती है, उँगली और कमर में दर्द होता है। हर तरह से तग आकर माँ ससुराल में समाचार भिजवा कर उसके पति को बुलवाती है। उसका पति ससुराल में ले जाने के लिए आता है, वह पहले चन्दना को कुछ नहीं कहता। रात को खाना खा कर सो जाता है, बहाना बनाता है, पर वास्तव में जगता रहता है। पति को सोता हुआ देख कर उसकी स्त्री सुनार के यहाँ उससे विदा लेने जाती है। रात में पति चुपचाप उठकर उसका पीछा करता है तथा सब कुछ अपनी आँखों से देख कर स्थिति के गाम्भीर्य को समझता है। पर जानबूझ कर यह भेद किसी से स्पष्ट नहीं करता और अगले दिन उसको विदा कराकर ले चलता है, मार्ग में वह उससे बदला लेता है और उसकी हत्या कर देता है। इस प्रकार अनियमित सबधों का परिणाम भयकर होना स्वाभाविक ही है। यही चन्दना को देखता पड़ा। यह नारी जाति का कलक है। इसको लोक समाज में सत्य घटना समझा जाता है।

चन्द्रावली—यह ऐतिहासिक कथा है। जनश्रुति बतलाती है कि चन्द्रावली मेरठ के ही किसी गाँव की थी। वह गीत के कथनानुसार किसी कामुक युवक के चंगुल में फँस गयी और अनेक उपाय करने पर भी उनसे वह छूट न सकी। अंत में वह अपने सतीत्व की रक्षा के हेतु तथा दोनों कुलों की लाज रखने के लिए आग लगाकर आत्महत्या कर लेती है। यह बहुत ही प्रसिद्ध लोककथा है। इससे मुगलकालीन अत्याचारों का ज्ञान होता है तथा स्त्री के चरित्र की महत्ता का परिचय मिलता है। इससे उस युग की स्त्रियों के मनोबल तथा उनके चारित्रिक व आत्मिक बल का उदाहरण मिलता है।

निहालदे—यह भी सावन का बहुत प्रसिद्ध गीत है। निहालदे एक बहुत सुंदर लड़की है। माँ के अधिक मना करने पर भी बाग में अपनी सहेलियों के साथ

झूलने चली जाती है। बाग में उसे मुगलो ने घेर लिया। सब सहेलियाँ तो भाग गयीं पर मुगलो ने तिहालदे को पकड़ लिया क्योंकि वही सबसे सुंदर थी। सखियों ने सब समाचार जाकर घर पर कह दिया। भाई, बहन को छुड़ाने आया और मुगल के द्वार पर पहुँच कर उसे मार कर बहिन को छुड़ा लाया।

जाहर-गुगापीर—आत्मा की अनश्वरता में विश्वास उत्पन्न कराने वाला यह गीत लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए उच्चतम बलिदान की कथा है। रानी बाछरू को यही मालूम था कि उसका पुत्र जाहर, काल का ग्रास हो चुका है परन्तु अपनी प्रियतमा सिरियल से अभिसार के लिए वह नित्य आता था, इसलिए उसने अपने को कभी विधवा नहीं माना। किन्तु सावनी तीज को झूले पर बैठी सिरियल का शीश-पट जब चंचल समीर ने उड़ा कर एक ओर कर दिया तो वह सिंदूरी माँग तुरन्त लोकचर्चा का कारण बन गयी। इस पर सास बाछल को लज्जा हुई और सदेह हुआ तथा इसी कारण आवेश भी हुआ। वह बहू पर अविश्वास कर उस पर लाछन लगाती है पर बहू विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती है और कहती है—

तेरे तो लेखे सासु मर जो गया री

चला जो गया री, मेरे वो नित उठ आय पिया

अतः मे बहू सास को प्रमाणित करने के हेतु गुगा का दिखाता है पर वह धरती में समा जाता है अपने कहने के अनुसार—क्योंकि उसने इस मिलन-भेद को गुप्त रखने को कहा था। जाहर ऐतिहासिक पुरुष है पर शेष घटना युग-विश्वास का रंग हो सकती है। इस गीत में लौकिकता और अलौकिकता का अद्भुत मेल है।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक छोटी-बड़ी कथाएँ सावन के गीतों के रूप में लोकसमाज में प्रचलित हैं, जिनमें ढोला-मारू, हसाराव, बनजारा आसिक, धोबी बेटो, लच्छो मखन, मनरा, हसामोरिनी, आदि हैं। इनमें कुछ लौकिक तथा अन्य काल्पनिक तत्व विद्यमान हैं। काल्पनिक कहने से कथा का महत्व कम नहीं होता क्योंकि कथा में जीवन न सही पर जीवन की अनेकरूपता तो विद्यमान रहती ही है।

फुटकर सावन-गीत—सावन के प्रबल-गीतों के अतिरिक्त लघुगीत भी हैं जो भिन्न भिन्न विषय से संबंधित हैं। उनको हम फुटकर गीतों के वर्ग में रख सकते हैं। इनमें वैयक्तिक सुख-दुख, शांति-सर्वश, अनुराग तथा डाह, बड़ी सरलता से ध्वनित हुए हैं। इनमें नारो के दोनों चित्रों का उल्लेख मिलता है। सरल मुग्धाएँ तथा कुटिलता और कलकमरों कुलटाएँ दोनों का ही समान रूप से प्रदर्शन है। यह घरेलू चित्र हैं। यह गीत जीवन की विशाल चित्रपट्टी है। इनमें मानव मनो-

विज्ञान के सुंदर विश्लेषणपूर्ण सजीव उदाहरण मिलते हैं। हम सपत्नी की ईर्ष्या के सबंध में एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

एजी आया है सावन मास, हिंडोले गडाइयो जी महाराज
रेसम झूल बढाय हिंडोले डालियो जी महाराज
एजी झूलेगी छोटी बडी नार, झोटे देंगे हाकमाँ जी
रिमझिम बरसँ है मेह, राजा तो भेजे है आचकू महाराज
एजी चुदडी को घरा उतार, ओढो काली कमली जी महाराज
एजी हुक्के के नौ दस टूक, चिलम चिटकाइये जी महाराज
मैं तो कार्तूगी मोटा-झोटा सूत, बटाऊँ रस्से जेवडे
कस कर बाँधूगी सौक, ढीले बाँधू अपने हाकमा जी महाराज

इन गीतों में प्रायः बनी-बनाई परम्पराएँ ही बार-बार दोहराई जाती हैं। उदाहरण के लिए वन, बाग आदि की उपमान भी सर्वस्वीकृत रहते हैं।

जाय उतारा सेले बड तले,

झूला तो डाला चम्पेबाग में

एक बन लॉघा दूजा बन लॉघा, तीजे में... ..

यहाँ पर हम सावन मास में गाये जाने वाले लडकियों के गीतों का भी अध्ययन करेंगे। जेठ मास के अन्त में उमड़ते बादलों के साथ बालिकाओं का कोमल स्वर झूल की पैंग के सहारे तरंगित हो उठता है। इन गीतों का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है—भाई के प्रति बहिन का सौहार्द्र व सद्भावना, बहिन के प्रति भाई का अनुल स्नेह तथा बलिदान-तत्परता,। सास, ननद और भौजाइयो के मनोमालिन्यपूर्ण व्यवहार तथा वाक्-सघर्ष और नारी का सकुचित मनोविज्ञान तथा माता का कन्या के प्रति करुणापूर्ण मोह सम्मिलित परिवार के पारस्परिक सबंधों का दिग्दर्शन।

यह वर्णनात्मक और सवादात्मक होते हैं। इनमें स्वल्प शब्दों में बाल-मनुहार तथा सहृदयतापूर्ण व्यवहार का सुन्दर अंकन हुआ है। बालकों के नन्हें हृदय में छोटी-छोटी बातों से हर्ष और शोक की लहर उत्पन्न हो जाया करती है और वह अपनी उन भावनाओं को अपने विशिष्ट ढंग से ही व्यक्त कर देते हैं—

कच्ची नीम की निबौली, सावन की रत आई जी

क्यो क्यो मेरे मुन्ना से भइया, (भाइयो का नाम लेकर)

नींदडिया क्यो सोई जी,

तमारी तो भैणा भाजी, सासरे घर झुरमे जी

झुरमे है झुरमण दे बुलचै आवै सावण जी

आधी सी रैन पहर का तडका, बीरन घोड़ा ले चल दिये जी
 उठ उठ री बाहण हठीली खोल्लो चन्दन किवाड जी
 उट्ठी बीर मिलन कू मेरा टुट्या गल का हार जी
 हार तो हैं और भतेरे बीरन कब कब आवें जी
 चुग देगे मेरे चिडी चिडगले, पो देगा मेरा बीरा जी
 थाली मे धर गिरी छुहारे भोजन करने बैठे जी
 परात मे ले रोली रुपया टीका करणे बैठे जी

इन गीतों में चित्रात्मकता और सवादात्मकता का योग बतसुंदर है। भाई के प्रति बहन की कोमल भावनाएँ, सास के प्रति विरसता और माता के दुलार पर अथक विश्वास ध्यान देने योग्य है। इनमें वात्सल्य-रस की अनुपम झाँकी है। कन्याये सावन के गीत भाई को माध्यम बना कर गाती है क्योंकि उनका सबसे अधिक प्यार अपने भाई के प्रति होता है, उसको पाकर वह फूली नहीं समाती।

विवाह के पश्चान् उनके निकटतम पति हो जाता है, उसको पाकर वे प्रसन्न होती हैं और उसके विरह में वे पागल हो जाती हैं। भाई को भी वह भूल नहीं पाती, यदा-कदा उसकी याद मन में शूल जाती है। हम यहाँ एक गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें बालिका का प्रकृति-प्रेम, भाई के प्रति स्नेह तथा सास के प्रति भावना का पता चलता है। प्रकृति-प्रेम को प्रकट करने वाला एक बालिका का गीत इस प्रकार है —

चक्की तले मैंने धनिया बोया, हाँ सहेली धनिया बोया
 धनिये के दो किल्ले फूट्टे हाँ सहेली किल्ले फूट्टे
 किल्लो की मैंने गऊ चराई गऊओ ने मुझे दुध्या दीया
 हाँ सहेली . .

दुध्ने की मैंने खीर पकाई, हाँ सहेली खीर पकाई
 खीर पका मैंने बीरन जिमाये, हाँ सहेली. .
 बीरन ने मुझे चूदरी दी
 चूदरी मेरी झमकें सास मेरी चमकें

सावन के इन गीतों में भाई-बहन के प्रेम का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि मातृ-स्नेह का यह पाठ, कन्याओं के मन में बाल्यकाल ही से रम जाता है और इसी बल तथा पूँजी को लेकर वह ससुराल जाती हैं।

सावन सूना भैया बिन हो गया जी
 किस्कू बनाऊँ लपझप पूरियाँ जी
 किस्कू राधू रस खीर. . सावन. . .

इन सावन के गीतों में, जो बालिकाओं द्वारा गाये जाते हैं—वह उनके अनुसार ही सुबोध-सुगम होते हैं। यह अन्य लम्बे कथा-गीतों से कुछ भिन्न होते हैं तथा यह अति सगीतपूर्ण, लयपूर्ण, लम्बे छंद के होते हैं और भाषा की क्लिष्टता का अभाव रहता है। इनमें प्रेमविलासिनियों के दाँव-पेच वाले वर्णन का अभाव रहता है। इनमें कथा-कथन की प्रवृत्ति का भी अभाव रहता है। इस प्रकार यह अलंकार-विहीन भाषा के तथा साम्यभावों से परिपूर्ण गीत, निश्चय ही सावन के भाई-बहनो के गीतों में महत्व रखते हैं। इस प्रकार सावन के दोनों वर्गों का अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका खड़ी-बोली क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। इनका वर्ण्य-विषय बहुत व्यापक है और यह अपने में पूर्ण है।

होली—भारतवर्ष में हर त्यौहार का सबध किसी देवी-देवता से माना जाता है। इसा प्रकार होली का भी सबध होलिका से है। महिलाएँ फाग से पहिले दिन होली पूजने जाती हैं। माताएँ बच्चे को मेवा, लड्डू, मखाने तथा गोलों का हार पहनाकर होली पूजने ले जाती हैं जहाँ पर होली के लिए ईबन जमा होता है। महिलाएँ भी चीचली के घागे से चारों ओर घूम कर होली पूरती हैं और लोटे से पानी छोटती जाती हैं तथा दीपक जलाकर रोली आदि से पूजा कर बेर चढाती हैं। घर आकर मेवे-मिठाई आदि में से मिनस^१ कर हार बच्चों को खाने के लिए दे देती हैं और बच्चे हारों को तोड़ कर बड़े प्रेम से खाते हैं, फिर मुहूर्त में, ब्राह्मण होली में आग लगते हैं। जिस समय होली में आग लगती है लोग गेहूँ की बाल उसमें भूनते हैं तथा उस भुने हुए गेहूँ की बाल को प्रसाद मान कर खाते हैं और एक-दूसरे को देकर शुभकामना करते हैं व गले मिलते हैं। बाल भूनना, फसल के लिए शुभ होता है।

अगले दिन प्रातः जब होली जल लेती है तो राख को बड़े व बच्चे सब लगाते हैं तथा बच्चों के लिए राख को उठाकर उस घर में रख लिया जाता है। इससे बच्चों पर प्रेतादि का प्रभाव नहीं होता। कहा जाता है उस दिन वातावरण में प्रेतात्माएँ रहती हैं और दूध आदि पीने से वह बालों पर असर कर जाती हैं।

दूसरे दिन से रंग खिलता है। उसमें पुरुष विभिन्न रूप बनाकर झुंड में होली खेलते हैं। उनमें से किसी के सेहरा और मोड़ आदि बाँध कर, फटे कपड़े पहनाकर और गधे पर बिठा कर निकलते हैं। उसको कहा जाता है होली का 'मडुवा'। ये हास्य तथा उल्लास की अभिव्यक्ति का अनोखा साधन होता है। स्त्रियाँ नाच कर

१. लोक शब्द है। मन के सकल्प का अपभ्रंश है, कोई वस्तु मन से किसी के निमित्त सकल्प कर देने को कहते हैं।

होली खेलती है तथा लडकियाँ दूल्हे-दुल्हा बन कर होली खेलने जाती है।

पूस-माघ के जाड़े और शीत की उग्रता के कारण गीतों की ध्वनि मंद पड़ जाती है। माघ में वसंतपंचमी से फिर गीतों की लहर उठती है और फागुन मास में तो वह अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती है। इस महीने में होली और धमार ही अधिक गाये जाते हैं। अनुष्ठान सबधी गीत इस माह में भी कम ही है।

वसन्तागमन पर प्रकृति का उल्लास दर्शनीय होता है। शीत व्यतीत होने पर मानो जगती को नूतन प्राण व नवजीवन प्राप्त हुआ हो, जो वृक्ष लतादि में पुष्प-सौरभ, पक्षियों में कोयल की कूक और मानवों में गीत बन कर फूटता है। खडीबोली प्रदेश की उर्वरामूमि में यही उल्लास खेतों में पीली सरसों तथा वायु की प्रत्येक सिहरन पर थिरकती हुई गेहूँ की बाल के रूप में, पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक सर्वत्र बिखर जाता है।

सावन में जिस प्रकार स्त्रियों के कठों से करुण स्वरलहरी प्रवाहित होकर वातावरण को आर्द्र बनाती हैं, उसी प्रकार फागुन में मनुष्य का कठरव उसके उन्माद को बढाता है। गीत पर गीत फूट पड़ते हैं। रात और दिन होली के गीतों का समा-सा बँधा रहता है। इनका प्रधान वर्ण-विषय राधा-कृष्ण तथा शिव की होली होती है। इनमें शृंगार भावना और क्रीडा भावना ही प्रधान होती है। शिव जी सबधी एक बहुत प्रसिद्ध गीत है—

दुनिया ने बोया मकी बाजरा

भोले ने बो दई भंग

दुनिया ने खाई मकी बाजरा

भोले ने खाई भग

मेरी माँ भोला री

भोले ने पी लई भग

मानव समाज के स्वस्थ जीवन के लिए व्यक्ति की दिनचर्या में विनोद, हास और उल्लास के लिए कुछ क्षण आवश्यक हैं। सहज प्रवृत्तियों का अवरोध मन को स्वच्छ एवं स्वस्थ नहीं रख सकता।

क्षुधा और काम मानव की दो आदिम प्रवृत्तियाँ हैं जिनको, भिन्न नहीं, एक दूसरे की पूरक कहा जा सकता है। इसीलिए भारतीय त्यौहारों में भावनाओं की अभिव्यक्ति का पूर्ण ध्यान रहा है। भारत कृषि-प्रधान देश है। किसान को पूरे मौसम कार्यरत रहना पड़ता है। विदेशों के अनुसार वह दिन के छ घंटे कार्य नहीं करता बल्कि जिस समय उसकी खेती को उसकी आवश्यकता होती है वह तुरंत खेत पर पहुँच जाता है। उसका भाग्य तथा जीवन उसी खेती पर निर्भर करता

है। परन्तु जब त्यौहार आता है तो वह उन्मुक्त होकर गा उठता है, रंगों में डूब जाता है। जीवन की लीक को छोड़ कर वह सपूर्ण जीवन क्षेत्र में दौड़ता है। हर क्षेत्र को छूता है, हर पग पर उसकी जीवन ही झुकता प्रतीत होता है। हर वातावरण तथा उसके प्रभाव को अभिव्यक्त करने के लिए हर मौसम के प्रारम्भ में ऐसे त्यौहारों की अभिव्यजना की गयी है ताकि वह उस मौसम के अनुरूप व्यवहार करके उसका स्वागत कर सके। दोषावली की दीपशिखाएँ शरद् का स्वागत करती हैं तथा आने वाले शरद् के लिए लोकजन को तत्पर कर देती हैं और विश्वास दिलाती हैं कि हम तुम्हारे साथ हैं। होली, गर्मी के आगमन की सूचना देती है। लोकजन रंग में डूब जाता है। रंग से भोग कर वह आने वाली गर्मी के लिए तत्पर हो जाता है।

यौन विचारों ने ही सामाजिक आदर्शों को जन्म दिया। होली कुठाओं को मुक्त करने का अवसर है। मनोवैज्ञानिकों के विचार से आदर्श, वाह्य और कृत्रिम है। इसलिए जब कभी ऊपरी ढाँचा कम हो जाता है तभी सभ्यता के घने वन में खोया मानव अपनी आँखें खोल कर मूल प्रवृत्तियों की ओर दौड़ता है। होली एक ऐसा ही त्यौहार है जो सामाजिक स्वकृति पाकर मानव को उसके अपने वास्तविक रूप में ले आता है। हमारी मर्यादित प्रवृत्तियाँ भी उन्मुक्त हो जाती हैं और आमोद-प्रमोद में निर्व्वीर्य हो जाते हैं तथा मयम और शिष्टाचार की मर्यादा का उल्लंघन भी क्षम्य समझा जाता है।

होली, ऋतु-परिवर्तन का त्यौहार है। शीतकाल की जड़ता के बाद प्रकृति में वसन्त आता है जो ऋतुराज कहलाता है और वह धीरे-धीरे ग्रीष्म में परिवर्तित हो जाता है। प्रकृति अपने इस नए और आकर्षक रूप-रंग से पुरुष को आकर्षित करती है तथा स्वामाविक रूप से काम का उद्रेक होता है। ऋतुराज वसन्त के आगमन से ही स्त्री-पुरुष, बाल-युवा तथा वृद्धों के हृदयों में उल्लास होता है तथा नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है। कालिदास के अनुसार वसन्तोत्सव की आम्न मजरियों के ताराकामदेव का जन्म माना जाता है। वस्तुतः वसन्तपंचमी से फाल्गुन की पूर्णिमा तक वसन्तोत्सव मनाया जाता है। भारतीयों का नव वर्ष भी इसके बाद चैत्र में आरम्भ होता है। फाल्गुन में लोग, गीत या रसिया आदि गाते हैं, इसलिए होली इसके स्वागत हेतु मनायी जाती है। यह पूरा मास हास्य-उल्लास ही में व्यतीत हो जाता है। ये लोक-उल्लास, लोकमानव के मन में नववर्ष के लिए आशावादी दृष्टिकोण की भूमिका होती है।

फाल्गुन के महीने में अपनी इच्छानुसार तथा समाज द्वारा स्वीकृत उच्छृंखल जीवन बिताने की छूट रहती है। फाग के साथ साधारण जनता अपने दैनिक जीवन

की विषमताओं को भी भुला देती है। वह एक बार अतीत और भविष्य को मूल अपने को केवल वर्तमान में ही खो देना चाहती है। यह माह उनके गत ग्यारह माह से अनवरत रूप से चले आते हुए जीवन से परिवर्तित होता है। इन दिनों गाँवों के मुक्त वातावरण में वह बहुत-सी गुप्त दबायी हुई इच्छाओं को प्रकट करते हैं। परिणामस्वरूप उनके मन व शरीर की शिथिलता कम हो जाती है। उनकी बोली में फागुन का नाम 'मस्त महीना' है—

“मस्त महीना फागन का कोई जीवै तो खेले होली”

होली फसल का भी त्यौहार है। इसी से इसका सबसे सृजन के तत्व पर निर्भर करता है। इन अवसरों पर यौन संबंधों की भी छूट रहती है। यही कारण है कि होली पर अश्लीलता के प्रदर्शन दिखायी पड़ते हैं। इस समय की 'बसन्ती बयार' और 'गुलाबी जाड़ा' एक विचित्र मादकता भर देता है। यह दो ऋतुओं के सम्मिश्रण का बड़ा सुहावना समय होता है। प्रकृति के हाथों में इस समय दोनों ही छोर होते हैं—एक को छोड़ने के लिए और दूसरे को पकड़ने के लिए। इस समय एक हल्केपन का अनुभव होता है और मनोरंजन करने की इच्छा होती है। फागुन का मस्त-महीना अवस्था को उपेक्षा कर बड़े-बूढ़ों को भी सरस बना देता है। 'फागुन में जेठ बड़े रसियाँ'—इसका प्रमाण है। कोई स्त्री गा उठती है—

“मत मारे नयन की चोट, होली में मेरे लग जायेगी।”

फागुन में जब 'बड़े बूढ़ों और 'रांड लुगाई' को भी मस्त हो जाती है तो फिर नवयौवना, नवविवाहिता की, जो पीहर में है, अचानक ससुराल का ध्यान आ जाना स्वाभाविक ही है। मादकता के वश मत्त हो उसके लिए प्रिय का विरह असह्य हो जाता है और वह एक परदेसी राहगीर द्वारा अपनी ससुराल में सदेशा भेजती है, जो इस प्रकार होता है—

कच्ची अम्बली गदराई रे फागन में

रांड लुगाई मस्ताई रे फागन में

कहियो रे उस ससुर भले से

चाल्ला ले करवा फागन में—कच्ची. . .

कहियो रे उस बहू भली से,

चार महीने गम खावै रे पीहर में

कहियो रे उस जेठ भले से,

चाल्ला ले करवा फागन में—कच्ची .

बिन मुकलावै ले जा रे फागन में

कहियो रे उस बहू भली से,

दो महीना गम खाजा रे पीहर मे—कच्ची
 कहियो रे उस देवर भले से
 चाल्ला रे करवा फागन मे—कच्ची ..
 कहियो रे उस भाभी भली से
 एक महीना गम खावै रे पीहर मे—कच्ची
 कहियो रे उस राजा भले से
 चाल्ला ले करवा फागन मे
 बिन मुकलाई ले जा रे फागन मे—कच्ची
 कहियो रे उस गोरी भली से
 दूजा खसम कर ले रे पीहर मे
 कच्ची अम्बली गदराई रे

इस गीत मे मनाभावा का पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। फागुन के गीतो मे अधिकतर वर्णन स्त्री-पुरुष के सयोग का ही रहता है। स्त्री पुरुष ऐसे अवसर पर अवस्था का भेद-भाव नहीं देखते और मुक्त हृदय से मनोरंजन करते हैं। इसी कारण इस अवसर पर बहुत सी अश्लील बातें भी कुछ सीमा तक अभ्यस्य रहती हैं। होली खेलने मे सबको छूट रहता है।

“होली है भई बुरा न मानो”

यह अवसर मजाक के लिए उपयुक्त समझा जाता है। समाज द्वारा स्वीकृत मजाकिया रिश्तों मे तो देवर-भाभी और जोजा-साली का ही है पर इस अवसर पर तो राहगीर तक भी मजाक कर बैठते हैं। एक स्त्री कहती है—

“मेरी लाल चुनडी पै रंग बरसै, गुलाल बरसै”

स्त्री वास्तव मे समझ भी नहीं पाती कि उसको रंगने वाला व्यक्ति कौन है और पूछती है—

मुट्ठी भरा गुलाल किन्ने डाला रे
 जिन्ने भी डाला लाला सन्मुख अइयो
 नहीं तो दूगी सहज गाली, गुम गुम गाली

एक स्थान पर भाभा, देवर के सबब मे कहत। है जिसके द्वारा सारी स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

कौंटा लागो रे देवरिया मो पै सग बलो ना जाय
 अपने महल की मै अलबेली, जोवन खिल रहे फूल चमेली
 धूप लगे कुम्हलाये
 आधी रात हमे ले आयो, रास्ता छोड कुरस्ता धायो

सास ननद से पूछ मत आयो

चलत चलत पिडली दुखायो, सगरी देह पिराय

काँटा लागो रे देवरिया—मो पै सग चलो ना जाय

हमारे लोकजीवन का काई भी सामाजिक पर्व ऐसा नहीं जिसमें सबधित देवी-देवता से हमारा संपर्क नहीं रहता, अतः हमारे लोकजीवन में भी लौकिक-पारलौकिक सबध होता है। इससे प्रतीत होता है कि देवी-देवताओं को वह अपने जीवन से भिन्न नहीं मानते, वरन् एक अंग मानते हैं। होली के हास्य-गीतों में जब जन-मन उल्लसित रहता है तब भी अपने सबधित देवी-देवताओं की उपेक्षा न कर उनके सामीप्य का ही अनुभव कर गाते हैं। राधा-कृष्ण, राम-सीता तथा शिव-पार्वती से सबधित सयोग-शृंगार के गीत जो इस प्रकार होते हैं, इन्हीं से तुलना कर जनता अपने व्यवहार के औचित्य को भी मान लेती है और सतृप्त रहती है—

होली खेलन चलो री बिरज मे

सासु भी खेले सौहरा भी खेले

म्हारे खेलन की क्या चोरी जी बिरज मे ।

होली के गीतों में राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती दोनों का ही कुछ न कुछ भाग अवश्य है तथा इस अवसर पर भाग आदि पीने की प्रथा का मूल सबध भी उसे ही माना जाता है—

सब रग भोग आई, तुमैं होली किन्ने सिखाई

राधा किसन मुरारी भर भर मारे पिचकारी तुमैं

तथा—

होली खेले रघुवीर अवध मे होली खेले

राम के हाथ कनक पिचकारी सीता के हाथ अबीर—होली. .

तथा—

“आज सदाशिव होली मनाई”

होली के इस उल्लासपूर्ण वातावरण के सयोग के साथ ही विप्रलभ का भी वर्णन मिलता है। एक स्त्री जिसके पति परदेश में है, अपने जेठ से कहती है—

“जेठ तेरा बाला बीरन परदेस”

वह कहती है—

“बिना मारू कैसे कटे दिन रात ।”

होली के मस्ताने अवसर पर अनमेल विवाह भी अखर जाते हैं और वह कहती है—

मै तो कोड्डा री पहर पछताई
मेरी चरचा करे लुगाई
मेरा बालम याणा मै तो स्यानी
उनके मरियो बाप्पु माय

इसमे बाल-विवाह के ऊपर भी आक्षेप है। इस समय वियोग असहनीय हो जाता है—

रड्डा तो रोवै आध्धी रात
सुपने मे देखी कामिनी

यद्यपि होली के गीतो मे अधिकतर रसिकता प्रिय गीत ही रहते हैं पर कुछ मे सामाजिक विषय भी मिलते है। होली के गीतो मे राष्ट्रीय झलक भी देखने को मिलती है—

दिके इब मिल गया सौराज मौज मे होली गावेंगे
किसानो का रब सुद्धा ऐसा, घर मे नाज हाथ मे पैसा
चौधरन कहै घेर मे आज, साँग बुल्ली का लावेंगे
लाला गाँ का चक्कर काट्टे, हाली जमादार ने डाटे
दरोगा चले दबा के कौला, रोब खूब ढेर बढावेंगे
बिल्ली बाम्मे ढेर दिनो माँ, रकम्मा उल्टी गेहूँ चणो मे
तारकै दूबकी टुट्टी छाण, सोहणा बगला छवावेंगे
होली मे आगा बड़ा उजीर, खुवाकै बढिया रसकी खीर
करेंगे गहरी जान पिछान, रग माँ उसे न्हुवावेंगे
इक रग मे रग दे सब कू, ऊच नीच छोड कं ढब दू
देस का होगा कल्याण, प्रेम की गगा बहावेंगे।’

खडीबोली प्रदेश मे चमारो को होली विशेष प्रसिद्ध है। होली मे ढोलक बजा-बजा कर नृत्य करते है। इस अवसर पर डफ बजाने की प्रथा भी बहुत प्रचलित है। इन गीतो मे सूक्ष्म भावो तथा कथानको के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आह्लाद और उछाह का भाव होता है। यह उत्साह और उमंग का त्यौहार है।

खडीबोली प्रदेश मे होली के अवसर पर स्त्रियाँ मडलाकार घूमती हुई एक दूसरे के हाथ मार कर गाती है। वह पटका कहलाता है तथा इसके साथ ही साथ नृत्य भी करती है जिनके प्रमुख गीत इस प्रकार है—

“राजा नल के बार मची होली, री मची होली”

होली मे प्रयोग मे आने वाले वाद्ययंत्र होते है—डफ, झाझ, घटा, थाली, ढोल। होली की ढेर सवा-महीने तक सुनायी देती है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के

लिए इस प्रदेश में गाये जाने वाली मुख्य 'रागिनी' है जो वर्षा को छोड़ कर सभी ऋतुओं में गायी जाती है। विषय और पकड़, दोनों ही की दृष्टि से यह अति उत्तम होती है। 'रागिनी' की प्रकाशित पुस्तकें इस प्रदेश में अपनी विशेषता के साथ पायी जाती हैं।

यों तो होली सभी सबंधी पड़ोसी आदि खेलते हैं पर होली का विशेष त्यौहार देवर-भाभी, साली-बहनोई आदि का है जिनको एक-दूसरे से होली खेलने के फल-स्वरूप देवर को तथा जीजा को अपनी भाभी व साली को कुछ उपहार देने की भी प्रथा है जिसको 'फगुआ' कहते हैं, यह भी नेग के रूप में आता है। नववधू को, जो पहली होली ससुराल में मनाती है—गुरुजन तथा पति, रंग डलाई का नेग देते हैं। होली तो वस्तुतः ऋतुगान है। श्रम मलिन जीवन में काव्य स्फूर्ति तथा नवीन उत्साह लाने के लिए मनोरजन आवश्यक है। ऋतु के अनुसार उनके मनोरजन का रूप और उसके साथ संबंधित गीतों का क्रम बदलता है। मनोरजन के गीतों में यहाँ होली, रागिनी और आल्हा का प्रचार है जो क्रमशः जाड़े, गर्मी और बरसात में गाये जाते हैं। वसंत से होली तक यह सवा-महीने का मनोरजन न जाने जीवन को कितनी कुठाओं से मुक्त कर जाता है। होली ने बड़े-बड़े खेल खिलाये हैं। राजा कारक की होली इस प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध है—

राजा कारक बड़ पै चढ़ गये बार बार रानी बरजे

तीन हजार तुम बाग बो दू राजा ले लो मुझसे दाम सवाये

खिलाये रे खेल खिलाये, होली रे बड़े बड़े खेल खिलाये।

टंक और तोड़ के पहले और पीछे देर तक ढोल, डफ व थालो बजती है। इस प्रकार की पुरानी होलियों में अधिकांश धार्मिक व पौराणिक विषय अथवा लोक प्रचलित कहानियाँ—जैसे सहलोचन सती, पूरनभगत, हरिश्चन्द्र, नल-दमयन्ती, कँवर निहालदे फूलकुवर मिलती हैं। इन होलियों में आधुनिक होलियों की अपेक्षा अभिव्यक्ति की सरलता और भाव-गाभीर्य अधिक है।

महाभारत के लाक्षागृह की होली इस प्रदेश में इस प्रकार प्रचलित मिलती है—

लुक दे गया भीम गगन में

आधी रात करन का पहरा, बारा घंटे बाज गये

बाहर में कीचक सो रह्या

'बहणा की अरज सुण वीरा'

दो बाँदी आ लगी म्हारे बिपदा का कुछ मोल नहीं

करुणा की लहर उठाने वाली निहालदे की होली का एक अंश प्रस्तुत है—

रानी जिन्दी मुझसे नाँय मिलेगी
नगरी दूर समै चौमासा नदी नाले कर गये जोर
चारो तरफ से बिजली चमके बादल करै गगन मे सोर
मारग दिसा समझ मेरी मैया, जो मोक् तो नाय मिलेगी
परदेसो मे मरणा होगा, काया को खावेगे स्याल
मेरे प्राण छुटे रस्ते मे वहाँ डाल पर जागी कवर निहाल
दूनो प्राण छुटे रस्ते मे वहाँ जल मर जागी कवर निहाल
दूनो जीव भटकते रहजागे मेरी काया खाक मिलेगी

हरियाणा मे होली इस प्रकार का भ। प्रचलित है—

पति इस जीने से मैं मरी भली दुखियारी

बिना पति के नर बिहनी है पसू बराबर जूनी

खडीबोली प्रदेश मे हर जाति का होली और उसके गाने का ढग भिन्न है। यदि समानता है तो इस बात मे कि इस अवसर पर सभी समान भाव विभोर से रहते है। हर जाति अपने को महत्वपूर्ण मानती है—

होली तो गूजरी की सबसे पहले,

फेर पिच्छे और सब्ब की

यह हमारा ऋतुपर्व है जिसमे मू के रग मे रग कर सब वण समान स्वर्ण वर्ण दीखते है।

गाँवा मे मनोरजन गीतों के अतिरिक्त ग्रामीण-जन अलाव, चौपाल पर बैठ कर अनेक नीति, ज्ञान, धर्म व प्रेम-व्यवहार सबकी सुंदर दोहे कहते है और कमी-कमी कुछ बताने को पद्यबद्ध कहानियाँ भी। अनेक अवसरों पर अनेक मुख से लोकोक्तियाँ भी निकलती है। होली के अवसर पर यह प्रायः शृंगार-रस की ही होती है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

जैसी ओढी कामली, वैसा ओढा खेस

जैसे कथा घर रहे तसे रहे विदेस

इस प्रकार हम होली के विभिन्न गीतों का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इनमे कुछ विशिष्टता अवश्य मिलती है।

सर्वप्रथम तो इनमे प्रेमोल्लास की धारा अत्यन्त वेग से बहती है। इनमे प्रेम का रोमांचपूर्ण वर्णन रहता है, तथा उसी से मगधित जीवन की सरल और रसमय झाकियाँ मिलती है। इन गीतों मे आदर्श से अविक यथार्थ पर बल दिया जाता है और हास्य का विशेष पुट व स्थान रहता है। खडीबोली प्रदेश मे होली से सबधित कथाएँ व गाथाएँ भी प्रचलित है।

श्रम-गीत—शोकजीवन कर्मण्यता का साकार रूप है। यहाँ स्त्री-पुरुष सभी का जीवन श्रमरत रहता है। अकर्मण्यता का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं, इसी से वास्तव में यह कर्मक्षेत्र है। श्रमरत वातावरण में श्रमपूर्ण व्यस्त जीवन बिताते हुए ही श्रमगीतों का जन्म अनायास ही हो जाता है। कार्य करने के फलस्वरूप जो मन व शरीर बोझिल हो जाता है, उसी की दुरुहता को कम करने के लिए जो गीत गाये जाते हैं, वे कार्यकर्तियों में स्फूर्ति का संचार करते हैं। इनके द्वारा मन की अतृप्त आकांक्षाओं और वेदनाओं का आभास मिलता है। इसका मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है। किसी कार्य की दुरुहता का उसमें पूरी एकाग्रता के कारण अधिक अनुभव होता है पर अगर किसी अन्य ओर ध्यान बँट जाये तो उसकी एकाग्रता कम होने से वह कम कष्टदायक रह जाती है। इन श्रमगीतों का महत्व इनकी समयोपयोगिता के कारण ही है। श्रमगीतों को मुख्यतः हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—स्त्रीवर्ग के गीत तथा पुरुष वर्ग के गीत। इनमें भी ओर विभाजन इनके क्रिया-कलापों के अनुसार किया जा सकता है।

प्रत्येक नरस और कठिन कार्य को सरस और सरल बनाने का यत्न अवश्य किया जाता है और श्रम-परिहार में गीत सर्वाधिक सहायक होते हैं। मनुष्य के हाथ और मस्तिष्क का अद्भुत मेल है। जहाँ हाथ श्रम की ओर बढ़े कि मस्तिष्क ने हृदय से सहयोग कर भाव की वाणी दी और इसके परिणामस्वरूप हृदय के स्पन्दनों की ताल पर हाथ चलने लगते हैं। गीत और श्रम के इस संबंध का नृत्य और गान के रूप में अनुभव किया जा सकता है। लगभग श्रम की प्रत्येक क्रिया के साथ गीत जुड़े हैं क्योंकि श्रम का नारमता एवं कठोरता का निवारण उनके द्वारा ही संभव होता है।

स्त्री वर्ग के श्रमगीत—स्त्री वर्ग के मुख्य क्रिया-कलाप, जो लोक-जीवन में प्रचलित हैं वह हैं—चक्की पीसना, चरखा काटना, ओखली कूटना, खेती करना, पानी भरना आदि। इन अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों का वर्ण्य-विषय मुख्यतः उनकी सामयिक, पारिवारिक और दैनिक समस्याएँ होती हैं। भारत के हर प्रांत में लगभग समान ही नारी समाज की समस्याएँ होती हैं उदाहरण के लिए—बालविवाह, अनमेल विवाह, बहु-विवाह, बध्ना का दुःख तथा विवाहित जीवन में पति के अत्याचार। इन गीतों के श्रम के साथ-साथ अपने दुःखों को व्यक्त करके वह कुछ अंशों में अपने मन के बोझिलपन को कम कर देती हैं।

श्रमगीतों में नारी हृदय तथा हिन्दू समाज की स्थिति का बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। यह गीत, श्रम के समय अपने विपाद को व्यक्त करने के साधन हैं। समय-समय पर गाये जाने वाले इन गीतों के माध्यम

से नारी अपनी स्थिति स्पष्ट करती है। इन गीतों में जीवन के दुर्बल पक्ष तथा सुख से अधिक दुःख ही का अधिक उल्लेख मिलता है। इनमें करुण-रस का प्रयानता रहती है। इन क्षणों में वे अपनी समस्याओं का मनोविज्ञान के आधार पर अवलोकन करती हैं। अपना दुःख किसी से स्पष्ट रूप में कह देने से उनकी वेदना को वाणी मिल जाती है, हृदय हल्का हो जाता है। अगर अपने दुःख को कह कर आपस में न बाट ले तो उनके मन में ग्रथियाँ पड़ जाती हैं जिनका उपचार भी नहीं। जीवन की विषमताओं का इस प्रकार का उल्लेख उन्हें जीवन-दृष्टि में देता है तथा भविष्य के लिए सहनशक्ति भी। संपूर्ण मानव-जीवन में और नारी-जीवन में तो दुःखों का पलड़ा ही अधिक भारी रहता है तथा सुख का तो कहीं-कहीं, कभी कभी केवल उल्लेख मात्र ही होता है, इसी से उनकी उपेक्षा करना भी संभव नहीं।

नारी के विशेष क्रिया-कलाप, घर में ही केन्द्रित हैं तथा उसी से संबंधित हैं। इसी से स्त्रियों के श्रम गीतों में अधिकतर गीत उनके क्रिया-कलापों के ही अधिक निकट हैं, मुख्यतः—चक्की पीसना, पानी भरना, खेतों में काम करना आदि।

लोक-जीवन में स्त्रियाँ चक्की का विशेष महत्व हैं। चक्की जीवन के कर्म-चक्र-प्रवर्तन का प्रतीक है। उनके दैनिक कार्य का आरंभ प्रातः इन्हीं में होता है। चक्की की व्यावहारिक उपयोगिता भी है। यह स्त्रियों के लिए विशेष स्वास्थ्यप्रद व्यायाम निद्र होता है। चक्की पीसते समय गाये जाने वाले गीतों का वर्ण्य-विषय उनके घरेलू जीवन से संबंधित होता है, और मुख्यतः उसमें सामाजिक समस्याएँ ही रहती हैं। वह आपस में एक-दूसरे से सुख, दुःख कह सुन कर जीवन की विषम गतिविधियों को सुझा लेता है तथा अपने मन में कूड़ा को स्थान नहीं देती। चक्की पीसना, विचार-विनिमय तथा सुख-दुःख बाँट लेने की प्रथा का उचित माध्यम व समय था। चक्की के गीतों में हमें ननद-भावज शर्त करने हुई, बदना बदत हुई मिलती है। इस प्रकार के गीतों में इसका स्पष्ट उल्लेख है, यह 'मनरजना' का गीत किसी न किसी रूप में हर उपभाषा, लोकभाषा में उपलब्ध है।

चक्की के गीतों में सामकें शाश्वत कटु-व्यवहारों का भी उल्लेख किया जाता है। यह तभी होता है जब कि देवराने-जिठानों एक दुःख को समझा लें, दोनों ही सताये हुई हों और एक-दूसरे के मनोभावों को भरोसे प्रकार समझ लें। अतः तब वह अपना सर्वतोमुखी असंतोष प्रकट करती है—

ना इस घर में चक्की री ना चूल्हा
ना चक्की से चूण बैहण मेरी
बुरा है ससुर का देस

ना इस घर मे कोठी रे कुठला

ना कोट्ठी मे धान

इन्हीं गीतों में सास से संबंधित अन्य गीत भी मिलते हैं जिनमें उन पर सास द्वारा किये गये नारकीय यत्रणाओं के उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं गीतों में बच्चा की मर्मवेदना तथा विधवा के प्रति किये गये अत्याचारों का भी बहुत ही मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है। प्रोषितपतिकाओं का विरह-वर्णन भी इनमें दृष्टिगत होता है। संक्षेपतः करुणरस के सभी मार्मिक प्रसंग इनमें मिलते हैं।

चरखे के गीतों में प्रायः इसी के वर्ण्यविषय मिलते हैं। मनरजना का गीत भी इसी से संबंधित मिलता है जो थोड़े से भेद के साथ इस प्रकार है—

ननद भावज मिल काते मनरजना

कोई कातत तो बदलइ होइ मनरजना

चरखे के गीतों में नारी का असताप मिलता है। इनमें गांधीवाद का और चरखे का प्रचलन भी मिलता है। परिशिष्ट में उदाहरण देकर हमने इसे स्पष्ट कर दिया है।

चरखे के कुछ गीतों में तो चरखे का केवल उल्लेख मात्र ही है जिनका कोई विशेष महत्व किसी भी दृष्टि से नहीं है लेकिन ये नारी-जीवन में चरखे की ओर संकेत करते हैं—

झुम्मर टिक्का पहर के, मै गई थी बजार

किसी बाबू ने मारा मेरे ताना

बोल्ली तो मेरे लग गई

चरखा पड़ा रे आगरा, लाठ पड़ी बगलौर

ओ हो तार पड़ा बिजनौर

इस गीत में पश्चिमी उत्तरप्रदेश के दो-तीन जिलों तथा कस्बा बगलौर का भी उल्लेख आ गया है।

चक्की चरखा और चूल्हा के अतिरिक्त कृषि-प्रधान भारत के गाँव की स्त्रियाँ अपने अवकाश के क्षणों में पतियों के साथ खेत में काम करवाती हैं तथा दोपहर को खाना पहुँचाना भी उनके लिए दैनिक जीवन का एक विशेष अंग होता है। घर और खेत का वातावरण उनके जीवन में आत्मसात् हो जाता है और वह उसी से संबंधित गीतों का निर्माण कर लेती हैं जिनमें प्रायः उसी से संबंधित समस्या रहती है, पर कभी-कभी अन्य विषय भी समाहित हो जाते हैं—

ग्रामीण नारी के लोकजीवन में तो गीत हर क्रिया का आवश्यक अंग है। उनकी बोली में कोई भी काम 'गूँगे' नहीं करना चाहिये। अतः हम देखते हैं कि

जब कही भी वह सामूहिक रूप से जाती है चाहे वह खेत में हो मेले में हो या गंगास्नान में, पानी भरने जाते समय, तालाब या नदी के तट पर हो, वह अपनी लघु यात्रा को रोचक बनाने के लिए इन गीतों का सहारा लेती है। इसलिए ये गीत नारी की मुखरता के भी द्योतक हैं।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बातचीत करते तथा गाना गाते हुए, समय जल्दी कटता है। ऐसा प्रतीत होता है इन गीतों में शृंगार और करुण दोनों ही रसों का उल्लेख मिलता है। इसका वर्ण्य-विषय कभी गतव्य स्थान जाने के उद्देश्य से सबधित होता है उदाहरणार्थ, गंगास्नान, मेले, जात बोलने जाते समय, पीपल पूजते समय का। इसी प्रकार खेत पर जाते समय, पानी भरने जाते समय भी वह अधिकतर उसी से सबधित गीत गाती है। लेकिन खेत पर जाते समय कोई निर्दिष्ट विषय नहीं होता अतः यह उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है कि वह क्या विषय ले। इनमें जीवन का हास्य-व्यंग्य भी मिल जाता है तथा आशा व निराशा का वर्णन भी है। एक स्त्री अपने परदेश जाते हुए पति से पूछती है—

कितनक दिन मे आओगे ओ काली छतरी वाले

पाँच बरस मे आवेंगे हो घूम घाघरेवाली

हमकू क्या कुछ लाओगे, सौक दूसरी लावेंगे हो गोरी

इस गीत में हम देखते हैं कि पुरुष, स्त्री का भावनाओं का किस प्रकार उपहास करते हैं। स्त्री कितने निश्चल भाव से पति से उत्सुकतावश पूछती है 'मेरे लिए क्या लाओगे', 'कब आओगे'। एक परदेस जाने वाले से प्रियतमा का यह प्रश्न करना कितना स्वाभाविक है। पर पुरुष उसकी प्रिय-भावनाओं की उपेक्षा कर कितना अप्रिय और कटु उत्तर देता है—'पाँच बरस' की लंबी अवधि के बाद आने पर भी साथ में सपत्नी लायेंगे जिसकी कल्पना मात्र ही नारी के लिए दुःखदायी है। यही भाव-वैषम्य तथा नारी जीवन के भाग्य की विडम्बना, हमें लोक-गीतों में मिलती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक है। गाँवों में स्त्रियों के लिए इस तरह के सम्मेलन के मुख्य स्थल तो दैनिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं और वह हैं पनघट। उनके जीवन में पनघट बहुत महत्वपूर्ण हैं और उन्हें अपना पर्याप्त समय इसी पर बिताना होता है। इन अवसरों पर वह अपने सुख-दुःख की सभी बातें करती हैं और अपनी इच्छानुसार अपने उद्गारों को गीतों के रूप में प्रकट करती हैं। इन गीतों में कुछ शृंगार रस का भी समावेश रहता है। प्रायः गीतों में पनघट प्रेमियों और प्रेमिकाओं का मिलन-स्थल भी होता है। प्रेमी प्रायः अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा पनघट पर या

है और उसके पीछे एक बधावा गाकर बाद में ढोला गाती है और घर जाती है। इन गीतो के उदाहरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।

नारी जीवन से संबंधित ऊपर लिखे गए क्रिया-कलाप प्रायः सभी प्रान्ता के लोकगीतो में कुछ साधारण भेद-भाव के साथ अवश्य ही मिलते हैं। जीवन की दैनिक परिस्थितियों में उनके अन्तर्भूत का रूप हर प्रांत में समान रूप से हुआ है और स्वभाववश उन्होंने उनके अनुरूप गीतो की रचना भी की है।

पुरुषवर्ग के श्रमगीत—जिस प्रकार स्त्री वर्ग के क्रियागीत स्त्रियों के कार्यों से संबंधित मिलते हैं, उसी प्रकार पुरुष वर्ग के गीत भी उन्हीं के कार्यों से संबंधित होते हैं। दोनों के ही भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र हैं। पुरुषों को अधिक शारीरिक श्रम करना पड़ता है, वह बलवान् होते हैं अतः वह इसयोग्य होते हैं और सफलतापूर्वक करते भी हैं। इसलिए श्रम का परिहार करने के लिए गीतो का निर्माण करते हैं। इनके वर्ण्य-विषय स्त्रियों से नितांत भिन्न होते हैं और उनमें कष्टकरता की अपेक्षा श्रृंगार की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। खडीबोली-प्रदेश में ईख कापैदावार बहुत अधिकता से होती है और किसान बैलों के द्वारा खींचे जाने वाले कोलू से गन्नापेल कर उसके रस से गुड़ शक्कर तथा राब बनाते हैं।

कोलू चलाने का काम प्रायः रात्रि भर होता है। कोलूओं पर चारों ओर जागरण रखने के लिए 'कोलू गीत' गाने का प्रचलन है जिनको पल्लावे या मल्हौर कहते हैं। यह काम में थकान का अनुभव नहीं होने देते हैं और जीवन में सरसता बनाये रखते हैं। पल्लावे या मल्हौर का विषय प्रायः श्रृंगार, नीति व धर्म होता है। कहीं-कहीं इनमें अश्लीलता भी अधिक मात्रा में आ जाती है।

मल्हौर रात्रि के समय कोलूओं पर ऐसी ऊँची टेर से गाये जाते हैं कि एक कोलू से उठने वाला स्वर दूसरा स्पष्ट सुन सके, कारण कि उसका उत्तर दूसरे कोलू के लोगों को देना पड़ता है। लंबे धार्मिक व नीतिपरक उपदेशों की अपेक्षा धर्म व नीति के ज्ञानकरण (संक्षिप्त वाक्य) ही अधिक प्रभावकारी होते हैं। इसलिए मल्होरो के लिए दोहा जैसा छोटा छंद अपनाया गया। यहाँ पर श्रृंगार नीति व धर्म सबकी दोहे उदाहरण के लिए दे रही हूँ—

श्रृंगार—

जोबन तेरे कारण छोड़ दे माई बाप
साथन छोड़ दी साथ की, हिरना बरणी नार
मेरी बाबलिया मल्हौर'

जोबण चाल्या रूसके, पड़ लिया लम्बी राह
कैसे पकड़ दौड़ के मेरे गोड़डो मे दम नाय
नीति—

जिनका ऊँचा बैठणा, जिनके खेत निवाण
उनका बैरी क्या करे, जिनके मीत दिवाण
मेरा बावलि या मल्होर

धर्म—

माला मन से लड पड़ी, प्यारे का लडकावे मोय
मण निहचे कर राखिये राम मिला द्यूगी तोय
मल्होरो मे बिनोदपूर्ण पक्ष मे कटाक्ष एव उपालम भी सुन पडते है ।

उदाहरण के लिए—

ढाई पाट का ओढना, तले खडा मेरा जेठ
ढाई पाट का ओढना, मूढ ढकू अक पेट
इसमे पौराणिक कथाओं का सहारा भा लिया गया है जो इस प्रकार है—
लकडी इकली ना जलै, नाय उजाला होय
लक्ष्मन सा बीरा मारकै, राम अकेला होय

जादू, टोना व तांत्रिक उपायों का सार्वजनिक जीवन मे सफलता प्राप्ति के लिए प्रयोग दर्शाने वाली इस प्रकार की एक मल्होर है—

बड बाँधू बड़ वासनी, बड़ के बाँधू पात
तेरे गुरु की मसक, बाँध ल्यू तेरे दोणो हाथ
इन छोटे छन्दों मे महान् प्रेरणा सूत्र है—

उदाहरण के लिए कबीर का एक दोहा लोकभाषा मे इस प्रकार है—

चालती चाक्की देख कै, प्यारे दिया कबीरा रोय
दो पाट्टो के बीच मे साबित रह्या ना कोय
पल्हावे—

- (१) नदी किनारे रुखडा तीन तपस्सी उतर रहे
सीता लछमन राम मेरे बावलये मलोर
- (२) नेडे मुह को टोकनी सबल दे पनहार गजब पडो तेरे रूप पर
दिया मुसाफर मरवाय मेरे बावलये मलहोर
- (३) कल्लर की हम बैर या, ढोला आया हमारे तले कू
पक्के पक्के खा गया
कच्चे के लगाये ढेर मेरे बावलये मलहोर

- (४) दाँती ले साल की पूस काट सौ पचास
रस्ते में झोपड़ी गेर ले
यही भिनकी आस—मेरे बावलिये मलहोर
- (५) गाड़ी के गड वालये और गाड़ी के पहये सूत
करू न तुझे के पडा
तू छेडे ने गाऊँ के पूत, तुझे के पडा,
झोपड़ी में जच्चा पड़ी थी
मुझे था काम—मेरे बावलिया मलहोर
- (६) गाड़ी के गडवाल ये तेरी गाड़ी भरी मसूर वाले बैल को
हीक ये तुझे जाना बड़ी दूर—मेरे बावलिये मलहोर
- (७) आवण आवण कर गये ला दीये बारह मास
चाल पूरानी हो गयी खडकन लगे बोस
- (८) बोदी बाड फरोस की, पैर दियो भर डाय
ओच्छे की क्या दोस्ती, भीड परे भग जाय
- (९) जितनी खिडकी उतनी चदन छिडकी
बीच बिच्चे रख दी मोरी जी
चै चै कर तो रैन गुजरगी,
पास खड़ी रही गोरी जी
तू है रसिया बन का बसिया,
जो मैं होती बिरबै की लकड़ी
गले से लगती गोरी जी
तू रसिया बन का बसिया,
तू क्या जानै चोरी जी
चै चै कर तो रैन गुजरगी, पास खड़ी रही गोरी जी

पुरुषों के श्रमगाता में काल्ह के गान। क बाद कुएँ के गाता का स्थान है। यह 'बारे' कहलाता है। 'बा', हिन्द। शब्द का अर्थ जल है, यह संस्कृत का वारिजल से बना है।

कुआ चलाने की क्रिया में दो व्यक्ति साथ काम करते हैं। इनमें एक तो कुएँ की मन पर खड़ा होकर चरस लेता है और दूसरा चरस खींचने वाले बैला का जाट होंकता है। इस दूसरे व्यक्ति को कीलिया वाले कहते हैं। इन दोनों का काम एक दूसरे के सहयोग से चलता है। जिस समय चरस ऊपर आता है उस पर कुएँ की मन पर खड़ा व्यक्ति बारे की दूसरी पक्ति कह कर अपने साथी को सूचित करता है

कि वह बैलों की बरत से बीच की कली निकाल कर अलग कर दे जिससे रस्सी ढीली हो जाने पर वह चरस मन के ऊपर लेकर उलट दे। पहिले पक्ति को वह उस समय कहता है जब चरस कुएँ के अंदर जल भरने के लिए छोड़ता है। ये गीत इस प्रकार दो-दो पक्तियों की मुक्तक रचना के समान होते हैं जिसमें पहला पद जाने का व दूसरा कुएँ के भीतर से चरस आने का संकेत देने वाला होता है।

कुएँ के गीतों का विषय प्रायः भक्ति, मनोरजन एवं विनोद होता है पर कभी-कभी इनमें व्यंग्य और उपालम्भ भी स्थान पाते हैं।

भक्ति-भावना—

भाई राम था धणी का, लीए नाम ऊ ऊ ऊ
हर भर के ल्या, उठा, राम, ऊ ऊ ऊ
ले ले नाम हरी का तुम कैसे बार लाई
हे तणे बरधो कू छोड दे भाई

मनोरजन एवं विनोद—

किलडी कू दे दे, लगी देर प्यारे रे
है बनजारी कू झौली, हिये त्याग भाई रे

कष्ट निवारण के लिए यह लोग ये गीत गाते हैं—

कुओ के बारे

- (१) 'गुर गगे, गुर बावरे, गुर देवन के देव
गुर से चेला अन्त बडा, करै गुरु की सेवा'
- (२) ले राम का नाम, मेरी जोडी को दियो जोड
- (३) 'भजन मे मगन रहो, माला हर की फेरो'
- (४) जोड कै चला जा और जोडी को दियौ न ढाल
- (५) शिव जी महाराज की और पूजा लियो न कर
- (६) अर—मेरे भाई किलिये और ओही काछ और ओही पिलिये
- (७) केला गढ़ के मग राजा की, घना द्वार : झूल रही
जिसकी बेटी कँवर निहाल दे, आज बाग मे झूल रही
- (८) राम का नाम ले भाई अरे बावलया कुए मे गया डूब
- (९) किल्ली काढ बलद गोरे पै पानी लावेंगे राम
- (१०) कालू कुडले मे डूब मरा था भाई बोरी दी थी भार
- (११) दोनो बैल आवन दे भाई मेरा राजी हो गया रे राम

(१२) चीरे वाले नाद चला जा डाडा कैसी लादी रे बार

(१३) अरे मेरे दोनो बैल कुभाइ मोरी दिये रे खैच

(१४) मेरा दाना ते जलनीर—भर भर लावेंगे नीर ।

पैड (चक्कर) तेरी सुहाई रे भाई बधिये । (भइया बैल)

कधी पातर (बैसा) नाचन आई रे—छोरी मेरा चालना चञ्चो

पैड तेरी मे गारा रे भाई बधिये (बैल)

कधी सावन बरस सारा रे—छोरी मेरा

साड-सावन के खड्ड खाये रे भाइ-बधिये

वह बल कहाँ गवाये रे—छोरी मेरा

कुडी आई भागो रे भाई बधिये, कधी बोघे बैल के भागो रे—छोरी मेरा

कोठे ऊपर कोठरी है, उसमे काला नाग

काटे से तो दच गई रे, अपने पिया के भाग—छोरी

काया की किस्ती बनी रे, माया की हुनियार

उठा भँवर गुजार कै रे, नैया घेरी आय—छोरी

राम बढाये सब बढे, बल कर बढा न कोय

बल करके रावण बढा, छिन मे दिये खोय—छोरी

गग जमन की रेती रे, अरे ईखा बिना क्या खेती रे—छोरी मेरा .

बालगीत—बालगीता का सवध विशेषकर खेला से है । खेला के द्वारा बालक आदिम जीवन की अनुकरणात्मक झाँकी तो देते ही है साथ ही वह अपनी नैसर्गिक समूह प्रवृत्ति के उपयोग द्वारा, सामूहिक जीवन और पारस्परिक सहयोग का पाठ सीखते और जीवन को स्फूर्तिमय बनाते हैं । भड़-डुडुआमे उठ-वैठक, दौड-भाग और भिडन्त मे वह मानव की किन्हीं पुरातन क्रियाओं का आवृत्ति करने व कृपक जीवन के लिए अपने को समर्थ्यवान् बनाते हैं । मूर्त के पात्रों की भूमिका मे काम करते हुए वह स्वयं को सचमुच वहीं सब पात्र मान कर अपने चरित्र का उत्थान करते हैं और खेल का आरम्भ करने समय नाम बता कर अलग-अलग आकर तथा पैसा उछाल कर विभिन्न प्रकार के साथिया का चयन करने मे वह निर्णय की सूक्ष्म क्रिया को मूर्तरूप करते हैं ।

खेल मे गीत के स्वर, बालको मे आत्म दृढता और अनुशासन उत्पन्न करते हैं । भाषा की मन्त्रशक्ति का यह विशुद्धतम उदाहरण है ।

बालगीतो के विषय, जीवन से भिन्न और असंबद्ध नहीं होते । खेल भी जीवन से भिन्न नहीं होते जीवन वास्तव मे खेल ही है । खेल उत्तरदायित्वहीन जीवन है

और जीवन उत्तरदायित्वपूर्ण खेल। बाल-खेल, जीवन का अनुकरण करते हैं और गति, जीवन की भावनाओं का अनुगमन। किन्तु अपरिपक्व मस्तिष्क की उपज होने के कारण उनमें व्याख्या और विस्तार का अभाव अवश्य होता है। जब बच्चे विवाह का खेल खेलते हैं तो कोई नाई, कोई दूल्हा और कोई पड़ित बन कर वेदों के मंत्राच्चारण की नकल इस प्रकार करते हैं—‘अडम गडम घर टका’।

इसमें पड़िता का अनुकरण तो मिलता ही है साथ ही साथ उसको परम्परा की ओर उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का पता चलता है। बाल-शिक्षण में इन खेलों का बहुत महत्व है। खेल न केवल शरीर मात्र के विकास में सहायक होता है, अपितु वह जीवन की बहुमुखी सचर्यना में भी सहायक होता है। जीवन में आगे जाकर जो कुछ करना होता है, बालक वह सब कुछ खेल-खेल में ही सीख लेता है।

खेला में प्रायः यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि इनमें लड़कियाँ माँ का अनुकरण करती हैं और लड़के बाप का। इनमें जीवन के गंभीर कार्यों का भी विनोदात्मक अनुकरण मिलता है जो बहुत सफल और सजीव चित्रण होता है। मानव के पूर्ण जीवन का इन खेलों में व्योम रहता है। इनमें गीतों की भाषा के विकास के अनुकरण का चमत्कार भी दिखाया जाता है। यह अदृश्य के सबध में निश्चयता और निर्णय को प्रोत्साहन देने वाले हैं।

यह चरित्र के उत्थान में सहायक होते हैं तथा इनके द्वारा समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृतिक सबधों की सदा परम्परा बनी रहती है।

खेल का आरम्भ करने से पहले सबको इकट्ठा करने के लिए बालक आपस में चिल्लाते हैं।

अदलक अदलक, चम्पा फूल जुआरी

जिसकी माँ बालक ना भेजे, उसकी माँ चमारी

चमारी से उनका तात्पर्य केवल अस्पृश्य और तिरस्कृत से ही होता है। इसे सुनकर चाहे माँ कितनी ही रोकेगी, रहे जाय किन्तु स्वाभिमानी बाल-वृद्ध फिर घर में नहीं रुक पाते और इस मंत्र के जादुई प्रभाव के साथ खेल में खिंचे चले आते हैं।

ऐसे ही खेल की समाप्ति पर कोई बालक कह उठता है—

“मनुआ मरग्या, खेल बिगड गया”

बालगीता को हम स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं जिसका मुख्य कारण स्त्री और पुरुष के स्वभाव और कार्यों के प्रकृत विभाजन हैं। अतः कार्य और क्रीडा के समय वह अपने-अपने वर्ग में मिल कर रहने में ही प्रसन्न रहते हैं। इसी का अनुकरण बालका में भी देखा जाता है। लड़के और लड़कियाँ पृथक्

गुटों में ही खेलते हैं। इसके विपरीत यदि कभी किसी लड़की या लड़के ने दूसरे के समूह में मिल कर खेलने की हठ की तो तुरन्त ही नीचे दिये मंत्र द्वारा उसे वहाँ से भगा दिया जाता है—

लौंडियो मे लौंडा खेलै

माँ बाँहण का नाडा खोल्ले

और लड़का कह देता है 'लड़का मे लड़की गू खानी'। सचमुच ही इसे सुनकर वह मुँह लटकाये सलज्ज भाव से खिसक जाते हैं।

प्रायः माता-पिता बालकों का 'मी' (वर्षा) में नहाने को व नालियों के गढ़े पार्श्व में पैर डालने के विग्न मना किया करते हैं किन्तु जिस समय बाढ़ों का विद्रोह स्वर गूँजता है तो सब दौड़ पड़ते हैं—

“बरसो राम घडाके से, बुढिया मर गई फाक्के से”

इसी प्रकार एक-एक, दो-दो, चार-चार पक्ति के अनेको गीत बाल-खेलों के साथ संबद्ध हैं।

दैनिक खेल—

इनके अन्तर्गत यह खेल आते हैं—

१—मडू-डूडवा—जिसको कबड्डी भी कहते हैं।

२—पाँ पिट्टा

३—कच्छू गगा

४—झोई-माई

५—कीलमकीड, कुल्हाडा

६—लीलीघोडी

७—बुढिया-बुढिया

८—अधे की लकडी

९—चल, चल चमेली बाग मे, आँख मिचौनी, चोर मिपाही, लक्खै लक्खै कौनलक्खै, गेदतडी, खो, विप अमृत।

१०—गुडिया का खेल

ख—त्योहारों के खेल—साँझी, टेमू, चौपई-चोकडी (इसे डंडों से खला जाता है)

ग—ऋतुओं के गीत—सावन, फागुन और कार्तिक आदि (गीत गाना भी मनोरंजन का साधन है)

इनके अतिरिक्त 'चे मे,' आटे-बाटे, बाबा बाबा आम दो—यह सब मनो-

रजन के लिए ही होते हैं। इनमें बालको की विचार-शक्ति को प्रोत्साहन के लिए पद्यबद्ध पहेलियाँ भी होती हैं।

पीली पोखर, पीला अडा, बता तो बता नहीं लगावे डडा
(कढ़ी-पकौड़ी)

इ घँ खूटा, उ घँ खूटा, गोरी गाय का दुद्धा मोठा
(सिघाडा)

इसके द्वारा बालको की बुद्धि कुशाग्र होती है और उनके मस्तिष्क की कसरत होती है।

लडकियों के बाल-गीत—इन गीतों में भाई के प्यार का उल्लेख बड़े चाव और प्यार के साथ किया जाता है। इन गीतों में तैरती हुई अनुभूतियाँ हैं जिनमें बहिन के सुख-दुख साधारण और दैनिक जीवन से संबंधित तो हैं ही किन्तु मर्मस्पर्शी बहुत हैं। उस समय आज की तरह लडकियाँ ब्याह होने तक 'पिया' और 'सैया' के गीत नहीं गाती थी। वह अपने मैके के स्नेह में रत रहती थी।

लडकियों के खेलों में विशेष गुडियों का खेल है। नारी जीवन का अनुकरण विशेषकर गुडिया के खेलों में मिलता है। गुडियों के माध्यम से वह स्त्री-जीवन के हर पहलू का अभिनय कर लेती है तथा इस प्रकार अपने को इस जीवन के उपयुक्त बना लेती है और वह कन्या, वधू, माँ, सभी रूप में अपने को रख कर उसी के अनुरूप आचरण करती है। गुड्डा-गुडियों के विवाह के खेल से ही वह विवाह-सबधी अपने सब रीति-रिवाज सूक्ष्म रूप से सीख लेती है। बालिकाओं के मन व परिस्थिति के यह बहुत ही अनुरूप हैं। इसमें यद्यपि लडके भी भाग लेते हैं पर मुख्य अधिकार इसमें बालिकाओं का ही है। इस समय वह कुछ-कुछ विभिन्न समयों पर होनेवाले विवाह के गीतों को भी गाती है।

बालगीतों में छोटे-छोटे बालको की जानकारी बढ़ाने के लिए पर्याप्त सामग्री इकट्ठी रहती है और उनसे जानवरों के नाम भी सुविधापूर्वक लिए जा सकते हैं—

१. बीबी मेढकी री तू तो पानी में की रानी
कौआ तेरा भाई भतीजा चील तेरी देवरानी
बगुला तेरा छोटा देवर तू कहाँ की रानी

२. सुन सुन सखी पछी का ब्याह था
बगुला बराती आये, जुगनू मशाल लाये

डोर तो खूब बोले, डोमनी बारात गाये
पोदना करे सताई, बुलबुल करे लडाई
जू ही बिल्ली आई—सारी सभा भगाई

यह जानवरो के सबध मे है। इसी प्रकार एक गीत उदाहरण के लिए यहाँ दिनों के सबध मे दिया जा रहा है—

बृहस्पत मेरी दाई, शुक्र की खबर लाई
शुक्र मेरा भइया, मैं खेल्लू घम्मक धैया
सनीचर मेरा नाना, मुझे कान पकड बुलवाना

कुमारी कन्यायो के सावन के गीत भी उन्ही के अनुरूप होते है। सावन के आते ही उमडते बादलो के साथ बालिकाओ का कोमल स्वर झूले की पैंगो के सहारे गा उठता है। इन गीतो के वर्ण्य-विषय मे भाई के प्रति बहनो का स्नेहार्द्र व सद्भावना विशेष दृष्टिगत होती है औः बहिन के प्रति भाई का अतुल स्नेह तथा बलिदान की तत्परता मिलती है।

यह वर्णनात्मक और सवादान्मक होते है। इनमे स्वल्प शब्दो मे बाल-मनुहार तथा सहायतापूर्ण व्यवहार का बहुत सुंदर अंकन रहता है। बालको के नन्हे हृदय मे छोटी-छोटी बातो से हर्ष और शोक की लहर उत्पन्न हो जाया करती है और वह अपनी उन भावनाओ को अपने विशिष्ट ढंग से ही व्यक्त कर देते हैं।

सावन में प्रकृति प्रेम को प्रकट करने वाला एक गीत इस प्रकार है—

चक्की तले मैंने धनिया बोया हाँ सखी धनिया बोया
धनिये के दो किल्ले फूटे, हाँ सहेली किल्ले फूटे
किल्लो की मैंने गऊ चराई, हाँ सहेली गऊ चराई
गऊओ ने मुझे दुद्धा दीया, हाँ सहेली. .
दुद्धे की मैं खीर पकाई, हाँ सहेली .
खीर पका मैंने बीरन जिमाये, हाँ सहेली .
बीरन ने मुझे चुदडी उडाई, हाँ सहेली. .
चुदरी मेरी झमके, सास मेरी चमके'

इन गीतो मे भाई-बहिन के प्रेम का वर्णन होता है और इन गीतो के द्वारा ही वह जीवन को सफल बनाने से सवधिन समी पाठ पढ लेती हैं—अपने छोटे भाइयो पर मातृवत् स्नेह करती पायी जाती हैं और इसी बल तथा पूँजी को लेकर वह ससुराल जाती हैं—

सावन सूना भैया बिन हो गया जी
 किस्कू बनाऊँ लपझप पूरियाँ जी
 किसकू राधू रस खीर—सावन सूना

लडकियों के खेल सबधी गीतो मे ही साँझी के गीत भी आ जाते है । साँझी घासिक उत्सव भी है और छोटी बालिकाओ के लिए तो यह खेल ही के समान है । इस समय जब वह सध्या को आरती करती है तब भी वह भाई को याद करना नही भूलती—

गोरी री गोरी साँझी भाई गोरी
 आरता का थाल चमेली का डोरा
 गोरा री गोरा मुन्ना भाई गोरा

इस प्रकार वह सब भाइयो का नाम लेकर उन्हे गोरा बताती है ।

लडको के खेल सबधी गीत

टेसू के गीत—शारदीय नवरात्र के दिनो मे सायकाल के समय बालको के समूह, तीन सरकडो के आडे बाँध कर तथा उनके बीच मे सरसो के तेल का एक जलता दीपक और एक सरकड के सिरे पर मिट्टी का खिलौना सदृश मानव शीश रख कर कुछ अपनी रचनाओ का पाठ करते घर-घर माँगते हुए घूमते है, इसे टेसू माँगना कहते है । माँगते समय वह यह दोहा कहते है—

“मेरा टेसू यहीं अडा, खाने को माँगे दही बडा”

लोक-व्यवहार मे टेसू शब्द प्रायः मूर्ख तथा भोले व्यक्ति का संबोधन ही होता है । टेसू (पलाश) का फूल अग्नि के समान लोहित वर्ण का होता है । इसी प्रकार बबरीक का शीश भी प्रतीत हुआ होगा । अतः टेसू बबरीक का प्रतीक हो गया । बबरीक, कृष्ण द्वारा छला गया था इसलिए इस मूर्खता की स्मृति के आधार पर टेसू मूर्ख व्यक्ति कहा गया । इन गीतो जो इस प्रकार है—
 मे हमे सत बानी की उलटवासियो का एक बालरूप दिखायी देता है,

कबूतर यार था मेरा, गया था दूर के घरे
 फसा था जाल के फदे, कि टूटी आम की डाली
 पिलग के चार पाये थे कि रोया बाग का माली
 फिरस्ते लेने आये थे

चलो महामारी समझ के ।

ककड़ कुइयाँ सीतल पानी नौ मन भग उसी मे छानी
 चल बे चट्टे, भर ला लोट्टे, पी पी भग उडायें सोट्टे

इस लौड्डे को चढी तरगी, पीके भग बन गया भगी
उल्टी गाडी उल्टी खाट, ये देखो बिजली के ठाट

इसी प्रकार अन्य गीत भी प्रचलित है। रचना की दृष्टि से टेमू को मुक्तक कहा जाता है। अनेक गीत सामयिक घटनाओ से संबंधित भी होने हे।

एक त्यौहार 'डंडा चौथ' होता है। वैसे तो जीवन के प्रत्येक अंग पर ही 'चौपाई' कही जाती है किन्तु यह अवसर चपल बालको के आमोद-प्रमोद का होने के कारण इनमे अधिकांशतः या तो प्राचीन पौराणिक ऐतिहासिक कथाओ से संबंधित चौपाई होती है या फिर हाम-व्यग्य अथवा सम-सामयिक महत्वपूर्ण घटनाओ का वर्णन रहता है—

आया वसन्तक सुनो सुजान
बिना पढा नर पशु समान
मिलके चहै देय आसीस,
बेटा होंगे नौ नौ बीस

वसंतपंचमी के दिन से मेरठ में होली रग्वी जानी है, वच्चे द्वार पर जाते हैं—

होली मांगे ऊपले, दिवाली मांगे तेल
वसन्त मांगे गुड-चून, पाव ऊपर सेर
होली आई है गजरसत्त खाय कै
यो तो जायेगी नगर पिटवाये कै

साझी के गीत

चैतरो पूतरो नौ नौरता साँझी के
सोलह कनागत पितरो के

चैत में लगाकर मानवें महीने अर्थात् चार के मान में नौ दिन साझी के होते हैं।

आग्नि शुक्ल प्रतिपदा को घर के भीतर अथवा मुख्य द्वार के पार्श्व में खूब लंबी चाट्टी जगह मिट्टी में लीप कर दीवार के ऊपर गावर की एक नारी की आकृति बनाई जाती है और उसे मिट्टी के खडिया व पेवडी के रंगों में रंगकर बनाये पहले व सुनहरी आभूषणा में खूब सजते हैं। यही साझी है, जिसके साथ दायें-बाएँ बहुत सी चित्रकारी की जाती है। साझी के दाहिने हाथ ऊपर की ओर चिड़ियों का वाग बनाया जाता है जिसमें बीस चिड़िये होती हैं, जिनमें दो डोम-डोमनियाँ और शेष दो बामन-वामनी बनाते हैं। बाईं ओर ऊपर एक मोर

और नीचे लकड़ 'साजा' का चित्र रहता है। साझी देवी है—साझी की आरती का गीत इस प्रकार है—

उठ मेरी गबरजाँ पाठ करो

हम आए तेरे पूजन को

नवरात्रियो मे दुर्गापूजा होती है। इससे सिद्ध होता है कि साझी सप्त मातृकाओ मे से ही एक है जिसको कौमारी अथवा गौरी कहा जाता है। साझी लडकियो का त्यौहार है। वही इसकी मुख्य उपासिका है। साँझी की आरती केवल कन्याये ही करती है, यो पूजते उसे सभी है। साझी शब्द की उत्पत्ति खोजने पर दो शब्द मिलते हैं—एक सज और दूसरा सज। पहले शब्द का हे अर्थ चिपकाना और दूसरे का शिव। साझी दीवार पर चौकोर लीप कर गोबर से लगायी जाती है। इसलिए हो सकता है कि सज शब्द से ही स्त्रीलिंग सजा और हिन्दी साझी अथवा साजी शब्द पडा। कहते है कि साझी वर्ष भर मे केवल नौ दिन के लिए अपने घर आती है, बाकी सब दिन तो ससुराल ही मे रहती है। साझी अपने भइया (लकड़) के सग आती है। इसी मान्यता के कारण लोक मे इनको बहिन-भाई के रूप मे देखा गया और साझी के त्यौहार का सबध इनसे कर दिया हे। साझी के अनेक गीतो मे बहिन-भाई की स्नेहभावना का चित्रण हुआ है—

माँ, भइया किधै ब्याहा झबूकना

वो तो, खट्टे डोल्ले ब्याहा, झबूकना

माँ बडअड कैसी आई झबूकना

२— साँझी री माँगे यो हरा हरा गोबर

कहाँ सँ लाऊँ साँझी हरा हरा गोबर

मेरा री बीरा यो लहन्डे मे बैठा वही से लाऊँ ..

साँझी री माँगे थनेस्सर की बेसर

कहाँ से लाऊँ साँझी थनेस्सर की बेसर

मेरा री, बीरा थनेस्सर मे बैठा वहीं से लाऊँ थनेसर की बेसर

ले मेरी साँझी थनेसर की बेसर

साँझी री माँग यो अदलस कहाँ से लाऊँ—साँझी अदलस ..

मेरा री बीरा बनजारो मे बैठा

वहीं ये से लाऊँ 'अदलस'

साँझी री माँग यो हरा हरा चुडला कहाँ से लाऊँ .

मेरा री बीरा सुनारो मे बैठा

वहीं से ल्याऊँ साँझी हरा हरा चुडला

मेरी साँझी ले हरा हरा चुडला
 साँझी री मागें यो पानीपत का बिछवा,
 कहाँ से लाऊँ साँझी पानीपत का बिछवा
 मेरा री बीरा पानीपत मे बैठा, वहीं से लाऊँ साँझी . .
 ले मेरी साँझी—पानीपत का बिछवा,
 साँझी री मागें ये भडकन जूता, कहाँ से लाऊँ .
 मेरा री—बीरा चमारो के बैठा वहीं से लाऊँ भडकन जूता
 साँझी री माँग यो छाज भर गहना,
 ले मेरी साँझी—तू छाज भर गहना

३— चाब दे री चाब दे कुसम की माँ चाब दे
 तू सभे की माँ चाब दे तू सोम की माँ
 चाब दे, तू आशा की माँ चाब दे तू
 तू अरुण की माँ चाब दे
 तेरी पाँचो जीवें चाब दें
 कडवी कचरी, कडवा तेल, बधियो पाँचो थारी बेर
 जाग साँझ जाग, तेरी पट्टियो सुहाग
 तेरे माथ लगै भाग
 जाग साँझी जाग

साझी रखने के अनन्तर नौ दिन तक लगातर लडकियाँ सध्या समय थाली
 मे तेल का दीपक रख कर उससे साझी का आरती करती हैं और उसके बाद
 उसे खील बताशो का भोग लगाती हैं—

साँझी का आरता
 आरता री आरता, साँझी माई आरता
 सजे तेरा आरता
 काहेका दिवला काहे की बाती
 साँझी री क्या ओढ़ेगी, क्या पहरेगी
 मिसरू पहरेगी, स्यालू ओढ़ूगी
 सोने की माँग भराऊँ
 धन्न की साँझी, तेरे माथे लगा भाग
 तेरी पेली पट्टिया सदा हो सुहाग
 उठ मेरी गबरजा, पाठ करो
 हम आये तेरे पूजन को

पूज पुजन्ती का फल पाये

भइया भतीजे गोद खिलाये

भैया है मेरे पाँच पचीस

उक्त गीत मे देवी का स्तवन, गुणगान तथा वर-याचना के तीनो अंग वर्तमान है। देवी आदिशक्ति है, जिससे गायिका प्रार्थना करती है कि उसके भाई का कल्याण हो तथा उसकी वशबेल बड़े। मातृस्नेह के यह भाव सुंदर है—

गोरा रि गोरा

साँझी का मैया गोरा

म्हारे मुन्नू गोरा, म्हारे चुन्नू गोरा

गोरो के बाल झमेल्ले रिमेल्ले

उज्जेल्ले से बरतो वाले बीर हमारे

चेतरो पेतरो नौ नीरता साँझी के

सोलह कनागत पितरौ के

उठ मेरी साँझी खोल किवाड

पूजन आये तेरे बार

पूज पूजाप्पा क्या होगा ?

भाई भतीज्जे सब पर-वार

भाई है मेरे नौ, दस, बीस

भतीजे मेरे पाँच पचीस

देवी की 'कामना' का परिणाम संपूर्ण सम्पन्न परिवार है। जाति-रक्षा से परिपूर्ण मानव-मन अनादि काल से समूह की, शुभ की, सुरक्षा के लिए देवार्चना करता आया है।

साझी की आरती करने और उसके सामने बैठ कर गीत गा लेने के बाद लडकियाँ बेल-बूटे के आकार की अनेक छेदवाली हँडिया के भीतर एक दीपक रख कर टोलियो मे अडोस-पडोस मे साझी माँगने जाती है। इस समय भी वह साझी के गीत गाती है जो ननद और भौजाई की पारस्परिक ईर्ष्या-स्पर्धा के भावों से सबध रखते है। इन गीतों मे मनोरजन का तत्व है।

साझी के गीत—

हल्दी गाँठ गठीली

भइया बहू ऊ हठीली

माँगे सोन्ने का बिन्दा

बिन्दा बैठ गढ़इयो
उप्पर मोरनी बछइयो
तले फूगरू लटकाइयो
ऊ तो मु मसकोडे
उस्का मुगडियो मूँह तोडे

माई बहन से सबधित हास्य-गीत—

भइया रे तू बहण बुलाय
तेरा कुच्छ ना मोंगती
मोंगू तिहल पचास
ओंगी ओम्मे डेढ सौ
गाडी भर के बोझझा^१ ला
हरी हरी मूग दिसावरी
भैंसा मेकी झोट्टीला^२
गायो मे की ओसरला^३
तले बछरुवा चोखती
भइया, तू बहण बुला

लडकी के भाग्य का जो धन होता है, उमे पहुँच जाता है। उसे कोई देने का वृथा दम क्यों करे—ऐसा भाग्यवादी हिन्दुओं का विचार है। इसीसे 'मान ध्यानी' कोई लेने-देने से 'अलसाता' नहीं। लडकी के भाग का जो निकल जाये वही अच्छा है। वैसे भी पैसा हाथ का मैल है।

सास के अत्याचारों का वर्णन—

भैया रे मुझी का दै लडिहार
पानी पिला दे री बहन तिसाये जाँय
नेज्जू टूटी रे गडवा गया पताल
सास बुरी हे रे दै भैया की गाली
भैयो की गाली मत खइयो री
गडुए बिसाऊँ सौ साठ

१ दहेज।

२. स्वस्थ भैंस जो एक दो बार ही व्याई हो।

३ पहली बार का व्याई गाय।

जाग साँझी जाग तेरा बणिये सुहाग
 दिल्ली सहर तँ ब्याहण आये
 मर लियाडी गेहणो ल्याए
 अणक मणक का जुता लाये
 हात्थ रचायण मेहदा ल्याए
 जाग साँझी जाग

साझी सिलाने की क्रिया दशहरा पूजने के बाद की जाती है। साझी दीवार पर से उतार कर लडकियो की टोली गीत गाती हुई किसी पोखर या ताल पर जाकर उसे एक शर्बत तथा दूसरी खीलो की कुल्हिया के साथ 'सिला' आती है। साथ में थोड़े बताशे व खील भर के ले जाई जाती है, जिनको वह साझी 'सिलाने' के उपरान्त आपस में वही बाँट लेती है। कुछ लोगो का विचार है कि साझी का सबध रावण-राम युद्ध के समय श्रीराम द्वारा की गयी शक्ति पूजा से है। राम के रावण पर विजयी होने के लिए राम के साथ-साथ अनेको ऋषियो ने भी शक्ति की पूजा की थी और व्रत लिया था कि रावण की पराजय के पश्चात् ही वह अपनी पूजा समाप्त करेंगे। यह साझी की पूजा उसी काल से लोक-प्रचलित हो गयी, मानो यह तम के ऊपर सत् के विजयी होने के लिए किया जानेवाला अनुष्ठान है। साझी खिलाने जाते समय यह भजन गाते हैं—

कहीं मिल जायें राम चरन लेती

मैं तो बागो गई, राम वहाँ भी ना मिले

मालन से बूझ खबर लेतीं, गई मैं तो तालो .

इसी प्रकार ताल, कुआँ, महलो आदि का नाम लेते हैं।

खड़ीबोली के लोकगीतों
में
समाज
३

भारतीय समाज-शास्त्र, प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त कहीं और दृष्टिगोचर नहीं होता। आधुनिक युग में समाज-शास्त्र को जो नया रूप दिया जा रहा है उसका भारत में सर्वथा अभाव है। भारतीय समाज के चित्र किसी समाज-शास्त्र में तो नहीं मिलते परन्तु सब परम्पराएँ, विरासत, जीवन के आधारभूत सिद्धान्त तथा उनका जीवन-दर्शन लोकजीवन में निहित हैं, यही यदा-कदा लोकगीतों में अभिव्यक्त होता है। इनमें जीवन के सुख-दुख, प्रेम-घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता-मधुरता, आलोचना तथा प्रशंसा सब कुछ निहित रहते हैं।

खडीबोली व लोकगीत, दिन प्रतिदिन के जीवन की गीतात्मक अभिव्यक्ति हैं। इनमें जीवन के बहुरंगे चित्र अंकित किये गये हैं। इनका मूल ध्येय मनोरंजन है किन्तु यह जीवन में बहुत गहरी अन्तर्दृष्टि के द्योतक हैं। यह जीवन के विविध अंग और स्तरों का स्पर्श करते हैं तथा हर देश व काल में उसका यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत कर देते हैं। इन गीतों में कदाचित् ही कोई ऐसा हो जिसमें जीवन को आलोचनात्मक दृष्टि में न देखा गया हो। समाज की प्रत्येक गतिविधि के साथ इन गीतों का संबंध है। प्रभाती से शाम तक व्यक्ति के दैनिक आचारों से लेकर उसके समष्टिगत जीवन के समस्त व्यवहारों का व्यौरा इनमें समाया हुआ है। साधारण से साधारण विषय से लेकर जीवन की गहन समस्याओं और छोटी-बड़ी सभी घटनाओं का लेखा इनमें वर्तमान है। हमारे धार्मिक विश्वासों के मूल पूजा-पाठ की विधियों का ढंग तथा आचरण और जीवन में होने वाले अनेक अनुष्ठान इन गीतों में वर्णित हैं।

गीतों में वर्णित सस्कारों और लोकाचारों के अतिरिक्त बहुत-सी प्रचलित प्रथाओं और धारणाओं के भी उल्लेख मिलते हैं।

लोकगीतों में हम लोक जीवन के हर पहलू का सजीव स्वाभाविक चित्रण पाते हैं। गृहस्थ जीवन का चित्रण सास-बहू, ननद-भावज व सपत्नी के अप्रिय संबंधों का तथा भाई-बहनो, पति-पत्नी, माता-पुत्री, पिता-पुत्र के प्रिय संबंधों का अपने में पूर्ण उल्लेख मिलता है। समाज में किस प्रकार प्रिय व अप्रिय संबंधों से

स्वभाव व सस्कार बनते-बिगड़ते हैं और प्रिय व अप्रिय सपर्क व वातावरण जीवन को सुखी व दुखी बनाने में सहायक होता है। विशेषतः नारी जीवन की तो सम्पूर्ण व्याख्या ही इनमें मिलती है। इन गीतों में जिस सभ्यता-संस्कृति, आचार-विचार, एवं रीति-रिवाजों का उल्लेख मिलता है वह अक्षरशः सत्य होता है। उसमें असत्यता, अतिरजना तथा अस्वाभाविकता का तो कहीं स्थान भी नहीं होता। इन गीतों में न कला है न भाषा-सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बड़ कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए, लोक मानव ने गाया है। चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं, जिस समय अन्तर को जो भी स्पर्श कर गया तुरन्त वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बन कर फूट पड़ा।

हर प्रान्त के गीतों में उस प्रदेश की संस्कृति व सभ्यता झॉकती रहती है। उससे बिना प्रभावित हुए उनका निर्माण होना संभव नहीं। यहाँ इन गीतों के द्वारा खड़ीबोली प्रदेश के जीवन के रीति-रिवाजों का तथा उनके समाज का सच्चा स्वरूप भी देखने को मिलता है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के होते हुए भी इसमें भारतीय संस्कृति के अनुकरणीय अथवा आदर्शात्मक उल्लेख भी हैं। परम्परा से चली आती हुई प्रथाएँ स्वभाव बन जाती हैं, इस सत्य का लोकजीवन में तथा लोकगीतों में ही दर्शन होता है।

यहाँ पर सर्वप्रथम हम समाज में जन्म से अतः तक नारी की वास्तविक स्थिति पर विचार करेंगे।

हिन्दू समाज में पुत्रजन्म एक बहुत ही हर्षोल्लास का क्षण होता है परन्तु ठीक इसके विपरीत ही पुत्री-जन्म की स्थिति होती है। उसके जन्म से ही विषाद का वातावरण छा जाता है। नारी के रूप में कन्या का जन्म आरम्भ से ही समस्या लेकर चलता है। समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है तथा उनके जीवन का क्या मूल्य आँका जाता है, यह कौन नहीं जानता। बहुत कम लोग नारी जीवन का उचित मूल्यांकन करते हैं। नारी, नर की पूर्णता ही नहीं उसकी जननी भी है। सर्वप्रथम पुत्री के जन्म में हर्षोल्लास मनाने का उल्लेख कहीं पर भी नहीं मिलता वरन् इसके विपरीत उसका जन्म तो एक प्रकार की 'डिग्री' समझा जाता है और प्रायः उसकी उपमा 'अधेरी रात' से दी जाती है। जिसका जन्म ही निराशा और शोक की सघ्या में होता है, उसके भविष्य के उज्ज्वल होने की कैसे आशा की जा सकती है। कन्या से सबधित तो कई कहावतें भी बन गयी हैं। एक नहीं दो मात्राएँ, नर से भारी नारी, भले ही वह अपने घर की लक्ष्मी हो पर माँ-बाप के यहाँ उसकी कैसी बिडंबना है, इसकी अनुभूति होती है जब हम सुनते हैं—“मगवान दुश्मन को भी “बेटी

न दे"। विटिया ज्यो-ज्यो बटनी जाती है अभिभावक चिन्तित हो उठते हैं और वह चिन्ता समाप्त होती है विवाह के बाद। इसका कन्या के मन पर, उसके शारीरिक व मानसिक विकास पर, दूषित प्रभाव पड़ता है तथा उसका व्यक्तिगत अधूरा रह जाता है। अगर उसे समाज की यह उपेक्षा जीवन के प्रथम चरण में ही न मिले तो वह कितनी उन्नति कर सकती है, उदाहरण के लिए वर्तमान समाज की शिक्षित कन्या को देखा जा सकता है जिसका कि पालन-पोषण लड़कों के समान ही होता है, उनमें आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान आदि की भावनाएँ मिलती हैं तथा उनके व्यक्तित्व का विकास भी स्वस्थ रूप में होता है। किन्तु इसके विपरीत लोकरूपा समाज की ग्रामीण कन्या अशिक्षित है उनके दृष्टिकोण सीमित है तथा रुढ़िवादी है। कन्याओं का विवाह साधारणतः छोटी ही अवस्था में कर दिया जाता है। किसी कन्या का विवाह अगर किसी कारणवश छोटी ही उम्र में नही हो सके तो लोग उँगली उठाते हैं—

“ओड़ कवारी फिरँ बाप कै, क्या तेरा बाबल डोट्टे में
पँहर के माँ फिरँ घूमरी ”

इस प्रकार की बातों का मनने-मनते लड़कियाँ अपने जीवन का सारा समझने लगती हैं और उनके कोमल हृदय में असमय ही विवाह की डच्छा उत्पन्न हो जाती है। वह भी घर के अन्य प्राणियों की भाँति विवाह ही को जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझती हैं—

बारा बरस की मैं हुई री अबलो ना मेरा व्यह करा
दिल्ली भी डूढ़ी अर आगरा भी डूढ़ा, कहीं ना पाये भरतार
पक्का मंदरसा उसका रे जिसमें पढ़ै भरतार

यहाँ लड़की अनुभव करती है कि उसके विवाह में देरी हो रही है जिसके लिए वह माता-पिता को दोष देती है। समाज की कुप्रथा और दाल-विनाश के विरोध में भी गीत मिलते हैं—

“छोटे से बलमा मोरे आँगना में गिल्ली खेले”

तथा

रतन कटोरी धी जलै, अर चूल्हे जलै कसार
घूघट में गोरी जलै, जिसके पाये भरतार

प्रायः अनमेल विवाहों का कारण लोभ ही होता है। लड़की कार्मिक शब्दों में कहती है—

माया के लोभी बापणे, बुड्डे को व्याहा दई रे
बुड्डा तो चला नौकरी मैं केल्ली रह गई रे

एक स्थान पर वृद्ध से विवाह हो जाने पर एक रूपगर्विता लडकी अपने माता-पिता को दोष देते हुए कहती है—

माता पिता मेरे चूक गये, आँख मोच माही की
चूर चूर कर दिया नूर मेरा, बुड्डे के सग व्याही

विवाह के पहले उसका क्षेत्र घर ही में होता है । वह प्रायः अशिक्षित होती है और स्कूल-कालेज में पढ़ने न भेज कर अपने घर में ही दादी-माँ उन्हें गृह-कार्यों में निपुण कर देती है । इन्हें घर में रह कर भी कार्य करने की तथा सामाजिक जीवन बिताने की शिक्षा मिलती है । उनका मन विवाहित जीवन व गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार किया जाता है तथा उनको आदर्श-सहिष्णु कर्तव्यमय तथा त्यागमय जीवन बिताने के ही उपदेश मिलते हैं । माँ कहती है—

“तू कहना मेरा मान लाड्डो, चाली को अपनी सिमाल मेरो लाड्डो”

तथा ।

सामरे के जाणा वेव्वे हाथ दिये का खाणा होगा
हो रे री घूघट में दुख रोणा है रे बोव्वो सासरे के जाणा है

विवाह के पश्चात् गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने पर वह पति की सहधर्मिणी होती है, अतः उसको भी नियमानुसार कर्तव्यवर्म और पुरुष के समान ही आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिये । परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसी बात नहीं पायी जाती । लोकगीतों में प्रेम-पद्धति के प्रकरण में यह मिलता है कि किस प्रकार लोकगीतों में वर्णित प्रेम एकपक्षीय है । जहाँ स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति अगाध प्रेम है, वहाँ पुरुष के मानस में एक बिन्दु भी नहीं । इसी प्रकार के चित्रण समाज में स्त्री के गिरे हुए स्थान के भी द्योतक है । इन गीतों द्वारा पुरुष का पूरा अधिकार स्त्री पर दृष्टिगत होता है ।

नारी आजन्म पराश्रित रहती है इस कारण उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व ही नहीं होता, समाज के द्वारा उसके हृदय में ऐसे भाव स्थान कर लेते हैं जिससे वह एक बार भी विद्रोह न कर सके । वह विवाह के समय अपने पिता से कहती है—

काहे को व्याही बिदेस रे लखी बाबल मेरे
हम तो रे बाबल तेरे खूटे की गइया जित बाँधो बंध जाये
भइयो को दीन्हे महल दुमहले तो हमको दियो परदेस रे

इन पक्तियों में कन्या की परम्परागत परवशता का अभास मिलता है । उनका कोई निजी अस्तित्व नहीं, वह स्वयं ही अपने को लखपती बाप की खूटे की गइया

समझती है, जिसका अस्तित्व उसके पालक की इच्छा पर निर्भर है। इस गीत में नारी की विद्रोहात्मक ध्वनि मिलती है जो दबी आवाज में विद्रोह कर रही है कि उसके भाइयों को तो महल-दुमहले दिये गये हैं और उसे परदेस दिया गया है, उसे भी क्या नहीं निकट रक्खा गया।

रात्रि-चन्द्र-गीतन में प्रवेश करने पर भी वह सदैव सुखमय मित्र नहीं होता और उसे शाश्वत पारिवारिक ईर्ष्या द्वयोः पडना है। सम्मिलित परिवार में पारम्परिक स्नेह और विरोध पाया जाता है। उन्मत्त सन्तानैक चित्रण मिलता है, बहू कहती है—

घर ससुरा लडै, घर सासड लडै
घर बालम लडै, मेरी कदर घटी
पास पैसा हो तो जहर खा मरूँ
आँगन में कुआ हो तो डूब मरूँ

रात दिन के इसी क्लेश में छुटकाग पाने के लिए वह अन्त में मृत्यु परिवार से मुक्त होना चाहती है तथा अपने सुग्री स्वतन्त्र परिवार की कल्पना करती है—
“मैं न्यारी होऊँगी, मेरा न्यारी का करो इनाजाम।” अगर वह किसी प्रकार अग्राहने में लगती है तो उन अनागत का पनि भी तो उस पर अत्याचार करता है कितनी विवशता है। “पराई नाग के पीछे पिया परदेश में छाये” इन गीतों में नारी के आर्थिक परतन्त्रता का भी आभास मिलता है।

नारी की यातनाएँ अभी भी समाप्त नहीं होती हैं। अगर वह दुर्भाग्य से बध्या प्रसूति होती है तो उसकी समाज में, विशेषतया स्त्री समाज में बहुत ही शचनीय स्थिति हो जाती है। नारी का व्यक्तित्व सर्वप्रथम मातृत्व पद प्राप्त करके ही उभरता है, बध्या होना समाज में स्त्री के लिए सबसे बड़ा अभिशाप और विटम्वन्ता है। समाज में स्त्री का आदर पुत्रवती होने पर ही निर्भर है। एक यही अवसर होता है जब कि वह स्वयं ही अपने को महत्व देती है तथा अपने जीवन का उचित मूल्य आकती है। जीवन में प्रथम बार ही इसी अवसर पर वह सौभाग्यवती समझी जाती है। इसके प्रमाण पुत्रोत्सव पर गाये जाने वाले गीतों में मिलते हैं—

“धन धन सावित्री की कोख, राग सुहाग भरी जिन्ने जाये विजय सिंह पूत”

इसके विपरीत पुत्रविहीना स्त्री को समाज में तिरस्कृत दृष्टि से देखा जाता है और हर प्राणी उसकी उपेक्षा करता है, उसे अपराधिन समझा जाता है और उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं होता। उसके दुख के साथ किसी को सहानुभूति नहीं होती और उसको व्यर्थ वाणों से समय-समय पर बीबा जाता है।—उसके पति

दूसरा विवाह तक कर लेता है । लोकगीतो में बध्या की स्थिति के दुखों का बहुत ही कारुणिक वर्णन मिलता है । कभी-कभी तो स्त्री के त्याग की चरमसीमा दिखायी गयी है । जब वह अपने बध्यापन से अवगत होती है तो पति को स्वयं सहर्ष पुनर्विवाह कर लेने का सुझाव देती है, यह हिन्दू नारी के चरित्र की विशेषता है । हिन्दू नारी के त्याग की सीमा इन लोकगीतो में ही दृष्टिगत होती है—

बिण मांगे मोती मिलें मांगे मिलें न भोख

बिण मांगे सच्चे झलके बिण पुतर माता तरसै

राजा जी तम करवा लो दूजा व्याह, सादी से मतणा नाट्ठो जी

यद्यपि पत्नी के लिए इससे बढ़कर दुख दूसरा नहीं हो सकता कि उसके जीवित रहते सपत्नी आ जाय, कहते हैं—‘सौत बुरी कच्चे चून की’ इन गीतो में कर्णरम की प्रत्यक्ष धारा प्रवाहित होती है । नारी यहाँ स्वयं ही अपने पति को दूसरा विवाह करने का सुझाव देती हुई मिलती है और कहती है—

तम अपना व्या करवा लो, साज्जण म्हारे मारो कटार

दिल्ली से अगन मगवा लो सज्जण धुर जमण जल नीर

हमको ठोक जला दो साजण, घर हिरदै पै धोर

बिण पुत्तर पटण फकीरी, बिण कथा कैसी नार

पुत्र और पतिविहीन स्त्री को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है और उसका कारण आर्थिक ही होता है । ‘बिण कथा कैसी नार’ यह भावना लोक समाज में बहुत प्रबल है । भारत के जन समाज में विधवा का स्थान बहुत ही दयनीय है । पुरुष अनेक विवाह करने में स्वतंत्र था पर कन्या का, बाल-विधवा होने पर भी दूसरा विवाह नहीं हो सकता था । स्त्री-विहीन पुरुष के लिए समाज का कोई नियंत्रण नहीं पर पतिविहीन नारी के लिए और विधवा के लिए बहुत कठोर नियम बनाये गये हैं, उसकी आर्थिक और सामाजिक दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती है । लोकसमाज व हिन्दू समाज में विधवा होना एक बहुत बड़ा अभिशाप समझा जाता है । इसके अतिरिक्त वह अशिक्षिता होने के कारण शेष जीवन भर आर्थिक स्थिति से पराधीन हो जाती है । समाज में उसका स्थान उपेक्षणीय हो जाता है और विवाहादि मंगल कार्यों के अवसर पर तो वह अस्पर्श्य ही समझी जाती है । अनेक सामाजिक सबधों के विषय में स्त्रियों के मनोभाव लोकगीतो में मिलते हैं ।

पुरुष के स्वभाव की विशेषता है कि वे स्वयं चाहे कुछ भी करे लेकिन उनका शक्ति हृदय स्त्री को किसी से भी बात करते नहीं देख सकता, वह उस पर अत्याचार करता है । उदाहरण के लिए—

“नाड तेरी काट्टगॉं री गलियो में खड़ी बतराई ”

इन्हीं पारिवारिक झगड़ों के कारण वह भाग्यवादी हो जाती है जिससे उसको कुछ शांति मिलती है—

करमगती होकै रहती है, भाग गती होकै रहती है

लिवखे अकूर विरमाके, मिटाये ना मिटै री बहना

चिद्दी हो तो बाँच भी दे, तेरा करम न बाँचा जा

सामाजिक सबधों में हमें प्रिय और अप्रिय दोनों ही प्रकार के सबधों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है—माता-पुत्री, पिता-पुत्र, बहिन-भाई, सास-बहू, ननद-भावज, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी, बिरहिणी तथा मपत्नी। इनमें भारतीय आदर्शना, स्वभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता मिलती है। इसमें सबधित बहुत से मुदर लोकगीत मिलते हैं जो अवसर विशेष के होते हैं तथा इस प्रबध में ही वर्गीकरण के अनुसार दिये गये हैं। भाई बहन से सबधित गीत, विवाह में मात के गीत, पुत्री के विवाह व बेटों की विदाई के अवसर के तथा भावन आदि के गीतों में सामाजिक भावनाओं का निर्दोष वर्णन मिलता है। रूचिकर सबधों का उल्लेख जिनका लोकसमाज में अभाव नहीं है पर इसके विपरीत कुछ अरूचिकर सबधों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें प्रमुख वाही है—सास-बहू और ननद-भावज से सबधित गीत। इन दोनों ही सबधों का शाश्वत झगड़ा है जिनका अध्ययन करने पर बहुत से स्वभाविक कारण मिल सकते हैं जिनमें से प्रमुख कारण ये हैं कि सत्ताधारी पुत्र-प्रसू-माता की अधिकार शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है। युवक पति, पत्नी में अधिक भावनाओं का साम्य अनुभव करता है तथा यदा-कदा अपनी माँ तथा बहिन से भी उपेक्षा कर जाता है। पत्नी भी पति का सहारा पाकर सास की धारणा के अनुसार नहीं रह जाती, यद्यपि प्रारम्भ में सबधियों का आकर्षण केन्द्र भी बहू ही बन जाती है। नववधू, कुमारी अवस्था में जिस अधिकार के स्वप्न देखा करती है और जब वह क्षण सम्मुख आता है तो वह अपने अनेक अधिकारों को हस्तगत करने का प्रयत्न भी करती है। इसी कारण अन्य सबधों सास, बहू तथा ननद रूठ होने लगती हैं। ननद जानती है कि माँ, बेटों के प्रति अधिक सहृदय हो सकती है इसीलिए वह भी माँ के साथ भाभी का विरोध करती है। इस स्थिति में बहू को बड़ी कठिनाई रहती है। पति की भी स्थिति विचित्र होती है। सास नन्द आदि का विरोध तो अपने पुत्र व भाई के दूसरे विवाह के करवाने तक की सीमा तक पहुँच जाता है।

लोकगीत, जीवन तक ही सीमित नहीं रहने, समाज तथा जाति संप्रदायों में भी उनकी दृष्टि उनकी ही गहरी पहुँचती है। हम सांप्रदायिक झगड़ों को भी इस स्थान पर लेगे जिसके अन्तर्गत लोकमानव का सांप्रदायिक तथा सामाजिक दृष्टि-

कोण स्पष्ट हो जायगा। भारत विभाजन के अवसर पर गढमुक्तेश्वर मे होने वाले उपद्रव के समय का वर्णन लोककवि इस प्रकार करता है—

गढ गगा का हाल सुनाऊँ, चित देकर सुणना भाई
जो कुछ मझे देखा भाला, उसको देऊँ सुणा

सार्वजनिक सकटो मे मँहगी, कन्ट्रोल, युद्ध तथा महामारी का वर्णन भी इन गीतो मे स्थान-स्थान पर मिलता है ।

लोकगीत, दुखमय अनुभूति के मार्मिक एव मनोरजक वर्णन है । मानो इनमे उन घटनाओ की अनुभूति करते हुए भी उसे हँस कर टाल देने का प्रयत्न किया गया है । उदाहरण के लिए मँहगाई से सबधित एक गीत इस प्रकार है—

कैस्सा पड गया काल हमारा
दिवालडा लिङ्ग गया
ढाई सेर के गोहूँ बिकै है छडे ना फटकै जाँय
हमारा दिवाल्ला—

नये-नये फैशन और चाल-ढाल पर बहुत गीत है जिनमे आधुनिकता का प्रभाव है । इनमे पुरानी पीढी के परम्परावादी व्यक्तियो की, नये प्रकार के आचार-विचार पर बराबर टिप्पणी रहती है । नया-नया पानी का नल लगने पर किसी की इस प्रकार की उक्ति है—

“पानी पियतु मेरा जिऊ घबराय फिरगी नल मत गडवाइयो”

इसी प्रकार अन्य आधुनिकता से सबधित उक्तियाँ है जिनसे असतोष ही प्रकट होता है, श्रम का मूल्य कम हो रहा है अर्थ का महत्व बढ गया है ।

काग्रेस का इस प्रदेश मे बहुत बडा प्रभाव पडा । जनता के रहन-सहन, आचार-विचारो पर इसका अत्यधिक प्रभाव पडा । इनसे सबधित अनेक गीतो की रचना लोककवियो ने की जिसमे उनका शुद्ध स्वदेश-प्रेम प्रदर्शित होता है । काग्रेस के समय मे, जिस समय निर्दोष बालको तक पर अंग्रेजो द्वारा गोलियाँ चलाई गयी, उसका वर्णन भी उनके द्वारा यथातथ्य अपनी भाषा मे प्रस्तुत किया गया है ।

स्वतन्त्रता के लिए जनता ने क्या-क्या त्याग नहीं किये । उस काल मे उन्होने स्वतन्त्रता के बाद के लिए जो स्वप्न बनाये, वह स्वप्न साकार होना सम्भव न था और फिर जब उनके स्वप्नो के अनुरूप काम नहीं हुए, सुधार व सफलता उस मात्रा मे न मिल सकी तो उनको असीम निराशा हुई और एक असतोष की लहर उन सब के मन मे उठी, जिसका प्रतिबिम्ब उनके गीतो मे प्रत्यक्ष दर्शित होता है ।

स्वतंत्रता के बाद असतोषी दल ने एक अपना संप्रदाय बना लिया । जो कम्युनिस्ट थे उन्होंने कांग्रेस में अनास्था का प्रचार किया, असतोष की भावना उत्पन्न की और जनता के मस्तिष्कों में विष भरा जिसका प्रतिविम्ब व स्पष्ट प्रभाव हमें जनता के इन सहज गीतों में मिलता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण जनता को राजनीति के दाँव पेच दिखाकर उनमें अधविश्वास के बीज बोये गये व कांग्रेस की बुराई दिखाकर उनको अपनी ओर आकर्षित किया गया । मुन्हले स्वप्न दिखाकर अब उनके अपने स्वतंत्र विचार न होकर उमी के अनुरूप ढल गये । इन गीतों में स्वतंत्रता के बाद के परिवर्तनों का भी उल्लेख मिलता है जिसमें सशस्त्र गीत भी उपलब्ध है ।

लोक समाज में धर्म, जीवन का अभिन्न अंग है, अतः सामाजिक समस्याओं से ही धार्मिक आन्दोलन उत्पन्न हुए, विशेषकर आर्यसमाज का । आर्यसमाज धार्मिक से अधिक सामाजिक आन्दोलन था जिसकी सामयिक आवश्यकता भी थी, अतः इससे संबंधित गीतों को भी दिया है । इस प्रदेश के जिला में आर्यसमाज का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होता है ।

आर्यसमाजी प्रचारकों के गीतों में वीरगुण और कर्णरस की प्रधानता है तथा व्यंग्य शैली प्रमुख है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार के लिए सकेन और जातीय बल बढ़ाने की आवश्यकता पर अधिक महत्व देने का काम इन्हीं का था । हिन्दुओं में इससे जातीय चेतना तो आई किन्तु पर्याप्त जातीय विद्वेष भी बढ़ा । प्रचार के लिए जन-भाषा का आग्रह, क्षेत्र-क्षेत्र में अनुकूल उर्दू और हिन्दी शब्दों की प्रचुरता, लोकप्रचलित छंद, गीत, गजल, रमिया, लावनी, मल्हार, बारहमासा आदि का प्रयोग, लक्षण-व्यंजना से रहित सीधा अभिधा काव्य खंड का गुण दो टूक बान करना, आदि विशेषताओं का प्रभाव काव्य पर भी पड़ा है किन्तु अनेकानेक उन्नीसवीं शताब्दी के मार्मिकता में कमी नहीं प्रतीत होती ।

गीत, मानव हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपने अनुभव डालने में बहुत समर्थ होते हैं । इसी में हर प्रचारक, इन गीतों के माध्यम द्वारा ही अपने मन के अनुयायी बनाये । इन गीतों में आर्यसमाज की उद्देश्य-प्रवृत्ति तथा सुधारवादी दृष्टिकोण का बहुत स्पष्ट चित्रण है ।

लाकसमाज में नारी पर भी इसका कम प्रभाव नहीं पड़ा । उन्नीसवीं में आर्यसमाजी प्रभाव में आकर बध्वा-स्त्री प्रार्थना करती है । जिसका उदाहरण परिशिष्ट में है ।

इन्ही गीतों के द्वारा पातिव्रत धर्म की शिक्षा भी दी गयी है जिसका उदाहरण भी तत्संबन्धी गीतों में मिलता है ।

आर्यसमाज के प्रभाव से जनता की बोली में भी सुधार हुआ । शिक्षा के साथ-साथ उनकी विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ । आर्यसमाजी लोगो की सूक्ष्म दृष्टि से समाज की कोई भी कुरीति नहीं बची । उन्होंने न केवल उसके दोषों का वर्णन किया वरन् उनके समाधान के लिए भी सक्रिय प्रयत्न किये जिनका प्रभाव जनता पर भी पड़ा और इस सब में गीत भी बन गये । इनमें बाल-विवाह, अनमेल विवाह तथा वेश्यागमन की कुप्रथा के उन्मूलन की प्रेरणा भी मिलती है ।

धर्म-परिवर्तन के समय अपना सभी कुछ बदलना होता है, इसका यथातथ्य चित्रण भी इन गीतों में मिलता है । यह गीत मुसलमानों को चिढ़ाने का है जिसको कि हिन्दू गाते हैं ।

अनमेल विवाह जिसके लिए प्रायः माता-पिता ही उत्तरदायी होते हैं—यह बहुत ही अस्फल विवाह सिद्ध होते हैं । एक स्त्री जिसका विवाह छोटी अवस्था के लड़के के साथ कर दिया गया है कहती है—

माँ बाप का क्या बिगड़ा, बालक को व्याह दई री
देवी जात देने को गाँठ जोड़े सा चाले री
ये हसे गाँव के लोग कहै माँ बेटा जावै री
कोठे ऊपर कोठड़ी ननदोई सौवै री
नन्द सोवै रहस में मैं विरह में रोज़ री
एक दिन मेरे पास में सोया सूत कै भर दिया री
मैंने जो ललकारा वो तो फूट के रोया री
बिजली पड़ियो बभना पै औ मारियो नाई री
ऐसे बाप कसाईं तुझ भी सरम न आई री
जो निरदया भैया तैने मार न डाली री

अनमेल विवाह से संबंधित गीत इस प्रकार है—

छोटे से बालमा मुदरी का नगीना रे
बागो में जाऊँ तो वहाँ भी सग चलै
एरी फुलडो में मचल गया री

इस प्रकार एक स्त्री जिसका विवाह वृद्ध से हुआ वह कहती है—

बुढ़े को बेचन भैंना, मैं गई री दिल्ली के बजार
बुढ़े का भारी दुख था
गबरू के उट्टे नौ टके जो कोई बुढ़े का भारी दुख था

इसी प्रकार है—

“सिर पर गठरिया घास की कोई गोदी में हमारे बालमा”

हमारे हिन्दू समाज में विधवा का जीवन एक निःसम्भता है। उसको समाज में और घर पर कहीं पर भी शान्ति नहीं मिलती, इसका गीतों में बहुत ही स्पष्ट और स्वाभाविक चित्रण मिलता है। नारी समाज तथा पुरुष समाज में वस्तुन उसका क्या स्थान है और उसकी स्थिति से लाभ उठाने वाले व्यक्ति उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह भी इन गीतों में दिखलाया गया है।

बहु विवाह की प्रथा और पुरुष की चंचलवृत्ति की ओर मकेन करने वाले गीत भी बहुत मुदर मिलते हैं। वह कहती है—

मेरी गोरी मैं ध्याह करवाय लू तू खड़ी खड़ी रोवैगी
छिन जायेंगे तेरे पिलग पास धरती में तू सोवैगी
मेरे पति तू ध्या करवाये ले मैं लाल खिलाऊँगी
आयेगी मेरी मा की जाई, मेरी कदर बढ़ावेगी
पडे छिन जाओ मेरे पिलग पास, धरती में सो लूगी।

स्त्री व्रज ह, वह दाम्पत्य सुख को भी वल्लभ पुत्र के अनुमान पर न्योछावर करती है।

भारत में ईसाइयों का धर्म भी बहुत ही शीघ्रता से फैलाया गया। ईसाई धर्म के प्रचारक ईशू के गीतों में भारतीय शब्दों व विचारों के माध्यम से ही प्रचार करते थे, यह ईसाइयों की एक नीति थी जिसका जनता पर आशातीत प्रभाव पड़ा। इन गीतों में भक्ति-भाव भी पर्याप्त रहता है।

इन गीतों में ईसाई-धर्म के प्रचार पर विशेष महत्व दिया गया है। इनकी भाषा सरल तथा मिश्रित है जो अस्वाभाविक भी प्रतीत होती है। लेकिन इन गीतों की लय बहुत अच्छी होती है। इसी से इसका खड़ीबोली प्रदेश में, वैसे तो हर जिले में मिशनर्स हैं पर मेरठ जिले में सरधना विशेष प्रसिद्ध केन्द्र है। यहाँ का गिरिजाधर भी प्रसिद्ध है, अतः यहाँ जनता के हृदय में इनके प्रति आतंक भी है और श्रद्धा भी। इसमें प्रभावित भी सबसे अधिक निम्नवर्ग की जातियाँ ही हैं।

इन सामाजिक गीतों में हमें निम्नलिखित बातों का व्यक्ति और समूह की विभिन्न मनोदशाओं और भावस्थितियों के चित्र मिलते हैं—

प्रथाओं, रूटियों और कुरीतियों पर व्यंग्य, प्रेम, शृंगार वर्णन, विभिन्न जातियों में प्रचलित प्रथाओं के मार्केतिक विवरण, टर्पल्लामग्न्य जीवन की झाकियाँ तथा

विवश, आधीन जीवन के चित्र, समाज की दिन प्रतिदिन की गतिविविधियों का मूल्यांकन तथा कलात्मक अभिव्यक्ति भी इन गीतों में मिलती है।

लोकसमाज में आदर्श सतीत्व—लोकगीतों में स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही निर्मल, विशुद्ध एवं पवित्र दिखलाया गया है। विषम परिस्थितियों में पड़ कर शक्तिशाली कामुको को चकमा देकर किस प्रकार स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा की, इसकी कथाएँ भारतीय इतिहास की अमर कहानियाँ हैं। सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने कौन-सा कठोर त्याग नहीं किया। सतीत्व का जो दिव्य आदर्श इन गीतों में चित्रित है, वह ससार में अद्वितीय महत्व रखता है। इसका स्पष्ट प्रमाण चन्द्रावल के गीत में मिलता है। किस प्रकार वह मुगलों के चंगुल में फँस गयी थी और अंत में किसी भी युक्ति से न बचने पर वह आत्महत्या कर लेती है—

“बाल जलै जैसे खेस जलै जी हाड जलै जैसे लाकड़ी जी”

लोकगीतों में जीवन के सभी पक्षों का बहुत विशद और बहुमूल्य लेखा है, विशेषतया लोकजीवन का और स्त्री-जीवन का ऐसा सहज सफल वर्णन किसी भी लोकसाहित्य में दुर्लभ है।

लोकगीतों में स्त्री-जीवन के बड़े ऊँचे आदर्श मिलते हैं। ऐसी स्त्रियों का प्रसंग गीतों में आता है जिन्होंने प्राण देकर भी धर्म की रक्षा की। पातिव्रत-वर्म का बड़ा ऊँचा आदर्श इन गीतों में मिलता है।

सती-प्रथा—प्राचीन काल में भारत में यह प्रथा प्रचलित थी। तब स्त्रियाँ अपने पतियों से सच्चे प्रेम के कारण और मच्ची पतिव्रता होने के कारण स्वेच्छा से सती हो जाती थी। सती होते समय वह सोभाग्यवती स्त्री के सदृश्य अपना शृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थी। इस प्रथा से संबंधित गीत बहुत कम उपलब्ध हैं।

दिव्य की पथा—प्राचीन काठ में स्त्रियों के चरित्र की पवित्रता की परीक्षा लेने के लिए उनकी अग्नि-परीक्षा ली जाती थी। हमारे समाज में सभी बधन व पवित्रता की आवश्यकता स्त्री के लिए आवश्यक है, कारण कि नारी की रचना प्रभु ने ही कुछ इस रूप में की है। इस प्रथा से संबंधित लोकगीत भी बहुत कम उपलब्ध हैं। सीता की अग्निपरीक्षा का उल्लेख अवश्य कहीं-कहीं मिलता है।

लोकगीतों में हमारे समाज के विख्यात तथा कुविख्यात पारिवारिक संबंधों का बहुत ही सजीव चित्रण मिलता है जिनके द्वारा हिन्दू-समाज के पारिवारिक संगठन, संयुक्त परिवार, सामाजिक व्यवस्था तथा आचार-विचारों का पता चलता

है और सामाजिक व सामयिक समस्याओं पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का उल्लेख तो मिलता ही है जिनमें मुख्य है बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह की प्रथा, दहेज प्रथा, शराब पीने की प्रथा, नारी समाज में विधवा तथा बध्या की उपेक्षा। इनके अतिरिक्त कुछ सामयिक समस्याएँ भी होती हैं जिनमें राशन, युद्ध जाने के समय विदाई लेना आदि हैं। युद्ध में जाते समय पत्नी व माँ के उद्गार लोकगीतों में कण्ठरस का संचार करते हैं—माँ कहती है—

दिल्ली मा भरती हो रह्यी
छाट लिये दो लाल
भर भर जिहाज चालते कर दिये
नौकरी जाया ना करते

पत्नी वहाँ की कल्पना से ही मिहर उठती है—

पलटण क मा भरती हो गये
नणदी तेरे बीर
उधर से धूप पड़े री, निचवे तपे जमीन
बीच में फिरते होंगे री नणदी तेरे बीर

लोकगीतों में जन-जन का सुख-दुख मुखरित हो उठता है। गीतों के द्वारा हमें लोकसमाज से संबंधित सभी बातों का परिचय मिल जाता है।

खान-पान, रहन-सहन—खड़ीबोली प्रदेश के निवासियों का रहन-सहन यद्यपि सादा है पर उसकी अपनी विशेषताएँ हैं जिसके कारण वह अन्य प्रदेशों से पृथक् हो जाता है। खान-पान में यद्यपि वह अधिकतर शाकाहारी ही है पर दूध, घी, चावल, दाल आदि का उल्लेख मिलता है। खाने का व रहन-सहन का स्तर पश्चिमी जिला में, पूर्वी जिलों की अपेक्षा अधिक अच्छा है इसका कारण है यहाँ की भौगोलिक स्थिति। इसी में यह अधिक समृद्ध प्रदेश है। गीतों के द्वारा प्रतिनिधित्व के समय तथा विवाह आदि अवसरों पर पृथी, पकवान, मीठे चावठ, गीर, गेहूँ की रोटी हलवा आदि का उल्लेख मिलता है। जाग में इनका मुख्य अनाज मक्का व बाजरे की रोटी, सरसो चने व वथुए का साग, गुड मट्ठा तथा मक्का आदि हैं।

लोकगीतों में आतिथ्य-सत्कार की भावना का प्राबल्य मिलता है। जिसका प्रमाण लोकगीतों में 'सोने की थाली', सोने का गडवा' आदि का उल्लेख है—

सोने का गडवा, गगाजल पानी
 न्हिला जा आप घुघटो की ओट
 सोन्ने की थाली मे भोजन परोस्सा

तथा—

“हो मै बेल्ला भर के दूध का ल्याई उप्पर तिरै मलाई”

निम्नवर्ग के लोग जो रूखी रोटी खाकर व मोटा अनाज खाकर अपना पेट पालते हैं, वह भी अपने घर आने पर अतिथि के लिए गेहूँ की पतली रोटी तथा धोआ उडद की दाल तथा पीले चावल बनाते हैं । यह है इस प्रदेश के आतिथ्य का आदर्श ।

वस्त्रो मे लहंगा, साडी, सिलवा, चदरी आदि का उल्लेख मिलता है । रेशमी कपड़ो को अधिक महत्व दिया जाता है । ‘दखनीचीर’ का भी उल्लेख है तथा गाँधी जी से प्रभावित होने के कारण ‘खादी की साडी’ का भी उल्लेख है ।

स्त्री-समाज मे उनकी आभूषण-प्रियता का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है । उनकी दृष्टि मे पति के प्रेम का मापदण्ड आभूषण ही है । लोकसमाज मे स्त्रियो मे आभूषण पहनने का प्रचार भी बहुत है । निम्नवर्ग के लोग जो सोने के जेवर पहनने की सामर्थ्य नहीं रखते, चाँदी ही के आभूषण पहनते हैं । आभूषणो मे जिनका मुख्य उल्लेख मिलता है वह है—झूमर, बिदी, टिक्का, ऐरन, तोडा, निकलस, कडे, छन, पछेली, अगूठी, रमझौल, दस्तबद, तगडी, लच्छे, बिछुए आदि । आभूषण पहनने से इनकी शृंगार-प्रियता की भावना का तथा उनके उच्च आर्थिक स्तर की सूचना मिलती है ।

अग-प्रसाधन—अनेक गीता मे ‘अवरन सार’ तथा ‘सोलहो शृंगार’ करने का उल्लेख मिलता है । चोटी, बिदी, सिन्दूर, माँग भरना, चूडी पहनना काजल लगाना, मिस्सी लगाना, कपडे, जेवर आदि पहनना तथा मेहदी लगाना, यह विशेष शृंगारो मे है । विवाहादि अवसरो पर अवश्य अंगराग, उबटन, तेल, हल्दी आदि लगाने की प्रथा भी प्रचलित है । इन प्रसाधनो मे अस्वाभाविकता कम है पर उनकी कलात्मक और सौन्दर्यप्रियता का पता चलता है ।

लोकगीतो के द्वारा हमे समाज मे प्रचलित मनोरञ्जकता का भी आभास मिल जाता है जो कम है पर यह सावन, होली के गीतो मे चौसर शिकार तथा जुआ आदि खेलने के वर्णन के रूप मे आया है—

राज्जा जी उँच्चै महल चिणा
 ये मोरी रखा दो खाडेराव की जी
 राज्जा म्हारे मोरयो पै तख्त बिछा
 ऐ राज्जा तो राणी चौपड खेलते जी

लोकसमाज का पूर्णरूपेण अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि खडीबोली प्रदेश के लोग का स्वभाव बहुत सरल होता है। यद्यपि वह ऊपर से देखने पर तथा बोलचाल के ढंग के कारण कुछ शुष्क व कठोर प्रकृति के प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में यह छलकपट हीन सच्चे, सम्य, ईमानदार तथा विश्वासपात्र होते हैं।

लोकगीतो मे राजनैतिक पक्ष—लोकसाहित्य का सबब लोकमानस से होता है। जहाँ खडीबोली में हमें जीवन के हर पहलू के सबब में सामग्री मिलती है, वहाँ यह राष्ट्रीय व आधुनिक भावनाओं से अछूती नहीं रही है। यद्यपि ग्रामीण घरेलू कार्यों में व्यस्त महिलाएँ भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग न ले सकी परन्तु फिर भी वह अपना सहजबुद्धि द्वारा समझती अवश्य है और अपना बात को वह कितने सरल व स्वामाविक शब्दों में प्रकट करती है यह वास्तव में सराहनीय है।

ग्रामीण महिलाएँ बापू से बहुत अधिक प्रभावित हैं। यद्यपि अधिकतर महिलाओं को उनके दर्शन करने का सौभाग्य शायद ही मिला है। और उनका संपर्क तो दूर की बात है पर वह बापू की प्रिय वेश्म्या व नहने हुए किमी व्यक्ति को देख कर उनकी आत्मा पिन हो जाती है और उसे श्रद्धा की दृष्टि में देखती है। वह अशिक्षित होने के कारण राजनीति सबबी बातें समझने में असमर्थ रहती है पर फिर भी वह गांधी के जलमे में जाने की उत्सुकता दिखती है और वह अपने प्रिय में साथ ले चलने के लिए आग्रह करती है—

“मैं भी तेरे साथ चलूंगी गाँधी के झलसे में”

अब तक वह रेडियो के नाम से मली माँति परिचित है। चुकी है, अतः वह गाँव में रेडियो लगा देने को कहती है व गांधी जी की मृत्यु के पश्चात् राज्य के भविष्य के प्रति अपनी चिन्ता प्रकट करती है—

अरे दिल्ली से आये एकबार, सहर में रेडी लगा दो

तेरे मरगे महत्मा गाँधी, भइया रे उनका राज सिंभालो

पाकिस्तान का समस्या भी बहुत विकट थी, मुसलमानों का हिन्दुस्तान छोड़ते समय बहुत बुरा लगा था—

देसन उप्पर छोरी रोवं मुसलमान की

धोब्वी की न तेल्ली की ना, असल पठान की

बाबू जी मन्ने टिकस काट दो पाकिस्तान की

गांधी जी की मृत्यु का दुख उनको भी कम नहीं हुआ। उनके दुख का अनुमान उनके गोडसे के प्रति कहे गये इन शब्दों में दृष्टिगत होता है। वह कितने स्वामाविक ढंग से वह उसे धिक्कारती है—

ऐ नातू राम तूणे जुलम करा, कैसे मारा गाँधी
 शान्तिदेवी राज करे थी, आगे लगादी बाँदी
 चूल्हे आगे आट्टा छोडचा, हारे मे छोडचा साग
 गाँधी जी के मारनिया, तुझे कुछ ना आई लाज
 जिव गाँधी की सजी आरथी, झिलमिल झिलमिल होय
 मुगलो ने बखेर करी थी, चढ कर हवाई जहाज

वह सुनापचन्द्र बोम से भ। परिचित है तथा वह कहाँ गये है, इस विषय मे चिन्तित है—

भारत माता तेरे फिकर मे, बाबू चन्दरबोस गया
 बेरा ना पडे कित फिरै भरसता, होकर तेरा पूत गया
 सबसे कहा बीर ने आपस मे तम मेल करो
 फूट गुलामी पडी देश मे, कान पकड करके भार करो
 एक पिता के बेटे हो कै सोच समझ बीचार करौ
 अगरेजो ने खबर पटी थी, एक फौज तैयार करी
 जो फौज आजाद हिन्द की थी सब गिरिफ्तार करी
 सिधापुर मे नेता जी ने मौत सी मारामार करी
 चुगलखोर ने जुगली की थी, म्हारे देस भारत की
 महात्मा गांधी जवाहर नू कहै

म्हारा भरा भराया लाल गया, भारतमाता तेरे फिकर मे. . .

गांधी जी ने ही ख दी का प्रचार किया वठ मली पाँति जानती है—

“है गाढ़ा चलाया महात्मा गाँधी ने”

वह आपस मे खद्दर की पोशाक ही पहनने का प्रोत्साहित करती है—

“खद्दर की पहनी तेहल, सुनहले गहणे”

तथा वह हर नये फैशन के साथ गांधी जी का नाम जोड देती है—

“नवा फैसन चला दिया री महात्मा गाँधी ने”

और भी कहती है—

यू खरा रुपइया चाँदी का

यू राज महात्मा गाँधी का

साधारण दैनिक जीवन के प्रतिदिन की व्यवहार की वस्तुओं मे भी वह गांधी के नाम को जोड देती है। इससे उनका प्रेम ही प्रदर्शित होता है, लोकगीतों को गांधी से लेकर नेहरू तक पहुँचने मे अधिक देर नहीं लगती—

ऐ रेस्सम की साडी मगवा दो साँवलिया
गाँधी का इसमे फोटो लगवा दो
नेहरू का झंडा लगवा दो, भारत की तस्वीर

नये गीता में फिरगी का भी उल्लेख मिलता है —

पैसे का लोभी फिरगिया
धर्ये की गाडी उडाए लिए जाय

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमें अतिरिक्त दश-प्रेम की भावना होती है और उनका पर्वणित करने का उत्साह अपना हा। ढग २ ८ - २९ ११ - के कारण अधिक प्रभावित करता है।

सामाजिक स्थिति तथा नृ-विज्ञान शास्त्र की जानकारी के लिए लक्ष्मीतो म बहुत नामग्रा भरी पड़ी है। समाजशास्त्रा समाज मवय। सिद्धान्त स्थिर करने के लिए विभिन्न सामाजिक समस्याओं, मस्याओं, विचार। और भावनाओं को जानना। चाहेत ह, इस मवय म लक्ष्मीत उनकी बहुत मद्भाग्यता कर सकते है।

हान परिहास के सबध—समाज पारम्परिक मन्त्र का तात्-जाता है। कुछ मन्त्र मन्त्र हीन ह ज। मनुष्य को जावारमन्त्र व्यवहार म निर्दोष रूत से भुक्त कक उस परम्परागत समाज की गर्भा र घुटन से कुछ समय के लिए अलग कर सक। इनके हा अन्तर्गत मजायेया मन्त्र ग-ते है। जहाँ माँ-बाप का मन्त्र गभीर तथा अनुशासनपूर्ण ह, वहाँ इनका भी अपन। विधिष्ट रयान व आकषण होता है। यह सबध सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके द्वारा किये गये हास-परिहासाके द्वारा प्रेम और भी दृढ़ होता है।

मन्त्राकिये रित्ति हम उन्ह ब्रह्मे हं जिन्म शब्दा जाग कुछ क्रियाओं की, एक
-म = - - - - - जनाचित्य का भी क्षम्य समझा जाता है। यदि वही शब्द
अन्य भाषा से कह जाय तो कथ उत्पन्न करके परिवार में वन्देय और अज्ञाति
के वारण बन जायें। लक्ष्मीतो में दर्शित मन्त्रों में देव-भावों की चर्चा एक
गुप्तगुप्ती और मिहर्न नैदा करने वाली होती है। गाने आई हुई दुल्हन अपनी चिर
परिचित माँ का घर छोड़ कर अनजान जगह में जाती है। उसकी साम की भावना
उस पर राव जमाने की होती है। ऐसी हालत में भावों के प्रति मृदु व्यवहार व्यक्त
करने वाला एक ही व्यक्ति होता है और वह है देवर। पति के छोटा भाई देवर का
किसी हद तक परिहास करने की छूट रहती है। देवर भी अपनी भाभी के प्यार
का भोजन रहता है। कभी-कभी देवर-भाभी में यौन संबंध तक भी देखे गये हैं।

लोकगीतों में ऐसे गीत हैं जहाँ देवर अपनी भावज से अनुचित प्रस्ताव कर झिड़कियाँ भी खाता है। देवर-भावज के समाज में तीन रूप मिलते हैं—

१—देवर-भावज का परिहास वाला सबब।

२—देवर-भावज में यौन सबब और पति-पत्नी का व्यवहार।

३—माता-पुत्र का व्यवहार।

प्रायः सभी प्रान्तों में यह देखा जाता है कि अगर बड़े भाई की असमय मृत्यु हो जाये तो छोटा भाई देवर अपनी भार्भी में विवाह कर सकता है। देवर को समाज में भी अर्द्धपति के रूप में माना गया है। समाज की ओर से देवर-भार्भी के सबब मान्यतापूर्ण हास्य सबब है, अतः कोई भी इससे आपत्ति नहीं करता। समाज में इस सबब को मान्यता मिलने के भी विशेष कारण हैं।

स्त्री पुष्प का एक दूसरे के प्रति आकर्षण होना बहुत स्वाभाविक है तथा मनोवैज्ञानिक भी है। माँ-बेटे, भाई-बहिन, पति-पत्नी की तरह देवर-भार्भी या साली-बहनोई का सबब भी पारस्परिक आकर्षण का कारण होता है। इसका कारण यह भी है कि दूसरे परिवार में सबधित किसी युवती के साथ रक्त सबब का प्रतिबध तो होता नहीं, अपितु सीमाओं में ही उन्मुक्तता होती है और एक आकर्षण रहता है जो भावनाओं को निकट ले आता है तथा वह व्यक्ति आत्मीयता अनुभव करने लगता है। यही आत्मीयता कभी-बभी परिहास में फूट पड़ती है, विकृत होने पर यौन सबब में भी परिणत हो जाती है।

देवर-भार्भी को इतने समीप लाने वाली उनकी परिस्थितियाँ भी होती हैं जिनकी विषमता के कारण ही उनमें प्रेम विकसित होता है।

सर्वप्रथम कन्या के दृष्टिकोण से देखिये, वह विवाह के बाद एक अपरिचित घर में आती है। अपना भरा पूरा घर छोटे भाई-बहन का साथ छोड़ कर परदेस में अपरिचित घर में, अपरिचित लोगों के बीच उसे अटपटा सा लगता है वह अपने समवयस्क को खोजती है। जिसमें वह अपने निरंतर साथ रहने वाले भाई का प्रतिबिम्ब देख सके और साथ ही जो उसे हर तरह से समझ सके। पति तो उसके लिए एक पूज्य, देव-तुल्य ऊँची वस्तु मात्र है। जिसका उसको आदर करना है और जिसकी इच्छा के अनुरूप उसे अपने को ढालना है, तथा उनसे तो उसे दैनिक जीवन में भी मर्यादित व्यवहार करना है। निरन्तर पति तथा सास-ससुर, जेठानी, ननद आदि के कठोर नियंत्रण में रहने के कारण उस नव-यौवना के जीवन में कृत्रिमता आ जाती है और वह असमय में ही प्रौढ़ा हो जाती है। श्वसुराल काल के उस कठोर व परतंत्र जीवन के मध्य केवल देवर का सम्पर्क ही क्षणिक उच्छ्व खलता व सरसता

लाता है। यह स्थिति तो तब है जब कि देवर-भाभी की अवस्था में कम अंतर होता है और वह ऊपर तले के माँ-बहिन के समान होते हैं। जिस हास्य सवध का हम उत्पन्न कर रहे हैं, उसका सबध इसी अवस्था से है नहीं तो अवस्था में अधिक भेद होने से तो इन सबधों का रूप ही बदल जाता है। समवयस्क होने के कारण ही भाभियाँ, देवरा का पक्ष लेती हुई मिलती हैं। भाभी, देवर के बहुत काम आती हैं, वह उसके प्रेम सबधों में सहायक होती हैं, उसके लिए दुर्गा का कार्य भी करती हैं। अपने पति से उसकी शादी की सिफारिश भी करती हैं। देवर की चरित्रगत दुर्बलताओं के प्रमाण अनेकों लोकगीतों में मिलते हैं। एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

अबकी के देवर आये लेणीहार
अम्मा एकी माय के दो पूत
जो आया सोई ले गया मेरे राम'

लेकिन राम्ते में कुछ ही दूर पर जाने के बाद देवर के मन में पाप आ जाता है—

बाबल ने फेरी है पीठ, डोला थोड़ा थामियो मेरे राम
देखू भाभी री तेरा सीस, कैसे तो पटियाँ बह रही मोरे राम
देखू भाभी तेरा आग्रा, कैसे तो निबुआ पक रहे जी महाराज
इस घटना के बाद घर पट्टुचने पर वह स्वयं ही साम में कहती है—
रग रस लिया है निचोड

लेकिन अवस्था में अधिक अंतर होने पर देवर-भाभी का सवध मा-बेटे के समान हो जाता है। तब हास्य का इतना प्रभाव नहीं पड़ता। तब तो देवर अपनी भाभी का मानवृत्त्य आदर करता है। इसीलिए भाभी को माँ के समान माना गया है। लक्ष्मण जी कहते हैं—

“भौजी जैसी तूँ-तूँ-तूँ, माता वैसे हम जाने”

लोकगीतों में देवर-भाभी की दानों ही अवस्थाओं का चित्रावन हुआ है। देवर-भाभी के बाद महत्वपूर्ण सवध है साली-बहनोई का। पर उक्त्याम में साली के सवध में लेखक ने लिखा है कि “साली का व्यक्तित्व भगनीत्व तथा प्रेयसीत्व लिये दृश्य होता है।” यह जीजा-साली का सवध बहुत नाजुक मजाकिया व स्नेहपूर्ण होता है। साली के साथ जीजा के मजाक बहुत ही न्यायमगत माने जाते हैं। साली को लोक-समाज में ‘आधी स्त्री’ माना जाता है। इसी से कही कही पर तो साली के साथ यौन सबधों का भी निषेध नहीं। लोकगीतों में जीजा-साली के स्नेह की उपमा बहुत ही उपयुक्त मिलती है।

है। भाभी भी समय-समय पर विपव्यग्य मारती है जिसके प्रमाण मिलते हैं—

‘ना मोरे भाई न बाबा, ना मोरे सगे भइया हो

स्वामी भौजी बोले विष बोल, कलेजे मे साले’

भाभीको अपने परिवार के अनुरूप बनाने का काम ननद का ही होता है जिसके लिए वह हृदय से कृतज्ञ रहती है। वह अपने पति का प्रेम भी प्रायः ननद ही के द्वारा पाती है, जब कि भाभी ननद की मन स्थिति पराये घर जाने के लिये तैयार करती है। अतः उस रूप में दोनों ही एक-दूसरे की परामर्शदायिनी व पथप्रदर्शक होती है।

यद्यपि समाज में ननद-भावज का सम्बन्ध कटु सम्बन्ध में दिखाया गया है, पर अपवादस्वरूप इनमें परस्पर स्नेह भी मिलता है। उदाहरण के लिए—

“ननद मुख चूमै हो।”

समाज में हास्य-सम्बन्धों में देवर, भाभी, साली, वहनोई, ननद, भौजाई, आदि के अतिरिक्त दामाद के साथ भी हास्य सम्बन्ध होते हैं। मामी-माज्जे, समधी-समधिन, मलहज-नन्दोई, भाभी की वहन, जीजा के भाई आदि में भी मजाकिये रहते हैं जिनका गौण स्थान है।

लोकगीतो में भावाभिव्यजना तथा कलात्मकता—

यदि लोकगीतो के सबध में कहा जाये कि लोकगीतो में भावनाओं की सर्गिता बहती है तो उचित्थोक्ति न होगी। वास्तव में लोक कवि के पास सिवाय भाव-पक्ष के और था ही क्या, उसकी कल्पना अपने चारों ओर के उपकरणों में समाहित थी। कला के रूप में टूटे-फूटे तुक त, अनुकात शब्द थे। यदि अलंकार, रस आदि की आवृत्ति लोकगीतो में हो गयी तो वह उसकी कलात्मकता का गुण नहीं कहा जायगा अपितु वह भावनाओं का ही आवेग मात्र था। लोक कवि सुख से आह्लादित होकर भी अपने चारों ओर की वस्तुओं में ही देखता है। दुख के क्षणों में भी उसके चारों ओर के उपकरण ही उसकी मन स्थिति पर प्रभाव डालते हैं। उन्ही भावों को लोक कवि तुकात-अनुकात रूप में अपनी प्रवृत्ति व बुद्धि के अनुसार व्यक्त कर देता है। मन्थ तो यह है कि लोकगीतो में भावना की पैठ ता बहुत गहरी है यदि सहृदय श्रोता इस सर्गिता में डुबकी लगाये तो वह नूतन से नूतन भावनाओं का साक्षात्कार करता चला जायेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि सर्गिता को सुंदर बनाने के लिए उसमें रग-विरगी मछलियाँ तैरती हुई नहीं मिलेंगी।

लोकगीतो में मानवीय जीवन के शाश्वत तथ्यों और सवेगों का पूर्ण रूप से समावेश दृष्टिगत होता है। सहजता और स्वामाविकता इनका अपना गुण है। मानव का भावनाओं के साथ अन्योन्याश्रित सबध है। चिरतन काल से भावना

सहज रूप से मानस में विद्यमान रही है। इसी लिए लोकगीतो का जन्म भी मानव की भावनाओं के अनुरूप अनायास ही हुआ और इसी से दोनों का आपस में सुदृढ़ सबंध बना हुआ है। शास्वत मानव भावनाओं से ओत-प्रोत लोकगीत जन्म से लेकर अत तक पाये जाते हैं। सर्वप्रथम पुत्र जन्म में तथा विवाह एवं सुखसंयोग के समय फिर दुःख और विछोह के अवसर पर श्रमगीतो के रूप में लोकगीतो को हम हर रंग तथा हर छटा लिए उपस्थित पाते हैं। इनमें मानव जीवन के बहुत ही सूक्ष्म भावों का चित्रण मिलता है तथा भावनात्मक रूप से परिष्कृत होता है। मनो-वैज्ञानिक दृष्टि से इनमें अध्ययन की अपार सामग्री है। मनोदशाओं का संपूर्ण और सर्वांगीण सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण अपने स्वाभाविक रूप में अगर कहीं मिलता है तो वह लोकगीतो में ही मिलता है। इनमें बाल-भाव, प्रौढ तथा बूढ़ी भावनाएँ अपने यथार्थ और स्वाभाविक रूप में दृष्टिगत होती हैं। मानव की हर गतिविधि तथा प्रतिक्रिया के मूल में उसके अतर्निहित भाव हैं। गीतो का निर्माण स्वतः भावावेश के क्षणों में होता है। यह भावनाएँ सार्वभौमिक तथा सर्वजनीन होती हैं प्राकृतिक तथा भौगोलिक विशेषताएँ उसमें अंतर नहीं कर सकती। इन्हीं भावनाओं के कारण हम कह सकते हैं कि लोकगीतो में स्थायी भावों का प्रतिपादन भाग भावना से ही होता है, इसी लिए समान भावधारा प्रवाहित होती है। लोकगीतो में भावनाओं का अवस्था-गत भेद भी स्पष्ट दृष्टिगत होता है जो रचिकर भी है तथा अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण भी है। यह अवस्था तथा परिस्थितियाँ भावनाओं में भेद करती हैं। बालको में कुतूहलवश सत्य, प्रेम, भोलापन स्वाभाविक रूप से ही वर्तमान रहता है। नारी-गत सब मनोभाव उसका हर पहलू, स्नेही अथवा ईर्ष्यालु तथा उसका शुक्ल-कृष्णपक्ष, सब ही इन लोकगीतो में चित्रित रहते हैं। पुरुष का वीर तथा अविश्वासी हृदय एवं उसके स्वभाव की अच्छाई-बुराई सभी, कुछ इन गीतो में वर्तमान रहता है। विविध भावों से सबधित बालगीतो, नारी-गीतो तथा पुरुष-गीतो का यहाँ उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, पिछले अध्याय में इनका उल्लेख विषयानुसार हो ही चुका है। यहाँ पर तो हम केवल उसके सैद्धान्तिक पक्ष पर ही ध्यान देंगे।

लोकगीतो में हमें सवेदनशील मानव के ही दर्शन होते हैं जो रचना करते समय अपनी परिधि को केवल मानव तक ही सीमित न करके मानवेतर सृष्टि के साथ भी रागात्मक सबंध स्थापित कर लेता है। संयोग तथा वियोग में प्रकृति से तथा जड़-चेतन से तादात्म्य का वर्णन मिलता है।

गहन अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कुछ न कुछ सूत्र सब स्थानों के लोकगीतो में सर्वमान्य मिलते हैं। प्रेम का मनोभाव सर्वत्र ही समान है, उसमें अभि-

व्यक्ति के माध्यम, देश काल व परिस्थिति के अनुसार भिन्न हो सकते हैं। भाई-बहन का सात्विक निस्वार्थ स्नेह, नारी का त्याग, सयोग, वियोग, प्रेम, घृणा, करुणरस, बेटी की विदाई, विवशता, वात्सल्य की भावना, रागात्मक अनुभूति तथा नारी के कोमल व कटु स्वभाव का चित्रण यथातथ्य समय-समय पर मिलता है।

आदिकाल से प्रारम्भिक मूलभाव तथा मौलिक सवेग तीन माने जाते हैं—वह है भय, प्रेम और क्रोध। यद्यपि इन तीनों भावों में भी बहुत से अंतरभेद और मात्रा-भेद हैं लेकिन इसके अतिरिक्त यह भाव किसी न किसी रूप में उन्हीं तीनों के पुनः विभाजन में मिल सकते हैं। हर भाव एक नाटक के समान एक अपनी विशिष्ट शैली अपनाता है जिसका कोई आरम्भ या अन्त नहीं।

सवेग की परिभाषा देना बहुत कठिन है। वस्तुतः व्याख्या देने से इसे समझना बड़ा सरल है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि दुःख, प्रसन्नता, क्रोध, भय तथा उत्तेजना में भावों का कैसे अनुभव किया जाता है। ऐसी अवस्थाओं को मनोवैज्ञानिकों ने सवेग की मज्ञा दी है। अव्यापको, नेताओं तथा राजनीतिज्ञों के हाथ में सवेग बड़े ही प्रबल अस्त्र है। सवेगों का उत्तेजित करके ही वे वालकों तथा नागरिकों पर अपनी इच्छानुसार प्रभाव डालने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी उसमें दूसरे प्रकार की भी प्रवृत्ति मिलती है। शान्ति, सुख तथा प्यार आदि का अनुभव भी सवेगात्मक अनुभव के अंदर ही गिना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की सवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का अनुभव करता है।

लोकगीत जन-जीवन के बहुमुखी अनुभवों की उपज होती है। इसलिए मानव-हृदय की विविध भावभूमियाँ स्पर्श करते हुए भी वे जीवन की अभिव्यक्ति करते हैं, उसमें कोई विषय वर्जित नहीं रहता। लोक और युग की प्रवृत्तियाँ उसमें सुवर होकर बोलती हैं।

स्त्रियाँ में पुरुषों की अपेक्षा स्नेह की मात्रा अधिक होती है। स्त्री का प्रेम धुवनाम की भाँति अटल दिखलायी पड़ता है। चाँदी और मोने के टुकड़ों से इस स्वाभाविक एवं अकृत्रिम स्नेह को खरीदा नहीं जा सकता पर पुरुष का, रूप-सौंदर्य उसे मुग्ध कर सकता है।

लोकगीतों में जीवन के कठिन अवसरों में नारी-प्रेम की अजौकियन की परीक्षा हुई, परन्तु फलस्वरूप लोकोत्तर त्याग और सहनशीलता ही सम्मुख आई।

इन मूल सवेगों में मनुष्य पशु के निकट आ जाता है यद्यपि पशु में इनका रूप बहुत स्पष्ट है। यह तीनों सार्वभौमिक हैं। इनमें वात्सल्यभाव बहुत प्रमुख है। सब सवेग जन्म के साथ ही उत्पन्न होते हैं। संगीत सब कलाओं में सबसे अधिक

सवेगात्मक है, अन्य किसी भी कला की अभिव्यक्ति का संगीत के समान गहन प्रभाव नहीं पड़ता है।

मनुष्य की मनोवृत्तियाँ जटिल तथा दुरूह हैं, उनमें शृङ्खला तथा नियम निकालना सरल नहीं। हमारी प्रवृत्ति सदा एक सी नहीं रहती। अतर्भक्ति आत्मर्चितन, वाह्य जगत् प्रवृत्तियों की अनेक रूपता के साथ साहित्य में भी अनेक रूप हैं। मानव-स्वभाव के मूल में भावात्मक साम्य होता है। अतएव साहित्य में भी अनेकरूपता के होते हुए भी भावनामूलक समता दिखायी देती है।

भय, प्रेम और क्रोध न केवल सवेग हैं वरन् प्रवृत्तियाँ भी हैं। साधारण स्वस्थ मनुष्य में इसका समावेश होना आवश्यक है। वस्तुतः जिस मनुष्य में यह भावनाएँ स्वाभाविक नहीं हैं, वह अस्वस्थ है। स्वाभाविक असंतुलन का कारण इन्हीं भावनाओं को अस्वीकार करता है।

यह भावनाएँ स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं हैं। प्रत्येक का भिन्न भावात्मक प्रत्युत्तर है। इनकी अच्छाई या बुराई इस पर निर्भर है कि भावनाएँ समाज में किस प्रकार अपनायी जाती हैं।

हमारे लोकगीत, लोक-जीवन के सारे तत्वों को उभारने वाले, उन पर प्रकाश डालने वाले तथा सीधे-सादे सच्ची भावनाओं को प्रकट करने वाले गीत हैं। इनमें जीवन की अनन्तता मिलती है।

स्त्रियों के गीतों में करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती रहती है। करुण-रस का स्थायीभाव शोक होता है। इनमें वात्सल्य का भाव भी प्रकट होता है। सवेगों से हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य का प्रारम्भिक उद्देश्य सुख की इच्छा तथा कष्ट से बचाना है।

सभी सवेग सर्वप्रथम अंतर से उत्पन्न होते हैं। साधारणतः प्रकृति से निकट का संपर्क होता है, प्रकृति से उसका तादात्म्य होता है और भावनात्मक सबंध भी होता है। वह ऋतुओं के अनुसार उसके साथ आनन्दानुभूति का अनुभव करता है। यह न केवल भय उत्पन्न करता है वरन् उत्साहवर्धक भी है। यह मनुष्य के सुख दुःख को प्रभावित करता है, इसी कारण वह मूर्तिमान किये जाते हैं। इन भावनाओं का पूर्ण उद्रेक ऋतुओं के साथ मिलता है।

प्रेम यद्यपि स्वाभाविक रूप में ही आरम्भ हो जाता है पर विरह में इसके कष्ट का अनुभव होता है। इन गीतों में प्रेम की धारणा आदर्श है। प्रिय का हृदय, मंदिर के दीपक के समान शान्ति से जलता है। प्रेम में प्रेमी अपना अहं भूल जाता है और वह अपने अस्तित्व को अपने प्रेमी में ही खो देता है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी जीवन-दर्शन होता है। ससार में दो प्रकार

के प्राणी है—एक वह जिनका जीवन यत्रवत् है जो कभी जीवन और ससार के प्रति गभीरतापूर्वक नहीं सोचते, दूसरे वे लोग हैं जो जीवन मे भी अर्थ खोजते हैं। इन दो के बीच की स्थिति है जन साधारण की, जो न तो शब्द के वास्तविक अर्थ मे दार्शनिक ही है पर वह दुख उठाता है और जहाँ उसका पीडा से साक्षात्कार होता है, वही दार्शनिक हो जाता है। वह सृष्टि की उत्पत्ति के सत्रय मे चिन्तन नहीं करता, आदि-अंत का चिंतन उसका विषय नहीं होता है। वह जीवन को ठीक उसी रूप मे लेता है जिस रूप मे उसे प्रकृति से मिलता है। यही धारणा उसके पूरे जीवन मे प्रवाहित रहती है जिसके कारण वह न केवल सघर्ष करता है वरन् धैर्यपूर्वक सहता भी है और तटस्थ होकर प्रकृति के उपक्रम को देखता है। अभावो और कष्टो मे भी वह कभी निराश नहीं होता। वह कर्मण्य रहते हैं इनी मे उनमे नैराश्य की भावना नहीं मिलती।

लोकगीतो मे हम इन शाश्वत तथ्यो और सवेगो का समावेश पूर्ण रूप से पाते हैं। लोकगीत भावना प्रधान काव्य है जिसमे सहजता और स्वाभाविकता दृष्टि-गोचर होती है। उदाहरण के लिए प्रेम के अभाव मे रोष व भय का उल्लेख गीतो मे बहुत मिलता है। प्रेम का हर प्रकार का स्वरूप मिलता है। यह भाव अपने व्यापक रूप मे मिलते है। प्रेम के विभिन्न पात्र माँ-बहन, प्रेमिका, पत्नी तथा बेटी, सभी रूपो मे अपने पूर्णरूप और आदर्श रूप मे मिलते है तथा इसके अपवाद भी मिलते है। लोकगीतो मे वर्णित प्रणय तथा अश्लील गीत अपेक्षाकृत कम हैं। जीवन की सत्यता और गभीरता उसमे मिलती है। प्रिय की अनिष्ट की कल्पना का भय सौत के प्रति ईर्ष्या मिश्रित रोष बहुत ही स्वाभाविक रूप मे चित्रित किया गया है। मनुष्य की यह सहज प्रकृति है कि हमे जिनके प्रति आकर्षण होता है और उनके प्रति हमारी स्वीकारात्मक प्रतिक्रिया (Positive Reaction) होती है और जिनके प्रति विकर्षण होता है, उनकी ओर (Negative) नकारात्मक प्रतिक्रिया होती है। भावनात्मक सुरक्षा के अभाव मे हमे वाह्य जगत् से भय प्रतीत होने लगता है। यह हमारा अपना ही प्रक्षेप (Projection) होता है।

मानव सामाजिक प्राणी है। यह भाव मूलरूप मे आरम्भ ही से विद्यमान रहता है। आदि मूल भावनाएँ दो है—विस्तार तथा सकोच की। विस्तार के अन्तर्गत रति, प्रेम और घृणा आ जाते है तथा सकोच के अन्तर्गत भय, रोष तथा ईर्ष्या। अन्य सब भाव इन्ही के विकास और प्रसार से उत्पन्न हुए है जिनके उदाहरण हमे पुत्रजन्म सबधी गीतो मे, विवाह के गीतो मे तथा फुटकर गीतो मे भी उपलब्ध है। इनके उदाहरण परिशिष्ट मे प्रसंगानुक्रम से दिए गए है।

यह शाश्वत भाव लोकगीतो मे इतने सहज और स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत

है कि उनका श्रोता व पाठक के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ता है और वह उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इसी कारण यह भाव और भी दीर्घजीवी हो गये है तथा अधिक शाश्वत प्रतीत होते हैं। यह स्थायी भाव के रूप में हर प्राणी में विद्यमान रहते हैं। केवल उनको आवेगात्मक स्थिति में आने की परिस्थिति आनी चाहिये।

गीतो में भावों का चित्रण किस प्रकार हुआ है, इस पर भी कुछ प्रकाश डालेंगे। मानवीय भावनाओं का लोकगीतो में बहुत ही स्पष्ट सहज तथा स्वाभाविक वर्णन होता है। मानवीय भावना अपने पूर्ण रूप तथा स्वस्थ रूप में मिलती है, वह जीवन का एक अंग होती है। लोकगीत में जीवन से, यथार्थ से पृथक् भावना केवल भावना के लिए नहीं मिलती। इसी कारण लोकगीतो में भावना का शुद्ध रूप दृष्टिगत होता है। अपने में यह अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है तथा हृदयग्राही होता है। उदाहरण के लिए, मानवीय मूल भावनाओं (प्रेम, रोष, भय) के सबब में गीत मिलते हैं। प्रेम बहुत व्यापक और शाश्वत भाव है—ससार की नींव उसी पर आधारित है। लोकगीत की आधारगिला भी उसी पर टिकी है। प्रेम का प्रथम दिग्दर्शन हमें पुत्र-जन्म सबधी गीतो में मिलता है—माँ का बालक के प्रति स्नेह तथा उसी समय की ममता बहुत शुद्ध स्वाभाविक तथा गहन होती है और अतुलनीय होती है। जन्म से पहिले ही यह भावना प्रस्फुटित हो जाती है और धीरे-धीरे बीज के अकुर होने और फिर पौधे और फल-फूल के रूप में आने तक यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। फिर ज्यो-ज्यो बालक बढता जाता है, सपकों के साथ-साथ स्नेह भी दृढतर होता जाता है और उसकी चरम सीमा मिलती है। कन्या के विवाह के अवसर पर माँ-बाप कितने स्नेह विह्वल हो जाते हैं और वही प्रेम फिर दुख का स्थान ले लेता है। अपनी लाडली बेटे के लिए बर खोजते समय तथा कन्या के विवाह सबधी गीतो व विदाई के गीतो में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है। विवाह के बाद दाम्पत्य-जीवन में प्रेम का उत्कर्ष रूप मिलता है। अत्यधिक प्रेम ही असफल होने पर तथा उचित प्रत्युत्तर न मिलने पर कभी-कभी ईर्ष्या का रूप ले लेता है। इसके भी लोकगीतो में पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं।

लोकगीतो में रोष, क्रोध, प्रेम की असफलता पर तथा प्रेम के बँट जाने या छिन जाने का भी उल्लेख मिलता है। सौतिया-डाह में सबधिन गीतो में, सौतेले बालको पर, दुराचारी पति पर, स्वाभाविक अधिकार भावना की तुष्टि न होने पर भी रोष आता है।

लोकगीतो में भय—उपेक्षिता नारी जब अरक्षा का अनुभव करती है तो प्रेम में भावनात्मक सुरक्षा का अनुभव न करना ही जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी भय तथा

असतोष उत्पन्न कर देता है जिसका परिणाम यह होता है कि नारी को भी भीरु और अविश्वासी तथा सदेही प्रवृत्ति का बना देती है। न भय की भावना का मूल कारण अरक्षता की भावना रहती है। अरक्षता दो प्रकार की होती है—सामाजिक तथा भावनात्मक। लोकगीतो मे इन दोनों की ही अपने मे उत्कृष्ट रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

कला-पक्ष —लोकगीतो मे रसों को पृथक् रूप से महत्व नहीं दिया गया है, परन्तु वह उनमे स्वाभाविक रूप से ही आ गये है। इनमे स्वाभाविक रसों के कारण ही अत्यधिक सरसता का अनुभव होता है। इन लोकगीतों मे रसों का अस्वाभाविक समावेश नहीं होता, इसी से यह अधिक मनोरञ्जक और सरसतापूर्ण होते है। लोककवि या लोकगीतकार उनसे नटन्य रहकर, उस प्राकृतिक वातावरण से दूर रहकर रचना नहीं कर सकता, वह तो स्वयं उसका द्रष्टा न होकर भोक्ता होता है। इसी से लोकगीतो मे प्रेम, करुणा तथा वात्सल्य आदि सभी रसों का समावेश अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान पर आधारित होता है जो अधिक यथार्थवादी होता है। वास्तव मे यथार्थ ही मर्म को छूता है और जीवन जगत् पर अमिट प्रभाव डाल जाता है। लोकगीतो मे सरसता हाने का कारण उनकी उस जीवन से निकटता भी है। लोककवि भाव जगत् का प्राणी है। इनमे अधिकांश रूप से हृदय तत्व ही प्रधान है इसी से लोकगीतो को रस प्रधान कहा जाता है। रसभावानुभूति से सबधित है। भावों का कोई भी विस्तार रस की स्थिति मात्र है और इस दृष्टि से ही उसका मागोपाग वर्णन उपस्थित होता है। लोकसाहित्य मे पारिवारिक स्नेह भी एक रस की ही स्थिति होती है। मधुर शब्द, परिचित भाव, गृहस्थी का मनोरम वातावरण, अवसर की उपयुक्तता, सब मिलकर इन गीतो मे एक विचित्र तन्मयता उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते है। रामनरेश त्रिपाठी जी के शब्दो मे “इन ग्राम गीतो मे रस है, अलंकार नहीं,” यह अक्षरशः सत्य है।

लोकगीतो मे किसी भी रस का स्वतन्त्र विकास नहीं होता है। किसी भी गीत के विषय मे यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक गीत पूर्णतया शृंगार, हास्य, अद्भुत या शांत रस मे पूर्ण है।

लोकगीतो मे शृंगार का बहुत व्यापक स्वर मिलता है जो इसकी प्रधानता है। इसमे शृंगार का रूप नितान्त सयन, शुद्ध, दिव्य और पवित्र है।

जीवन के प्रथम चरण मे पुत्र-जन्म का सबध भी शृंगार तथा वात्सल्य से है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे पुत्र जन्म की कामना, परिवार की प्रसन्नता तथा जच्चा का वर्णन होता है, जो इन दोनों रसों के ही अन्तर्गत

आता है। स्नेह, जीवन को समयानुकूल भिन्न रूपों में प्रभावित करता है। बालक का जन्म भी वस्तुतः पति-पत्नी के स्नेह का ही सुंदर परिणाम है।

पुत्र-जन्म के बाद से मुडन, जनेऊ तथा विवाह तक उत्साह तथा प्रसन्नता के ही अवसर आते हैं जिनको, लोकहृदय, लोकगीतों के रूप में व्यक्त करता है। नाचने के गीतों के रूप में सयोगावस्था, 'वस्त्राभूषणों का वर्णन रहता है। सावन तथा होली के गीतों में प्रेम सबंधों का उल्लेख रहता है। यद्यपि विरह तो सदैव ही दुख-दायी होता है और विशेषतया इन सुखद ऋतुओं में और भी, जिनमें प्रिय के मिलन की अधिक कामना व आशा रहती है लेकिन फिर भी इनमें शृंगार रस के गीतों का अभाव नहीं है। अगर प्रिय निकट है तो आर्थिक-विषम परिस्थितियाँ कोई भी भावनात्मक अभाव नहीं होने देती और न ही उसके मुख पर विषाद की रेखा ही मिलती है। प्रिय की उपस्थिति ही उसकी संपूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति है। वह सरल-हृदया इसी में आनंद विभोर रहती है और कुछ नहीं चाहती। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में शृंगार तथा वात्सल्य रस का वर्णन जगह-जगह पर मिलता है। उदाहरण के लिए यहाँ पर व्याही और मुडन के दो प्रसंग दिये जा रहे हैं—

व्याही—

ओठ सूखे मुख पीला जी महल मे
मैं तुझे पूछूँ हे मेरी गोरी
किस गुन हुआ मुख पीला जी महल मे

मुडन गीत—

घूंघर वाले बाल लला के
दादी भी रहसैं, दादा भी रहसैं
हैंसे के करे हैं खरच

इसी प्रकार अन्य बहुत से गीत हैं जो गर्भवती की मनोदशा, उसकी शारीरिक चेष्टाओं तथा परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं। जच्चा का मनोल्लास, उसकी भाव-भंगिमा, उनके वर्ण-विषय से सबधित है।

विवाह सबंधी गीतों में शृंगार का आनन्द अधिक मात्रा में मिलता है। विवाह के हर अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में शृंगारी भावनाओं का प्राधान्य रहता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

बन्ना—

बन्ना खड़ा कमरे में हैंसे, मन मन में सजै, सजन घर जाना है

सीस बने के चीरा री सोहे पंची सभाले सिस्से मे सजन घर जाना है
सुहाग—

रस की भरी लाड्डो तेरी अखियाँ
माथे बिब्वी के टिक्का रतन जडा सोहे

लोकगीतो की शृंगारिक भावनाएँ अत्यन्त सयत और गभीर है। उममे कलात्मक साहित्य की भाँति ऊहात्मक पद्धति को नहीं अपनाया गया है। नायक और नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते समय भी कलात्मकता है। साहित्य की शैली को न अपना कर एक दूसरी ही पद्धति को अपनाया गया है।

हास्य सबधी गीतो मे तथा गालियो आदि मे शृंगार रस का आस्वादन होता है। जीजा-साली से सबधित एक गीत इस प्रकार है—

ऐजी दूध मलाई का प्यार से
जीजा साली का प्यार से

ऋतु सबधी गीतो मे, विशेषतया होली व सावन के गीतो मे शृंगार रस प्रबान रूप से दृष्टिगत होता है। होली मे ऋतु के प्रभाव से वातावरण ही शृंगार रसमय हो जाता है। कही अदलीलता भी झलक पडती है। उसका सर्वव्यापक प्रभाव होता है—

कच्ची अम्बली गदराई रे फागण मे
राँड लुगाई मस्ताई रे फागण मे

इसी प्रकार सावन मे भी शृंगार रस का उद्दीपन होता है—एक नायिका अपने पति से कहती है—

“जागो मेरे नणदी के बीर भतेरे दिन सो लिये”

इस भाँति यह ऋतुएँ स्वय ही यौन प्रवृत्तियो की प्रेरक होनी हैं तथा उत्तेजक सिद्ध होती है।

लोकगीतो का शृंगार अत्यन्त परिष्कृत और शिष्ट होता है। यहाँ बुद्धि और मस्तिष्क की दौड के स्थान पर हृदय का स्वाभाविक उद्गार देखने को मिलता है।

करुण रस—लोकगीतो मे शृंगार के बाद करुण रस की ही प्रधानता मिलती है। इनमे करुणा इतनी प्रभावोत्पादक है कि जड और चेतन, दोनों को समान रूप से प्रभावित कर लेती है।

सोहर विदाई के गीतो मे, नारी जीवन की करुण कहानी का दुख मूर्तिमान हो उठता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीतो मे करुण रस की अबाध धारा प्रवाहित होती रहती है। उस रस की अभिव्यक्ति इन गीतो मे तीन अवसरों पर विशेष रूप से होनी है—बेटी की विदाई, प्रिय वियोग तथा वैधव्य। इन तीनों ही अवसरों पर सुखमय जीवन का अवसान हो जाता है और उसका नया अध्याय आरम्भ होता है।

नारी का जीवन ही दुख तथा रुदन का पर्याय है, यह करुणा की लम्बी कहानी है। जैसा रस-परिपाक करुण रस के गीतो मे हुआ है वैसा अन्यत्र कही नहीं। गौना, चक्की तथा सावन के गीतो मे भी करुण-रस की प्रधानता होती है। विदाई के गीतो मानो करुण-रस के काव्य है जिनमे लोक कवि की आत्मा पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई है। सतानहीना होने के कारण स्त्री को अपने पति की झिडकी, साम और ननद का व्यग्य, समाज की उपेक्षा और तिरस्कार, अपमान एवं निरादर आदि न जाने कितनी बातों को सहन करना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उसका पारिवारिक और सामाजिक जीवन अभिशाप हो जाता है। सामूहिक पारिवारिक भावनाओं के कारण उसका दुख ओर भी बढ़ जाता है।

शृंगार-रस के बाद करुणरस का ही स्थान होता है। जीवन मे सुख-दुख का ताँता लगा ही रहता है और प्रायः देखा जाता है कि जीवन के सुख से अधिक भारी पलड़ा दुख का ही रहता है। दुख मनुष्य को सवेदनशील बना देता है, इसी से करुण रस के अन्तर्गत जीवन की सभी कोमल भावनाओं का समावेश मिलता है। पारिवारिक जीवन मे तो कन्या के विवाह मे व उसकी विदाई के अवसर पर ही उससे प्रथम सपर्क होता है। कन्या की विदाई का दृश्य वास्तव मे बहुत ही कारुणिक होता है। जो माता-पिता कन्या को पाल कर इस योग्य बनाते हैं उन्हीं को उसे दान के रूप मे देना पड़ता है तथा इस तरह उस पर से अपना अधिकार खोना पड़ता है। कन्यादान, वस्तुदान के समान ही मनुष्य दान है। यह हमारे समाज की विचित्र प्रथा है। माता-पिता तथा कन्या, तीनों के ही जीवन मे यह एक अविस्मरणीय घटना होती है। लौकिक पक्ष मे जो कन्या की विदाई है, वही आध्यात्मिक पक्ष में ससार से विदाई के समान है। कन्या विदाई के अवसर पर गाये जाने वाले गीत करुण रस से ओतप्रोत होते हैं तथा बहुत ही हृदय-विदारक होते हैं। विवाह के पश्चात् गौने की प्रथा भी प्रचलित है। पहले जब बाल-विवाह प्रचलित थे तब विवाह से अधिक महत्वपूर्ण गौना होता था और गौने की विदाई ही वास्तविक विदाई होती थी। इसी से गौने की विदाई से सबधित गीतो मे जितना करुण रस है, उतना अन्यत्र सम्भव नहीं। उनके वर्ण्य-विषय इस प्रकार के होते थे—

काहे को व्याही बिदेस, रे लक्खी बाबुल मेरे
भइयो को दीन्हे महल दुसहल्ले, तो हमको दियो परदेस रे

लटुआ खेलत बीरन छोडे अब भैना भई पराइ रे
आज बनेगी दुल्हन म्हारी बीबी तू कहाँ चली रे

तथा

भात्ती भी आये लाड्डो, बराती भी आये
आये लाड्डो को लेनहार, अम्मा मै तो पाहुणी
आज के दिन मुझे रख लो

साधारण विवाहो के अतिरिक्त ग्रामीणो मे अभी भी बहु-विवाह, बाल-विवाह तथा अनमेल-विवाह प्रचलित हैं जिसके कारण नव-विवाहिता बहुओ की स्थिति और भी शोचनीय हो जाती है—

माया के लोभी बापणे, बुड्डे को व्याह दई रे
बुडा तो चलता नौकरी में केल्ली रह गयी रे'

माता पिता मेरे चूक गये आँख मीच कैं सादी की
चूर चूर कर दिया नूर मेरा, बुडे के सग व्याही

केवल बहुविवाह, अनमेल-विवाह के कारण ही दुख नहीं उठाना पडता वरन् सम्मिलित परिवार मे रात-दिन सास व ननद के कठोर अनुशासन मे रहना पडता है और सहनशीलता से युक्त नारी के लिए भी यह असहनीय हो उठता है। लोकगीतो मे चक्की, चरखा आदि के क्रिया गीतो मे यह वधुएँ अपने हृदयो को खोल कर कथागीतो के रूप मे प्रकट करती है —

घर ससुरा लडें घर साससड लडें
घर बालम लडें, मेरी कदर घटी
पास पैंसा हो तो जहर खा मरू

तथा

मत लडें मोरी सासू जुदा हो जा री
अपणा झुम्मार भी ले ले,
आपण टिक्का भी ले ले,
मेरी अम्मा वाली बेंदी मुझे दे दे

इस प्रकार सास के अत्याचारो से ऊब कर तथा सम्मिलित परिवार के मार से दुखी होकर वधू अलग रहने की इच्छा प्रकट करती है पर उन अन्यायिनियों के पनि

भी व्यभिचारी होते हैं और उनकी अनुपेक्षा करते हैं। सावन के गीतो तथा बारह-मासो में बहुत ही करुण वर्णन मिलता है और विरह की कारुणिक दशा का तथा अपनी विवशता का बहुत ही स्वाभाविक चित्रण मिलता है।

“सूख गयी भई पेली विपत मैंने बहुतेरी झेली”

सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं के अतिरिक्त कुछ सामयिक समस्याएँ भी होती हैं जिनका वर्णन भी कारुणिक होता है और जो परिस्थितियों को विषम तथा जीवन को भी दुखमय बना देती है। इनके वर्णन-विषय होते हैं युद्ध पर तथा नौकरी पर जाते हुए माता-पिता और स्त्री का दुख तथा राशन, कट्रोल आदि नियंत्रण जिनसे दैनिक जीवन का सुख छीन लिया जाता है।

दिल्ली के माँ भरती हो रह्यो

छाट लिये दो लाल, नौकरी जाया ना करते

तथा

कितनक दिन मे आओगे

हो काली-सी छतरी वाले

पाँच साल मे आवेंगे

हो गोरी घूम घागरेवाली

हमकू क्या कुछ लाओगे

तुमको सौक दूसरी लावेंगे

राशन के सबध मे—

कैसा काल पड है दुनिया मे

मैंने देखा ना सुना

घर के बच्चे खाना माँगे गेहुँआ पै कटोल

कुछ गीतो में ऐतिहासिक तथ्य भी मिलते हैं जिनमें गोपीचन्द, भरथरी, रोहिताश्व, राम-सीता आदि के उल्लेख मिलते हैं। इनमें विरह के दुखों का वर्णन रहता है।

गोपीचन्द—

गोपीचन्द की सिकल पिछान

बैहण रोई गल-बहियाँ डाल के

वीर जोग लिया किस भूल से

तेरी रे सुरण काया धूल मे

रोहिताश्व की मृत्यु पर शैव्या का विलाप—

यहाँ रहाणें हैं बेकार, लाल जहाँ अपना ना कोई

अरे गोदी उठा लाई रहास

जब तुझे खाया मेरे लाल, नाग ने मुझे क्यूँ ना खाई

गाँधी जी की मृत्यु के विषय में तथा पाकिस्तान बनने के बाद मुसलमानों की दुर्दशा का वर्णन तथा गोवध का वर्णन भी बहुत ही हृदयग्राही है। ग्रामवासिनी कहती है—

“नाथू राम तूने जुलमा करा, कैसे मारा गाँधी

तुझे कुछ ना आई लाज”

तथा

“माता तो रोवें गाँधी की रे कौन पीवें मेरा दूध”

पाकिस्तान बनने पर जब मुसलमानों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा तो उनको कम दुःख नहीं हुआ। वर्षों के रहते हुए देश को छोड़ते समय उनके उद्गार इस प्रकार होते हैं—

देसन ऊपर छोरी रोवें मुसलमान की

बाबू जी मेरा टिकस काट दो पाकिस्तान की

इसी प्रकार गऊ हत्या के समय गीतों में गऊ का ही मानवीकरण किया मानो उसी के द्वारा यह विलाप किया जा रहा है—

ऐ गऊ माता रोवें खड़ी खड़ी तबैलें में

ओ मत बेच्चे रे पापी मुझे बुढ़ापे में

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में करुण रस अपने व्यापक रूप में है और मनुष्यों की हर समस्या पर इन्होंने सहृदय सहायक दृष्टिपात किया है, साथ ही पशु पक्षियों तक के दुःखों की इन सरल लोक हृदयों ने उपेक्षा नहीं की। ये अत्यंतिक संवेदनशील हैं।

वात्सल्य-रस—इसमें करुणा और ऋगार दोनों का ही भाव रहता है। स्त्रियों के हृदय में वात्सल्य का भाव स्वाभाविक रूप में बना रहता है। बच्चों के लिए उनके मन में बड़ी प्रबल ममता रहती है। बालक के तनिक भी आँखों से ओझल होने पर उसके हृदय में अनेकों आशकाएँ उठने लगती हैं। वात्सल्य-रस के अन्तर्गत जो अनुभव दिखाये जाते हैं, वे साहित्य में वियोग और ऋगार रस के अन्तर्गत आते हैं। गीतों में यह विशेषता है कि उनमें शिष्टकाव्य के बंधे वर्णन नहीं मिलते।

वारहमासा-काव्य मे शृंगार रस की ही रचना है, पर वारहमासो मे अपवाद-स्वरूप वात्सल्य रस भी मिलता है। इनके अधिक उदाहरण तो पुत्रजन्म सबधी गीतो मे मिलते है।

हास्य-रस—जो कगीतो मे स्थान स्थान पर हास्य-रस का भी पुट पाया जाता है। विवाह के अवसर पर ससुराल मे जो परिहास का उल्लेख किया जाता है, वह बहुत मधुर होता है। कही-कही पर इन गीतो का व्यंग्य इतना चुटीला चुमना और अनूठा होता है कि लोककवियो की सूझ पर आश्चर्य होता है।

यद्यपि लोकगीतो मे कृष्ण रस की ही प्रधानता रहती है फिर भी इनमे हास्य-रस के कम प्रसंग नही मिलते। विवाह तथा गौने के अवसर पर वर के साथ हास-परिहास किया जाता है। खोडिया^१ मे तथा होली के दिनों मे जो गीत गाये जाते है उनमे हास्य और शृंगार का मिश्रण रहता है। इनमे कही प्रियतम पर फत्तियाँ कसी जाती है तो कही देवर से हँसी मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है। हास्य-रस केवल जीवन की नीरसता मे परिवर्तन करने के लिए मुँह का जायका बदलने के लिए है। सुख और हास्य के कुछ क्षण जीवन को सरस बनाये रखने मे सहायक होते है। भारत मे हिन्दुओ के अनेको त्यौहार होते है पर हास्य और व्यंग्य के लिए अधिक प्रेरणा देने वाले मुख्य त्यौहार होली, विशेषरूप से हास्य-व्यंग्य का ही पर्व है। फाल्गुन मास मे इस पर्व पर प्रत्येक से आशा की जाती है कि वह निजी, पारिवारिक, सामाजिक तथा जातिगत सभी प्रकार के मनमुटाव भुला कर मुक्त हृदय तथा भूतकाल को भुलाने के साथ ही भविष्य के लिए भी हास्य विनोद और उमंग, हृदय मे सग्रहीत कर ले जिससे विपम परिस्थितियो को सतोषपूर्वक सहज रूप से स्वीकार कर सके।

होली के गीतो मे जहाँ सरल हास्य व व्यंग्य होता है, वही उत्तरदायित्वहीनता तथा उच्छृंखल जीवन का भी परिचय मिलता है।

भर पिचकारी मेरे सिलवे पै मारी

चढ़र हो गई तग रग मे होली कैसू खेलू

साँबलिया जी के सग

तथा

कच्ची अम्बली गदराई फागण मे

जा कइयो मेरे ससुर भले से

गौना ले जइयो, पीहर मे

१ बारात जाने के श्रगले दिन दोपहर को स्त्रियों द्वारा आयोजित गान नृत्य व स्वाग आदि।

जा कहियो उस बहुअड भली से
चार महीने गम खा जा पीहर मे

होली के गीतों के अतिरिक्त नाचने के गीतों में भी हास्यरस मिलता है—

पज्जामा पहरा हाथ मे, दस्तावा सिमझ के
घर से लिफड़े बाबू, न्हाणे के वास्ते
नाले मे न्हा लिए, जिमना जी सिमझ के

दिल्ली मे दुपट्टा भूले, मेरठ मे रुमाल
झगडे मे धोती भूले रात साँवलिया
रडियो से पिट आये रात साँवलिया

विवाह में फेरो के बाद वर-वधू को एक कमरे में जहाँ पूजा होती है 'यापे आगे' ले जाया जाता है। वहाँ पर पुरुषों में अकेला वर ही बहुत सी स्त्रियों के बीच में रहता है। वहाँ पर वर से 'छन' कहने का आग्रह किया जाता है। यह अधिकार हास्यपूर्ण ही होते हैं। इनके कहने पर वर को मास के द्वारा 'नेग' मिलता है। यह अवसर वर की बौद्धिक मूँझ की परीक्षा का होता है। इन छनो का वर्ण्य-विषय प्रधानतया सास, साली, सलहज आदि पर कही जाने वाली बातें तथा व्यंग्योक्ति होती है। इस अवसर पर कोई बुरा नहीं माना जाता है, विवाह में हास्य का यह अवसर बहुत ही अच्छा होता है। इसी समय वर का सभी संबंधित स्त्रियों से तथा वधू की मित्रों आदि से परिचय कराया जाता है। इस अवसर पर उगस्थित स्त्रियाँ अपनी मर्यादानुसार तथा बुद्धि के अनुसार वर से मजाक करने से नहीं चूकती। छन^१ अनेको होते हैं उदाहरण के लिए एक यहाँ पर दिया जा रहा है —

छन पकड़िया, छन पकड़िया, छन के ऊपर पौंडा
हम तो आये थे व्याह करवाने, सासू के हो गया लोंड्डा

विवाह के अगले दिन बरानी लोग जो खाना खाने हैं जिसको 'बडार' कहते हैं। यह लडकी के विवाह के अवसर पर विशेष दावत होती है। इस अवसर पर घर की स्त्रियाँ समूची को तथा वर पक्ष के अन्य सम्बन्धियों को संबोधित करके गीतों के रूप में मधुर गालियाँ देती हैं जिनको इस अवसर पर देना तथा सुनना दोनों ही शुभ समझा जाता है तथा वर-पक्ष वाले इसको बुरा भी नहीं मानते—

१ छठ का अपभ्रंश है, जो लोकभाषा में प्रचलित शब्द है। छन से एक आभूषण का भी नाम है, जो चूड़ियों के बीच में पहना जाता है। पर यहाँ पर इसका अभिप्राय छद्म से ही है।

वरन् अपने को भाग्यशाली ही समझते हैं—यह सीठने^१ कहलाते हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

बाग भराया भला किया सुलताना रे
खाये खट्टे चार, मेरा मन भाया रे
खट्टे खाया भला किया रह गया, हमल मेरे पेट
सुलताना रे
जाये लड्डके चार मेरा मन भाया रे

इस प्रकार हास्य के भी जीवन में पर्याप्त क्षण मिल जाते हैं जिनमें कटु व्यंग्य भी रहता है।

वीर रस—

वीर रस शौर्य पराक्रम तथा पौरुष का द्योतक है। वीर रस का वीरता के कारण पुरुषों से ही अधिक संबध है पर स्त्रियों के गीतों में भी यह मिलता है। यद्यपि ग्रामीण महिला का जीवन-क्षेत्र नितान्त घर तक ही सीमित होता है, उनको वीरता प्रदर्शन के अवसर कम ही मिलते हैं तथा वह अविक सुरक्षित सरल और स्वस्थ जीवन व्यतीत करती है। पर इसमें भी अपवाद मिलना स्वाभाविक है। अशिक्षा के कारण भी उनका दृष्टिकोण सीमित व ज्ञान परिमित रहता है पर सकट काल में तथा सतीत्व की रक्षा के लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाने में देर नहीं करती। उनमें चारित्रिक बल, नैतिक पुष्ट धारणाएँ होती हैं। वह अनुभवहीन होने पर भी साहसी, आत्म-विश्वासी तथा सबल होती है। उनकी आत्मा सामाजिक रूढ़ियों में बँधे रहने के कारण इतनी सुप्तावस्था में रहती हैं कि वह आसानी से अत्याचार का विद्रोह नहीं कर पाती। फिर भी सामाजिक प्रभाव उन पर भी पड़ते हैं।

यद्यपि ग्रामीण नारियों को स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने का अवसर नहीं मिला परन्तु फिर भी वह अपनी सहज बुद्धि द्वारा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को अवश्य समझती थी। वह बापू, सुभाषचन्द्र बोस आदि के नामों से भलीभाँति परिचित थी तथा उनके विचारों से प्रभावित भी थी। गाँधी जी के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा थी। जिन गीतों में बापू तथा कांग्रेस का उल्लेख

१ सीठन—(सीठा-फ्रीका) मीठी गाली को ही सीठना कहते हैं जिसको कि सुन कर या कह कर मन में रोष तथा बुरे भावना न उत्पन्न हो।

है वे उनकी राष्ट्रप्रियता, उत्साह व पौरुष को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए—

‘मै भी तेरे साथ चलूंगी गाँगी जी के झलते मे’

तथा

यू खरा रुपइया चाँदी का, यू राज महात्मा गाँगी का
क्या होगा निमक बणाणे से, क्यू डरो जेल जाने से
यू खरी चबूती चाँदी की, यू राज महात्मा गाँगी की

तथा—

जागो हे प्यारी बहनो, भारत जगाई चलो
परदा जहालत का दूर हटाई चलो
बलियो की धार यही से, मारना सिखाई चलो
बचपन की साही छोड़ो, बच्चे अजाद छोड़ो
फिरते हैं टोप्पी वाले, पर चढ़ाई चलो
दुरगा सीता पद्मा, जैसे बीरन कारज कीनै
जागो हे प्यारी बहनो

सावन के गीतो मे गाये जाने वाले ‘चन्द्रावल’ गीत मे स्त्री की वीरता का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि वे किस प्रकार मुगलों से अपनी सतीत्व की रक्षा की और अपने प्राणों का मोह छोड़ आत्महत्या कर ली।

पुरुषों का जीवन वीर रस प्रधान होता है तथा अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी ही अधिक होता है। उनका कार्य क्षेत्र घर के बाहर ही अधिक होता है। उनका संपर्क जीवन के हर पहलू से रहता है जिनका उल्लेख भिन्न-भिन्न समय पर गाये जाने वाले गीतों मे मिलता है।

वीर रस का जीवन मे अपना विशिष्ट स्थान है। यह पौरुष और साहस बनाये रखने के लिए आवश्यक है, उद्देश्य पूर्ति के लिए सामूहिक रूप से प्रयत्न करने समय ऐसे गीतों का अनायास ही निर्माण ही जाता है। इन अवसरों पर यह गीत प्रेरणा देते हैं, तथा उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करते हैं। इनका जो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, वह माषण तथा पुस्तकादि से अधिक स्थायी एवं प्रभावोत्पादक होता है।

शृंगाररस और करुणरस, मनुष्य की कोमल भावनाओं का ही परिष्कार करते हैं और जीवन मे रसिकता तथा नैराश्य की भावना भी भरने हैं जब कि वीर रस का जीवन मे इनसे विपरीत प्रभाव होता है। यह जीवन मे त्याग और पराक्रम का पाठ पढ़ाते हैं जिससे मनुष्य का चरमोत्कर्ष होता है।

वीररस—लोकगीतों मे वीररस को भी कम महत्व मिला है।

अद्भुत रस के अवश्य कुछ उल्लेख मिलते हैं । यद्यपि लोकगीतो में उक्ति-वैचित्र्य और उच्छृंखल प्रवृत्तियों का स्थान नहीं है यह मानव जीवन की कुतूहल वृत्ति को शांत करते हैं । अद्भुत रस से पूर्ण रचनाएँ लोकसाहित्य में कम अवश्य हैं पर उनका सर्वथा अभाव भी नहीं है । उदाहरण के लिए यहाँ पर एक गीत दिया जा रहा है—

केले की भई सगाई सकरकन्दी नाचन आई
कासीफल के बने नगाडे, भिडी की चोब बनाई
गोभी फूल के गडे शामियान्ने मूली के खम्भ लगाये
गाजर बिचारी के लाल भये, ये आलू छोछक लाया
गाँडर बिचारी ने थैल्ले भराये गेहूँ ने गगाल भराये
बेर कुरकुली के भौंड बराती, मूगफली रडी बनाई
मक्का बिचारी के साल दुसाले, ज्वार लहुए बँधाए
ज्वार बाजरे के डोम मिरासी, नटनी नाचन आई

शात-रस—शात रस जैसा कि नाम ही से ज्ञात होता है, शांति का प्रेरक है । भारत के अधिकांश लोग शांतिप्रिय व सतोषी प्रकृति के होते हैं तथा भौतिक सुख की अपेक्षा मानसिक सुख प्राप्त करना ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है । भारत धर्मप्रधान देश है, यहाँ अपने को नास्तिक कहने वाले भी अनजाने में धर्म से अनुशासित रहते हैं । जीवन के अणु-अणु में यह ऐसा समाया हुआ है कि साधारण व्यक्ति उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता । सभी धार्मिक गीतो में जो प्रायः देवी-देवताओं सबधी होते हैं—राम कृष्ण, देवी, माता, तुलसी तथा अन्य व्रत व त्यौहार सबधी, इतवार एकादशी, माघ, कार्तिक मास में 'न्हाण' आदि के गीतो का मन पर अमिट और शांत प्रभाव पड़ता है । उनमें देवी-देवताओं से मंगल-कामना की स्तुति की जाती है और भगवान् के रूप और गुण का भी वर्णन मिलता है । इसके गाने का समय प्रायः प्रभात-काल व संध्याकाल होता है । यह दोनों समय मिलने की पवित्र वेला कहलाती है । इस समय भगवान् का नाम लेना आवश्यक है । वैसे तो भगवान् का नाम कभी भी और किसी समय लिया जा सकता है पर दैनिक व्यस्त जीवन में इस निर्धारित समय में ही लिया जा सके तो भी बहुत है । भारतवासी अधिकतर भाग्यवादी होते हैं जो कभी-कभी अकर्मण्यता को भी जन्म देते हैं । इनको धार्मिक बनाने में इन धार्मिक गीतो का ही विशेष योगदान होता है । इनसे सतप्त हृदयों को शांति मिलती है और यही शांति और सतोष उनके कठिन और अभावपूर्ण जीवन को सतोषपूर्वक जीवन बिताने में सहायक होते हैं । भजनों में जीवन की निस्सारता का भी वर्णन

मिलता है जो आध्यात्मिक पक्ष को पुष्ट करता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे दार्शनिकता का पुट अवश्य निहित रहता है। प्रश्न केवल यही है कि वह उसको जीवन के व्यावहारिक पक्ष मे लाने मे कहीं तक सफल हो पाता है। हिन्दू-दर्शन जन-जन के हृदय मे अपना एक विशेष स्थान रखता चला आया है। इसी की प्रतिच्छाया इन लोकगीतो मे मिलती है। यह अशिक्षित वर्ग का अपना दर्शन है। इनमे रहस्यवाद भी मिलता है। इनमे ऐहिक जीवन की निस्सारता और पारलौकिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। स्त्रियो की कामना के केन्द्र दो ही हैं—माँग और कोख, पति और पुत्र—इनके कल्याण साधन के लिए यह देवी देवताओ से मंगल कामना किया करती हैं।

यह गीत बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनमे ससार की निस्सारता, जीवन की अनित्यता तथा सुख सम्पत्ति की क्षणभंगुरता का सुंदर प्रतिपादन मिलता है। वृद्धा स्त्रियाँ जब तीर्थयात्रा या गंगास्नान के लिए टोली बनाकर जाती हैं तब वे भजनो को गाती हैं। एक तो भजनो का कोमल भाव दूसरे इन वृद्धाओ के कठ से निकली हुई भक्ति विह्वल ध्वनि, तीसरा प्रातःकाल का सुहावना समय, यह तीनों मिल कर इन भजनो को इतना रमय बना देते हैं कि सुनने वालो के हृदय इन सासारिक प्रपंचो से दूर हट कर भगवद्भक्ति के सरोवर मे गोता लगाने लगते हैं।

कही-कही रहस्यवाद की बड़ी सुंदर झलक दिखायी पडती है। भक्तिभाव से अपनेपन को भूल कर जब भक्त अपने हृदय के भावो को प्रकट करता है तब जिस कविता का उद्गम होता है वह व्यापकता तथा दार्शनिकता दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण होती है। रहस्यवाद मे प्रयुक्त प्रतीक सासारिक होते हैं किन्तु उनसे अभिव्यक्त-भाव पारलौकिक होता है। इनमे रहस्यवादी छटा भी देवने को मिलनी है। इन गीतो के कुछ उदाहरण यहाँ मुख्य प्रबन्ध मे ही दिये जा रहे हैं—

एकादशी के सबध मे—

बरतों मे भारी ए री एकादशी
जिसके री आगे सुच्च सगम रह्या
नित उठ आवे री गिरधारी

तथा—

करो रे रामा वा दिन की तदबीर
ए गुरुजी हमने औगन भौत किये
इतने ही चावल एकादशी को खाये
इतने ही जीव हते

इतवार—

क्या तूने पग से पग मिली घोया
बैठ गगा जी की पार

तुलसी—

तुलसा महारानी नमो नमो

हर की पटरानी नमो नमो

देवी का गीत—

तेरी सदा री भवन मे आरती जय जय

जै जै माता तेरी सकल बराई

संध्या—

संध्या का सिमरन करौ रे मन तू

सौंझ हुई दिन छिपने को आया

घर घर गऊआ आई रे

दोनो बखत मिले हर का गुन गाय ले रे

ग्रहण—

आया कुरुछेत्र का न्हाण

तुम बिन बाँके बिहारी मे कैसे जपू नाम

काहे की धरती काहे का अबर

काहे का ससार

गगा—

दुख हरणी सुख दैणी गगा जी

मन की तो रंस मिटाओ गगा राणी

बुढापे के प्रति—

अब हमने जानी रामा आई रे बुढानी

आई रे बुढानी रामा, गई रे जवानी

कबीर का प्रभाव—

राम गुन गाये से ग्यानी तू तिर जाँ

मूड के मुडाए से जो लोग तिर जाँ

तो भेड क्यू न तिर जा जिनके मुडे मुडाये सिर

आर्यसमाज का प्रभाव, मीरा का, साँझी के गीत, कलियुग का वर्णन तथा अन्य भजन, इसी श्रेणी में पाये जाते हैं जिनके कुछ उदाहरण परिशिष्ट में दिए जा रहे हैं।

लोकगीतों में अवस्था के अनुसार ही सब रसों का वर्णन मिलता है। वाल्या-वस्था तथा युवावस्था में प्रायः शृंगाररस, वीररस तथा हास्यरस का उल्लेख मिलता है। बालको के खेल के गीत आदि इन्हीं में आ सकते हैं तथा रमके नाम

प्रौढावस्था मे तथा वृद्धावस्था मे मनोदशा के अनुरूप करुण तथा शातरस के गीत आते है। जीवन मे हर जगह अपवादो का ही स्थान है, अत इमके विभाजन की कोई निश्चित रेखा नही खीची जा सकती और नही ही कोई अवस्था-विशेष ही निर्धारित की जा सकती है।

लोकगीतो मे रसो का सागोपाग वर्णन नही है और न शास्त्रीय पद्धति ही है। आलम्बन और वातावरण उद्दीपन और आश्रय तो स्वय उपस्थित रहते हैं। इनमे निर्माणकर्ता और उपभोक्ता एक होता है। इनमे विविध रसो का चित्रण तथा भावो का उन्मेष होता है तथा तीन स्थितियाँ होती है जो इस प्रकार हैं—

१—उल्लासावस्था—जिसमे प्रेम, रति, वैभव तथा वात्सल्य होता है।

२—ओजावस्था—जिसके अन्तर्गत वीरता, उत्साह रौद्र तथा अद्भुत आते हैं।

३—शोभावस्था—भय, लज्जा, करुणा, निराशा, आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं।

इन गीतो मे कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। पदविन्यास तथा शब्दरचना नितान्त स्वाभाविक है। इन गीतो मे सीधे-सादे शब्दो मे मधुरता कूट-कूट कर भरी है।

लोकगीतो मे हृदय की कोमल भावनाओ को आडवरहीन अभिव्यक्ति दी गयी है। अलंकार और रस, लोकगीतो के लिए साध्य वस्तु के रूप मे नही आये। हृदय की गहराइयो से निकलने के कारण रस तो अनायाम ही लोकगीतो की परम्परा की सम्पत्ति बन गया है।

लोकसाहित्य मे सरसता केवल आन्तरिक गुण के आधार पर ही निर्भर करती है पर लोकगीतो मे यह अतिरिक्त अथवा कौशलपूर्वक नही, सहज रूप मे आते हैं। उसी सहज रूप मे सरसता का पूर्णरूप प्रमत्त होता है। लोकगीतो का वातावरण मुक्त होता है, जिसमे भाव और कल्पना की प्रवाणता रहती है। रागनत्व और शब्दो की कोमलता का भी इनमे मुख्य स्थान है, इनमे विशेष रूप से मुक्त और स्वच्छद मनोवृत्ति मिलती है। यह अपने उचित यथाथ स्वाभाविक वातावरण मे मिलते है किसी भी घटना या व्यक्ति का उचित मूल्यांकन उसके स्वाभाविक वातावरण मे रहकर ही किया जा सकता है और तभी सत्यता का बोध होता है।

लोकगीतो मे भावपक्ष प्रधान होता है यद्यपि काव्य सबधी रस, ध्वनि, अलंकार की शास्त्रीय परम्पराओ को उनके साथ एक सीमा तक निभाया जा सकता है। इनमे प्रतीको का बहुत प्रयोग हुआ है जिनका चयन जीवन के प्रतिदिन के क्रिया कलापो से ही हुआ है।

लोकगीतो मे अलंकार-विधान उस रूप मे विद्यमान नहीं है जिस प्रकार साहित्यिक भाषा काव्य मे, फिर भी भाव को स्पष्ट करने लिए इनमे उपमा, रूपक तथा श्लेष अलंकार स्वतः आ गए है। पर उनकी विशेषता यह है कि इनमे एक विचित्र सरलता, नवीनता तथा मौलिकता है जो वस्तुतः कृत्रिम कविताओं को देखने पर नहीं मिलती।

लोकसाहित्य मे सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग यथास्थान हुआ है किन्तु प्रधानतया उपमा, रूपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति और अन्योक्ति का बाहुल्य है। इनमे अलंकारों के प्रयोग की तरह यद्यपि वह बारीकी नहीं आ पायी है फिर भी लोकसाहित्य मे प्रयुक्त ये अलंकार भावों को पूर्ण रूप से व्यक्त कर देते है।

लोकगीतो मे उपमाएँ, नवीन तथा मौलिक होने के साथ ही भावव्यंजक भी होती है। इनमे सीधी अभिव्यक्ति का गुण, विशेष महत्व का है क्योंकि अलंकार और रस इनमे साधन के रूप मे व्यक्त होते है, साध्य के रूप मे नहीं। भावनाओं के प्रति सहज ईमानदारी भी इनमे व्यक्त हुई है। लोकगीतो की मनोव्यथा उन्मुक्त हुआ करती है, उसमे सभ्यता का मिथ्या आवरण नहीं लिपटा रहता। साथ ही मर्यादा और परंपरा की रक्षा भी इनमे निहित है। लोकगीतो मे काव्यगत सौंदर्य की सफल अभिव्यंजना है। अनुभूति और अभिव्यक्ति मे इतनी एकरूपता होती है कि उसमे सीधे चुभ जाने की क्षमता है। मनोभावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही लोकगीतो की विशिष्टता है। इनमे स्वाभाविकता अत्यंतिक है और वर्णन शैली भी सहज है। इनमे सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल का अधिक महत्व है।

लोकगीतो की उपमाएँ साधारण जीवन से ली गयी है। इनमे शब्द-माधुर्य और अर्थ चमत्कार है। लोकगीतो मे नखशिख वर्णन के लिए प्रकृति और जीवन के उपकरणों को ही अपनाया गया है। यहाँ पर कुछ मुख्य और बहु-प्रचलित उपमाओं को उदाहरणार्थ दे रहे है—आँख हिरणी की न होकर आम की फाक, नीबू की फाड़, नाक तोते की चोच, भुजा सोने की छड़ी, पैर केले के स्तम्भ, पोऽ घोड़ी की पाट सी, पेट छाक सा मुलायम, ओठ कटा हुआ पान, भौह चड़ी हुई कमान, दाँत अनार का दाना, जुल्हे काली और दाँतों की बतीसी चमकने वाली, नाक सुआ सा, मुख बटुआ सा, बटुआ सी बहू, ललाट लोटा, उगलियाँ मूँगफली सी, चोट्टी जाणे काली नाग, झडबेड़ी सी हाल्ले, बाणी फूल सी झडे, चाल जल मे मुरगाई, नाड मोरनी बरगी, पति के लिए प्रभु, रसिया, छैला, सइया, साँवलिया, सिपाही आदि।

पति-पत्नी के मिलन को दूध-पानी का मिलन कहा जाता है। भाग्य को समुद्र के समान अथाह बतलाया गया है जिसका पाटना कठिन है और लडकी का पिता

जुआडी (जैसे जुआ में हारी हुई सम्पत्ति पर उसके पहले मालिक का कोई आधिपत्य नहीं रहता) ।

वर ककडी के समान, जिसे ऊपर से देख कर यह नहीं बताया जा सकता कि वह मीठी होगी कि कड़वी, यह लड़की के भाग्य पर ही निर्भर करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतों में स्वीकृत उपमानों के साथ ही साथ नवीन उपमान भी हैं जो परम्परागत नहीं, वरन् स्वाभाविक हैं तथा प्रकृति से लिए गये हैं । परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप उपमान भी लिए जाते हैं । उदाहरण के लिए—एक पनघट का लोकगीत 'सोरठ' यहाँ पर दिया जाता है जिसके वार्तालाप में प्रेमकथा है —

टाँडें पै चला री बनजारा, कूँ पै आस्सन डारा
 कूँ पै सोरठ आई, जैसे गुठी बीच नगीना
 उसने फासी रसम डोरी, उसने पकड़ ली कस कस काँ
 मुझे थोड़ा नीर पिलाय दे, मैं प्यासा बड़ी दूरों का
 अरी तेरी बाप बड़ा अन्यायी, तुझे ब्याह दई री टोट्टे मे
 तू चल री मेरे टाँड में जहाँ बिछ रहे पिलग जरी के
 अरे तेरे आग लगे रे टाँड में, फुक जइयौ पिलग जरी के
 मैं गुजर करूँ री टोट्टे में,
 तिरिया ने बोली मारी, मेरी निकल गई नस नस में
 तिरिया ना काह की होती, चाहे कितना ही लाड लडाए लो
 तू चल री मेरे टाँड में, अरे तेरे आग लेगे री टाँड में
 अरे तू कौन गली का रोडा,
 अरे तू कौन खेत का बथुआ, मैं असल गोभ केले की
 मैं असल ईट छज्जे की,
 अरे तू कौन जात बनजारा, मैं राजपूत की बेटो
 तिरिया ने बोली मारी, तिरिया ना काह की होती

खडीबोली जनपद की भाषा में लक्षणा, व्यञ्जना अत्यधिक है । साधारण लोग प्रायः ऐसी बात कह डालते हैं कि उनका मुँह ताकते ही रह जाते हैं । इस भाषा में कटु व्यंग्य है, कटाक्ष अधिक है तथा हास-परिहास का भंडार है । खडीबोली जैसे शब्दमुहावरे, उपमाएँ तथा प्रतीकों के प्रयोग अन्यत्र कम ही देखने को मिलते हैं । यह अनूठी उपमाएँ प्रकृति से सीधी ही प्राप्त हुई हैं । यह सजीव और जीवित भाषा है । गीतों का सीधा सबंध जीवन से है, उसी में इसमें निश्चय अभिव्यक्ति है । इनमें प्रयुक्त उपमाएँ सर्वसम्मत हैं ।

लोकगीतो मे कथा-तत्व—कथा या कहानी कहना और सुनना, मानव की एक बहुत ही स्वाभाविक आवश्यकता है । प्रायः कहानियाँ गद्य मे होती है पर कुछ पद्य मे भी होती है तथा गद्य-पद्य मिश्रित होती है । गद्य की अपेक्षा पद्य सदैव ही अधिक आकर्षक होता, है । स्मरण भी अधिक समय तक रहता है तथा कर्णप्रिय भी अधिक होता है । पद्यमय कथाओ को हम दो श्रेणियो मे विभक्त कर सकते है—छोटी कथाओ वाले गीत जिन्हे गीतकथा की सज्ञा दी जा सकती है तथा बड़ी कथाओ वाले लोकगीत जिन्हे हमने लोक-गाथा नाम दिया है । इन लोक-गाथाओ का उल्लेख हम अलग अध्याय मे करेगे । यहाँ पर हम इन गीतकथाओं के वर्ण्य-विषय पर ही दृष्टिपात करेगे ।

इन गीत कथाओ मे कथानको के अभाव स्पष्ट मिलते है । यह मुक्तक काव्य है न कि प्रबध काव्य । कथाएँ छोटी है । इनके वर्ण्य-विषय भी ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, कौटुम्बिक, प्रेम सबधी तथा काल्पनिक है । इनको हम स्थूल रूप से तीन मुख्य भागो मे विभक्त कर सकते है—

१—पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीत-कथाएँ ।

२—सामाजिक एव कौटुम्बिक गीत-कथाएँ ।

३—काल्पनिक प्रेम-कथाएँ ।

१ पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीत-कथाएँ

इन कथाओ के अन्तर्गत वही गीत आते है जिनमे कुछ न कुछ ऐतिहासिक व धार्मिक पौराणिक अंश मिलता है । इनमे भी प्रामाणिकता का अभाव है, कारण कि यह लोकविश्वासो से प्रभावित है । उदाहरण के लिए सीता-वनवास, जिसके सबध मे जनमत है कि रामचद्र जी ने बहन के चुगली करने पर सीता पर सदेह किया और वनवास दिया ।

लवकुश जन्म सबधी गीत, कृष्णजन्म सबधी तथा शिव जी का व्याह आदि गीत-कथा धार्मिक पृष्ठभूमि लिये हुये है ।

ऐतिहासिक के अन्तर्गत भरथरी, गोपीचन्द्र, ध्रुव, गुग्गापीर आदि है । चन्द्रावल को भी हम इसके अन्तर्गत ले सकते है क्योंकि इसमे भी मुगलकालीन अत्याचारो का चित्रण है ।

उदाहरण परिशिष्ट मे दिया गया है ।

२. सामाजिक तथा कौटुम्बिक गीतकथाएँ—इन गीतकथाओ के वर्ण्य-विषय मे प्रधानतया सामाजिक मान्यताओ का उल्लेख, सामाजिक समस्याओ की

झलक, लोकरीति-रिवाजो से सबधित प्रचलन का उल्लेख और मानवीय-सहज सामाजिक भावनाओ का उल्लेख मिलता है। ईर्ष्या, प्रेम, प्रतिहिंसा आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जैसे सावन के गीतो मे 'मनरा'। पुत्र जन्म के अवसर पर गाई जाने वाली व्याही मे मनरजना, जगमोहन आदि हैं तथा भात के गीतो मे 'नरसी का भात'। भात के गीतो मे भाई-बहन के स्नेह की चर्चा विशेष रूप से मिलती है। उनके द्वारा परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहारो का चित्रण मिलता है। इनमे समाज के कृष्ण व शुक्ल पक्ष दोनो का चित्रण मिलता है।

३. काल्पनिक तथा प्रेम सबधी गीतकथाएँ—सुखद कल्पना तथा प्रेम, जीवन की आत्मा है, जीवन से इनका सबध है। अत इससे सबधित और इनके कारण होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओ से सबधित अनेको गीतकथाएँ हमारे प्रदेश मे प्रचलित हैं जिनमे कुछ का उल्लेख हमने परिशिष्ट मे भी किया है जो इस प्रकार है—

सावन के गीतो मे मनरा, घोबी बेटी, हसा राव, कुवर निहालचद, नर सुल्तान, लच्छो, चन्दना, जाहर, चन्द्रावल आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतो मे कथा-तत्वो का भी एक विशिष्ट एव महत्वपूर्ण स्थान है।

लोकगीतो मे संगीत पक्ष—लोकगीतो की आत्मा, लोक-संगीत है। लोक-संगीत बहुत ही प्राचीन है। बहुत से विद्वानो का मत है कि वस्तुतः लोक-संगीत ही का प्रभाव शास्त्रीय संगीत पर भी पडा है। यदि यह कहा जाय कि शास्त्रीय संगीत का जन्म लोक-संगीत से हुआ है तो, इसमे कोई अत्युक्ति नही होगी। अतः इनकी विशेषताओ का अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। जिस प्रकार जनता की भाषा से साहित्यिक भाषा बनी, उसी प्रकार लोकगीतो से ही शास्त्रीय-संगीत विकसित हुआ।

जीवन और संगीत के नैसर्गिक सबध का जितना वास्तविक परिचय हमे लोक संगीत के द्वारा मिलता है, उतना शास्त्रीय संगीत से नही।

लोक-संगीत, जनजीवन के अत्यधिक निकट होता है। मनुष्य को जन्म से ही—जीवन मे रोने और गाने का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। यह आत्मामिव्यक्ति के दुख-सुख के व्यवतीकरण के सहज व सरलतम माध्यम है। यही अभिव्यक्ति परिष्कृत होकर संगीत का रूप धारण कर लेती है और शब्दो की सृष्टि कर लेती है। अत यह निश्चित है कि मानव-हृदय ने पहिले स्वरो को जन्म दिया फिर शब्दो को। यह सहज, स्वाभाविक, अचेतन और प्रवृत्तिमय सृजन क्रिया है। यह अनजाने तथा स्वय ही स्फूर्त होती है। यह समाज की एक सहज आवश्यकता है अपने नैतिक

मूल्यों, सामाजिक उत्सवों, त्यौहारों तथा रीति-रिवाजों एवं सामाजिक कार्यों के दौरान में यह जन्म लेता है।

लोक-संगीत का क्षेत्र स्त्रियों और पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले सभी प्रकार के गीतों में व्याप्त धुने है जिनका आदि-संगीत के बाद की अवस्था से सबंध है। बालकों के धुन-युक्त गीत भी इसमें सम्मिलित हैं। व्यापक रूप से लोकप्रचलित कठ के माधुर्य को व्यक्त करने वाली समस्त ध्वनियाँ लय और ताल गत सम्पत्ति लोक संगीत के अन्तर्गत ही आती है।

लोकगीतों में स्त्रियों के गीत अधिक महत्व के हैं क्योंकि पुरुषों के गीतों की अपेक्षा स्त्रियों के गीतों की धुने तथा शब्द-सचय परम्परागत अधिक है। पुरुषों के गीतों में परिवर्तन का क्रम चलता रहता है जिसमें क्रमशः विकृति आती जाती है। बाह्य प्रभावों के कारण पुरुष अपने शब्द और संगीत संपत्ति की ज्यों की त्यों रक्षा नहीं कर पाता। स्त्रियाँ स्वभाव से ही संरक्षण-प्रिय होती हैं। रूढ़ियों में उन्हें विश्वास होता है, अतः उनके गीत और स्वभाव में विकृत परिवर्तन का स्वरूप कम दृष्टि-गत होता है।

छंदशास्त्र की दृष्टि से यह दोषयुक्त हो सकते हैं क्योंकि लोकगीतों के निर्माताओं को कोई पिंगल शास्त्र का ज्ञान नहीं था, अतः यह लयबद्ध होते हैं छन्दबद्ध नहीं।

शब्दों और स्वरों के चुनाव में बहुत माधुर्य होता है क्योंकि यह सरस तथा स्वाभाविक अनुभूतिमय होते हैं। कवि अपने भावों को व्यक्त करने के लिए पहिले से कोई आयोजन नहीं करते।

लोकगीतों में छंद का स्थान गौण तथा लय का प्रधान रहता है। इस लय को 'तोड़' कहते हैं। लय और तुक, भावों के अनुरूप होती है। तुक भी आवृत्ति के रूप में होती है। तुक के कारण लोकगीतों को स्मरण रखने में सहायता मिलती है, अतः इसी से यह एक आवश्यक अंग है।

लय, वास्तव में इन गीतों का मोहक गुण है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को लयपूर्वक गाने लगती हैं तो वह लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति में अक्षर कम होता है, वहाँ कुछ अक्षरों को जोड़ कर पूरा कर लेती हैं। इन्हीं लयपूर्ण गीतों से रस का संचार भी होता है। प्रायः लोकगीत तुकान्त होते हैं पर इनमें कोई नियम या बंधन नहीं है—इनके साथ, लोकगीतों में गायन की सुविधा के लिए—रे, ना, हो, ओ, हो, ए राम, मोरे राम, आदि का प्रयोग भी होता है।

शास्त्रीय संगीत के अनेक रागों का जन्म इन्हीं लोकधुनों से हुआ है। बहुत

सी ध्वनियाँ शुद्ध शास्त्रीय रागो से मिलती जुलती है। प्रायः देखा जाता है कि जिस भाव-विशेष का चित्रण गीत मे किया जाता है वह उसके शब्दों के अर्थ से पूरी तौर से मेल खाता है, उसी भाव-विशेष के अनुरूप नाम देना शास्त्रीय संगीतकारों का काम था। लोक-संगीत के द्वारा अनेक रागों की उत्पत्ति होना कठिन विषय नहीं है।

यहाँ पर हम कुछ रागों का उल्लेख करते हैं जिनका हमें लोकगीतों मे अधिक प्रयोग मिलता है—जैवन्ती, पीलू, तिलक कामोद, खमाज, काफी, देश, बिलावल। कुछ गीतों मे इन रागों के केवल स्वर ही लगते हैं और कुछ गीतों मे पूर्णरूप मे वह राग मिलते हैं।

लोकगीतों मे कहरवा, दादरा, तथा दीपचन्दी धुनों का ही अधिक प्रचलन है। लोकगीतों मे ताल का कोई भी शास्त्र नहीं है। लय ही गीत की आत्मा है। लय-विहीन लोकगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लोकगीतों की तालों से ही शास्त्रीय ताले विकसित हुई हैं।

हर लोकगीत शास्त्रीयता का बाना पहन सकता है लेकिन शास्त्रीय संगीत लोकगीत नहीं बन सकता। शास्त्रीय संगीत की क्लिष्ट पद्धति के बीच तथा सामाजिक संगीत की इस जनमाधारण आवश्यकता के बीच लोकसंगीत सेतु का काम करते हैं।

लोक-संगीत मे लयात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करने के लिए ढोल, ढोलक, चग, डफ, मजीरा, झांझ तथा नगारा आदि अनेक प्रकार के वाद्य होते हैं।

लोकगीतों का संगीत पक्ष एक स्वतंत्र विषय है जिसके गभीर और विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है। यहाँ पर केवल स्पर्शमात्र किया गया है, विस्तार मे नहीं जाया जा सका।

लोकगीतों मे सहायक लोकवाद्य

संगीत प्राणी-मात्र के लिए आत्म अभिव्यक्ति का एक साधन है। क्रोध, ईर्ष्या, स्नेह, द्वेष, विजय, भय, सुख, हर्ष, या विपाद के समय अपने आप स्वरों का क्रम व्यक्त हो जाता है।

गायन के द्वारा स्वर की अमूर्तता और निश्चिन्ता को बार-बार दाहराना संभव नहीं हो सकता है। इसलिए स्वर की पवित्रता के लिए शनैः शनैः वाद्यों का भी विकास होने लगा। वाद्य वस्तुतः संगीत के माध्यम होते हैं। इनके द्वारा संगीत का नागम्य नहीं टूटता और वह अधिक प्रभावोत्पादक तथा कर्णप्रिय हो जाता है। वाद्यों के अभाव मे गायक अपने स्वर तथा ध्वनि को सम बनाये रखने मे असमर्थ रहता है।

वाद्यो के सहयोग से वह देर तक गा सकता है। गायक को तन्मयता के साथ गाने में भी वाद्य सहयोग देते हैं जो गायक के लिए अति आवश्यक है। वाद्य का सहारा इसलिए लिया जाता है कि संगीतज्ञ को गाने में सहायता मिले और बीच में श्वाँस लेने का उचित अवसर मिल जाये। श्रोतागण को तन्मय करने के लिए भी लय (झकार) की आवश्यकता पड़ी जिसके फलस्वरूप वाद्यो का प्रयोग आरम्भ हुआ।

“सरल लोकजीवन में वाद्य प्रत्येक स्थान पर वर्तमान रहते हैं। प्रातः काल जब स्त्रियाँ चक्की चलाती हैं तो उसकी घरघराहट ही उसके स्वर में मिल कर वाद्य का रूप धारण कर लेती हैं। बच्चा पैदा होने पर माताओं की प्रसन्नता के मूक स्वर को खाली-वाद्य द्वारा स्वर मिल जाते हैं। ढेकली चलाने वाला आदमी पानी की सर-सराहट को छप-छप कर ताल पर ही गा चलते हैं। गाड़ी हॉकने वाला व्यक्ति बैलो की घटियों और खुरों की आवाज से ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन मँजने वाली स्त्री बर्तनों की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है। धोबी कण्डे की फटाफट से ही अपने स्वर को मुखरित कर संगीत की सृष्टि करता है। इस प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिए वाद्य उपस्थित पाते हैं।”

जन साधारण का सहज-संगीत, प्रकृति से ठेठ तादात्म्य रखता हुआ विकसित होता रहा। लोक-संगीत की इसी परम्परा में विभिन्न वाद्यो का उपभोग होता रहा। स्थान के अनुसार, जाति के अनुसार, सुविधा के अनुसार और गानों की प्रकृति के अनुसार यह बदलते रहे। कुछ तो ऐसे हैं जिनका प्रचलन प्रायः सभी स्थानों में होता है पर कुछ वाद्य, क्षेत्र-विशेष के विशिष्ट वाद्य भी होते हैं इनका प्रयोग सामूहिक रूप से गाते समय ही अधिक होता है।

शास्त्रीय-संगीत की ओर यदि हम ध्यान दें तो वहाँ पर हम विभिन्न प्रकार के वाद्यो को पायेंगे। ये अपने नये-नये रूपों तथा गुणों के साथ सम्मुख आते हैं। लोक-जीवन में हमें वाद्यो के दो मुख्य स्वरूप मिलते हैं—प्रथम—मनुष्य की क्रियायें वाद्य का स्वरूप धारण कर लेती हैं जैसे ढेकली के चलाने से उत्पन्न ध्वनि। इन क्रियागत ध्वनियों को हम सुविधा के लिए ‘क्रियावाद्य’ का नाम दे सकते हैं। द्वितीय—परन्तु दूसरे प्रकार के वाद्यो को हम वाद्यो के स्वरूप में ही सम्मुख लाते हैं—उदाहरण के लिए ढोलक। यदि हम इन वाद्यो के इतिहास को टटोले तो हम इन प्रचलित वाद्यो के पीछे भी क्रिया को ही पायेंगे। लोकवाद्य अपने उत्पत्तिकाल में ऐसे साधनों से उत्पन्न हुआ जो प्रतिदिन के कार्यों में आते रहे। आज भी आसाम का

बहुत प्रचलित लोकवाद्य दो बाँसो से बनता है जो बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है। ये बाँस लोक मानव के क्रिया अंग ही रहे होंगे। लोकवाद्य संगीत के साथ सगत देने वाले उपकरण ही नहीं रह गये अपितु वह स्वतंत्र रूप से भी बजाये जाने लगे और श्रोताओ को इन अर्थहीन किन्तु अनुभूतिपूर्ण स्वरो मे भी मानवीय संवेदनशीलता अनुभव होने लगी। यह संगीत का अत्यन्त विकसित स्वरूप है।

लोकगीतो मे आज भी वाद्यो का सीधा सबध गायन विशेष से है। गाना और वाद्य का मानो रसायनिक सबध है जिनका एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सबध है। लोकगीतो मे काम आने वाले वाद्यो के दो प्रयोजन है, एक तो स्वरो का आरोह-अवरोह के अनुकूल चलना और दूसरे उसकी लय को बनाये रखने के लिए ताल संभाले रखना। स्वरो के साथ चलने वाले तीन प्रकार के वाद्य है। तारवाद्य और फूक से बजने वाले वाद्य तथा चोट देकर बजाये जाने वाले ताल वाद्य जैसे ढोलक।

इन लोकवाद्यो के पीछे हम कुछ पौराणिक परम्पराओ को भी पाते है, जो इनका धार्मिक तथा पौराणिक रूप से महत्व बढ़ा देती है।

“जीवन मे वाद्यो का प्रमुख स्थान रहा है। पौराणिक गाथाओ मे भी हम वाद्यो को किसी न किसी रूप मे पाते है। शिव जी डमरू बजाते थे जो आज तक लोकवाद्य बना है। इसका प्रयोग नेपाल तथा उसके तराई प्रान्त के लोकजीवन मे मिलता है। विष्णु के हाथ मे शख मिलता है जिसे बजा कर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कृष्ण के हाथ मे वशी का होना भी जीवन मे वाद्यो की व्यापकता का द्योतक है। रामायण काल मे रावण संगीतज्ञ था। यह प्रसिद्ध है कि वह शिव जी के नृत्य के समय मृदंग बजाया करता था। किवदती है कि ब्रह्मा ने ढोल की रचना त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सान कर तथा उसी के चमड़े से मढ़ कर की थी।”^१

उपर्युक्त सभी बातो से हम देखते है कि जीवन मे वाद्यो का सदैव प्रयोग होता आया है। इन सभी वाद्यो का विकास लोकजीवन ही से हुआ है। बालक आम की गुठली घिस कर पपिहरा बना कर वाद्य रूप मे प्रयोग करते हैं अथवा ज्वार के पत्तो को मोड़ कर मन बहलाने के लिए अपना वाजा तैयार कर लेते हैं। पंडित अपनी पूजा मे शख और घडियाल का बजाना नहीं भूलते। वृद्धजन कीर्तन के समय करताल अवश्य बजाते है। इन लोकवाद्यो ने हमारे जीवन के साधना और भक्ति पक्ष को सदैव बल दिया। मीरा भी नाची तो पैरो मे घूंघरू बाँधना नहीं भूली।

ताल-वाद्यो का प्रमुख प्रयोजन गीत को सतुलित मात्राओ मे बाँटे हुए आगे बढ़ाये चलना है। ताल के बिना गीत का प्रभावशील होना भी असंभव है। लोकगीतो मे

प्रयुक्त होने वाले ताल-वाद्यो को भी हम दो भागो मे बाँट सकते है—एक, तो वे ताल-वाद्य जो गायन के साथ ही विभिन्न ताल रूप ग्रहण कर सकते है तथा दूसरे वे जो केवल दो मात्राओ के बीच के समय क्रम को ही बता सकते है। पहले प्रकार मे ढोलक, नगारा आदि है, दूसरे मे मजीरा, थाली, करताल आदि है। लोक-वाद्यो मे ताल और स्वर-वाद्यो की इस विभिन्नता के साथ ही कुछ ऐसे वाद्य भी है जो ताल और स्वर दोनो का काम देते है। तम्बूरे की तरह स्वर देना और विभिन्न तालो का उपयोग करना 'चौतारे' या 'इकतारे' की विशेषता है। लोक-वाद्यो की यह विशेषता शास्त्रीय रूप मे प्रयुक्त होने वाले वाद्यो मे नहीं है।

प्रत्येक वाद्य का अपना विशिष्ट प्रभाव है। हर तार-वाद्य का अपना-अपना सौंदर्य, अपना-अपना प्रभाव और अपनी-अपनी शैली है। इस विविधता के कारण भारतीय सगीत की शोभा अनेको गुना बढ जाती है। वाद्यो की विविधता जितनी लोक-सगीत के साथ जुडी है उतनी शास्त्रीय-सगीत के साथ नहीं।

लोक-वाद्यो मे स्वरों की साधना की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि शास्त्रीय-वाद्यो मे है। स्वरों की सच्चाई से कानो को परिचित कराये बिना लोक-वाद्य बजाया नहीं जा सकता।

लोक-सगीत के साथ ही वादन पक्ष भी रहता है, सामूहिक रीति से नाच-नाच कर गाना ग्रामो मे बहुत प्रचलित है। वादन के क्षेत्र मे लय व ताल दिखलाने वाले वाद्यो का ग्राम-गीतो मे अधिक उपयोग होता है। स्वतंत्र वादन का विकास लोकसगीत मे नहीं हुआ।

उत्तरभारत मे लोक-सगीत मे प्रयुक्त होने वाले वाद्यो मे से ढोलक, खजड़ी और करताल उल्लेखनीय है। इनमे से ढोलक सब से अधिक महत्वपूर्ण है। ढोलक मे कही-कही अद्भुत विकास मिलता है। उसके पृथक् बोल होते है। कुछ ढोलक-वादक तो ऐसे मिलते हैं जो तबले के सदृश्य ही ढोलक पर पूर्ण विस्तार और चमत्कार दिखलाते है किन्तु लोक-गीतो मे ढोलक पर केवल लय व सरल ताल दिखलाना ही पर्याप्त होता है। यद्यपि यह कार्य भी अत्यन्त प्रभावशाली और रोचक होता है।

मनुष्यमात्र के हृदय मे जो प्रधान भाव रहते हैं उनको अभिव्यक्ति के लिये ये ताल लगभग पर्याप्त है। हर्ष, उल्लास, स्फूर्ति, उत्साह और वीरता आदि मे कहरवा और दादरा उपयुक्त हैं।

लोक-वाद्यो को हम स्थूल रूप से चार भागो मे विभक्त कर सकते है। इनके नाम इस प्रकार है—

१—फूँक-वाद्य, २—खाल-वाद्य ३—तार-वाद्य ४—ताल-वाद्य।

१ फूंकवाद्य

बाँसुरी—बाँसुरी का आरम्भ इस प्रकार होना प्रतीत होता है कि बाँस की नली में से किसी ने हवा को वेग से निकलते हुए देखा होगा, फिर अपने मुँह से फूँक डाल कर उसी ध्वनि को निकालने का प्रयत्न किया होगा। धीरे-धीरे वही प्रारम्भिक प्रयत्न फूँक के वाद्ययंत्रों का आदि बीज बन गया। सबसे प्राचीनतम वाद्यों में बाँसुरी ही है। यह बाँस या पीतल की सबसे अच्छी होती है। इसका प्रयोग शास्त्रीय वादक भी करते हैं और लोक वादक भी। ये अपने अपने ढंग से इसे बजाते हैं। शास्त्रीय बाँसुरी की बनावट खूबसूरत और कीमती होती है। इसमें सात स्वर होते हैं। यह सामुदायिक व स्वतंत्र वाद्य है। भगवान् कृष्ण का रास और बाँसुरी अलग-अलग नहीं किये जा सकते। वे उसके बड़े प्रेमी थे। अतः बाँसुरी का सबंध कृष्ण में ही सर्वप्रथम है। यह सबसे सस्ता वाद्य है। शोक-मोहन-ममाज में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अलगोजा—यह प्रारम्भिक वाद्य है। आनन्दामिव्यक्ति के समय मुँह से सीटियाँ बजाने का विकसित रूप है। इसके कई रूप आज भी विद्यमान हैं। कई अलगोजे तीन छेदवाले होते हैं और कई पाँच छेदवाले। आदिवासीयों में इस वाद्य का विशेष प्रचार है।

किसी भी बाँस की नली में लोहे की गरम सलाख से छेद कर दिये जाते हैं। बाँस की नली के ऊपर के मुँह को छील कर एक लकड़ी का गट्टा चिपका देने पर आसानी से उसमें से आवाज़ निकाली जा सकती है। प्रायः दो अलगोजे एक साथ मुँह में रख कर बजाये जाते हैं। दोनों साथ बजने से बड़े मधुर मालूम पड़ते हैं। यह दो बाँसुरियों से मिल कर बनता है।

शहनाई—फूँक वाद्यों में श्रेष्ठ और सबसे मीठा वादन शहनाई का ही होता है। इसे सदैव दो व्यक्ति बजाते हैं। यह बड़ी चिलम की आकार की होती है और शीसम या सागबन की बनती है। शहनाई सबसे अच्छी बनारस में बनती है। इसमें आठ छेद होते हैं। उसका पत्ता ताड़ के पत्ते का होता है। इसकी आवाज़ बड़ी तीखी और मीठी होती है। यह बहुत दूर तक सुनाई देती है। इसको हरेक व्यक्ति नहीं बजा सकता। इसको विशेषकर नागारची बजाते हैं। कभी-कभी लोकनाटक और खयालों के साथ भी यह बजायी जाती है। इसका जोड़ा नगाड़े का है। शादी के अवसर पर इसे बजाया जाता है। इसकी धुन फूँक के ऊपर निर्भर है। यह बहुत पुराना वाद्य है।

बीन—यह छोटी लौकी, (घिया) अथवा तुम्बे की बनी होती है। इसकी तुम्बी एक अलग ही प्रकार की होती है। उसका पतला भाग लगभग डेढ़ बालिशत लम्बा

होता है। तुम्बी के नीचे का हिस्सा गोल आकार का होता है। उसके नीचे के आकार में थोड़ा-सा छेद कर दिया जाता है और फिर दो पतले बाँस की दो पोरी अर्थात् दो मूँगफलियाँ ली जाती हैं। उन मूँगफलियों में से एक में तीन छेद बना देते हैं और दूसरे में नौ छेद कर देते हैं। दोनों को एक दूसरे से चिपका देते हैं। नल-बाँस लेकर दो पात बना लिये जाते हैं। वे दोनों पात उन मूँगफलियों के मुँह में बैठा दिये जाते हैं। इनमें आवाज पैदा होती है। फिर उन दोनों जुड़ी हुई मूँगफलियों को नल-बाँस सहित उस तुम्बी के छेद में मोम की सहायता से जमा दिया जाता है। यह भी नकसाँस से बजती है। उसमें एक अचल स्वर 'सा' के रूप में बजता रहता है। इसको सँपेरे जाति के लोग बजाते हैं। इसमें साँप को मोहित करने की अद्भुत शक्ति होती है। नाग इसको सुनकर वश में हो जाता है।

बाबिया—यह पीतल का बना होता है। अधिकतर यह मेरठ में बनता है। इसकी लंबाई ११ हाथ के लगभग होती है। इसमें तूहड़ की आवाज होती है। शादी-विवाह के अवसर पर यह बजाया जाता है। यह सरगडो का खानदानी वाद्य है और ढोल के साथ बजता है। यह बैद का सा साज जान पड़ता है।

शख—शख, शुभसूचक ध्वनि प्रसारित करने के लिए प्रयोग में आता है। यह एक जतु का खोल है जो समुद्र में होता है। इसकी आवाज बड़ी गंभीर होती है और बहुत दूर-दूर तक सुनायी पड़ती है। इसको जमात वाले साधु बजाते हैं। इसका प्रयोग मदिरो में घटे-घडियाल के साथ होता है। घर में पूजा के समय या शुभ अवसरों पर भी इसका प्रयोग होता है। यह वृद्ध या साधुओं के शव के साथ भी बजाया जाता है। यह अनेक प्रकार का होता है। इसको बजाने की कई विधियाँ होती हैं। यह हृदय दहला देने वाला वाद्य है।

गोमुखा—यह पीतल का बड़ा लम्बा वाद्य होता है। यह उस समय का प्रतीक है जब राजाओं की सवारी निकलती थी अथवा लड़ाई के लिए सेना चलती थी। गोमुखा उस समय आगे-आगे चलता था। यह ध्वनि तेज करने के काम में आता है। उस समय इससे 'लाउडस्पीकर' का काम लिया जाता था। अब भी बारात के आगे एक व्यक्ति लिये हुए चलता है। यह आगे से चौड़ा और पीछे से छोटा होता है। एक व्यक्ति फूँक से बजाता रहता है। उसमें आरोह-अवरोह तथा मोटा या पतला स्वर नहीं होता। आवाज कम या अधिक होना फूँक पर निर्भर है।

२ तारवाद्य

जो साज तारों के माध्यम से संगीत को व्यक्त करते हैं उनको तारवाद्य कहते हैं। इन वाद्यों में पीतल और लोहे के तार काम में लाये जाते हैं। जानवरों की सूखी आँतों और घोड़ों की पूछ के बालों का भी प्रयोग होता है।

तारवाद्यो में तार के लम्बेपन या छोटेपन तथा ढीला करने से स्वरों का उद्भव होता है। जब कि फूंकवाद्य में फूंक देने तथा फूंक के अनुसार छेद की दूरी और नज़दीकी से स्वरों की उत्पत्ति होती है। फूंक को जितना लम्बा जाना पड़ेगा, स्वर नीचा जायेगा और फूंक जितनी छोटी होगी, स्वर उतना ही ऊँचा होगा। तार की जगह यहाँ फूंक आ जाती है किन्तु लम्बाई-छोटाई का वही सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है।

सारंगी—सारंगी तार वाद्यो में श्रेष्ठतम वाद्य है। यह प्रत्येक स्वर और प्रत्येक गायन के सौंदर्य को अभिव्यक्त कर सकती है। इनमें २७ तार होते हैं। यह तुन, सागबन, केर, रोही आदि वृक्षों की बनती है। लोक वाद्यो में इसका छोटा रूप मिलता है। किसी-किसी के माथे में खूंटियाँ होती हैं किसी-किसी में नहीं। ऊपर की तारें बकरे की आँतों की बनी होती हैं। इसमें तेरह तुरमे होती हैं। ये सब स्टील की बनी होती हैं। तातो को चार बड़े खूंटों से बाँध दिया जाता है। सारंगी को ग़ज़ से बजाया जाता है। ग़ज़ में घोड़े के बाल बँधे रहते हैं। लोक गायक विशेषकर जोगी लोग इस पर निर्गुन पद गाते हैं, जोगियों का यह विशेष वाद्य है। देवी-देवताओं के मंदिरों में भी बजायी जाती है। वहाँ इसके साथ वार्ताएँ भी कही जाती हैं। यहाँ गिव जी का विवाह, निहालदे, गोपीचन्द, मरथरी, आल्हा आदि गाते हैं।

एक ही स्वर पर मिले दो तारों में सामंजस्य होता है। मिले हुए दोनों तारों में एक तार बजा कर उसे अगुली से वही रोक देने पर दूसरा तार स्वयमेव गूँजने लगता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर तारवाद्यो में कुछ मुख्य तारों के नीचे छोटे-छोटे तार लगे होते हैं। ये छोटे तार तरबे होते हैं।

तम्बूरा—इसको 'निशान' भी कहते हैं। कहीं-कहीं यह 'चौतारा' भी कहलाता है। इसमें चार तार होते हैं। इसकी शकल सितार या तानपूरे से मिलती-जुलती है। इसकी कुडी तुम्बे की नहीं होती। यह सारी लकड़ी की बनी होती है। इसे बजाने वाला दाहिने हाथ से बजाता है और बायें हाथ से इसे पकड़े रहता है। यह एक उँगली से बजता रहता है। यह क्रिया तानपूरे के समान होती है। इसके साथ करताल, मजीरे, चिमटा आदि वाद्य बजते हैं। निर्गुन पथी जोगी लोग इस पर भजन गाते हैं।

इकतारा—यह आदि वाद्य है। इसका सबब नारद जी से जोड़ा जाता है। ऐतिहासिक रूप से इकतारा तम्बूरे का पूर्वरूप है। इसका प्रयोग मुख्यतः भजन एवं बानियों के गाने में होता है। इकतारे के साथ अधिकतर मजीरे व करतालों को रखा जाता है। गोसाईं, नाथपथी, साईं, जोगी आदि इसका अधिक प्रयोग करते हैं। यह सस्ता वाद्य है। एक छोटे गोल तुम्बे को लेकर उसमें बाँस फँसा दिया जाता है।

थोड़ा सा हिस्सा काट कर बकरे की खाल से मढ़ देते हैं। बाँस के नीचे एक तार बाँध दिया जाता है। उस तार को खूँटी से कस देते हैं। कोई-कोई लोग इसमें दो-तीन तार भी बाँध लेते हैं। तार पर उँगली से ऊपर नीचे चोट करते हुए इसे बजाते हैं। बाँस या नीचे का भाग भारी और ऊपर का हल्का होता है। इकतारा एक हाथ में ही पकड़ कर बजाया जाता है। दूसरे हाथ में करताल रखते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि तारवाद्यो को दो प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है। एक तो गज के द्वारा संचालित होते हैं तथा दूसरे अँगुली, मिजराब आदि अन्य किसी वस्तु के आघात से स्वरों को श्रुत करते हैं।

३. खाल-वाद्य

जिन वाद्यों में खाल का प्रयोग होता है उनको खालवाद्य नाम दिया गया है।

नगाडा—यह वाद्य एक ओर मढ़ा हुआ होता है और इसमें भैंस का चमड़ा काम में लिया जाता है। नगाडा लकड़ी की चोट से बजाया जाता है। इसके बोल भी निश्चित नहीं हुए हैं। यह गतिपूर्ण ढंग से लय की अनुभूति देते हैं। यह नौबत की ही तरह का होता है। उसके साथ इसी की शकल की नगाडी होती है जिसका उसके साथ जोड़ होता है। नगाडी को मादा और नगाडे को नर कहते हैं। यह दोनों ही प्रायः साथ बजते हैं। नगाडे में हर प्रकार के ठेके बजते हैं। यह बहुत सुन्दर लगता है। इस जोड़े का उपयोग इन सब जगहों पर होता है। शादी में प्रायः यह एक माह से पहले ही बजाये जाते हैं। नौटकी, रामलीला आदि में भी यह बजाये जाते हैं। यह बड़े-बड़े मन्दिरों में बजता है। नगाडी छोटे पाडे या बकरे की खाल की मढ़ी होती है। नौबत, नगाडा और नगाडी तीनों एक ही शकल पर हैं पर छोटे-बड़े के विचार से इनका नाम अलग-अलग है। नगाडे के साथ शहनाई भी बजती है। नगाडा एक विशेष जाति बजाती है तथा कोई-कोई इसे बजाने के लिये प्रसिद्ध भी होता है।

ढोल—यह साज अधिकतर नाच के साथ या स्वतंत्र रूप से बजाया जाता है। यह अनेक प्रकार के होते हैं। यह हर जगह अपनी ही तरह का होता है। इसकी ध्वनि भी दूर तक जाती है। घोष भी बहुत देर तक और गहरा गूँजता रहता है। इसीलिए इसे सामूहिक नृत्यों में और शादी-विवाह में उपयोग किया जाता है। ढोल का सामाजिक जीवन से बहुत सबंध है। विशेष अवसरों पर इसके घोष का अत्यन्त आनंद उठाया जाता है।

ढोल का चमड़ा बकरी या बकरे का होता है। ढोल को कभी एक हाथ व एक लकड़ी और कभी-कभी दोनों ओर लकड़ियों से बजाया जाता है। सूत या सन की रस्सी से इसे कसा जाता है। इसकी आवाज़ गभीर हो जाती है। यह एक मागलिक

वाद्य है। बहुत स्थानों में हर त्यौहार और हर घर में बजता है। इसके लिए ऊँच-नीच का प्रश्न नहीं। शादी में भी अक्सर बजता है। इसको मृत्यु सस्कार के समय भी शोक समाप्त करने के लिये बजाते हैं। बारात को बिदा करने के लिये बजाते हैं। शुभ अवसरों पर इसका प्रथम बार उपयोग करने के समय पूजन होता है। मौली (कलावा) बाँधते हैं और स्वस्ति चिह्न बनाते हैं। इस पर नृत्य भी करते हैं। इसको दो लोग साथ-साथ बजाते हैं। होली आदि के अवसर पर होने वाले नृत्यों में इसका प्रयोग होता है।

नौबत—शहनाई के साथ बजने वाले दो छोटे नगाड़े होते हैं। एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा नर और छोटा मादा होता है। इन दोनों को दो लकड़ियों से बजाया जाता है। इसके बोल भी बहुत विकसित हैं। इनमें तालों को बजाने का विधान है। शहनाई के साथ नौबत का भी खूब विकास हुआ है। इन नगाड़ों को भँसे के चमड़े से मढ़ा जाता है। पूरे भँसे की खाल इसके लिए पर्याप्त होती है। इसकी कुडी सर्वधातु की बनी होती है। यह वाद्य चमड़े की रस्सी से गूथा जाता है अर्थात् कमा जाना है। यह करीब ४ फीट ऊँची होती है। बबूल या सीसम की चोब से यह बजती है। बजाने वाले के दोनों हाथों में चोब रहती है। अच्छी नौबत की आवाज ३-४ मील की दूरी तक चली जाती है। पहिले किसी युग में यह वाद्य युद्ध के समय बजाया जाता था। वहाँ यह गाड़ी में या हाथी पर रहती थी। युद्ध में यह सबसे आगे रहती थी। इस पर ८ मात्रा का ठेका भी लगता है। इसकी आवाज में बड़ी गमीरता रहती है। इसकी खाल के भीतर राल, हलदी, तेल (पकाकर) लगाया जाता है। आजकल बड़े मंदिरों में इसका उपयोग होता है। राजा-महाराजों के यहाँ अक्सर सुबह, शाम और दोपहर को यह बजा करती थी।

चग—होली के अवसर पर गाने वाली टोली के पास एक गोलाकार एक ओर से मढ़ा हुआ वाद्य रहता है। इसे चग कहते हैं। यह एक ओर बकरे की खाल से मढ़ा होता है। इसको मढ़ने में रस्सी आदि कोई वस्तु काम में नहीं ली जाती। जौ के आटे की लेही बनाकर घरे में लगा देने हैं और उसके ऊपर खाल चिपका देते हैं फिर उसे छाया में सुखाकर काम में लाते हैं। इसको कंधे पर रखकर बजाते हैं। इसको दाहिने हाथ से पकड़ कर उसी से चिमटी मारते हैं जो नाडी का काम करती है और बाएँ हाथ से बजाते हैं। होली के दिनों में प्रायः हरेक जाति के लोग इसे बजाते हैं। इस पर घमाले और चलत के गीत चलते हैं। इसको ढप्प भी कहते हैं। चमार होली के दिनों में इसका प्रयोग करते हैं। चग की सबसे प्रिय ताल कहरवा है। कहरवे के सुंदर और गतिवान बोल, चग को अत्यन्त मधुर और आकर्षक बना देते हैं। चग को बाएँ हाथ में उठा कर हथेली पर जमा लिया जाता है। बाएँ हाथ की उँगली

मे लकड़ी की एक चीप रहती है और दाहिने हाथ से उस पर बोल निकाले जाते हैं। चग पर भेड का चमड़ा भी काम में लाया जाता है। डफ उत्तर प्रदेश में चलने वाली चग का ही एक रूप है। इसको आधी ढोलक कह सकते हैं। इसका घेरा ढोलक से बड़ा होता है।

ढोलक—इस वाद्य का सबसे अधिक प्रचलन है। प्रायः सभी प्रकार की ताले बजायी जा सकती हैं। यह आम या बड की लकड़ी से बनती है। इसकी मढ़ाई ढोल की तरह होती है, तथा यह बकरे की खाल से मढ़ी होती है। इसके दोनों मुँह बराबर होते हैं। बीच का भाग चौड़ा होता है। सिरे पर कुछ चूड़ी उतार होते हैं। ढोलक को रामलीला वाले बैरागी, तुरा, कव्वाली तथा ख्यालो में बजाते हैं। कठपुतली वाले और नट भी इसे बजाते हैं। यह नारी समाज में भी बहुत प्रचलित है। इसके साथ मजीरा बजता है। ढोलक को रस्सियों से जकड़ कर ऐसा शिकजा तैयार किया जाता है कि वह आसानी से ढीली और कसी जा सकती है। ढोलक भी कई प्रकार से बनायी जाती है। लोकगीतों में ढोलक का सहयोग बहुत आवश्यक है। ढोलक के ऊपर पैसे से टेक दी जाती है तथा घुँघरू हाथों में बाँध कर भी बजाये जाते हैं। विवाहादि अवसर पर प्रारम्भ तथा अंत में इसका पूजन भी होता है। यह शुभ अवसर का चिह्न है। 'ढोलक बजना' आनंद का द्योतक है। दक्षिण और पश्चिम में ढोलक का परिवर्तित रूप ढप्प काम में लाया जाता है। ढोलक को स्त्रियों और पुरुषों में समान रूप से आदर मिला है। खडीबोली प्रदेश में दो ताले प्रचलित हैं—खडी ताल तथा बैठी ताल।

चगड़ी—आकार में चग से छोटी होती है और चग की तरह ही भेड की खाल से मढ़ी, लेकिन इसकी लकड़ी में पीतल व काँसे के घुँघरू और झाँझ लगे होते हैं। झनकार की आवाज इसका विशेष सौंदर्य है।

खजरी—यह एक ओर से मढ़ी हुई होती है। बकरे का चमड़ा काम में लिया जाता है। मिखारी अपने गाने के साथ बजाते हैं। कभी-कभी ढोलक के साथ भी बजाते हैं। इस को भी चग की तरह बजाया जाता है। लेकिन उँगली या हथेली के भाग को चमड़े पर टिकाया नहीं जाता। भजन में इसका विशेष प्रयोग होता है।

डमरू—डमरू का सबध भगवान् शिव से है। इस दृष्टि से यह बहुत पुराना वाद्य है। यह प्रायः मदारियों के पास देखा जाता है। एक छोटे से आकार का डमरू दोनों ओर से मढ़ा होता है और बीच में पतले हिस्से पर दो डोरियाँ बाँधी रहती हैं जिनके किनारों पर बधी दो मोम की गोलियाँ चमड़े पर पड़ती हैं और उससे ध्वनि निःसृत होती है। इसमें गति का ही क्रम अथवा लय की अनुभूति

होती है"। इसके साथ वह बाँसुरी भी बजाते हैं। यह केवल धाराप्रवाह बज सकता है और एक खास प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। मिट्टी के डमरू बहुत छोटे होते हैं अतः मदारी लोग प्रायः काठ के ही डमरू प्रयोग में लाते हैं। यह बहुत सरल वाद्य है। इसे बजाने के लिये विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती।

मटकी—मटकी वादन में मटकियों के चुनाव में बहुत बुद्धिमानी की आवश्यकता है। मटकी जितनी ही अधिक पकी हुई और मजबूत होगी उतनी ही उसमें मधुर और झकारवाली आवाज निकलेगी। आगरा, मथुरा की काली मटकियाँ इसके लिए बहुत अधिक उपयुक्त हैं। मटकी बजाने के लिये तबला तथा ढोलक का ज्ञान आवश्यक होता है। मटकी का पेट तो दाहिने हाथ से बजाये जाने वाले तबले का काम देता है और मुँह पर हथेली से थाप मारने से मटकी के गर्म से गभीर आवाज निकलती है। कुछ लोग हाथ में घुँघरू बाँध कर भी मटकी बजाते हैं। इसमें ताल के साथ नृत्य का प्रभाव भी उत्पन्न होता है। मटकी को खाली हाथ में ककर लेकर चटकारी से भी बजाया जाता है और कहीं कहीं इसे बकरे के चमड़े से एक ओर मढ़ कर भी बजाते हैं। कुछ लोग मटकी के मुँह पर ही थाप देकर काम निकाल लेते हैं। यह सर्वसुलभ तालवाद्य है।

४ तालवाद्य

ताल देने के लिये एक ही प्रकार की आवृत्ति से बजने वाले वाद्यों को 'आघे साज' माना गया है क्योंकि इनमें 'ताल' देने की क्षमता तो है ही पर स्वर देने की नहीं। फिर भी यह अपने आप में मधुर होते हैं। इनमें मुख्यतया निम्नलिखित वाद्यों को ले सकते हैं—

काँसी की थाली और काँसी की ही तासक भी होती है। इन आघे साजों का महत्व बहुत देर तक गूँजती रहने वाली झनकार में है। यह मदिरो में विशेषतौर पर आरती के समय काम में ली जाती है। पुत्र-जन्म के अवसर पर फूँज की थाली बजाने की प्रथा है और इसे बहुत शुभ मानते हैं। मदिरो में विभिन्न प्रकार की आवाजों को एकत्रित करने के लिए घटा, झाँझ, कटोरो, घट, घडियाल आदि भी काम में लिये जाते हैं।

इन वाद्यों में घुँघरूओं के प्रकारों को भी ले लेना चाहिये। काँसी और पीतल के मिश्रण से अच्छे घुँघरू बनते हैं। छोटे-छोटे आकार के घुँघरू को रमझोल कहते हैं। स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं। साघु आदि कमर में भी पहन लेते हैं। इनका काम केवल आवाज भर देना होता है।

मजीरा—यह पीतल और काँसी की मिली हुई धातु का बना होता है। दो

Anil

दृष्टि से ढोलक, ढोल, मजीरे, नगारे, चग, ढप्प, आदि कितने ही वाद्य हैं। इन वाद्यो के द्वारा लोकगीतो मे भी निश्चित बधन आ जाता है।

लोकगीतो मे तालो का ठीक उतना ही कठिन जाल फैला है जितना शास्त्रीय ताल-वाद्यो मे। सामूहिक लोक गीतो मे तो ताल ही प्रमुख रहती है। ताल का संगीत मे वही महत्व है, जो भाषा मे व्याकरण का है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीतो के गाये जाने के अवसर पर लोववाद्यो का बहुत महत्व है। इनका निर्माण गायन के लिये तथा इनकी सुविधा के लिये व सरस और सरल बनाने के उद्देश्य से ही किया जाता है।

खड़ी बोली
को
लोककथा
४

लोककथा विश्व व्याप्त है। इसके अन्तर्गत समाज अथवा देश-विदेश की पर-
पराएँ सुरक्षित हैं। वास्तव में लोककथाएँ नाना रूपों में लोकजीवन को आच्छादित
किए हुए हैं। आदिकाल से ही उनका गठबन्धन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा
है। 'मानव के सुख-दुख, प्रीति-शृंगार, वीर-भाव और वैर इन सब ने खाद बना
कर लोककथाओं को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास,
पूजा-उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाट बनता और बदलता रहता है।
कहानी मनुष्य के लिये अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने
के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।^१'

आधुनिक कथा की भाँति लोककथा को अपने शृंगार के लिये विचार-कल्पना
तथा कला-सौष्ठव की आवश्यकता नहीं हुई। न जाने कब लोककथा गंगा के प्रवाह
की भाँति, काल के पर्वतों से निकल कर मैदान में आ गई तथा किस शिव ने इसको
सबसे पूर्व अपनी जटाओं में धारण किया है कि आज तक वह हर देश व हर समाज
में उसी प्रकार से प्रवाहित है। लोककथा मौखिक रूप से ही प्राप्य है। लिखित
रूप में लोककथा कही भी उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि लोककथा की यह
विशिष्टता रही है कि इसका स्थूल रूप परिवर्तनशील है। हर कहानी कहनेवाला
कहानी के तथ्यों के अतिरिक्त उसके शाब्दिक तथा भावनात्मक रूप को अपने प्रकार
से बदल कर कहता है। कभी-कभी ये भी देखने में आता है कि लोककथाओं के
तथ्यों में भी प्रादेशगत अथवा व्यक्तिगत रूप में परिवर्तन हो जाते हैं।

'मानस शास्त्र के तत्वज्ञों का कहना है कि मानव मन में जो शाश्वत बाल-
भाव समाया रहता है, उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी भावामिव्यक्ति कथा
ही है।^२'

लोक-साहित्य में लोकगीतों के बाद, लोककथाओं का ही स्थान है।
गद्य और पद्य में इन दोनों का समान महत्व है। खड़ीबोली के लोक-साहित्य
तथा जन-समाज में भी हम लोककथाओं का वही स्थान पाते हैं जो अन्य प्रान्तों

१ लोककथा अंक—'आजकल' मई १९५४, लोककथाएँ और उनका संग्रहकार्य—डॉ०
वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६

२ लोकसाहित्य की भूमिका—सत्यव्रत अवस्थी, पृ० ७१।

के लोक-साहित्य में है। इसका मूल कारण यही है कि लोक-जीवन में उनके आचार-विचार सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों तथा बोली में विषयगत तथा स्वरूपगत भेद होने पर भी उनकी आत्मा की सरलता और स्वाभाविकता समान रहती है। कहानी का जन्म तो बालक के जन्म के साथ ही हो जाता है। जब बालक पैदा हुआ होगा और उसने होश सँभाला होगा तो उसकी समार के सबध में जानने की जिज्ञासा जाग्रत हुई होगी। उस समय उसको अपने गुरुजनों से कहानी के द्वारा ही बीते हुए युग की कथा का परिचय मिला होगा।

‘कहानी समस्त वाङ्मय की आद्या है। मौखिक या लिखित साहित्य का कोई रूप ले ले तो उसके मूल में कोई न कोई सूक्ष्म कथा अवश्य मिलेगी। यह कहना अयुक्त न होगा कि मानव की विश्व के व्यापारों के प्रति जो प्रथमाभिव्यक्ति वाचिक या कायिक हुई होगी वह एक कहानी रही होगी। मैं और ‘तुम’ इन दो शब्दों में भी एक कहानी है।’^१

‘लोक-मानस ज्ञान को कहानी के रूप में ही स्वीकार करता है। जो ज्ञान कहानी के रूप में सरल नहीं वह लोकमानस में नहीं पचता। मानव जाति बुद्धि का कितना ही विकास कर ले वह प्रत्येक नई पीढ़ी में बाल-भाव से ही जीवन-चक्र का आरम्भ करती है। बाल-भाव की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और विचार का एक मात्र आश्रय कहानी है।’^२

इन लोककथाओं में लोक-मानव की सब प्रकार की भावनाएँ, परम्पराएँ तथा जीवन दर्शन समाहित हैं। मूल जानने की जिज्ञासा, घटनाओं का सूत्र, कोमल व पश्य भावनाएँ, सामाजिक-ऐतिहासिक परम्पराएँ, जीवन-दर्शन के सूत्र सभी कुछ लोककथा में मिल जाते हैं। इन लोककथाओं का अध्ययन करने के लिये एक ऐसी भूमि की आवश्यकता होगी जिसके आधार पर हम खड़ीबोली प्रदेश की उपर्युक्त लोककथाओं का अध्ययन कर सकें। इसलिए यह देखना आवश्यक होगा कि त्रिम वर्गीकरण को अपनाया जाय जो अध्ययन को अधिक सुगम और सरल बना सके। वैसे तो लोककथाएँ एक दूसरे में इतनी अधिक सबधित हैं कि उनका कक्षीय (Water tight Compartment) वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। परन्तु फिर भी कुछ वर्गीकरणों को हम यहाँ पर देखेंगे। सबसे पहिले डॉ० स्टिथ थॉम्पसन (Stith Thompson) का वर्गीकरण लेते हैं। इसी वर्गीकरण के उन्होंने दो आधार माने हैं—प्रथम, सरल कथाएँ और द्वितीय जटिल कथाएँ।

१ हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य—शकरलाल यादव, पृ० ३३७।

२. भारत की लोककथाएँ—सीतादेवी, भूमिका—डॉ० वामदेवराय अग्रवाल, पृ० ५।

सरल कथाएँ—इस प्रकार की कथाओं के अन्तर्गत वह सब कथाएँ आती हैं जिनका कथानक सीधा व सरल होता है। प्रारम्भ से अंत तक एक सा चलता है। इस प्रकार की कथाओं में चरम बिन्दु, एक से अधिक स्थानों पर नहीं आता। न इसमें अधिक धुमाव-फिराव ही होते हैं। इस प्रकार की कथाओं में पात्र भी उतने ही रहते हैं जितनों से कहानी का काम चल जाता है। अन्तर्कथाओं तथा सबधित कथाओं का भी यहाँ पर नितान्त अभाव रहता है। इनमें एक ही अभिप्राय होता है तथा ये शिक्षाप्रद, गृहस्थजीवन तथा जाति आदि से सबधित कहानियाँ होती हैं, नातिवाणी तथा जीवन के साधारण अंग भी निहित रहते हैं। मूर्खों की, धोखे की, ठगों की, बुरी पत्नी, सौतेली माँ, लगड़े, गजे, बहरे, आलसी पति, आलसी दोस्त तथा अतिशयोक्तिपूर्ण कथाएँ इसके अन्तर्गत ही आती हैं, उदाहरणार्थ—चालाकी में बनिया, नाई की चालाकी, चटोरी जाटनी, जाट की उरली परली बात, कुम्हार आदि सामाजिक तथा जातिगत कहानियाँ हैं। पशु-पक्षी सबधी कहानियों में 'सोने के बाल वाला बदर, सोने का जौ, आदि कहानियाँ हैं। इसी प्रकार 'राम नाम का महत्व, विष्णु भगवान के दर्शन, लक्ष्मी और दलदूर, कहानियाँ धार्मिक कहानियों के अन्तर्गत आती हैं।

जटिल कथाएँ—इनका कथानक जटिल होता है। इनमें सहायता व पुष्टि के लिये अन्य अन्तर्कथाएँ व सबद्ध कथाएँ रहती हैं। कथानक में कई बार उतार-चढ़ाव आ जाते हैं तथा जटिलता बढ़ जाती है। कथानक के निर्वाह के लिये नये-नये पात्र आते चले जाते हैं तथा कहानी और नायक के ऊपर विभिन्न प्रकार से प्रभाव डालते हैं। इनमें अमानवीय शक्तियों तथा अलौकिक शक्तियों अविक होती हैं। लेकिन अन्त में नायक ही विजय प्राप्त करता है। इसके अन्तर्गत परियों की कहानियाँ, जादू की कहानियाँ, व दानों की कहानियाँ आती हैं। प्रेमकथाएँ, माय्य-सबधी, ईमानदारी, भगवान् का न्याय, और सजायें, चालाकी आदि तत्त्व इस प्रकार की कहानियों में बहुधा उमरते हैं।

खड़ीबोली प्रदेश में उपलब्ध और संप्रहित लोककथाओं में से कुछ कथाओं के नाम हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। जटिल कथाएँ अविकतर ऐतिहासिक, अलौकिक तथा धार्मिक कथाओं में ही उपलब्ध हैं। रोटी का दान, राजा हरिश्चन्द्र, अजनादेवी आदि धार्मिक कथाएँ इसी प्रकार की कथाएँ हैं—अलौकिक कथाओं में 'गुलबकावली' 'झिलमिल का पेड़', 'अमीजल' तथा 'बाबा जी' की कहानियाँ हैं। यह कहानियाँ जटिल कथाओं के अन्तर्गत रखी जाती हैं। सरल और जटिल कथाओं पर विस्तार से विचार करना तो कठिन होगा। केवल हमने यहाँ सकेत मात्र किया है वैसे भी यह वर्गीकरण बहुत अधिक स्थूल रूप में हमारे सामने आता

है तथा केवल कहानी की प्रकृति तथा उसके कथानक और विकास पर ही प्रकाश डालता है। उपलब्ध कथाओं के अन्य गुण इसमें आंशिक रूप से ही मुखर होते हैं इसी कारण इसके आधार पर किया गया वर्गीकरण पूर्ण नहीं माना जा सकता।

वर्गीकरण—डॉ० गौरीशंकर सत्येन्द्र तथा डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने-अपने प्रबन्धों में लोक-कथाओं के वर्गीकरण किये हैं। ये वर्गीकरण अपने-अपने प्रदेश में उपलब्ध लोक-कथाओं के आधार पर ही किये गये हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन' में लोक-कथाओं का निम्नांकित वर्गीकरण किया है—^१

- १—गाथाएँ २—पशु सबधी अथवा पंचतंत्रीय
- ३—परा की कहानियाँ ४—विक्रम की कहानियाँ
- ५—बुझीवल ६—निरीक्षण रमिता कहानियाँ
- ७—साधु-पारों की कहानियाँ

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी भोजपुरी प्रदेश में उपलब्ध लोककथाओं का वर्गीकरण अपनी पुस्तक 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन' में इस प्रकार से किया है—^२

- १—उपदेशात्मक २—मनोरजनात्मक
- ३—व्रत्तात्मक ४—प्रेमात्मक
- ५—वर्णनात्मक ६—सामाजिक

डॉ० सत्येन्द्र का वर्गीकरण यद्यपि हर दृष्टि सुगठित सुन्दर तथा उपयुक्त है, परन्तु उनका वर्गीकरण हमारे प्रदेश के वर्गीकरण से मेल खाता सा नहीं लगता। इसके दो कारण हैं—प्रथम, हमने लोक-गाथाओं का अध्ययन प्रथक् अध्याय में किया है जिसे वाग्न लालगाथाएँ हमारी लोक-कथाओं के इस वर्गीकरण में स्थान नहीं पा सकेगा। यद्यपि हमारे प्रदेश में पंचतंत्रीय कहानियाँ से कुछ भिन्न पशु-पक्षी सबधी लोक-कथाएँ मिलती हैं परन्तु वे सब कहानियाँ पशु-पक्षी सबधी हैं। है इसलिए इनका हमारे वर्गीकरण में विशिष्ट स्थान है। डॉ० सत्येन्द्र ने विक्रम सबधी कथाओं के दो भाग किये हैं—एक, ऐतिहासिक पुरुष पर आधारित लोक-कथाएँ हैं दूसरा, अन्य किमो भी राजा के विक्रम की कहानियाँ हैं। परन्तु खडीबोली प्रदेश में विक्रम से अलग भी इतिहास सबधी कहानियाँ उपलब्ध हैं इसलिए उन सब को ऐतिहासिक

१. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ८३

२. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय पृ० ४१४

कहानियाँ मानना ही उपयुक्त रहेगा। परियों, दानवों, तथा सिद्ध पुरुषों की कहानियाँ अपने अन्दर अलौकिक तत्व लिये हुए हैं, इसलिये उन सबको भी अलौकिक कहानियों के वर्ग में रखने से सुविधा रहेगी।

इसी प्रकार यदि हम डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण पर विचार करें तो हम पायेंगे कि प्रेम सबगी कथाएँ हमारे प्रदेश में बहुत प्रचलित नहीं हैं और जो हैं भी उनको सुनाना परम्परा के विरुद्ध माना जाता है। यहाँ तक कि तोता-मैना की कथा भी इस प्रदेश में बहुत कम सुनायी जाती है। यदि सुनायी भी जाती है तो एक विशेष प्रकार के वर्ग में। इसी कारण अपने वर्गीकरण में उनको हम अलग स्थान नहीं दे पाये हैं। इस प्रदेश में धर्म का बहुत प्रभाव होने के कारण त्यौहार, व्रत, उपदेश तथा पौराणिक कहानियाँ बहुत उपलब्ध हैं उनको हम अपने वर्गीकरण में धार्मिक कथाओं के अन्तर्गत ही स्थान देंगे। स्थानीय, जातिगत, बालको सबधी कथाओं को भी हम सामाजिक कहानियों में ही स्थान देंगे। अपने प्रदेश की कृतान्तिया का वर्गीकरण करने में हमने डॉ० सत्येन्द्र जी के वर्गीकरण से अवश्य सहायता ली है परन्तु एकत्रित सामग्री के वर्गीकरण की सुविधा के कारण हमारा वर्गीकरण उनमें कुछ भिन्न हो गया है। यही बात डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के सबध में कही जा सकती है। ऊपर कही गयी सब बातों को ध्यान में रख कर अध्ययन की सुविधा के लिए हमने निम्नलिखित वर्गीकरण किया है। लोककथा से सबधित सग्रहित सामग्री को हम सात वर्गों में विभाजित करेंगे—

१—धार्मिक कथाएँ २—ऐतिहासिक कथाएँ

३—अलौकिक कथाएँ ४—सामाजिक कथाएँ

५—नीति कथाएँ ६—हास्य कथाएँ

७—पशु-पक्षी सबधी कथाएँ

१. धार्मिक कथाएँ—धार्मिक कथाओं को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—अ—व्रत-त्यौहार तथा अनुष्ठान सबधी लोक-कथाएँ; आ—देवी-देवता सबधी लोक-कथाएँ।

व्रत-त्यौहार तथा अनुष्ठान सबधी लोक-कथाओं के अन्तर्गत दो प्रकार की कथाएँ हैं—पहली वह कथाएँ, जो अनुष्ठान अर्थात् विधि-विधान से सबधित हैं। इन कथाओं में अहोई अष्टमी, सकटचौथ, करवाचौथ, बडमावस तथा मझ्या-दूज की कथा आती है। दूसरी कथाएँ वह हैं जिनमें अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती। इनमें सोमवार मंगलवार आदि वारों की कथाएँ हैं तथा कार्तिक-स्नान की कथा भी इन्हीं में आती है। अधिकतर इनमें कहानी सुनना उत्तम आवश्यक नहीं होता जितना अनुष्ठान सबधी कथाओं में होता है।

देवी-देवता सबधी लोक-कथाओं में राम-कृष्ण, चूटक विनायक, शिव-पार्वती, अजना, शनि, सूर्य आदि की कथाएँ आती हैं।

२. ऐतिहासिक कथाएँ—इनमें ऐतिहासिक पुरुषों से संबंधित कथाएँ हैं, यथा—वीर विक्रमादित्य, राजा भोज, सिकन्दर, औरंगजेब तथा अकबर आदि। इन सबकी आगे सविस्तार विवेचना भी की गयी है।

३. अलौकिक कथाएँ—इस प्रकार की कथाओं का मबध अमानवीय शक्तियों से है, जिन्होंने लोकमानस के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। इन कथाओं में दाना, परिया, तथा सिद्ध पुरुषों के चमत्कार देखने को मिलते हैं।

४. सामाजिक कथाएँ—इन कहानियों के अन्तर्गत हमने समाज से संबंधित भिन्न-भिन्न प्रकार की कहानियाँ ली हैं यथा—स्थानों से संबंधित (स्थानीय कथाएँ), बालका से संबंधित (बाल-कथाएँ), जाति कथाएँ तथा सामान्य या फुटकर कथाएँ।

५. नीति-कथाएँ—नीतिकथाओं के अन्तर्गत समाज में प्रचलित नीति-वाक्य तथा कहावतों से संबंधित कथाएँ हैं। वास्तव में यह कहावतें या नीति वाक्य किसी न किसी कहानी के चरम-वाक्य रहे हैं।

६. हास्य-कथाएँ—ये कथाएँ शैवचिल्ली तथा अन्य हास्यप्रद कथाओं से संबंधित हैं, जिनमें समाज का मनोरंजन होता है।

७. पशु-पक्षी संबंधी कथाएँ—पशु-पक्षी से संबंधित कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हैं। यह मनुष्य से भिन्न होते हुए भी उसके अभिन्न अंग हैं।

धार्मिक कथाओं के अन्तर्गत ब्रत-न्याहार, अनुष्ठान, वार तथा देवी-देवता संबंधी कथाएँ आती हैं। धार्मिक कथाओं का प्रसार लोक-मानव के अन्तर तथा वाह्य जीवन पर इतना अधिक है कि उसके जीवन के सब कार्यकलाप उन कथाओं द्वारा प्रेरणात्मक शक्ति पाते हैं।

इन लोक-कथाओं का लोक-मानव पर घनात्मक प्रभाव होता है। कथाएँ किसी भी वस्तु के महत्व तथा गुण को स्पष्ट रूप में मनझाने का सुमं तथा सरल माध्यम हैं, इसीलिए धार्मिक लोककथाएँ, लोक-जीवन के धार्मिक पक्ष को अधिक सबल बना देती हैं, ब्रत नियम में उनकी आस्था को और भी दृढ़ कर देती हैं। लोक मानव धर्मशील होता है जब वह कथाओं में, ब्रत-न्याहारों तथा अनुष्ठानों के दोनों रूप स्पष्ट देखता है, नियमित रूप से उनका पालन करने वाला मनुष्य अन्ततः सुफल अधिकारी होता है और उनके प्रति अनास्था रखने वाला अथवा उसमें प्रमाद

करनेवाला दुख का भागी होता हैतो, लोक-मानव कहानी के द्वारा सब बातों को समझ कर सकट नहीं मोल लेता चाहता। वह उन्हीं बातों को करता है जिनके कारण उसे कष्ट न उठाना पड़े। इसीलिए वह सरलतम कर्म-रेखा अपनाता है तथा उसी पर चलता रहता है।

व्रत-त्यौहार सबकी लोक-कथाओं में धर्ममय सामाजिक परम्पराएँ सुरक्षित रहती हैं जिनका नित्यप्रति वे जीवन से बहुत निकट का संबंध है। इन परम्पराओं की सीखने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु पुत्री माँ से, वधू मास से स्वयं ही जान लेती हैं, यह एक जीवन का क्रम ही जाता है। ये कथाएँ जन्म-मरण के सम्मुख उसके स्वजनो की मुग्धा मंत्र के रूप में आती हैं। इन व्रत-कथाओं में किसी न किसी अनुष्ठान की योजना भी होती है। इन अनुष्ठानों का रूप घरेलू तथा लोक प्रचलित होता है।

वास्तव में स्त्री-समाज में प्रचलित गद्य के अन्तर्गत सबसे मुख्य स्थान त्यौहार-व्रत कथाओं का ही है। भारतीय समाज में बहुधा धार्मिक अनुष्ठान का मार स्त्री-समाज पर ही पड़ता है। धार्मिक अनुष्ठानों में हम दो प्रकार के स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं—एक है शास्त्रीय तथा कर्त्तव्य से संबंधित, यह बहुधा पुरुष के आर्धान रहती है। दूसरी है लौकिक अथवा श्रौतत्व से संबंधित, यहाँ प्रायः स्त्रियों के लिए हाती है। यथार्थ में पूजा, स्त्री का धर्म नहीं, व्रत ही उसका धर्म है।

लोक-रचि में कहानी की प्रवृत्ति की मूल जड़िष्ठात्री है नारी। उसने ही मुख्यतः अपनी लंका-संस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों, अनुष्ठानों, पूजा-विधानों तथा अपने सासारिक उद्गार, उत्सव, समारोहों को गीतों एवं कथाओं में व्यक्त किया है। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येक पर्व या त्यौहार की या तो कोई पौराणिक कथा है अथवा कोई धार्मिक अन्वविश्वास का प्रतिफल है।

स्त्रियों के पर्वों के पीछे अनेक विचित्र कथाएँ गुंथी रहती हैं, जिनसे इन पर्व-निर्गमण का समझना होता है। यह पर्व के माहात्म्य को दर्शाती हैं। पर्व के अनुसार व्यवहार करने में उनके विशेष महत्त्व का वर्णन होता है। इसी कारण से सब व्रत कहानी में किसी ऋषि-मुनि या देवता के प्रभाव का वर्णन ही रहता है।

उनका प्रत्येक घडी-मल इन्हीं अनुष्ठानों से परिपूर्ण रहता है। इनमें चित्र-कला के प्रतीक मिलते हैं। घर में जीवन-मगल के उत्सव त्यौहार दिखायी देते हैं। इन उल्लासों में एक उमंग का समावेश रहता है, एक मगल तथा समृद्धि की भावना-विद्यमान रहती है। इनमें विविध दृष्टिकोणों, तथा सम्प्रदायिक भावनाओं का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है। त्रिदेवों के प्रतीकात्मक-स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त गाय, गंगा, वट-वृक्ष, पीपल, आँवला तथा तुलसी आदि के संबंध में भी कथाएँ हैं।

धार्मिक कथाओं से सबद्ध जातियों का इन कथाओं की सत्यता में अटूट विश्वास हो जाता है। ये कथाएँ उनकी मानसिक आवश्यकताओं को उतना ही सतोष प्रदान करती हैं जितना भोजन उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को।

हिन्दू नारी के जीवन में हर दिन ही व्रत है। यहाँ तो कहावत भी प्रचलित है—‘मात वार नौ त्यौहार।’ इन्हीं उत्सवों, व्रतों और त्यौहारों में नाग की सत्य रूप प्रदर्शित होता है। ये नीति सबधी भी होती हैं और व्रत, पति या मनुष्य की कामना में सबन्धित भी। यह महिलाओं द्वारा ही कही-सुनी जाती है। यह सभी सुखात होती हैं और सुनने वालों के लिये भूँसमें आशीर्वाचन रहते हैं। व्रत-कथाओं में वर्जनाओं का भी उल्लेख मिलता है, इनमें श्रद्धा और भय की भावना मुख्यरूप से दिखाई देती है।

अलौकिक शक्ति का अभिज्ञान जहाँ एक ओर भय को पैदा करता है, वहाँ श्रद्धा का आगम भी उसी में होता है। श्रद्धा की यह भावना पूजा, विजय, आत्म-निवेदन और दैन्य के रूप में लोक-कथाओं में व्यक्त हुई है। विनम्र आतिथ्य, समर्पण, मनोनीति, बलि आदि देवताओं को दिए उत्कोच के रूप में सदैव मानव की अपनी ही भावना व्यक्त होती रहती है।

नारी स्वभाव से ही कोमल होती है तथा उसमें हृदय पक्ष, बुद्धि पक्ष की अपेक्षा प्रबल होता है। वह विश्वासों और मान्यताओं को अपने जीवन में एकीकार कर लेती हैं। व्रतों के सबध में कहानियाँ इसका सजीव उदाहरण हैं। इन कथाओं के द्वारा ही हमें यह आभास मिलता है कि इनमें उन ग्रामीण महिलाओं की कितनी आस्था निहित है और यही आस्था है जो धर्म का अकुर पैदा करती है। धार्मिक भावना, नैतिक सबल, सभी का चारित्रिक निर्माण में विशिष्ट स्थान है।

धार्मिक लोक-कथाओं के विभिन्न अंगों पर दृष्टिपात करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि धार्मिक लोक-कथा में भी जीवन के समान ही आस्थानहीनता का कोई स्थान नहीं है। स्त्रियों के व्रत अधिकांश लौकिक हैं। उनका शास्त्रों में उल्लेख भी नहीं मिलता।

व्रत-कथाएँ, धार्मिक विश्वासों के आधार पर खड़ी की गई हैं। इनको अनुष्ठानों और व्रतों में स्थान दिया जाता है। इनके कहने-सुनने से शुभफल की आशा रहती है अथवा अशुभ का निवारण। कहानियों को कहना-सुनना अनिवार्य माना जाता है, अन्यथा व्रतपूर्ण नहीं होता। ‘असमझिया’, ‘प्यासमझिया’ की कहानियाँ बैसाख में कही जाती हैं। इसमें आशा को मातृदेवी का स्थान दिया गया है और उसे सबसे श्रेष्ठ बतलाया गया है। ज्येष्ठ में निर्बला एकादशी, मादो में नागपंचमी (सर्पों ने किस मनुष्य की पुत्री को अपनी बहन माना और बहनों ने कैसे सर्प भाइयों

को स्नेह का प्रतिदान दिया), भाई-बहन के प्रेम को पुष्ट करने वाली कहानी अत्यन्त रोचक है। सावन और भादो में ऐसे कितने ही व्रत आते हैं जिनमें कहानियाँ कही जाती हैं। इनमें सर्पों का उल्लेख अवश्यमेव आता है और ये सर्प मनुष्यों के साथ उदारता और प्रेम का व्यवहार रखते हैं। भाई-बहन के प्रेम की पुष्टि सभी कहानियों से होती है। 'अहोई आटे की कहानी' मतान-कल्याण में नव-रत्नी है। 'मैयादूज' की कहानी पुन भाई के दीर्घ जीवन की कामना के लिये होती है। 'कग्वाचौथ' की कहानी पति और अपने सौभाग्य की रक्षा के लिये। इस प्रकार इन देवी-देवताओं, व्रतों, अनुष्ठानों की कथाओं में कौटुम्बीय प्रेम, पति-पुत्र, भाई की दीर्घायु तथा सुख-समृद्धि की भावना व्याप्त मिलती है। मानाएँ, बहनें, बेटियाँ तथा बहुएँ सपूर्ण एकाग्रता और मन की समस्त श्रद्धा से इन्हें सुनती हैं। 'अतन्त चौदस' की अनोखी कहानी में विविध कुसुमों और फलों की प्रशंसा की जा रही है। 'सकटचौथ' की कहानियों में ईर्ष्या के दुष्परिणाम की आशंका है। इन कहानियों को कहने-सुनने वाली स्त्रियों का स्वर ऊँचा उठता है और उनके घर में दया, प्रेम, पावनता, कर्तव्य और आनन्द का सुखमय वातावरण बन जाता है। विशेष अनुष्ठान की कहानियों में कग्वाचौथ, अहोई आटमी, सकटचौथ, चट-सावित्री, कजरी तीज, गौरी तीज आदि की कहानियाँ आती हैं।

इन सभी कहानियों में कहानी कहने-सुनने के अतिरिक्त लौकिक पूजन का विधान है। हमारे समाज की कन्या व स्त्री सरल शब्दों में देवी का देवता के सम्मुख अपना हृदय खोल कर रख देती है। प्रार्थना के क्षणों में उसके हृदय की सभी भावनाएँ, अच्छी व बुरी प्रदर्शित हो जाती हैं। यह बहुत स्पष्ट और उच्च स्तर पर व्यक्त होती है, जिनका उदाहरण लोक-कथाओं में मिलना है। यह सभी कहानियाँ व्रत के उद्देश्यों से संबद्ध हैं। ये त्यौहार कुछ समय के लिये ईर्ष्या, मोह, राग, द्वेष आदि के वातावरण से परे ले जाकर उल्लास के स्वर्गिक लोक में विचरण कराते हैं।

'रत्नावल्यन' ज्ञान का अमृतघट लेकर देने का मान करना सिखाना है। 'मैयादूज' की कहानी भाई-बहन के प्रेम में ओत-प्रोत है। 'कग्वाचौथ' की कहानी में दाम्पत्य प्रेम कूट-कूट कर भरा है। 'होई' और 'सकटहरण' की कहानी में मातृ-प्रेम छलकता सा जान पड़ता है। 'कार्तिक-स्नान', 'तुलसी' आदि की कहानियाँ त्याग और मन की शुद्धि का पाठ पढ़ाती हैं। इन कहानियों में जीवन का एक उपयोगी 'अमर सदेश' छिपा है।

त्यौहार तथा उनकी कहानियाँ हमारे जातीय जीवन का मुख्य अंग हैं। उनमें

हमारी परम्पराओं और हमारी सस्कृति के विकास का इतिहास गुथा है। वे हमारे लोक-जीवन की सच्ची झाँकी हैं।

कुछ सुधारक इनमें अधविश्वास, रूढ़िवाद एवं अज्ञान का बोलबाला पाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इन्हीं कहानियों में नीति तथा हमारी अतीत सस्कृति बीजरूप में मिलती है। अतः इनका हर दृष्टि से अध्ययन—सामाजिक तथा धार्मिक—अत्यन्त आवश्यक है।

अनुष्ठान, व्रत, त्यौहार सबकी कहानियों के सबध में कह चुकने के पश्चात् यदि हम सात बारों को अच्छता छोड़ देंगे तो शायद अनुष्ठान तथा व्रत सबकी लोक-कथाओं के प्रति न्याय नहीं होगा। जैसा कि पहिले भी सकेत हो चुका है कि सप्ताह का हर दिन किसी न किसी देवता से अपना गठबन्धन किये हुए है। रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि, इन सब कहानियों की लोक-कथा साहित्य में अपना योगदान देती हैं।

१ देवी-देवता सबधी कथाएँ—इन कथाओं में ईश्वर की महत्ता, उसका न्याय तथा विभिन्न रूपों में करुणा का दिग्दर्शन होता है। देवी-देवता करुण होने के साथ पाप तथा कष्टमजक भी हैं। यदि कोई व्यक्ति धर्म के विपरीत चलता है अथवा अनैतिक व्यवहार करता है तो वह उसको दंड भी देते हैं। देवी-देवता सबधी कहानियों की एक यह भी विशेषता है कि उनमें देवी-देवता मनुष्यों से बातें करते हुए पाये जाते हैं। वह उनके सुख-दुख में सम्मिलित होते हैं तथा उनके दुख का अनुभव करते हैं। इससे लोकमानव के मन में देवी-देवताओं से अधिक आत्मीयता का अनुभव होता है और वह समझता है कि देवी-देवता उसके साथी हैं तथा अपने हैं जो दुख अथवा कष्ट के समय उसके सहायक होंगे और उसका सकट निवारण करेंगे। इन कहानियों के द्वारा देवी-देवताओं के प्रति उसके मन की आस्था तथा विश्वास आध्यात्मिक होने के स्थान पर धरैलू अधिक हो जाता है।

देवी-देवता सबधी कथाओं में नारद जी का प्रधान स्थान है। वह जन प्रतिनिधि होने के साथ-साथ भगवान् के परामर्शदाता भी हैं जो समय-समय पर भगवान् के पास जाकर जग का हाल सुनाते हैं तथा जनता के कष्टों को भगवान् के पास जाकर कहते हैं। इस प्रकार की कहानियों में नारद का चरित्र जनतन्त्रात्मक अधिक है। इनके द्वारा ही भगवान् का संदेश मन्त्रों तक पहुँचता है। इन कहानियों के द्वारा ही लोकमानव को विश्वास होता है कि भगवान् उनके लिये अगम अगोचर ही नहीं अपितु वह उनकी पहुँच के अन्दर ही हैं।

लोक-साहित्य में इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ देखने को मिलती हैं। 'विष्णु भगवान् के दर्शन' नामक कहानी इसी प्रकार की कहानी है। भगवान् की

कृपा तथा परीक्षात्मक दण्ड अलौकिक नहीं । जहाँ एक ओर उनके मन में इतनी करुणा तथा दया है, आपस में गहन विश्वास तथा आस्था भी है । इस प्रकार की कहानियाँ जनसाधारण से दूर नहीं । 'साऊ और बदमाश' भी इसी प्रकार की कहानी है । असज्जन व्यक्तियों का भी भगवान् अपने भक्तों से अधिक ध्यान रखते हैं । इन कहानियों में समाज, व्यक्ति तथा ईश्वरीय शक्ति का सामंजस्य है । इसमें मानव के दोनों रूप सम्मुख आते हैं तथा ईश्वरीय शक्ति उनके कर्मों को देखते हुए ही आवश्यक न्याय करती है । इन दोनों कहानी में नारद ही ईश्वर तक पहुँचाने के माध्यम हैं ।

'राम नाम का महत्व' नामक लोककथा प्रतिनिधि लोक-कथा कही जा सकती है । वही बड़ा देवता है जो साधन कम होते हुए भी बुद्धि से जीत जाता है और अन्य सभी देवता उसके सम्मुख हार मान जाते हैं । 'राम-नाम का महत्व' तो इस कथा में है ही साथ ही साथ आवश्यक मानवीय गुणों की ओर भी संकेत किया गया है, जिनका होना व्यक्ति के लिये भी आवश्यक है । इस कथा को एक और तरह से भी कहा जा सकता है । उसमें राम-नाम की परिक्रमा करने के स्थान पर गणेश जी ने अपने माता-पिता शंकर-पार्वती की परिक्रमा कर ली थी । इसीलिए वह बड़े माने गये थे । इस कथा में शंकर-पार्वती के महत्व के साथ-साथ माता-पिता को भी बड़ा महत्व दिया गया है । वास्तव में माता-पिता में भी तो सृजन की शक्ति है ।

अन्य कहानियाँ—चुटक विनायक, सूर्य भगवान्, शिव-पार्वती, लक्ष्मी-दलदूर आदि भी महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं । यद्यपि प्रत्येक की कथा विवेचना सविस्तार नहीं हुई परन्तु ये कहानियाँ स्वयं में देवी-देवता संबंधी कथाओं का प्रतिनिधित्व लिये हुए हैं ।

२ ऐतिहासिक कहानियाँ—देशकाल व परिस्थिति का समाज पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है । उस प्रभाव के अनुसार ही लोक-समाज के लोक-साहित्य का निर्माण होता रहता है । वास्तव में लोकमानव की अभिव्यक्ति के माध्यम तथा परिपाटी तो अपनी ही रहती है । यही कारण है, कि वह सब बातों में अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये चलता है । वैसे लोककथाएँ भी काल और घटनाओं के अनुसार अपना रूप बदल लेती हैं । लोक-साहित्य में राम से लेकर आज तक की सम्पूर्ण लोक-कथाएँ इतिहास के रूप में सुरक्षित हैं । लोकमानव शिक्षित समाज के इतिहास से भी अधिक इन्हीं लोक-कथाओं को प्रमाण मानता है । ये कथाएँ ही उसे देशकाल की सूचना देती रहती हैं । वह जानता है कि अमुक राजा कैसा था, उसका चरित्र किस प्रकार का था, उसके साधन में क्या कमी थी, न्यायप्रिय था या अन्यायी—इन सब बातों की सूचना प्रमाण रूप से इन्हीं कहानियों में मिल

जाती हैं । रामायण, महाभारत सबकी कथाओं तथा राजा भर्तृहरि, राजा हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, ध्रुव, धृतराष्ट्र, राजा भोज, विक्रमादित्य आदि के कथानकों से भी वह चिर-परिचित है। वह सिकन्दर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह आदि से भी अपरिचित नहीं। उनके सबध में वह उतना जानता है जितना कि उसे आवश्यकता है।

यद्यपि ऐतिहासिक लोक-कथाओं के सब चरित्र ऐतिहासिक पुरुष होते हैं परन्तु अन्तर-दृष्टि से ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। इन्हीं सब लोक-कथाओं को वह पूर्ण रूप से सत्य मानता है। वास्तव में इन कहानियों में कई बार यह भी देखने को मिलता है कि वे या तो किसी बात को समझाने करती हैं अथवा किसी बात का अपनी ही प्रकार में प्रतिपादन करती हैं। 'शाकुम्भरी देवी' की कहानी इसी प्रकार की है। उसमें शाकुम्भरी देवी की अपार शक्ति का एक दृष्टान्त है। मनोवैज्ञानिक रूप से भी कोई अवचित घटना नहीं कि अकबर जैसा मुसलमान बादशाह हिन्दुओं की शाकुम्भरी देवी से सबधित अलौकिक कथाएँ सुन कर उसके दर्शनों के लिये इच्छुक न हो उठे और फिर उसे बाद में ध्यान आये कि अच्छा होता यदि वह मक्का-मदीना चला जाता। इसके पश्चात् देवी का चमत्कार होना तथा अकबर का उस शक्ति के सामने नतमस्तक हो जाना। ये दोनों बाने देवी शाकुम्भरी की शक्ति का प्रदर्शन करनी हैं। लोकमानव इतना समझता है कि अकबर बादशाह को भी उसकी शक्ति के सम्मुख झुकना पड़ा और उसे भी देवी को मान्यता देनी पड़ी। इस कथा की घटनाएँ तथा तर्क, दोनों ही पुष्ट हैं तथा अतः लोक-कथा का प्रयोजन भी पूरा हो जाता है।

इसी प्रकार 'सिकन्दर' नामक लोककथा का प्रयोजन भी एक मात्र यही दिखाना है कि आक्रमण के समय सिकन्दर ने कितना अत्याचार किया कि कब्रों तक से भी उसने रुपया निकलवा लिया। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि इन कहानियों की पुष्टि इतिहास से होती है अथवा नहीं—इसकी लोकमानव को कोई चिन्ता नहीं। वह इतना ही जानता है कि सिकन्दर ने भारत पर कितना अत्याचार किया था।

जहाँगीर को लोकमानव न्यायी तथा शील सम्राट् के रूप में जानता है। उसके दरबार में गधे की पुकार भी बादशाह जहाँगीर के कानों तक पहुँचती है तथा उसके साथ न्याय किया जाता है। इस कहानी को कह कर वह न्याय की पराकाष्ठा का दर्शन कराना है क्योंकि इतिहास तो केवल इतना ही बताता है कि जहाँगीर न्याय-शील था परन्तु उसे यह कथा इतिहास के उस संकेत को और स्पष्ट कर देती है।

औरंगजेब की सगीत-अप्रियता भी लोकमानव की दृष्टि में नहीं बच सकी।

सगीत की अर्थी ले जाते हुए लोगो को देख कर औरगजेब यही कहता है कि इसे इस प्रकार से दफन करके आना कि फिर न निकल सके। इस कहानी में जन-साधारण की ओर से नकारात्मक विरोध होता है जिसमें वह स्पष्ट रूप से तो कुछ कह नहीं पाते हैं, औरगजेब के सम्मुख अर्थी ले जाकर ही अपना विरोध प्रकट करते हैं। यह उस काल के समाज का चित्रण है कि उस काल में शासन की कैसी व्यवस्था थी, प्रजा की सगीत के प्रति कितनी रचि तथा जाग्रति थी।

‘बड़ी बेगम’ नामक कहानी में केवल अकबर का नाम ही आता है, अन्य चरित्र अप्रत्यक्ष रूप से सम्मुख आते हैं। परन्तु अकबर से सबधित होने के कारण यह ऐतिहासिक कहानी कही जायेगी। इसमें स्त्री के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी का सारांश यही है कि ‘सूझबूझ’ वाली महिला दरिद्रसे दरिद्रघर को भी सुधार सकती है। इस बात को बेगम बड़ी बुद्धिमत्ता तथा चालाकी से सिद्ध करती है। अन्त में बादशाह को उसके सम्मुख झुकना पड़ता है। ये कहानी आधुनिक युग की आर्थिक समस्याओं का समाधान भी रखती है।

राजा विक्रमादित्य से सबधित दो कहानियाँ—‘विक्रमादित्य’ तथा ‘रोटी का दान’ बहुत महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। राजा ‘विक्रमाजीन’ नामक कहानी में राजा अपने वचन के कारण ब्राह्मणी की जान बचाने के लिए कर्ण के घर जाकर नौकरी करते हैं तथा देवी से जाकर अमीजल लाते हैं और सोना बनाने की झंझझर राजा कर्ण को दे आते हैं। इस कथा में दो तीन अन्तर्कथाएँ साथ चलती हैं। बुढ़िया को जीवित करने के लिए प्रयत्न, ब्राह्मणी के बेटे को राजा की सोना बनाने की झारी लाकर देना। इन कथाओं का आधार केवल एक यही है कि राजा अपने वचन की रक्षा करने के लिये मृत बुढ़िया को जीवित करने के लिये प्रयत्न करता है। उसी के बीच दूसरी अन्तर्कथाएँ भी आकर मिल जाती हैं। इस प्रकार कहानी की उत्सुकता प्रारम्भ से बनी रहती है। इतने कष्ट उठाने के पश्चात् सब सुखी हो जाते हैं।

इसी प्रकार ‘रोटी का दान’ नामक कहानी में अतिथि-सत्कार का महत्व है। इस कहानी के अन्तर्गत यह भी देखने को मिलता है कि जो व्यक्ति कटुवचन कहते हैं उनका वही फल भोगना पड़ता है। पहले जीवन की कथा उसमें अन्तर्कथा के रूप में आती है जिसका सद्प्रभाव पाठको पर स्थायी रूप से पड़ता है।

‘मोरध्वज’ तथा ‘राजा हरिश्चन्द्र’ की कथा भी ऐतिहासिक रूप में ली जा सकती है। मोरध्वज की कथा भी अतिथि-सत्कार का महत्व बतलाती है। इस कहानी के अन्त में पुत्र का बलिदान होने के पश्चात् भी श्रीकृष्ण उसको जीवित कर देते हैं। ये कहानी दृष्टान्त रूप में अवश्य है किन्तु इन कथाओं का लोक-समाज में ऐतिहासिक स्थान बन गया है।

राजा हरिश्चन्द्र के शाप की तथा परीक्षा की कथाएँ जगत्प्रसिद्ध हैं। राजा को शाप, इसलिए दिया जाता है कि रानी तारावती एक भगी को गुरु मानने लगती है इस कारण राजा को सदेह होता है। वह रानी को मार देता है। वह भगी ही अपनी आत्मिक शक्ति से रानी को जीवित करता है और राजा को श्राप देता है। इसीलिए आगे चल कर राजा हरिश्चन्द्र को चाडाल के घर पानी भरना पड़ता है। दूसरी वाली कथा में दो मुख्य कथाएँ एक साथ ही चलती हैं। शाप की पूर्ति तथा सत्य की रक्षा। सत्य की रक्षा करते-करते ही शाप की पूर्ति होती है। राजा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के दो कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम, शाप, द्वितीय 'विश्वामित्र का टोटा।' इसके दोनों ही मुख्य कारण हैं। इस कहानी में चरम स्थिति भी कई बार आती है। रानी का भगी को गुरु बनाना ही कहानी का पहला चरम-बिन्दु है। शाप देते ही कहानी का उतार आरम्भ हो जाता है। विश्वामित्र का टोटा पूरा करना, उसमें बिक जाना, इस तरह कहानी का फिर चढ़ाव आरम्भ होता है। लड़के के मरने तक कहानी फिर चरमबिन्दु तक पहुँच जाती है। तब तक वह चरमबिन्दु बना रहता है जब रानी अपना चीर देती है। उसके पश्चात् कहानी सुखान्त हो जाती है।

यह कथाएँ प्रधान रूप से चार प्रकार की हैं। एक प्रकार की कथाएँ तो शासन से संबंधित हैं। इन कथाओं में न्याय, अत्याचार, तथा दमन सबधी कथाएँ हैं जिसमें जहागीर का न्याय, सिकन्दर के आक्रमण का चित्र तथा औरंगजेब का दमन है जो ललित-कलाओं का विरोधी था। अकबर की कहानी दूसरी प्रकार की है जिसमें देवी-देवता का महत्व दिखलाया जाता है और कथा दो प्रधान धर्मों के मध्य स्वर्गिक सेतु की भाँति है।

अन्य कहानियाँ—राजा हरिश्चन्द्र, मोगध्वज, राजा विक्रमाजीत आदि ऐसी ऐतिहासिक कहानियाँ हैं जिससे वचन-पालन के प्रति जीवन-उत्सर्ग करने की प्रेरणा मिलती है। यद्यपि ये कहानियाँ अलौकिकता लिये हुए हैं परन्तु फिर भी ये लोकसमाज के आदर्श पुरुषों की कहानी हैं जिनको वह पूर्णतया ऐतिहासिक पुरुष मानता है।

चौथी प्रकार की कहानियों का प्रतिनिधित्व 'रोटी का दान' तथा 'धृतराष्ट्र राजा' नाम की कथा हैं जो पिछले जन्म से संबंधित कथाएँ हैं। पूर्व कर्मों का प्रभाव अगले जन्मों पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। इस लोकविश्वास का लोकजीवन पर बहुत गहरा प्रभाव है। यही कारण है कि वे इस जीवन को दुखी बनाकर भी अगले जन्म को सफल और सुखी बनाने की चेष्टा करते हैं तथा उसी के अनुरूप प्रयत्न भी करते हैं। दान, दान, पुण्य करने की क्रिया में यही भावना निहित रहती है 'यहाँ का किया

हुआ, 'दिया-लिया' 'वहाँ' पर मिलेगा। 'विक्रमाजीत' को इतना निन्दनीय कार्य करते हुए भी केवल दो रोटी ही का दान कर देने पर चक्रवर्ती सम्राट् का पद मिलता है। इसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र को अन्धा होना पड़ता है क्योंकि उन्होंने सौ जन्म पूर्व एक टिड्डे की आँखों में तिनका डाल दिया था।

लोक-कथाओं की पृष्ठभूमि में लोक-कथाकार की सत्यता है। वह कहानी नहीं लिखता बस विषय को तथा अन्य उसी प्रकार के उदाहरणों को लेकर इस प्रकार से दोहरा देता है कि उसकी अपनी बात को तर्क की कसौटी पर रगड़ने की आवश्यकता कभी भी अनुभव नहीं होती और न ही वह ऐतिहासिक आँकड़े सग्रहित करता है। यह कथाएँ तो उसकी सरल, सहज अभिव्यक्ति हैं जिसके पीछे उसका कालगत अनुभव चला आता है। अपना धर्म समझ कर हर देश काल का लोकमानव परम्परागत रूप में पूर्वज द्वारा कही गयी बात को सुरक्षित रखना अपना कर्त्तव्य समझता है। ऐतिहासिक लोक-कथाएँ अपने-अपने काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी उत्पत्ति उसी काल के लोकमानव द्वारा हुई होगी। यह बात दूसरी है कि यहाँ तक आते-आते उसका कुछ रूप परिवर्तन हो गया हो। इन कथाओं में से कुछ कथाएँ ऐतिहासिक सत्यो की पुष्टि भी करती हैं। शायद ये सत्य इतिहास के पृष्ठों से छिटक कर लोकमानव के पास पहुँच गये होंगे। ऐतिहासिक कथाओं का यह रूप लोकसमाज की निधि है जो लोकसमाज के पास सदा उमी प्रकाश बनी रहेगी।

३ अलौकिक कथाएँ—लोकसमाज में हास्य-कथाओं के समान अलौकिक कथाएँ भी अत्यधिक प्रिय हैं तथा उनका विशिष्ट स्थान है। मनुष्य अलौकिक तत्वों की कल्पना सदैव से किसी न किसी रूप में अवश्य करता रहा है, जो उसके सब कार्यों को सुगम बना सकें तथा जिसके माध्यम से वह अलभ्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर सके। वह अपने जीवन का अधिक समय कल्पना-लोक में व्यतीत करना है तथा अपनी अनृप्त इच्छाओं को इसी के द्वारा पूर्ण करता है। इन सब भावनाओं की पूर्ति इन्हीं कहानियों के द्वारा होती है। अलौकिक कहानियाँ यद्यपि असत्य होती हैं और मनुष्य को वास्तविक जगत् में दूर ले जाती हैं पर मनुष्य की अनृप्त आकांक्षाओं को पूरा करती रहती हैं। इन्हींलिए उसे इसी प्रकार की कहानियों को सुन कर बड़ा आनन्द मिलता है जो क्षणिक ही होता है। यही कहानियाँ मनुष्य के अन्तर्मन में उपस्थित उस अद्भुत मानव की परीक्षा रूप से पूर्ति करती रहती हैं जो ऐसे दानव को विजय करना चाहता है, जो उसकी सेवा में रह सके तथा उसको धन दे सके, ऐश्वर्य दे सके और यही अन्तर का अद्भुत मानव अमीजल आदि पीकर अमर हो जाना चाहता है। इस प्रकार की

कहानियाँ ऐतिहासिक कहानियों में भी दी गयी है।

इन अलौकिक कहानियों में सदा यह देखने को मिलता है कि जो सत्यनिष्ठ है वह बड़ी से बड़ी विरोधी शक्तियों से भी सघर्ष करने के अंत में विजयी होता है। उदाहरणार्थ—‘झिलमिल का पेड़’, प्रतीकात्मक कहानी है। ‘झिलमिल का पेड़’ समृद्धि का प्रतीक है। राजा का बेवकूफ कहलानेवाला लडका उसके लिए प्रयत्न करने के लिये निकल पड़ता है। रास्ते में बहुत-सी कठिनाइयाँ आती हैं—सर्प उसी कठिनाइयों का प्रतीक है जिसको वह लडका जीत लेता है। अपने प्रयत्नों के साथ-साथ बुद्धि (बुढ़िया) का सहारा भी लिये रहता है जिसकी मदद से वह झिलमिल का पेड़ प्राप्त कर लेता है। परन्तु जब वह सो जाता है तो छद्मवेषी चार साधु काम-क्रोध-लोभ-मोह झिलमिल का पेड़ चुरा ले जाते हैं। फिर वह हीरामन तोते के रूप में अपनी बुद्धि को याद करता है। वही उसको झिलमिल का पेड़ फिर लाकर देता है तथा घर तक पहुँचा आता है। इस प्रतीकात्मकता के अतिरिक्त इस कहानी में बुद्धि तथा प्रयत्नों के सुप्रभावों की ओर भी संकेत किया गया है तथा प्रलोभनों के विरुद्ध चेतावनी भी।

अन्य कहानियाँ इस कहानी से भिन्न हैं। उनमें परी, जादू, दानव आदि प्रधान हैं। उदाहरणार्थ—अनार दे नार, बैत की परी का तेल, बाबाजी तथा मरनी-जीनी रानी। इन कहानियों में पहली एक कहानी तो परी सबधी कहानी है। दोनों कहानियों में ताना लगता है। पहली कहानी में भाभियों का ताना लगता है और वह ‘अनार दे नार’ लाने चल देता है, दूसरी कहानी में चिड़िया की बोली लगती है और रानी ‘आसन्नपाट्टी’ लेकर पड़ जाती है। राजा के दरबार में पान का बीड़ा और तलवार रखे जाने पर राजकुमार बैत की परी का तेल लेने निकल पड़ता है। दोनों ही साधु से मिलते हैं तथा उसकी सेवा करके वरदान लेते हैं। वही साधु उनकी मदद करता है। उन्हें सफलता भी मिलती है। साधु के मिलने के पश्चात् ही से इन दोनों कहानियों में थोड़ा सा अन्तर हो जाता है जो विशेष नहीं है।

‘बाबाजी’ तथा ‘मरनी जीनी रानी’ में दानव-तत्व आ जाता है। बाबा छोटी रानी को मक्खी बनाकर झोली में रख लेते हैं फिर उसको घर ले जाते हैं जो उसको छुड़ाने आता है उसी को पत्थर का बना देते हैं। अंत में सबसे छोटा लडका जाता है और वह उस बाबा जी को मार कर आता है। दोनों कहानियों में ही तोते में जान रहती है। परन्तु ‘मरनी जीनी रानी’ की कहानी बाबा जी वाली कहानी से भिन्न है। इस कहानी में वजीर की रानी ईर्ष्याविश राजकुमारी को मार देती है तथा राजकुमार से विवाह कर लेती है। अंत में यह सत्य प्रकट हो जाता है और वजीर

की लडकी को दड मिलता है। बाबा जी तथा मरनी जीनी, कहानियों का विशेष लोक रूप है। बाबा जी की कहानी का सबध जादू से है यथा—मक्खी बना लेना, राजा तथा राजकुमारो को पत्थर का बना देना। यह सब जादू सबधी विशेषताएँ हैं जिन पर लोक-समाज बहुत आस्था रखता है। दूसरी कहानी पढ़ने से ज्ञात होता है कि उसमे दो विशेषताएँ हैं। राजकुमारी की जान तोते तथा हार मे रहती है। तोता को मार डालने पर हार वजीर की लडकी पहन लेती है। जब वह उसको निकाल कर रख देती है तो राजकुमारी जी उठती है अन्यथा वह मृत रहती है। यह दोनो पक्ष भी जादू से सबधित हैं। इन दोनो कहानियो मे यही विशेषता है कि जादू के साथ-साथ इन कहानियो मे परम्परागत अभिप्राय भी निहित है।

‘दो भाई’ कहानी मे पशु-पक्षी, चकोत-चकोतरी बोलते हुए पाये जाते हैं। वे अपना-अपना उपयोग बतलाते हैं। बडा भाई जागता होता है। वह यह सुनकर कि चकोत को खाने से राज्य मिलेगा, उन पक्षियो को मार देता है। परन्तु छोटे भाई के हाथ चकोत लगता है और वह तो अगले दिन राजा बन जाता है परन्तु पक्षियो को मारने वाले बडे भाई को साँप का भोजन बनना पडता है। परन्तु भोला पारवती उसे जीवित कर देते हैं और वह वहाँ से उठ कर चल देता है। जिस राज्य मे पहुँचता है वह उसके बडे भाई का ही होता है। वहाँ वह दाने को मारता है तब भाई से मिल पाता है। इस कहानी मे चार अभिप्राय हैं। चकोत-चकोतरी खाने से राज्य मिलना तथा सर्प का काटना, पहिला अभिप्राय है, पूर्व राजा के शव के सम्मुख आ जाने से राजा बन जाना दूसरा अभिप्राय है, भोला-पारवती द्वारा मृत को जीवित कर देना तीसरा अभिप्राय है और दाने का एक भेट रोज लेना तथा परदेसी के द्वारा मारा जाना चौथा अभिप्राय है। यह कहानी दो-तीन स्थानो पर अपने चरमबिन्दु पर पहुँच जाती है। इस प्रकार की कहानी से लोक-समाज का अत्यधिक मनोरजन होता है।

‘अमीजल’ कहानी यद्यपि राजा विक्रमादित्य से सबधित है परन्तु इसमे भी पहलेवाली कहानी के समान ही दो-तीन वही पक्ष सम्मिलित हैं। बैमाता से कुम्हार के लडके की आयु के सबध मे यह जानकर कि शादी के समय इस लडके का काल है राजा विक्रमादित्य चल देते हैं—विवाह के समय फिर राजा विक्रमादित्य को निमंत्रण दिया जाता है। उस समय लडके के मेल से शेर बन जाता है और उसको मार डालता है। इसके पश्चात् चकोत-चकोतरी राजा विक्रमादित्य को रास्ता बताते हैं कि कैसे अमीजल मिल सकता है। वास्तव मे पक्षियो को लोक-समाज ने त्रिकालदर्शी माना है। इसीलिए यह समय-समय पर आपबीती, जगबीती के रूप मे यात्रियो को उनके भाग्य के सम्बन्ध मे बताते हैं। राजा चकोत, चकोतरी की बात

सुनकर चल देते हैं। वह तोते को मार कर दाने को मारते हैं तथा उसकी बेटी से विवाह करके उससे कहते हैं कि इस लडके को जीवित कर। वह अपनी कन्नी उँगली चीर कर उस पर अमीजल छिड़कती है। इस प्रकार इन दोनों कहानियों की एक कड़ी दाने से जुड़ी हुई है, जो अत्याचार करता है। कहानी में राजा विक्रमादित्य की प्रजावत्सलता भी प्रदर्शित होती है।

मददगार दोस्त' नामक कहानी यद्यपि पशु-पक्षियों से सबधित है परन्तु इसमें अलौकिकता का तत्व बहुत अधिक मिलता है। सामाजिक रूप से तो इसमें पशु-पक्षी, राजा के लडके से मित्रता निबाहते हैं परन्तु पशु-पक्षियों का देह-परिवर्तन करना तथा हिरनी के शरीर से पूरा बाग तैयार हो जाना, यह दोनों अलौकिक तत्व हैं। इसीलिए इसको अलौकिक कहानी की श्रेणी में रखा गया है।

'कहानी की बात', 'पलग का पाया' तथा 'बाँसुरी'—ये तीनों कहानियाँ अपना विशिष्ट चरित्र रखती हैं। पहली कहानी में एक ब्राह्मण अपने बहनो के घर जाने के लिये निकलता है। रास्ते में वह सबको अपनी कहानी सुनाना चाहता है परन्तु सब सुनने से मना कर देते हैं। किसी को वह पत्थर का बना देता है। पीपल के पत्ते सुखा देता है, नदी का जल सुखा देता है, साहूकार की बहन की देह को कोयला बना देता है। बस एक छोटी बहन उसकी बात सुनती है। जब वह लौटता है तो सब पूछते हैं। वह बताता है कहानी सुनने के कारण ऐसा हुआ। तब सब उसकी बात सुनते हैं और फिर 'वैसे के वैसे' ही हो जाते हैं। इस प्रकार कहानी समाप्त होती है। किसी की बात न सुनने पर अंत में कष्ट भोगना पड़ता है। जब सब अपनी भूल स्वीकार करते हैं तब कहीं जाकर उनके सुख के दिन आते हैं। और गरीब छोटी बहन जिसने सदैव माना, उसको कभी भी कष्ट नहीं उठाना पड़ा। 'पलग का पाया' और 'बाँसुरी' भिन्न प्रकार की कहानियाँ हैं। पलग के पाये वाली कहानी को 'जादू-गर बाढी' भी कहते हैं। इसमें बाढी इस प्रकार का पलग बनाता है जो दाने को मार आता है तथा पलग में लग जाता है। पलग में ही ऐसा जादू है कि पाये बोलते हैं तथा मनुष्य की भाँति कार्य करते हैं। वैसे तो यह बात असंभव सी लगती है परन्तु जब जादू की ही बात आती है, तो लोकसमाज इस पर बहुत विश्वास कर लेता है। 'बाँसुरी' नामक कहानी में यही विश्वास निहित है कि मृत आत्मा जब तक बदला नहीं ले लेती वह भटकती रहती है। माँभी से बदला लेने के लिए नन्द बाँसुरी बनती है तथा माँ तक पहुँचती है। जब माँ पर भेद खुलता है तब वह उन सब बहुओं को घर से बाहर निकाल देती है। इस कहानी में यही विशेषता है और अलौकिक तत्व हैं कि लडकी मरने पर बेरी बनती है, परन्तु उसमें चेतना बनी रहती है। वह अपने ससुराल के नाई से कहती है, जोगी से भी कहती है, माँभियों के सामने गाने

से मना कर देती है। माँ के सामने भी हिचकती है और रात्रि में सब कार्य कर देती है। अन्त में जब बदला ले लेती है तो माँ उसकी शादी कर देती है। यद्यपि वह मृत है परन्तु फिर भी वह देह धारण कर लेती है वैसे तो इस कहानी के तथ्य तर्कसंगत नहीं हैं पर लोकमानव उसमें अटूट विश्वास रखता है।

इन कहानियों से भिन्न कुछ ऐसी कहानियाँ भी हैं जो आकार में विस्तृत हैं तथा विषय में इन सब कहानियों से भिन्न हैं। इन कथाओं को मिश्रित कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। वैसे तो इन सब में अलौकिक तत्व ही प्रधान हैं परन्तु इसमें अन्य तथ्य सामाजिक, धार्मिक आदि भी आ जाते हैं। इस प्रकार की कहानियों में ये पाँच कहानियाँ आती हैं उदाहरणार्थ—गुलबकावली, घडा बेटा, चार-व्याह राजा का बेटा, राजा का बाग और छोटा बेटा, सात कोठड़ी और दो लडके। अब इन कहानियों पर अलग-अलग दृष्टिपात करेंगे। सबसे पहले 'गुलबकावली' की कहानी आती है।

'गुलबकावली' फूल से सबधित कहानी है। इस प्रदेश में इसी के समान 'गुल-सनोवर', 'गुलचम्पा' आदि कहानियाँ भी प्रचलित हैं। महामारत में भी इसी प्रकार का एक आख्यान मिलता है जिसमें द्रोपदी की इच्छा पर भीम गधमादन पर्वत से फूल लेने जाता है वहाँ पर किन्नरों और गधवों को हराता पड़ता है। वास्तव में अन्य और साहित्य में भी फूल सबधी कहानियाँ मिलती हैं। अलिफ लैला में भी फूलों से सबधित कहानियाँ हैं—गुलसनोवर तथा गुलबकावली कहानियाँ उसी साहित्य से सबधित कहानियाँ हैं। परन्तु लोक-समाज ने इस कहानी को अपना रूप दे डाला तथा खडीबोली लोकसाहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय कहानी हो गयी। गुलबकावली कहानी के आधे भाग में कहानी का बीजारोपण तथा प्रयत्न है। आधे राजा का बड़ा राजकुमार असफल हो जाता है, छोटा राजकुमार सफल होता है। कहानी के इस भाग में उस देश, काल और समाज की ओर संकेत है। दोनों राजकुमारों का गुलबकावली का फूल लेने जाना उनके पितृभक्ति का परिचायक है। दूसरे उस काल में कितना वेश्याओं का प्रभाव था, ये भी इस कहानी से पता चलता है। परियों का नृत्य अलौकिकता लिये हुए है।

कहानी के अगले भाग में चूहे तथा बिल्ली का महत्वपूर्ण योग है। चूहे सिखाये हुए हैं। वह खेलते समय सार बदल देते हैं, इसीलिए रानी अच्छे से अच्छे खिलाड़ी को भी हटा देती है तथा उसे बन्दी बना लेती है परन्तु बिल्ली के भय से चूहे नहीं आते। राजकुमार रानी को हरा देता है। उसका बड़ा भाई वहाँ पर कैद में होता है। वह उसे भी छुड़वा देता है।

रानी से विवाह कर जब वह आगे बढ़ता है तो राक्षस की लडकी मिलती

है जो उसे देख कर हँसती तथा रोती है। राक्षस अपनी बेटी के कहने पर उसका विवाह राजकुमार से कर देता है तथा वह ही सुरग बनाकर राजकुमार को गुलबकावली से मिलती है। गुलबकावली तथा राजकुमार से प्रेम सबध हो जाते हैं। एक दिन गुलबकावली की माँ दोनों को बात करते देख राजकुमार को ठगो के देश में फेंक देती है। फिर गुलबकावली की मौसी उसे गुलबकावली से मिलती है तथा उन दोनों की शादी हो जाती है। कहानी के इस भाग में बहुविवाह एवं पारस्परिक सामाजिक सबध की ओर संकेत है।

जब वह गुलबकावली तथा फूल को लेकर चलता है तो रास्ते में उससे फूल छीन लिया जाता है तथा उसे पेड़ से बाँध देते हैं। राक्षस की बेटी अपने राक्षसों को बुला कर राजकुमार को उनके द्वारा मँगाती है। अन्त में सब भेद खुलता है तथा राजकुमार बड़े भाई को क्षमा कर देता है।

कहानी के आगे भाग में ध्येय की प्राप्ति का कोई चिह्न नहीं मिलता। ये भाग केवल बड़े राजकुमार की असफलताओं तथा छोटे राजकुमार की बुद्धिमानी और सफलता का परिचायक है। वास्तविक कहानी, राक्षस की बेटी से विवाह करने के पश्चात् से प्रारम्भ होती है। इस कहानी में सब ही प्रकार की भावनाएँ अलौकिकताएँ, सामाजिक प्रचलन, पशु-पक्षी का सहयोग आदि आ जाते हैं।

दूसरी कहानी 'घड़ा का बेटा' है। इस कहानी में पुत्रहीन राजा महात्मा के पास पुत्र की लालसा लेकर जाता है। वह खड़ाऊँ देता है जिसको आम के पेड़ में मारने से आम झड़ता है। साधु उसी आम की सात फाँक कर देता है और उन सातों फाँकों को सातों रानियों में बाँट देता है। एक रानी आम की फाँक घड़े पर रख देती है। छ रानियों के तो राजकुमार होते हैं किन्तु सातवीं रानी के घड़ा जन्म लेता है। बड़ा होने पर घड़ा भी राजकुमारों के साथ खेलने जाता है और सुनार की दुकान पर से सोना-चाँदी भर कर लाता है। अन्य रानियाँ उससे ईर्ष्या करने लगती हैं। अन्त में घड़े का विवाह हो जाता है। फेरो के समय लड़की घड़े में ईंट मार देती है तथा उसमें से एक सुन्दर लड़का निकल आता है। ईर्ष्यावश देवरानी, जिठानी उसको विष देना चाहती हैं परन्तु अपनी माँ की सीख के कारण वह बच जाता है। इस कहानी में पुत्र की लालसा के साथ ईर्ष्या का भी प्रदर्शन हुआ है। अलौकिक-तत्व ही मुख्य है।

'चार व्याह' नामक कहानी भी इसी प्रकार की मिश्रित कथा है। इसमें वजीर का लड़का और चार प्रकार की लड़कियों से विवाह करता है। बादशाह की लड़की से विवाह करने के लिए वह चालाकी से काम लेता है। सर्प के काटने पर उसे सँपेरा जीवित कर लेता है और उसको तोता बना लेता है। वजीर की लड़की उस तोते

को माँग कर ले जाती है, उससे गले का धागा टूट जाता है तो वह आदमी बन जाता है। वह वहाँ से भागता है और बनिये के घर में घुस जाता है। बनिया उसे दामाद कहकर सिपाहियों से वचाता है। इस प्रकार वजीर का लडका बादशाह की, वजीर की, सँपेरे तथा बनिये की लडकी से शादी करके घर लौटता है।

अतः चौथी कहानी 'राजा का बाग और छोटा बेटा' रह जाती है। राजा का बाग सूखते हुए देख कर छोटा लडका तीन परियों से तीन बाल ले लेता है और उनसे कहकर बाग हरा करा देता है। फिर उन्हीं बालों की सहायता से वह स्वयंवर में विजय प्राप्त करता है और राजा की लडकी से विवाह कर लेता है। फिर वह हिरनो को मार कर अपने पराक्रम का परिचय देता है। बाग सूखने का संकेत वश से है। इसीलिए राजा उन्हें सातों पुत्रों को बाग हरा करने के लिये भेजता है। छोटा लडका अलौकिक शक्तियों की सहायता से विवाह करके घर को हरा भरा कर देता है। अन्त में वह हिरनो के रूप में सात शत्रुओं को भी मार देता है।

इन कहानियों की अलौकिकता में लोकमानव का इतना ही विश्वास है जितना अन्य अन्धविश्वासों में। वह दाना, परी, भूत, प्रेत, जादू आदि में विश्वास करने के कारण इन कहानियों को भी बहुत आस्था से कहता और सुनता है। कई बार ये लोग भूत, प्रेत, दाने तथा जादू भी सिद्ध करते पाये जाते हैं। एक लोकविश्वास है कि यदि पाखाने में चालीस दिन तक तेल का दिया जलाया जाय तो दाना मिद्ध हो जाता है। यह सब लोकविश्वास लोकमानव की इन्हीं कहानियों की देन है। 'अलिफलैला' में तो दाने, आबेहयात, उडनखटोला आदि की बहुत-सी कहानियाँ मिलती हैं। इस प्रकार हमारी धार्मिक पुस्तकों में भी मय, दानव तथा अन्य राक्षसों के आख्यान मिलते हैं जिनको अलौकिक कहा जा सकता है। इसीलिए इन कहानियों पर लोक-मानव को अटूट विश्वास है और बना रहेगा।

३ सामाजिक कथाएँ—मनुष्य समाज की इकाई है। वह समाज में रह कर मित्र-मित्र कार्यकलाप करता है तथा सामाजिक, धार्मिक एवं अन्य सभी समस्याएँ उसी के चारों ओर घेरा बनाये हुए घूमती रहती हैं। सामाजिक लोक कथाओं में उसी से संबंधित कथाएँ संग्रहीत हैं। उसकी भौगोलिक सामाजिक परिस्थितियाँ तथा परम्पराएँ, जीवन के मूल्य, विश्वास, नैतिक अनैतिक भावनाएँ एवं उच्च तथा निम्न प्रतिक्रियाएँ, इन कथाओं में व्यक्त होती हैं। सामयिक समस्याएँ भी इन लोककथाओं में चर्चित रहती हैं जैसे बाल-विवाह, अत्यधिक वृष्टिकाल आदि। सामाजिक कथाओं को हमने चार उपवर्गों में बाँटा है —

१—स्थानीय कथाएँ २—बाल कथाएँ ३—जाति-सबघी कथाएँ ४—सामान्य कथाएँ ।

स्थानीय कथाएँ—इनके अन्तर्गत खडीबोली प्रदेश के नगर तथा ग्रामों से सबधित कुछ कथाएँ हैं । इन कहानियों में मेरठ, मुजफ्फरनगर, गढमुक्तेश्वर, सिधावली आदि स्थानों के सबध में कुछ लोक प्रचलित कथाओं पर विशेष रूप से चर्चा की गई है । मेरठ के सबध में श्रवणकुमार की कहानी है । इस नगर के सबध में विश्वास है कि यहाँ के लोग अत्यंत अक्खड तथा कृतघ्न होते हैं । यह प्रभाव यहाँ के वातावरण पर छाया हुआ है । इसका प्रभाव श्रवणकुमार जैसे आज्ञाकारी पुत्र पर भी पड़ा था और यही पर उसने अपने माता-पिता से अपनी सेवाओं का मूल्य माँगा था ।

गढमुक्तेश्वर में 'नरककुड' है जिसका सबध राजा नृग से बताया जाता है । गाय को दुबारा दान कर देने पर राजा को गिरगिट की योनि में जाना पड़ा, इसी बात का इस कहानी में उल्लेख है । इसीलिए परीक्षितगढ में 'नवलदेकुआ' की कहानी है जिसके सबध में विश्वास है कि उसमें स्नान करने से कोढ़ जाता रहता है । नवलदे, राजा बासुकी की पुत्री थी जो अपने पिता के कोढ़ के उपचार के लिए उस कुएँ से अमृत लेने आई थी परन्तु बाद में राजा परीक्षित ने उस पर मोहित होकर उससे विवाह कर लिया था ।

इसी प्रकार मुजफ्फरनगर के सबध में दो कथाएँ प्रचलित हैं । वहाँ पर डल्लू देवता का मन्दिर है । डल्लू देवता सर्प देव है जिनकी बहुत मान्यता है । उसके सबध में प्रचलित कथा भी विशिष्टता लिये है ।

इसी प्रकार की एक दूसरी कथा और भी है । मुजफ्फरनगर में ही गाजावाली नामक जोहड़ के ऊपर स्थान बना है जिसे देवता का थान कहते हैं, इस थान का सबध किसी एक जमींदार के पितरों से है जो अब सर्प के रूप में कुल देवता माने जाते हैं और पूजे जाते हैं ।

ज़िला मुजफ्फरनगर में सिधावली ग्राम है । इसके सबध में किंवदन्ती है कि वहाँ के लोग बेवकूफ होते हैं । इन कहानियों से वहाँ के सैयदों की सरलता तथा अत्यधिक सीधापन प्रकट होता है । इन कहानियों का प्रयोजन केवल इतना ही है कि इन स्थानों के इतिहास तथा उनमें अन्तर्निहित विश्वास का ज्ञान सुचारु रूप से हो जाये । वास्तव में मनुष्य के समान ही स्थान-स्थान में भेद होता है और उसी के अनुरूप उसका सम्मान तथा अनादर होता है । इन्हीं सब बातों पर ये लोककथाएँ आधारित रहती हैं ।

बाल कथाएँ—यह कथाएँ दो प्रकार की हैं—लघुछंद तथा साधारण

कहानियाँ। लघुछन्द का कथाओ में प्रयोग हुआ है। यह छन्द तुकान्तरूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा इनमें एक लय बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। छन्द भी पूरे छन्द नहीं हैं। साधारण शब्दों में दो-दो चार-चार लाइनें हैं जिनका प्रयोग कहानी में, कहानी के पात्र समय-समय पर करते हैं। दूसरी प्रकार की कथाएँ साधारण कथाएँ हैं जिनमें छन्द का प्रयोग नहीं किया गया केवल लय में ही कही गयी है।

‘बरसो राम घडाके से’, ‘गोगो रानी’, ‘काने कचरे की कहानी’, ‘जाट और बनिया’, ‘मैना और चना’,—ये पाँच कथाएँ लघुछन्द कथाओं के अन्तर्गत आती हैं। पहली दो कथाएँ पूर्णतया छन्द कथाएँ हैं। इन कथाओं से बच्चों का मनोरंजन होता है। ‘बरसो राम घडाके से’ लघुछन्द कथा अधिकतर किसी बुढ़िया को चिढ़ाने के लिये कहते हैं। इस कथा में पूर्णरूप से प्रकृति वर्णन है। बुढ़िया का मरना गर्मी की अधिकता का द्योतक है क्योंकि गर्मियों में वह कुछ कमा नहीं पाई। इस-लिये फाका (उपवास) रख कर मरना पड़ा। इसी प्रकार नाके की नानी का मरना, मछली का घबराना, धोबी के कपड़े तथा पेड़ों के पत्तों का सूखना, ये सब प्रकृति के सबंध में पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। अतः सब का मिल कर प्रार्थना करना, आस्था का द्योतक है तथा ओले गप्प-गप्प खाना मोद का प्रतीक है। इसी प्रकार ‘गोगो-रानी’ कथा में अथक परिश्रम, आशीष में आस्था तथा घर के सम्मान के प्रति जागृति निहित है। ‘गोगो रानी’ देवी के लिये प्रयोग किया गया है। वह बालक पख लेकर कुआ खोदता है, धान बोता है, खोदता है। वह चावल निकाल कर खाया तथा कुत्ते को डाला। कुत्ते ने उसे बाच्छी (आशीर्वाद) दी। बालक की आशीष में कितनी बड़ी आस्था है कि उसके द्वारा वह राजा से घोड़ा ले आता है और घोड़ा वह डूँगो को दान कर देता है। और वास्तविक प्रसन्नता उसे तब होती है जब उसके बड़ो का नाम लिया जाता है। इन दोनों कथाओं में बच्चों को शिक्षा भी मिलती है तथा इससे बच्चों की नैतिक पृष्ठभूमि पुष्ट होती है। पहली, दूसरी, दोनों कथाओं से प्रार्थना, आशीष एवं दान के प्रति बालकों के मन में विश्वास जाग्रत होता है। दूसरी कहानी में अथक परिश्रम करने की तथा मान-सम्मान के प्रति जागृत रहने की शिक्षा मिलती है।

अन्य तीन कथाएँ—‘काने कचरे की कहानी’, ‘जाट और बनिया’ तथा ‘मैना और चना’ पूर्ण रूप से छन्दकथा नहीं हैं अपितु उनमें दो-तीन स्थलों पर ही छन्द का प्रयोग हुआ है। ‘काने कचरे की कहानी’, ‘मुर्गों का विवाह’ नामक कहानी के समान है। ‘काने कचरे’ के समान ही मुर्गा भी अपने विवाह में पशु-कीड़ी तथा नदी को ले जाता है और राजा के अपनी लडकी से विवाह करने के लिये मना कर

देने पर वह इन्ही मित्रों से सहायता लेता है। अन्त में राजा की लड़की से विवाह करके लाता है। कहानी में 'मुर्गों का विवाह' नामक कहानी से कुछ और भी अन्तर है। काना कचरा खाने पर लड़का भी काना ही पैदा होता है तथा उसका नाम काना कचरा पड़ जाता है। 'मुर्गों का विवाह' कहानी में छन्द का प्रयोग नहीं हुआ। ये कहानी कचरे के जीवट की कहानी है। वह अकेला राजा से जीत जाता है। दूसरी कहानी 'जाट और बनिया' की कथा में जाट की लाठी का दिग्दर्शन है। वह बनिये को यह कह कर बेवकूफ बनाता है—'सत्तूमन भत्तू कब घोला कब पीया'। बनिया यह समझ कर कि यह तो बड़ी देर का काम है जाट को सत्तू दे देता है और घान (भूजी) ले लेता है और कहता है—

'भले बिचारे घन्नु, खोट्टे पिस्से अर चलनु'

पर जब जाट सत्तू घोल कर खा जाता है और बनिये को खोटने पीसने पड़ते हैं तब उसे ज्ञान होता है।

'चना और मैना' की कहानी बड़ी कहानी है। इसमें चना खो जाने पर मैना सबके पास जाती है कि उसका चना कोई वापिस करा दे परन्तु सब मना कर देते हैं। बाढ़ी खूंट चीरने को मना कर देता है क्योंकि खूंट ने उसका क्या बिगाड़ा था। तो वह यह कह कर कि—

खूट चना देना, बाढ़ी खूट चीरें ना

मैना का चना निकले तो कैसे निकले ?

निराश लौट पड़ती है। उसे बाढ़ी पर गुस्सा आता है वह साँप के पास जाती है और साँप से बाढ़ी को डसने के लिये कहती है। वह भी यही कहता है कि बाढ़ी ने मेरा क्या बिगाड़ा जो मैं उसे डस लूँ फिर वह निराश होकर यही कहती है —

खूट चना दे ना

बाढ़ी खूट चीरें ना

साँप बाढ़ी डसे ना

मैना का चना निकले तो कैसे निकले

इसी प्रकार वह लाठी के पास, आग के पास, बादल के पास तथा समुद्र आदि के पास जाती है, सब मना कर देते हैं। वह कहती है कि—

'मैना का चना निकले तो कैसे निकले'

अतः राम के पास जाती है और राम जी समुद्र सोखने के लिए कह देते हैं। समुद्र सुनता है तो वह दौड़ता जाता है कि मैं बादलो को पानी दूंगा, तो बादल दौड़ते हैं, आग दौड़ती है, लाठी दौड़ती है, साँप दौड़ता है, बाढ़ी जाकर खूट खोदने लगता है तो खूट मैना का चना दे देती है और मैना खुश हो जाती है। इस

कहानी में यह दिखलाया गया है कि जब तक किसी शक्तिशाली व्यक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता तब तक कार्य नहीं होता और न ही अनुनय विनय से काम चलता है । इस कहानी में ईश्वर के प्रति आस्था की पुष्टि होती है ।

गीतात्मक तथा लयात्मक वस्तुओं को बच्चे बहुत जल्दी याद कर लेते हैं । इसीलिए बालकों को छन्दात्मक कथाएँ सुनाई जाती हैं । रात्रि को सोते समय ये कहानियाँ लोरी का काम करती हैं । लयात्मक कथाओं के सिवाय ऐसी कथाएँ भी होती हैं जिनमें लघुछंद बिल्कुल नहीं होते परन्तु वह कथाएँ बालकों को बहुत अच्छी तरह से याद रहती हैं तथा उनका उन पर अमिट प्रभाव पड़ता है । उनमें से कुछ कथाएँ ‘अच्छे कर्मों से स्वर्ग दिखाई देता है’, ‘पूडो का पेड़’, ‘कन्नो-मन्नो और मैं’, ‘झूठा बालक सच्चा लड़का’ अत्यंत प्रभावशाली कथाएँ हैं । ‘अच्छे कर्मों से स्वर्ग दिखाई देता है’ नामक कहानी उत्तम तथा मनोवैज्ञानिक कहानी है । इसमें बालक कहानी सुनकर तथा तसवीरे देख कर स्वर्ग के बच्चों से खेलने की इच्छा करता है । बच्चे खेलने के लिये यदि बुलाने आते हैं तो वह उनके साथ खेलने के लिए मना कर देता है तथा स्वर्ग के बच्चों के साथ खेलने के लिये कहता है । वह सुबह की किरणों से पूछता है कि किरणों मुझे, स्वर्ग दिखाओ । आकाशवाणी होती है कि दिव्य दृष्टि से स्वर्ग दिखाई देगा । वह बाजार से दिव्य दृष्टि खरीदने जाता है । शाम को बाग में एक परी मिलती है और वह उसे डिबिया देती है और कहती है कि जितने अच्छे काम करोगे उतने ही स्वर्ग के रुपये इसमें जमा हो जायेंगे । बुरे काम करोगे तो उतने ही रुपये निकल जायेंगे । जब स्वर्ग के रुपये जमा हो जायेंगे तब स्वर्ग दिखाई देगा । वह अच्छे काम करके सुरग के रूप में जोड़ लेता है । कहानी में एक बूढ़े के कहने पर वह अपने सब स्वर्ग के रुपये उसे दे देता है । बूढ़ा कोई देवता होता है । वह उसके दान से प्रसन्न होकर उसे स्वर्ग दिखा देता है । इस कहानी में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

प्रथम तो इस कहानी में बालक के बालसुलभ मनोविज्ञान का चित्रण है जिसमें वह स्वर्ग के बच्चों के साथ खेलने की इच्छा करता है तथा वह इतना सरल है कि दिव्य दृष्टि बाजार से खरीदने जाता है ।

दूसरे स्वर्ग को देखने के लिए वह स्वर्ग के रुपये इकट्ठे करने लगता है । परन्तु उसके सामने रूपयों से अधिक अच्छे कामों का मूल्य है, वह लालच को छोड़ कर स्वर्ग के रुपये बूढ़े को दे देता है ।

इस कहानी में अच्छे कर्म करने की प्रेरणा है तथा कहानी की कथावस्तु इस प्रकार ही है कि बच्चों के मानस को पुष्ट बनाता है । ‘कन्नो-मन्नो और मैं’ खेल की कहानी है । इसमें बालसुलभ शैतानी है । तीर लेकर गुरसल मारना, कुकड़ी को

रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक तथा सामाजिक मूल्यों को ही श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरी जाति के लोगों के स्वभाव तथा रीति-रिवाजों के प्रति अत्यधिक आलोचक होते हैं अथवा उनके परिहास का विषय भी होते हैं। सब जातियों का जीवन-यापन करने का अपना एक निश्चित ढंग होता है अथवा एक प्रकार का कार्य करते रहने के कारण वह उसकी आदत में ही आ जाता है। इसी के आधार पर वह उसका जातीय गुण अथवा अवगुण बन जाता है। उदाहरण के लिये बनिया कजूस होता है, ब्राह्मण की मागनी-ग्व नी जाति है, कायस्थ चालाक होता है, जाट तुरत बुद्धि होता है। यह जातिगत विशेषताएँ हैं। इस प्रकार की बातों को लेकर हर जातिवाला एक दूसरे से परिहास करता है। जाति से अलग लिंग के आधार पर भी कथाएँ होती हैं, उदाहरण के लिए स्त्री तथा पुरुष सबघी कथाएँ। 'तोता मैता' में सम्पूर्ण कथाएँ ही स्त्री-पुरुष से संबंधित हैं। वैसे तो यह सब कथाएँ मनोरंजन के लिये ही होती हैं परन्तु उनमें जातीय मलिनता तथा कलुष भी झाँकते रहते हैं।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कुछ जाति सबघी कथाओं की चर्चा करेंगे। इन कथाओं में ब्राह्मण, बनिया, जाट, डोम, नाई, चमार, कुम्हार आदि में संबंधित कथाएँ हैं। इन कथाओं में जातीय गुण-अवगुण की ओर संकेत किया गया है। 'ब्राह्मण और बनिया' नामक कहानी में दोनों जातियों की विशेषता का सजीव उदाहरण है। इसमें बनिया पेड़ पर चढ़ कर उतर न पाने पर सौ ब्राह्मणों को खाना-खिलाने की मान्यता करता है परन्तु नीचे उतरते-उतरते केवल एक ब्राह्मण को ही खाना खिलाने की बात रह जाती है। एक ब्राह्मण जो कहीं पर यह बात सुनता होता है, वह सेठ जी के साथ चालाकी करता है, तथा ललाइन से सौ ब्राह्मणों को खाना खिलवाने का प्रबन्ध कराता है। जब लालाजी आते हैं और उन्हें मालूम होता है तो वह उसके घर लड़ने के लिए पहुँचते हैं। अन्त में यही होता है कि ब्राह्मण मरने का बहाना करके पड़ जाता है तथा लाला से और रुपया वसूल करता है। यह कहानी दोनों जातियों का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती है तथा जातिगत कमी के प्रति सजग भी रहती है।

'चालाक बनिया' तथा 'लोभी बनिया' यह दोनों कहानियाँ बनिये की, धन की सुरक्षा के प्रति जागृति तथा कजूसी की कथाएँ हैं। वैसे तो पहली कहानी में ही ये दोनों बातें आ जाती हैं। पहली कहानी में बनिये की होशियारी का भी दिग्दर्शन है। वह चार चोरो को एक स्थान पर बैठा ही बैठा मार देता है तथा एक बूढ़े को सवा रुपए में एक मुर्दा फेंक आने के लिए तय करता है और उससे चारों मुर्दों फिकवा देता है परन्तु एक पैसा भी नहीं देता। इसी प्रकार से 'लोभी बनिया' की भी

कहानी है। इसमें वह तीर्थ करने जाता है परन्तु वह वहाँ एक घेला भी दान नहीं करता। अपितु चिता पर जलने के लिए तैयार हो जाता है परन्तु भगवान् उसे बचा लेते हैं और उससे कहते हैं इतनी कजूसी नहीं करनी चाहिये।

जाट-जाटनी से सबधित कथाएँ भी उसकी तुरत बुद्धि से सबधित कथाएँ हैं। इन कथाओं में 'मै तो खुदा हूँ', 'किसका खेत किसकी भैंस', 'जाट की उरली परली बात' तथा 'चालाक जाटणी' विशेष है। पहली कथा में जुलाहे के अपने आपको पठान बताने पर जाट उसकी जाति पूछे जाने पर बतलाता है 'मै तो खुदा हूँ'। क्योंकि जब जुलाहा पठान बन सकता है तो फिर जाट खुदा क्यों नहीं हो सकता। यह कहानी जाट की तुरत बुद्धि की द्योतक है। दूसरी कहानी 'किसका खेत किसकी भैंस' उनकी झगडालू प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। बिना भैंस और खेत के हुए दोनों जाट जमीन पर खेत खींच कर तथा ककड की भैंस बना कर लड पड़ते हैं। न वहाँ किसी की भैंस होती है और न खेत ही।

'जाट की उरली परली बात' में बड़ा भाई जाटनी से छोटे भाई का बदला लेता है। इस कहानी में यह बात भी निहित है कि व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार कार्य करना चाहिये नहीं तो जाट के छोटे भाई की तरह बेवकूफ बनना पड़ता है। 'चालाक जाटणी' में जाट उससे तरमतर हलवा और गरम दूध का 'बेल्ला' पीता है। वह अन्धा बनने का ढोंग रचता है परन्तु अन्धा नहीं होता। जब जाट के अन्धे बनने की खुशी में वह ब्राह्मण जिमाती है तो वह जाटणी को उसी के सामने पीटता है। इस कहानी में यद्यपि यह कहा गया है कि जाटनी उसको अघा करना चाहती है परन्तु यह कहानी जाट की चालाकी पर ही प्रकाश डालती है।

अन्य कहानियों में नाई, कुम्हार, डोम तथा चमार, जुलाहे से सबधित कहानी है। 'नाई की चालाकी' तथा 'सींगे वाला राजा' पहली कहानी में नाई की वाक्-पटुता का उदाहरण मिलता है।

दूसरी कहानी में नाई के पेट के थिथलेपन का ज्ञान होता है। वास्तव में नाई अधिकतर अपने जजमानों को प्रसन्न करने के लिये इधर से उधर बातें कहा करते हैं, परन्तु वह 'राजा के सिर में सींग' वाली बात उसके पेट में नहीं खपती। इसलिए वह जंगल में पेड़ की जड़ में जाकर चीखता है।

'कुम्हार' कहानी में वह अपनी कुम्हारी के बार-बार मनाने पर भी वह नहीं मानता। अन्त में वह जला दिया जाता है परन्तु वह होशियारी से निकल भागता है तथा जोहड़ में लोट जाता है और भूत का रूप बनाकर एक और कुम्हार के गधे को धर ले आता है। इस कहानी में कुम्हार की चालाकी है जिसमें वह अपनी पत्नी को नीचा दिखाना चाहता है।

‘चालाक डोम’ तथा ‘चमार’ दोनों ही भिन्न प्रकार की कहानियाँ हैं। ‘चालाक डोम’ नामक कहानी का अन्तिम भाग ‘कुम्हार’ कहानी से समानता रखता है। इस कहानी में उसे खीर खाने के लालच में ही सब झूठ बोलना पड़ता है। दशा यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसे मरने का ढोंग रचना पड़ता है। लोग उसे जमीन में गाड़ देते हैं परन्तु वह जमीन में से निकल कर घोबी के कपड़े उठाकर भाग आता है। एक झूठ निबाहने के लिये उसे इतनी कठिनाई उठानी पड़ती है परन्तु इस कठिनाई का प्रतिफल उसे घोबी के कपड़ों के रूप में मिल जाता है। चमार कहानी ‘चमार’ के शेखीखोरेपन का उदाहरण है। चमार ज्योतिष नहीं जानता परन्तु वह अपन आपको ज्योतिषी घोषित करता है। भाग्य से उसकी बात सत्य हो जाती है। अन्त में वह राजा के खुश हो जाने पर दरियाई घोड़ा माँग लेता है पर वह उसको सँभाल नहीं पाता। अतः वह अपनी ही भूल के कारण मर जाता है। अन्तिम कहानी ‘जुलाही’ रह जाती है। यह कहानी जुलाही जाति से इतनी सबधित नहीं जितनी यह स्त्री-पुरुष से सबधित है। जुलाही स्त्री होकर भी अपनी होगियारी से हलवाई से छपया निकाल लाती है जो कार्य कि पुरुष नहीं कर पाता।

४ सामान्य या फुटकर सामाजिक कथाएँ—इन सब कहानियों पर दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् हमारे पास कुछ और सामाजिक कहानियाँ शेष रह जाती हैं जिनको कि बाल-कथाओं, स्थानीय-कथाओं तथा जातीय-कथाओं के समान किसी एक वर्ग में नहीं रखा जा सकता। यह मनुष्य की विभिन्न भावनाओं, सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के अन्य कार्य-कलापों से सबधित है। इनको हमने फुटकर रूप में एकत्र किया है। इनका वर्गभेद भी हम सामान्यतः फुटकर सामाजिक कथाओं में कर रहे हैं। सख्या में यह कहानियाँ केवल १४ ही हैं—सृष्टि की उत्पत्ति, आदमी की उमर, हुड की बरखा, भगवान् से माँगो, सबसे बड़ा धन, अधेर नगरी चौपट राजा, काग उडावनी, तिरिया-चरित्र, रूप-बसन्त, आधा सच आधा झूठ, भला बुरा आदमी, दो दोस्त, टग की कहानी, दगाबाजी का फल।

पहली दो कहानियाँ ‘सृष्टि की उत्पत्ति,’ ‘आदमी की उमर’ मनुष्य की उत्पत्ति तथा आयु से सबधित लोककथाएँ हैं। पहली कहानी स्त्री-पुरुष के अन्योन्याश्रित सबधों की ओर संकेत करती है। स्त्री-पुरुष चाहे एक दूसरे से कितने भी असंतुष्ट रहे पर वह एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से किसी की अनुपस्थिति भी एक-दूसरे के लिए असह्य है। दूसरी कहानी में मनुष्य की विभिन्न अवस्थाओं के सबध में दिया गया है। पहले ४० वर्ष मनुष्य के अपने हैं इसलिए वह कर्मनिष्ठ रहता है परन्तु इसके पश्चात् बौल की आयु पाने के कारण उसकी तृष्णा बढ़ जाती है। उसके पश्चात् कुत्ते की आयु आरम्भ होती है, उसमें वह चल फिर भी नहीं सकता लेकिन

शोर मचाता रहता है। अन्त में वह उल्लू की भाँति बैठा रहता है। इस अवस्था में वह कुछ नहीं कर पाता क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं।

‘हूड की बरखा’, ‘भगवान् से माँगो’, ‘सबसे बड़ा धन’ यह तीनों कहानियाँ शिक्षाप्रद हैं। पहली कहानी में दान न देने के कारण भिखारी-भगवान् दुकानदार को सुनाकर कह जाते हैं कि बराबर वाले की दुकान में ‘हूड बरसेगा’। वह सुन लेता है तथा उसकी दुकान अपनी दुकान से बदल लेता है, और वह लालच में मारा जाता है क्योंकि उस दुकान में कुछ नहीं बरसता। उसकी भरी-भराई दुकान बराबर-वाले दुकानदार के पास पहुँच जाती है। ‘भगवान् से माँगो’ कहानी में आत्म सम्मान की भावना दृष्टिगत होती है तथा जाट का ईश्वर में अटल विश्वास दिखलाई देता है। तीसरी कहानी ‘सबसे बड़ा धन’ में एक ब्राह्मण राजा को ज्ञान कराता है कि उसके पुत्र, पत्नी सबका सब धन से ही है, उससे नहीं। अन्त में ज्ञान हो जाने पर उस राजा के साथ-साथ ही ब्राह्मण को भी मोक्ष मिल जाता है। ‘काग उडावनी’ ‘रूप बसन्त’, तथा ‘तिरिया-चरित्र’ यह तीनों कहानियाँ स्त्री-जीवन के विभिन्न पक्षों से सबधित हैं। ‘काग उडावनी’ कहानी में नारी जाति की एक-दूसरे के प्रति स्पर्धा देखने को मिलती है। इसमें एक राजा की चार रानियाँ आपस में भिन्न होते हुए भी एक के बच्चा होने पर तीनों मिल कर ईंट पत्थर रख देती हैं तथा बच्चा को नदी में बहा देती हैं। यह स्वाभाविक है कि कोई स्त्री यह नहीं चाहती कि एक के कारण दूसरी स्त्री का, पति निरादर करे। यही बात ‘रूप-बसन्त’ नामक कहानी में देखने को मिलती है। इसमें सौतेली माँ रूप बसन्त को निकलवा देती है। वे बड़ी कठिनाई उठा कर अपने जीवन की रक्षा करते हैं। बसन्त तो बड़ी कठिनाई से अपने माई तक पहुँच पाता है। इस में सौतिया-डाह का भिन्न-भिन्न रूप देखने को मिलता है। पहली कहानी में तीनों रानियों के अपने बच्चे न होने के कारण वह बच्चों को बहा देती हैं जिससे नि सतान रह जाने से उन तीनों का राजा के द्वारा निरादर न हो। ‘रूप बसन्त’ कहानी में मृत सौन के बच्चों को इसलिए निकाल दिया जाता है कि बड़े होने के कारण कहीं इन लड़कों को राज्य न मिल जाय। ‘तिरिया-चरित्र’ कहानी में देखने को मिलता है कि वह आदमी को मरवा भी सकती है और बचा भी सकती है। उसका चरित्र मनुष्य की समझ से दूर की बात है।

‘आधा सच आधा झूठ’ तथा ‘अधेर-नगरी चौपट राजा’ कहानी कलियुग तथा अनियंत्रित राजा के ऊपर व्यंग्य है। ‘आधा सच आधा झूठ’ बोलने से ही कलियुग में जीत होती है, क्योंकि केवल सच बोलने से आदमी कभी विजयी नहीं होता। लोक कथाकार यहाँ तक कह गया है कि वह ईश्वर के विधान में भी सशय करने

लगा। जब बुढ़िया सत्य बात के लिऐ अपने बेटे की कसम खाती है तो वह मर जाता है उसमे झूठ मिलाकर कहने पर वह जीवित हो जानी है। 'अधेर नगरी चौपट राजा' ऐसे राजा की कथा है जो अनुशासन के सर्वथा अयोग्य है। वह अपनी बुद्धिहीनता के कारण तथा गुरु चेले के चक्कर मे आकर स्वय को ही फाँसी लगवा लेता है।

'भला बुरा आदमी' कहानी मनुष्य के कर्मों की ओर सकेत करती है। बुरे आदमी की हड्डी के वृक्ष पर गिर जाने से पेड सूख जाता है। इस कहानी मे प्रतीक है पापो से पुण्य-वृक्ष जल जाता है। 'दो दोस्त' कहानी मे मित्रता का आदर्श उदाहरण है। समय पर दोनो दोस्त एक दूसरे की मदद करते हैं। एक दोस्त अपने बच्चे के खून से नहलाकर मित्र का कोड दूर करता है।

'उल्टा-सीधा भाग्य' तथा 'मौत से कोई नहीं जीता' कहानियो मे भाग्य तथा मृत्यु की प्रधानता की ओर सकेत है। पहली कहानी भाग्य से सबधित है। यदि भाग्य मे कोई वस्तु न हो और ईश्वर भी देना चाहे तो वह भी नहीं रहती। दूसरी कहानी मौत से सबधित है। जब मौत आती है तो मौत को पहचानने वाला व्यक्ति भी उससे नहीं बच सकता।

अन्तिम कहानी ठग की कहानी है। इसमे जाट का बैल ठग ले लेते है। बाद मेजाट भिन्न-भिन्न रूप रख कर खूब छकाता है तथा उनका सब धन ले आता है। इन कहानियो मे सभी प्रकार की सामाजिक कहानियाँ देने का प्रयत्न किया गया है। यह कहानियाँ इस प्रदेश मे प्रचलित कहानियो का प्रतिनिधित्व करती हैं। बहुत ही कम ऐसे विषय है जो लोक-कथाकार की दृष्टि से बच पाये हो।

५ नीति तथा कहावतो सबधी कथाएँ—कथाओ मे प्रयुक्त नीति व कहावतों दैनिक जीवन के क्रियाकलापो से सबधित हैं। इन कथाओ मे लोक-व्यवहार के निर्वाह के लिऐ निश्चित किये गये जो आचार-विचार होते है, उनके अन्तर मे यही भावना होती है कि जनसाधारण का इन कथाओ के द्वारा मार्ग-प्रदर्शन हो, इनसे न तो स्वय को ही कोई हानि हो और न दूसरो के लिऐ ही ये कष्टदायक सिद्ध हो। कहावतो मे अनुभवो पर आधारित उक्तियाँ है जिनके अन्दर समाजगत परम्पराओ से चले आते अनुभव समाहित है। इन कहावतो ने भी लोकमानव के लिए नीति का रूप धारण कर लिया है। यदि इन दोनो को आमने-सामने रख कर अध्ययन किया जाय तो कोई विशेष अन्तर नहीं मिलेगा। कहावतो की पृष्ठभूमि मे भी नीति ही होती है और समाज के सामूहिक रूप से सबद्ध अनुभव होते है। इन दोनो को एक-दूसरे से विलग कर दोनो के मध्य एक विभाजक-रेखा खींच देना असभव है। कारण कि जो कहावतो व्यवहार तथा दैनिक-

जीवन के कार्यकलापो से सबधित है, वह भी नीतियाँ ही बन गयी है।

वास्तव में जो नीति तथा कहावतों को दृष्टांत के साथ कहा जाता है वही नीति तथा कहावतों सबधी कथाएँ हो जाती हैं। इनके मूल में कथाएँ ही रही होगी—वही कथाओं के चरमवाक्य नीति तथा कहावत बन गये। धीरे-धीरे इनसे सबधित कथाएँ विस्मृत होती गयी और उनका प्रतिनिधित्व यह कहावती-वाक्य ही करने लगे। दृष्टांत सहजग्राह्य बनाने के माध्यम है। इनके द्वारा कठिन अभिव्यक्ति सरल व सहज हो जाती है, जिसका जन-मन पर अमिट प्रभाव पड़ता है।

यह कथाएँ लोक-व्यवहार के लिये निर्धारित नैतिक आचार-विचार हैं। इनका उपदेशात्मक चरित्र लोकमानव को समय-समय पर कर्तव्य-पथ पर अग्रसर करने में सहायक सिद्ध होता है और पथ-भ्रष्ट होने से बचाता है। यह कथाएँ सामाजिक तथा व्यावहारिक संहिता का रूप धारण कर चुकी हैं। 'पंचतंत्र' का जिस प्रकार नीति-उपदेश के लिये उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार जीवनोपयोगी तथ्यों को इन कहानियों के द्वारा लोक में प्रस्तुत किया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि पंचतंत्र के अधिकांश पात्र पशु-पक्षी थे जब कि इनमें अधिकांश मनुष्य पात्र हैं।

इन कथाओं का सार्वभौमिक रूप है तथा महत्व है जिनमें तत्कालीन समाज व काल के उपयोगी सत्य रहते हैं। इनमें कुछ ऐसी कहावतें भी हैं जिनका प्रसार प्रायः सभी देशों व जातियों में मिल सकता है। 'जैसे को तैसा' नामक कथा संस्कृत में 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' शीर्षक से प्रचलित है। इसी प्रकार अंग्रेजी में वह 'Tit for Tat' नाम से मिलती है। अंग्रेजी में प्राग्य कहानी की कथा-वस्तु में थोड़ा-सा अन्तर अवश्य है परन्तु अन्त में उससे निणय यही निकलता है कि जैसा व्यक्ति हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

जिन नीति तथा कहावतों की कथाओं को हम यहाँ ले रहे हैं, उनमें कुछ सिद्धांत हैं जिन्हें लोकमानव अपने मन में सदा रखता है और आवश्यकतानुसार उनका उपयोग भी करता है तथा दूसरों को भी उसी के साथ परामर्श देना है। ये आस्थावान् हैं, ईश्वर पर, भाग्य पर, होनी पर तथा इन पर विश्वास करते हैं। 'भगवान् सब जगह रहते हैं', 'सत्त की जीत', 'जो भगवान् करे सब ठीक है', 'पाहुना परमेश्वर', 'पुनः से पाप भी कट जा', 'सब अपने अपने भाग का खावें'—इन कहानियों में लोकमानव की आस्था दीख पड़ती है।

पहली कहानी ईश्वर की सर्वव्यापकता के सबध में है। इसमें हिंसा को पाप भी घोषित किया गया है, जो ईश्वर के सम्मुख नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि गुरुजी का दूसरा चेला मुर्गों को बिना काटे ही वापिस ले आता है। इस कहानी

मे गहन आस्था का भी प्रत्यक्ष दर्शन होता है। 'सत्त की जीत' भी इस प्रकार की कहानी है। द्वेष तथा पापपूर्ण भक्ति व दान का भी कुप्रभाव होता है। यदि आस्था के साथ उल्टा-सीधा नाम भी लिया जाय तो उसका प्रभाव अच्छा होता है। अपनी पडोसिन के कहने पर 'भैस के सीग'—'भैस के सीग' कह कर के ही एक स्त्री आस्था से पूजा करने लगती है और उसी के कहने से खीर जूठी करके ब्रह्मा जी को खिलाती है, परन्तु फिर भी भगवान् उसी पर प्रसन्न होकर विमान में बिठाकर उसे स्वर्ग ले जाते हैं। इसके विपरीत वह पडोसिन सब कुछ विधि-विधान से करती है लेकिन उतनी आस्था का उसमें अभाव है, इसी कारण उसे कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इस कहानी में दिखाया गया है कि शुद्ध भावना तथा सरल हृदयता ही सबसे महान् गुण है। 'भैस के सीग'—'भैस के सीग' कहनेवाली स्त्री की भावना सत्य है तथा विश्वास अटल। इसी से भगवान् स्वयं ही उसके पास आ जाते हैं। इन कहानियों के द्वारा लोकमानव का विश्वास बहुत अधिक दृढ़ होता है। 'भगवान् जो कुछ करते हैं वह ठीक ही करते हैं' इस कहानी से भी लोकमानव का विश्वास बहुत अधिक दृढ़ होता है। 'भगवान् जो कुछ करते हैं ठीक करते हैं' नामक कहानी में इसका प्रमाण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। राजा की उगली कट जाने पर वजीर जब अपने स्वभावानुसार यह बात कह देता है तो राजा उस पर नाराज हो जाते हैं और उसे कुएँ में जाकर धक्का देते हैं। राजा जब अकेला रह जाता है तो कुछ लोग उसे पकड़ कर देवी को उसकी बलि चढ़ाने के लिये ले जाते हैं परन्तु कटी हुई अँगुलि देख कर तथा खण्डित-बलि निषिद्ध है, यह समझ कर छोड़ देते हैं। उसी समय वजीर की बात याद आती है। वह वजीर को कुएँ से निकालता है तथा सारी कहानी उसे सुनाता है। वजीर इसका भी ईश्वर को धन्यवाद देता है कि राजा ने उसे ही कुएँ में धक्का दे दिया। नहीं तो उसे ही बलि चढ़ना पड़ता। यह कहानी ईश्वर के विधान का पूर्ण रूप से समर्थन करती है तथा उसके प्रति मनुष्य को नत-मस्तक करने के लिए प्रेरित करती है।

अन्य तीन कहानियाँ 'पाहुना परमेसर', 'पुत्र से पाप कट जा' तथा 'सब अपने अपने भाग का खावें' अपने-अपने प्रकार की कहानियाँ हैं। 'पाहुना परमेसर' नामक कहानी में भारतीय पद्धति के अनुसार अतिथि को देवतुल्य माना गया है। इस कहानी में इसी बात की ओर संकेत किया गया है कि अतिथि के नाम का भोजन ईश्वर स्वयं भोग देता है। जिसके घर में अतिथि आता है उसके भाग्य की सामग्री भी साथ ही आ जाती है, क्योंकि पाहुना परमेश्वर के समान होता है और ईश्वर का ही आदमी होता है। इसीलिये उसे उचित सम्मान दिया जाना चाहिये। 'पुत्र से पाप कट जा' कहानी में पापी व्यक्ति को धन मिलता है तथा साथ ही साथ पुण्यात्मा

दूसरी कहानी आदत से सबधित है। एक चोर साधुओं के सत्संग से चोरी करना छोड़ देता है और आश्रम में उन्हीं के साथ रहने लगता है परन्तु रात में जब सब सो जाते हैं तो उस समय वह उठ कर चेले का तुम्बा, गुरु के पास, गुरु का तुम्बा चेले के पास बदल देता है। गुरु जब उठ कर पूछते हैं तब ज्ञात होता है कि ये सब उसी की करतूत है। इस कहानी में आदत को बहुत महत्व दिया गया है। नित्य प्रति एक काम को बराबर करते-करते सस्कार बन जाते हैं। उन सस्कारों को एक साथ छोड़ देना बड़ा कठिन होता है। यहाँ तक कि उनको छोड़ देने पर भी उसके अकुर रह जाते हैं जिनका क्षीण-सा प्रभाव बना रहता है। यही बात इस कहानी में दृष्टिगोचर होती है।

अन्य कहावत तथा नीति सबधी कथाओं में 'बड़ों का कहना सच होता है' इस कथा में पिता पुत्र को तीन बातें बताता है। पुत्र तीनों बातों को सत्यता को परखता है और इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वह तीनों बातें सत्य हैं। इस कहानी में बेरी शत्रु की प्रतीक है जिसको अपने पड़ोस में नहीं बसाना चाहिये नहीं तो पगड़ी उतारने हुए देर नहीं लगती।

'घर में खीर तो बाहर खीर' इस कहानी में यही सारांश निहित है कि यदि घर में सुख समृद्धि है तो बाहर भी उसी प्रकार का वातावरण मिलता है। अर्थात् मनुष्य को सुखशान्ति घर की परिस्थिति पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए इस कहानी में यही प्रमाणित किया गया है कि किसान को समुराल जाकर भी मकी का दलिया मिलता है।

'फूट पिटवाती है' इस कथा में यही शिक्षा है कि सहयोग तथा सगठन होना बहुत आवश्यक है नहीं तो जैसे किसान ने चारों मित्रों की अलग-अलग प्रशंसा करके फूट डाली थी और एक को पीटा था उसी प्रकार शत्रु, सगठन रहित मित्रों को पीट सकता है। इसी प्रकार 'दुनिया में किसी प्रकार भी चैन नहीं' नामक कहानी का यही सारांश है कि ससार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि ससार किसी प्रकार भी चैन नहीं लेने देता। समाज हर स्थिति में श्रेष्ठ मनुष्यों की भी आलोचना करता है।

'अन्त को जवाब' कहानी में जीवन का यह वास्तविक रहस्य है कि हर मनुष्य की मृत्यु होती है और सब का ही अन्त जवाब है। जब समय आ जाता है तो कोई भी नहीं बच पाता। 'करने के पहिले सोच लेना चाहिये' में नेबले को मार कर औरत को पछताना पड़ता है। 'जितनी चादर हो उतने ही पाँव पसारने चाहिये' कहानी के पात्र बीरबल और राजा अकबर हैं। ये कहानी साकेतिक है। सामर्थ्य नहीं हो

तो पाँव सिकोड़ लेने चाहिये, अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर लेना चाहिये—यही इस कहानी का एकमात्र ध्येय है।

यदि कोई मनुष्य किसी को हानि पहुँचाता है तो उसको उससे भी अधिक दुःख मिलता है। यह ईश्वर के न्याय के प्रति आस्था का प्रमाण है। वजीर, लड़के की बुद्धिमानी देख कर ईर्ष्या करता है पर उस लड़के के स्थान पर उसके अपने ही लड़के का वध हो जाता है। इस प्रकार उसे पछताना पड़ता है।

‘शेर की कहानी’ आत्मसम्मान की कहानी है। लकड़हारे मित्र की बात शेर को चुभ जाती है और वह उससे अपने कुल्हाड़ी मारने के लिए कहता है। कुछ दिन बाद जब शेर उससे मिलता है और पूछता है कि इतने दिन से आया क्यों नहीं, तब वह अपनी कमर दिखाकर कहता है कि भई वैसी चोट का निशान तो मिट गया पर तेरी बात का घाव अभी तक लगा है। ‘बात का घाव’ कहानी इसी बात की पुष्टि करती है कि कटुवचन तलवार के घाव से भी अधिक कष्टदायी और स्थायी है।

इसी प्रकार ‘जैसे को तैसा’ कहानी है जिसमें एक बनिया अमानत में रखाई हुई अर्शफियों को वापिस नहीं देता और स्पष्ट मुकर जाता है। कहता है, चूहे खा गये। वह आदमी जिसकी अर्शफियाँ हैं, वह बनिये के लड़के को ले जाकर जंगल में छिपा देता है और उसके पूछने पर कहता है तेरे बच्चे को चील ले गई। अंत में पचायत दोनों का न्याय करती है तथा दोनों एक-दूसरे की अमानत वापिस कर देते हैं।

अंत में ‘तिल की चोरी’ एक कथा है जो निषेधात्मक है तथा अधविश्वासों पर आधारित है जिसमें तिल की चोरी करना पाप समझा जाता है। इस रहस्य का उद्घाटन ‘बैल का ढाँचा’ करता है।

६ हास्य संबंधी लोककथाएँ—लोक समाज में हास्य-व्यंग्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके लिए हास्य-कथाएँ उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी ग्रामवासियों के लिए रोटी के बाद ‘गुड की डली।’ चौपाल में अथवा अन्य किसी भी स्थान पर जब कभी चार आदमी एकत्रित होते हैं तब उनकी बातों में हास्य का पुट अवश्य ही होता है। श्रमसाध्य कठोर वास्तविक जीवन से जूझने के लिये तथा जीवन में आनंद, सतोष भरने के लिये हास्य महत्वपूर्ण है, जीवन का एक विशिष्ट अंग है। प्रायः देखने में आता है कि ग्रामीण-जनता सम्य लोको से अधिक हास्यप्रिय होती है। इनका मानवीय भावनाओं का अध्ययन बहुत सूक्ष्म व गहन होता है। यह बहुत मीठी चुटकी लेते हैं तथा हास्य-व्यंग्य कहना और सहना दोनों ही जानते हैं। गाँवों में कुछ व्यक्ति-विशेष होते हैं, जिनका महत्व ही केवल इसलिये होता है कि वे

बात कह देते हैं जिसमें सब लोग हँसते-हँसते लोट पोट हो जाये । ऐसे लोग सपूर्ण समाज में 'ताऊ' के नाम से प्रसिद्ध होने हैं । यह गाँव की हँसी-खुशी के प्रतीक होते हैं । गाँव वाले भी आते-जाते इनके पास अवश्य बैठते हैं, जिसमें उनका मनोरंजन होता है ।

इन हास्य-कथाओं का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन ही होता है । किसी को भी अनावश्यक मानसिक आघात पहुँचाने की चेष्टा नहीं होती । कही हुई बात की पुष्टि करने के लिये, किसी पर छीटा कसने के लिये, मनोरंजन के लिए तथा हास्य के रूप में कोई सूझ-बूझ की बात कहने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है । यहाँ पर अन्य लोककथाओं की भाँति ही सम्पूर्ण हास्य-कथाओं का उल्लेख करना तो असम्भव है परन्तु कुछ प्रतिनिधि हास्य-कथाओं का विवेचन यहाँ करेंगे ।

जितनी गण्य और हास्य-कथाएँ लोकसाहित्य में प्राप्य हैं, उतनी हिन्दी साहित्य में नहीं । खड़ीबोली प्रदेश के वासी, यद्यपि स्वभावतः गंभीर होते हैं, परन्तु वे हँस-मुख भी इतने ही होते हैं । इस प्रदेश के लोग जब प्रतिदिन के कार्य से निवृत्त होकर मिलकर बैठते हैं, उस समय लोग खुल कर हँसते हैं । कहानी कहना तथा सुनना ही इस प्रदेश के लोगों के लिए मुख्य मनोरंजनों में से है ।

पशु-पक्षी जाति-सबधी तथा ठगों की कथाओं में भी अनेक हास्य-कथाएँ हैं जिनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही है । परन्तु जो कहानियाँ हम यहाँ दे रहे हैं, वह प्रधानतः हास्य-कथा के रूप में ही प्रचलित हैं तथा लोकसमाज में प्रचलित हास्य-कथाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं । आकार के विचार से तो इन कहानियों में दो प्रकार की कहानियाँ हैं—एक बड़ी कहानियाँ जो कहानी कहने के विचार से ही कही जाती हैं तथा अन्य कहानियाँ लघु-कथाएँ—ये चुटकुलों के रूप में हैं, जो यदा-कदा बात पर बात के रूप में प्रयुक्त होती हैं अथवा अपनी बात की पुष्टि तथा मनोरंजन के लिये प्रयुक्त होती हैं ।

इन छोटी-बड़ी कहानियों में लाल भुझक्कड, शेखचिल्ली, ठग तथा 'चिड़' सबधी कहानियाँ हैं । लाल भुझक्कड सबधी दो कहानियाँ यहाँ दी जा रही हैं । पहले गाँव में लाल भुझक्कड ही ऐसा व्यक्ति होता था जिसको गुणी तथा ज्ञानी माना जाता था । कोई भी समस्या आजाने पर सब उसके पास ही जाते थे तथा उसके निर्णय सबको मान्य होते थे । इसी प्रकार की ये दो कहानियाँ 'खुदा की सुरमेदानी' तथा 'हिरना के पैर में चक्की का पाट' हैं । तेली की लाट और टोप^१ की समस्या न समझ पाने पर ग्रामवासी लाल भुझक्कड के पास ही पहुँचते हैं । लाल भुझक्कड

१. ओखली के प्रकार का होता है जिसमें कोल्हू की लाट लगती है ।

स्वयं समझ नहीं पाता कि वह क्या है और कह देता है कि 'पुरानी होकें गिर पड़ी खुदा की सुरमेदानी।' सब ग्रामवासी उसी को सत्य मान कर चले जाते हैं। वैसे तो कोल्हू की दीर्घलाट तथा टोप की गुरुता को देख कर ही उसका खुदा से सबध जोड़ा गया, क्योंकि खुदा की सलाई तथा सुरमेदानी इससे छोटी क्या हो सकती है। यह भी हास्यास्पद ही दीख पड़ती है कि गाँव के लोग जो तेली के कोल्हुओं को प्रतिदिन देखते हैं उस लाट तथा टोप को देख कर समझ नहीं पाते। हास्यात्मकता के साथ-साथ इस कहानी में ग्रामवासियों का भोलापन तथा उनकी लाल भुझक्कड़ों पर अटूट आस्था का दर्शन होता है जो हास्यास्पद प्रतीत होता है। इसी प्रकार दूसरी कहानी है। उसमें भी ये कितनी अज्ञानपूर्ण बात है कि हाथी के पाँव को देख कर लाल भुझक्कड़ 'फतवा' देता है कि यह हिरन के पाँव का निशान है जो पाँव में चक्की का पाट बाँध कर कूदा है। ये दोनों कहानियाँ सामाजिक दृष्टि से चाहे महत्वहीन हो परन्तु इनमें हास्य-व्यंग्य अपने में पूर्ण है। लाल भुझक्कड़ ऐसा व्यक्ति है, जो जानता कुछ नहीं है पर हस्तक्षेप हर बात में करता है तथा उममें आत्मविश्वास है। जिसके फलस्वरूप सब लोग उसकी बात को निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लेते हैं।

इसी प्रकार शेखचिल्ली की भी कई कहानियाँ ली गई हैं। शेखचिल्ली लोक-समाज का एक ऐसा काल्पनिक चरित्र है, जिसके माध्यम से कुछ भी सगत-असगत, सच-झूठ कहा जा सकता है। वह शेक्सपियर का 'क्लाउन' है तथा संस्कृत नाटक का वसन्तम् है, जिसका उद्देश्य ही हँसाना है। यद्यपि इसके काम प्रायः बहुत अधिक बेवक्फ़ी के और हास्यास्पद प्रतीत होते हैं परन्तु इनके पीछे कुछ बुद्धिमत्ता भी रहती है। सभी प्रान्तों और देशों की लोक-कथाओं में मूल्य पात्र से मिलता-जुलता यह सामान्य पात्र मिलता है। यह पात्र बेकार मसूबे बाँधता है, निराधार योजनाएँ बनाना है और हवाई किलो का निर्माण करता है। और क्योंकि यह अधिकतर असफल रहता है, इसीसे समाज में व्यंग्य और उपहास का कारण बनता है। यह लोक-कथाओं का आवश्यक और चिर-परिचित पात्र है तथा बाल-समाज में तो अत्यन्त प्रिय है ही। बच्चों का तो यह और भी प्रिय पात्र है। सभी अवस्था के लोग उसकी व उमसे मवधित कथाएँ बहुत चाव से सुनते हैं। हम उस पर हँस सकते हैं पर कदाचित् उमसे घृणा नहीं करते। कारण यदि हम अपने मन में आँक कर देखें, आत्म-विश्लेषण करें, तो यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि हममें से हरेक व्यक्ति के भीतर एक शेखचिल्ली है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में ऐसे क्षण अवश्य आते हैं जब वह व्यर्थ मनसूबे बाँधकर निराधार योजनाएँ बनाना और हवाई किले तैयार करना पसंद करता है। वास्तव में वह अपनी वस्तु-स्थिति से उठना चाहता है और सुन्दर

तथा समृद्ध जीवन की आशाएँ करता है। शेखचिल्ली निराधार योजनाओं की कल्पना मात्र करता है और उन्हीं पर जीवित रहता है। उनकी खूब चर्चा करता है पर क्रियात्मक रूप कभी नहीं दे पाता। अनहोनी बातों का स्वप्न देखना और हवाई किले बनाना कोई बुरी बात नहीं। किले पहले हवा में बनते हैं फिर धरती पर उतर आते हैं। मनुष्य की कल्पना भी धीरे-धीरे सशक्त और स्वस्थ होती है।

‘पैसे में बहू’ तथा ‘चोर और शेखचिल्ली’ दोनों ही कहानियों में, शेखचिल्ली की बातें देखने में बड़ी बेवकूफी की लगती है। पहली कहानी में जब वह बहू लाने के लिए माँ से पैसा माँगता है तो बड़ा ही हास्यास्पद-सा लगने लगता है परन्तु फिर वह पैसे का शीरा अपने कपड़ों पर डलवा कर घोबियों, घोड़ेवालों तथा बुढ़िया को बेवकूफ बनाता है, जो श्रोताओं को हँसाने के लिए पर्याप्त सामग्री हो जाती है। फिर वह पैसे में बहू लेकर ही घर पहुँचता है। इस कहानी में सब कार्य इतने क्रम से किये गये हैं कि शेखचिल्ली की बुद्धि की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। वह जानता है कि लूट के माल की ओर लोग कितनी जल्दी भागते हैं। इसीलिये वह कपड़ों पर शीरा डलवा कर घोबियों में जाकर शीरे की लूट के सम्बन्ध में कहता है। जब वह शीरा लूटने के लिये भागते हैं तो वह कपड़े चुरा लेता है और अच्छे कपड़े पहन कर वह घोड़ेवालों के पास पहुँचता है क्योंकि वह जानता है कि जब तक वस्त्र अच्छे नहीं होते तो कोई भी घोड़ेवाला उसे किसी भी दशा में घोड़ा नहीं छूने देगा। घोड़ा लेकर चल देने पर रास्ते में बुढ़िया तथा उसकी बेटो की बात सुनकर वह तुरन्त ताड़ जाता है और बुढ़िया से पूछता है कि वह थक गयी होगी, लेकिन अपनी बेटो के सामने, उसे छोड़ कर बुढ़िया कैसे घोड़े पर बैठे इसे वह समझता है। बुढ़िया उसकी आज्ञानुसार ही तुरन्त कह देती है कि मेरी बेटो को बिठा ले। वह उसकी बेटो को बिठा कर घोड़े को दौड़ा देता है। यह कहानी मानव मनो-विज्ञान पर पूर्णतया आधारित है जिसका कि शेखचिल्ली पूर्ण रूप से ज्ञाता है। इसी प्रकार दूसरी कहानी में वह स्वयं बेवकूफ बन कर सब लोगों को चोरी से बचाता है। लेकिन जब एक बार उसको अवसर मिलता है तो वह बारात का सब धन व वस्तुएँ उठाकर घर ले आता है। इस कथा में भी एक शेखचिल्ली की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है। और भी अन्य कहानियाँ हैं जो शेखचिल्ली की बुद्धिमत्ता का परिचय देती हैं। वैसे लोकसमाज में शेखचिल्ली, शेखीखोरे तथा गप्पी को भी कहा जाता है। जो लोग अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं उन्हें भी यही सजा दी जाती है।

‘मरद के बच्चा होने का दर्द’, ‘अम्मा मेरी अक तेरी’ कहानियाँ व्यंग्यात्मक हैं। पहली कथा तो स्त्रियों पर प्रत्यक्ष व्यंग्य है जिसमें स्त्रियाँ ब्रह्मा जी से जाकर

कहती है कि बच्चे के लिए कष्ट तो हम लोग उठाती है और मर्द मजे में बाप बन जाता है। इसलिये ये प्रसववेदना पुरुष को होनी चाहिये। ब्रह्मा जी के ऐसा ही कर देने पर स्त्रियो की पोल खुलने लगती है और अन्त में स्त्रियाँ फिर ब्रह्माजी के पास जाती है और उनसे फिर पहले जैसा कर देने के लिए कहती है। इन कथाओं में स्त्रियो के ऊपर बहुत कटु-व्यंग्य है। उस व्यंग्य में उनके अधिकारों के प्रति जागृति को भी लपेटा गया है। दूसरी कहानी में स्त्री जाति के पति-पक्ष के लोगों के प्रति विशेष रूप से सास के प्रति जो ईर्ष्या होती है, उसी को कहानी में दिखलाया गया है। साथ ही इस कहानी में यह भी एक नीति-प्रस्ताव है कि यदि पति तनिक भी बुद्धिमान्नी से काम ले तो परिस्थितियों को सँभाल सकता है तथा पत्नी की बात उस पर ही उलट सकता है।

‘मिठुआ’ कहानी ‘चिड’ की कहानी है जो श्रोताओं को हँसाने के लिये पर्याप्त सामग्री देती है। इसमें अलौकिक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में है परन्तु हास्य की प्रधानता उमकी अलौकिकता छुपा लेती है। वैसे भी अलौकिकता उसके हास्य को बनाये रखने के लिये है। अन्त में इस कहानी के श्रोता इसी फल पर पहुँचते हैं कि बुद्धिहीन मनुष्य अपने क्रोध में मिठुआ की भाँति मरते हैं।

‘सीरे की हँडिया’ और ‘ऊँट और घोड़ेवालों’ की कहानियाँ मूर्खता की कथाएँ हैं जिनको सुनकर खूब ही हँसी आती है। ‘सीरे की हँडिया’ से लगता है कि ये किसी बच्चे की कहानी है जिसे रास्ता काटने के लिये रास्ते भर कुछ खाने की आवश्यकता होती है तथा उससे हाथ चिपक जाने पर वह स्वयं निकाल नहीं पाता। जब उसकी पत्नी उसे बताती है तो वह एक और मूर्खता करता है कि एक पड़ित के घुटे हुये सिर पर हँडिया दे मारता है। इसी प्रकार दूसरी कहानी है जिसमें खजूर पर चढ़ा हुआ व्यक्ति ऊँटवाले तथा घोड़ेवाले को बेवकूफ बनाता है। वह जानता है कि यदि वह स्वयं ऊपर से कूदेगा तो चोट लगेगी, इसीलिये वह इनको नीचे लगा लेता है। सबसे अधिक चोट नीचे वाले को लगती है। इस कहानी का अंतिम भाग एक चुटकुले को जोड़ कर बनाया गया है। यद्यपि यहाँ पर वह भाग सफलतापूर्वक खप गया है परन्तु उसके कारण चमार की अकल पीछे पड़ जाती है जब कि इस कहानी में चमार की बुद्धि ही प्रधान है।

इन कहानियों में भिन्न दो प्रकार की कथाएँ और भी हैं जो हास्य-कथाओं में विशिष्ट स्थान रखती हैं। गप्प तथा चुटकुले, ‘ऊँटों की गठडी’ गप्प में ही आती है। इन कहानियों में वास्तविकता की पुट तनिक भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। बुद्धिया के कंधों पर पहलवानों का लडना, लडके का ऊँटों की गठडी बनाकर भागना, चील का उसे ले जाना, यह सब इसी प्रकार की बातें हैं जिनमें केवल कथा कहने

का ही महत्व है। इस प्रकार की कथा में घटनाओं को इस क्रम से बाँधा जाता है कि ये श्रोताओं के लिये रस उत्पन्न कर देती है। गप्प लगाना मनुष्य की एक प्रवृत्ति है, जिसमें वह अपनी अपरिपूर्ण इच्छाओं को इस रूप में व्यक्त करता है।

‘हाथी की कहानी’, ‘अघा-लगडा कगला और बहरा’, ‘दो के चार’, ‘ठावै था दे मारै था’, ‘बीरबल का चुटकुला’, ये लघुकथाएँ हैं जिनका प्रयोग उठते-बैठते, बात करते अधिकतर किया जाता है। ‘हाथी की कहानी’ बुद्धिमत्तापूर्ण कहानी है और इसमें हास्य की पूर्णता है। अघे, लगडे, कगले, बहरे—इन चारों की बात-चीत बहुत अधिक गुदगुदानेवाली है, हर व्यक्ति अपने आप को वह समझता है जो वह स्वयं नहीं है। अघे को चोर आते हुये दिखलाई पड़ने लगे, बहरे को उनका शोर भी सुनाई पड़ने लगा, लगडे को भागने की धुन सवार हो गयी, कगले को चिंता है लुटने की। इस कहानी में परिस्थितियों तथा वास्तविकताओं में विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है, जो हास्य उत्पन्न कर देता है। वास्तविक रूप से वहाँ पर कुछ नहीं है परन्तु उनके अपने मन की भावना है कि चोर आ रहे हैं, इसीलिए यह सब इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं।

‘ठावै था दे मारै था’, ‘दो के चार’, ये कहानियाँ भी लोकसमाज की सरल बुद्धि की परिचायक हैं। पहली कहानी में बनिया, जज की पकड़ से किस प्रकार निकल भागा। यद्यपि यह साधारण बात है कि चोट लगने पर कोई भी शोर मचायेगा लेकिन बनिये को शोर मचाने के लिये भी पिटाई से फुर्सत की आवश्यकता थी। इस कहानी में बनिये की तर्क बुद्धि बड़ी तेज दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार ‘दो के चार’ कहानी में किसान मुल्ला जी से बदला लेता है। ये भी हास्यप्रद है कि मुल्ला जी बड़े मजे में स्वयं से प्रश्न कर उसका अपने अनुसार ही उत्तर भी दे लेते हैं। इसी प्रकार वह किसान भी करता है और मुल्ला जी के दो के बजाय चार लट्ठ जड़ देता है।

‘बीरबल के चुटकुले’ इस प्रदेश की बड़ी प्रिय लघु-कथाएँ हैं। बीरबल और बादशाह अकबर को लेकर लोकसमाज ने इनका सृजन किया है। बीरबल सब से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति है, जिसके पास बादशाह की हर समस्या का समाधान है, हर चोट का खरा जवाब है। उसकी बुद्धिमानी का लोहा अकबर भी मानता है, इसीलिये मुल्ला दु प्यादा उसे ईर्ष्या करता है। मुल्ला दु प्यादा को मुँहकी खानी पड़ती है। इसी प्रकार बीरबल से सबवित्त अनेक चुटकुले इस प्रदेश में प्रचलित हैं।

हास्य-कथाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दरिद्रता, भ्रूखमरी, शोषण, सब कुछ होते हुए भी लोकमानस ने अपने जीवन के रस को कभी

शुष्क नहीं होने दिया और उन्होंने हँस-गाकर ही जीवन की कटुता को कम किया। हास्य-कथाएँ अतिशयोक्तिपूर्ण होती हैं।

६ पशु-पक्षी सबधी लोककथाएँ—खडीबोली प्रदेश में उपलब्ध पशु-पक्षी सबधी लोक-कथाओं में पंचतंत्र की परम्परा उसी प्रकार जीवित और सुरक्षित है परन्तु यह सब कथाएँ केवल नीति पूर्ण ही नहीं हैं अपितु अनेक प्रकार की और कथाएँ भी उपलब्ध हैं। ये कहानियाँ पशु अथवा पक्षी समाज से संबंधित हैं। इन कथाओं में मनोरंजन ही प्रधान है। गीदड़, बन्दर, लोमड़ी की चालाकी देख कर श्रोताओं को, विशेष रूप से बालकों को, उल्लास-सा होता है और वह आश्चर्यचकित से रह जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ इन कहानियों में शिक्षा भी मिलती है, यही इनका पंचतंत्रीय रूप है। उनका एहसानमद होना तथा प्रतिहिंसा की भावना रखना—बदला उतारना ही प्रायः इन कहानियों में पाया जाता है। समय-समय पर पशु, मनुष्य को समयोपयोगी शिक्षा देते पाये जाते हैं। मनुष्य को शेर के चक्कर में पड़ जाने पर गीदड़ ही अपनी सलाह से बचाता है। बदर को तो लोक-कथाकार बुद्धि में मनुष्य से भी ऊपर ले गया है। 'सोने के बालों वाला बदर' नामक कथा इसी का प्रमाण है। गधा तो महामूर्ख माना जाता है। वह भी शेर को बेवकूफ बना देता है और उसका घर छीन कर स्वयं रहने लग जाता है।

लोककथाओं में यह प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है कि पशु-पक्षी मनुष्य के सहयोगी हैं तथा प्रकृति के उतने ही महत्वपूर्ण अंग हैं जितना वे स्वयं। उनके आपस में विवाह सबंध भी होते हैं। मैना का विवाह राजकुमार से होता है। इस कथा में दो-तीन मनोवैज्ञानिक सत्य हैं कि सतानहीन राजा रानी मैना को ही अपनी पुत्री मान कर पालते हैं। उसका विवाह राजकुमार से करते हैं। राजकुमार भी सत्य निबाहता है। अन्त में वह मुन्दरी बन जाती है। इसी प्रकार मुर्गा भी राजा की लड़की से विवाह करने के लिए लालायित होता है। वह अपने मित्रों को साथ ले जाता है और उन्हीं के बल से वह राजकुमारी का डोला लेकर आता है। राजकुमारी का डोला लेने के लिये उसे लड़ाई करनी पड़ती है। ये लड़ाई कूटनीति की ही लड़ाई है और उसी के बल पर वह जीत जाता है। इन कथाओं में कथातत्त्व तो श्रोताओं के लिये पर्याप्त रूप से पुष्ट हैं परन्तु सत्य अवश्य कल्पनातीत है। ये मनोरंजन की कहानियों के अन्तर्गत ही आती हैं। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य का मनोरंजन इन्हीं बातों से होता है जो हृदय को गुदगुदा सके तथा उसके मन को चकित कर सके। यही बात इस प्रकार की कथाओं में मिलती है।

पशु-पक्षी मनुष्य की बोली बोलते हुये तो पाये ही जाते हैं इससे भी अधिक

महत्वपूर्ण है उनकी भूगर्भ के सम्बन्ध में जानने की तथा भविष्य-द्रष्टा की शक्ति । योनि-परिवर्तन, चोला परिवर्तन करना उनके लिए सहज और साधारण है । उनके शरीर में भानुमती का पिटारा है जिसका उपयोग करने पर रात ही रात में, बड़े से बड़ा उद्यान खड़ा हो जाता है और राजा के लडके की जान बच जाती है । इसी प्रकार भविष्य-द्रष्टा पक्षी भी वृक्ष के नीचे सोनेवाले यात्रियों को भूगर्भ तथा भविष्य की बात बता देते हैं । यदि कोई कष्ट भविष्य में आनेवाला भी हो तो उसके निदान से भी वह अवगत करा देते हैं । ये पशु-पक्षी आपबीती तथा जगबीती के सबध में जब परस्पर बातचीत या विचार विनिमय करते हैं तो उसमें उनका प्रयोजन यात्रियों को वस्तुस्थिति से अवगत कराना तथा परिस्थिति से लाभ उठाने का सुझाव देना ही होता है । इसमें उनका निजी स्वार्थ कुछ भी नहीं होता । इन पक्षियों के शरीर भी चमत्कार उत्पन्न करनेवाले होते हैं । एक पक्षी को खानेवाला राजा बन सकता है, दूसरे को खानेवाला सर्प का भोजन बनता है । ये सभी बातें लोकसमाज के लिए बड़ी मनोरंजक हैं तथा उन्हें विश्वास है कि ऐसे पक्षी अभी भी हैं परन्तु उनका मिलना दुर्लभ है ।

‘तोता-मैना’ के किस्सों के माध्यम से तो स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंधी सब ही समस्याओं का विवेचन किया गया है । इनमें स्त्री-पुरुष का प्रेम तथा चरित्र पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है । यह पक्षी समाज के ग्राम्य चरित्र (Rustic Characters) हैं, जो स्त्रीपुरुष के व्यवहार तथा उनके आचारों के सबध में समय-समय पर अपने विचार प्रकट करते हैं । प्रेम के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की बेवफाई के जितने दृष्टान्त इन दोनों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं, ये लोक-कहानीकार की स्वयं की अनुभूति है । तोता-मैना लोककथा साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण निधि है, हम इसको इसकी बृहत्ता के कारण यहाँ देने में असमर्थ हैं । यह प्रकाशित अधिक उपलब्ध है परन्तु इसकी उपेक्षा करना भी कथा-साहित्य के साथ अन्याय करना है । यहाँ पर हम केवल इसका उल्लेख ही कर रहे हैं ।

पशु-पक्षी मनुष्य कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो हर स्थान पर प्रचलित हैं—‘सोने के बाल वाला बदर^१’, ‘लौंडा सेर^२’, ‘कौवे की चतुराई^३’, आदि कुछ लोककथाएँ ऐसी हैं जिनका उल्लेख डॉ० सत्येन्द्र द्वारा लिखित ‘ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन’ में भी ‘पंचतंत्रीय कहानियों’, के अन्तर्गत हुआ है । परन्तु इन कथाओं में खड़ीबोली

१ लोकसाहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ४६४

२ वही, पृ० ४८८

३ वही, पृ० ४६८

प्रदेश से कुछ थोड़ा सा अन्तर हो गया है जिस प्रकार 'सोने के बाल वाला बदर' नामक कथा में बन्दर अत में दुकान खोल देता है परन्तु इस प्रदेश में प्रचलित कथा में बदर दुकान नहीं खोलता वह केवल बहू लेकर ही सन्तोष कर लेता है।

'लॉन्डा सेर' नामक कथा में सब जानवर गीदड से लोहा लेने आते हैं और हार जाते हैं। परन्तु यहाँ पर पहले सब शेर इकट्ठे होकर आते हैं और जब गीदड कहता है 'लाओ मेरा खाड़ा पहले मारूँ लॉन्डा' तो सबसे पहले वही नीचे से निकल कर भागता है और दूसरे शेर भी लुढ़क-लुढ़क जाते हैं। अन्त में बदर लॉन्डे की पूँछ से पूँछ बाँध कर आता है। गीदडभभकी सुनकर जब लॉन्डा भागता है तो विचारा बदर भी घिसटता जाता है। अन्त में वह घिसट-घिसट कर मर जाता है। वास्तव में बदर भी लोमड़ी की भाँति ही चतुर माना जाता है। परन्तु बेवकूफ मित्र और डरपोक के सम्मुख उसकी चतुराई भी समाप्त हो जाती है और उसे भी ऐसी मौत मरना पड़ता है।

इस प्रदेश में पशु-पक्षी सबकी चार प्रकार की कहानियाँ उपलब्ध हुई हैं, जो इस प्रकार हैं —

१—सर्वप्रथम तो वे कहानियाँ आती हैं जिनमें मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी अन्य जीव-जन्तु भी कहानी के चरित्र हैं। इन कहानियों में 'नेकी-बढ़ी', 'सेर और जुलाहा', 'सेर और टपका', 'मैना का व्याह', 'मुर्गे का व्याह', 'चिडिया और भैंस', 'सोने का जौ', 'जाट और चिडिया', 'कछुआ दोस्त', 'नौ करोड का लाल', 'गिड्ड और तेली', 'चिरौट्टा भाई', 'सोने के बाल वाला बदर' आदि कहानियाँ आती हैं। इनमें से प्रत्येक कहानी का उल्लेख अपनी-अपनी विशेषता के कारण किया गया है। वास्तव में हर कहानी एक-दूसरे से भिन्न है।

२—दूसरी प्रकार की कहानियाँ केवल पशुओं से ही सबधित हैं। इन कहानियों में मनुष्य तथा पक्षी बिल्कुल अलग हो गये हैं। ये कहानियाँ हैं—'सेर और गीदड', 'लॉन्डा सेर', 'गीदड और बकरा', 'गीदड और ऊँट', 'गधा और सेर' आदि।

३—इन कहानियों में केवल पक्षी ही पात्र हैं। सम्पूर्ण कहानी जीवन से सबधित है। इस प्रकार की कहानियाँ 'चिडिया और कग्गा', 'कग्गा और चिडिया', 'फास्ता' हैं।

४—अत में दो कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें पशु-पक्षी तथा अन्य जीव हैं। इस वर्ग में केवल दो ही कहानियाँ आती हैं—'बिल्ली मौसी' तथा 'चिडिया और मुस्सी' ॥

प्रथम वर्ग की कहानियों में मनुष्य ही सब कहानियों की धुरी है। सब पशु-

पक्षी मनुष्य से सबधित है। चाहे वह कहानी का नायक हो या नहीं परन्तु पशु-पक्षी किसी न किसी रूप में मनुष्य के सहयोगी पात्र रहते हैं तथा उसकी बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान करने में सफल होते हैं। कहीं-कहीं पर वह उसके विरोधी और शत्रु भी हैं जैसे डण्डे के जोर से राजा की लडकी को मुर्गा व्याह लाता है। कहीं-कहीं पर वह बेवकूफ भी बनाया जाता है। सोने का जौ, चिड़िया और भैंस, सोने के बाल वाला बन्दर, जाट और चिड़िया आदि इसी प्रकार की कथाएँ हैं। इन कहानियों में पशु-पक्षी मनुष्य को शिक्षा देते भी पाये जाते हैं। 'नेकी और बदी' कहानी में गीदड़ मनुष्य को शेर का शिकार होने से बचाता है। इसी प्रकार 'दोस्ती' कहानी में मित्रता तथा भलाई का बदला उतारने का उत्कट प्रमाण है। चिड़ा भाई, मुर्गा आदि तो मनुष्य पर आक्रमण भी करते हैं और मनुष्य को हरा देते हैं। पशु, मनुष्य के समान ही व्यवहार करते हैं। उनकी प्रतिक्रियाएँ, उनकी सवेदनशीलता, सहयोग, सभी कुछ मनुष्य की भाँति है। वह अपने क्रियाकलापों में मनुष्य से किसी भी दशा में कम नहीं रहते।

दूसरे वर्ग की कहानियों में पशु-पक्षियों के आपस के क्रिया-कलाप देखने को मिलते हैं। 'सेर और गीदड़ की कहानी', गीदड़ की चालाकी की कहानी है। वह अपनी चालाकी से स्वयं को तो बचाता ही है, साथही साथ जंगल में अन्य जानवरों को भी शेर का शिकार होने से बचा लेता है। अन्य सब कहानियों में चालाकी की कहानियाँ हैं। 'लाड़ा सेर' तथा 'गधा और शेर' कहानियों में गीदड़ तथा गधा शेर की माँद पर अधिकार (कब्ज़ा) कर लेते हैं अथवा थोड़ी सी बुद्धि के कारण ही वह शेर को निकाल बाहर कर देते हैं। इसमें गधा भी शेर से बाज़ी ले जाता है। अंतिम कहानी के अतिरिक्त सब में ही गीदड़ रहता है तथा वह सब जानवरों के साथ चालाकी करता है जिसका आशय है कि चालाक व्यक्ति अपने निकट से निकट व्यक्ति के साथ भी चालाकी करने से नहीं बाज़ आता। केवल ऊँट ही गीदड़ को ठीक सबक पढ़ाता है। ऊँट दूसरों से बदला लेते हैं। ये सब खेनी करते हैं, खाना खाते हैं, शिकार खेलते हैं, मुकदमा फैसला करते हैं इनकी शक्ति शामन-व्यवहार आदि सब ही मनुष्य के समान हैं।

तीसरी प्रकार की कहानियों में 'फाल्ता' की कहानी मानवीय भावनाओं से अधिक दूर नहीं। वह विरहिन है, उसका पति तब घर आया था जब वह घर पर नहीं थी और उसके लौट कर आने से पहले लौट गया था। जिसके कारण वह गाती रहती है, 'कुट्टे थी', 'पिस्से थी', 'आया था' 'गया था' उसे पश्चात्ताप है कि मैं क्यों चली गयी। यह पक्षियों की प्रतिनिधि कहानी है जिसमें मानवीय भावना उत्कट रूप में पक्षी द्वारा व्यक्त की गयी है। 'चिड़िया और कग्गा' कहानी में कग्गा चालाक

है। यह दोनों खेती करते हैं परन्तु कग्गा, चिलम तमाखू ही पीता रहता है। चिडिया खेती बो देती है, पानी दे देती है, पका कर काट लेती है। लेकिन जब बाटने का समय आता है तो गेहूँ-गेहूँ तो वह ले जाता है और चिडिया के हिस्से में केवल भूसा रह जाता है। जब वर्षा आती है तब कग्गे को उसका फल मिलता है और चिडिया सुख से रहती है। इस कहानी में मनुष्य समाज का सत्य रूप है। कौवा पूँजीपति का साक्षात् रूप है जो अपने वैभव में सदा मस्त रहता है। कार्य दूसरे करते रहते हैं परन्तु जब लाभ का समय आता है उस समय सार-सार स्वयं ले जाता है और मजदूर उसी में सतोष कर लेता है। जब कठिन काल आता है तो पूँजीपति अकेला रह जाता है, उस समय श्रमिक सुखशान्ति से रहता है।

अन्त में दो कहानियाँ रह जाती हैं 'बिल्ली मावसी' तथा 'चिडिया और मुस्सी।' बिल्ली मावसी कहानी में बिल्ली की चालाकी का प्रदर्शन है। बिल्ली हर स्थिति का लाभ उठाती है। हँडिया फँस जाने पर वह उसको धार्मिक रूप दे देती है तथा चूहे, कबूतर, मुर्गों को फाँसना चाहती है परन्तु सब अपनी चालाकी से निकल भागते हैं। अन्त में वह अकेली रह जाती है। बिल्ली की तुलना यदि अवसरवादी से की जाय तो अनुचित नहीं होगा। क्योंकि बिल्ली भी अवसर का ही लाभ उठाकर अपनी स्वार्थसिद्धि करती है। चिडिया तथा मुस्सी कहानी भी इसी प्रकार की कहानी है जिसमें मुस्सी समय पर चिडिया की खुशामद कर लेती है परन्तु जब गुड बाँटने का प्रश्न आता है तो साफ कन्नी काट जाती है और चिडिया अपना सा मुँह लेकर रह जाती है।

लोक कहानीकार ने मनुष्य समाज की भलाई-बुराई, ईमानदारी-बेईमानी, धर्म-अधर्म, इन सब को पशु-पक्षियों के माध्यम से व्यक्त किया है। वह जानता था पशु-पक्षियों की कुशाग्रबुद्धि तथा उनके सुलझे हुए व्यवहार का मानव-अन्तर्गमन पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। पशु-पक्षियों की चालाकी से हागने वाले मनुष्य को अपनी स्थिति का ज्ञान भली भाँति हो जाता है, उसका अहं 'मैं मनुष्य हूँ' बगले झाँकने लगता है। इन कहानियों का प्रभाव मानव पर इतना तीव्र तथा सत्य होता है कि वह ऐसे पक्षियों को आदर्श मान लेता है। बच्चों के मन पर तो उनकी अमिट छाप पड़ती है। पशु-पक्षी बालकों के निकट भी होते हैं। उनकी कहानी सुनना, उनको सबसे अधिक प्रिय है। इन कहानियों का वह सुगमतापूर्वक अनुगमन भी कर लेते हैं। कुछ कहानियाँ शिक्षात्मक होती हैं तो कुछ कहानियों से श्रोतागण गुदगुदा उठते हैं। पशु-पक्षियों की कहानियाँ मनुष्य के जीवन की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, जो इन कहानियों के रूप में व्यक्त हुई हैं।

लोक-कथाओं के मुख्य अभिप्राय—वैज्ञानिक शब्दावली में लोक-कथा के

मुख्य तथ्य को 'अभिप्राय' कहते हैं। 'अभिप्राय' को अंग्रेजी में 'मोटिव' कहते हैं। साधारणतः अभिप्राय शब्द का प्रयोग परम्परागत कथाओं के किसी तत्व या कथानक रूढ़ि के लिये किया जाता है। अभिप्राय साधारण से कुछ भिन्न होता है अर्थात् उसमें कोई असाधारण घटना निहित होती है, जो प्रायः लोक-कथाओं अथवा लोक-समाज में पायी जाती है, उदाहरणार्थ, पिता के द्वारा किसी विशेष कारणवश बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार करना। इन अभिप्रायों में लोककथाओं का संपूर्ण तथ्य निहित रहता है। अभिप्राय का क्षेत्र विस्तृत तथा व्यापक है। लगभग सभी देशों तथा प्रदेशों में एक ही प्रकार के अभिप्राय मिलते हैं। इन्हीं अभिप्रायों के माध्यम से लोक-कथा ने अपने आपको प्रमाणित तथा प्रभावशाली बनाया है। लोक-कथाओं का वास्तविक अध्ययन भी इन्हीं के आधार पर किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि कहानी की आत्मा उनमें बिखरे अभिप्रायों में ही निवास करती है। किसी भी कहानी के अभिप्राय कहानी से अधिक प्रसिद्ध होते हैं। यह देखा गया है कि श्रोता कहानी सुनानेवाले को अभिप्रायों की याद दिला कर वही कहानी सुनाने के लिये अनुरोध करते हैं। इन अभिप्रायों का श्रोताओं से तथा लोकसमाज से प्रत्यक्ष संबंध होता है। कहानी इन अभिप्रायों से ही उठती है तथा इनके ही चारों ओर घूमती रहती है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के मत से अभिप्राय कहानियों के अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग हैं।

“कहानियों के लिए अभिप्रायों का वैसा ही महत्व है जैसा किसी मवन के लिये ईंट गारे का अथवा किसी मन्दिर के लिये नाना माँति की सज से उकेरे हुए शिला-पट्टों का।”

यह भी देखने में आता है कि लोक-कथाओं के शिल्प में अभिप्राय का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। अभिप्रायों की अधिकता अथवा कमी पर ही कहानी की रोचकता अथवा, सबलता तथा शिथिलता निर्भर करती है। जितनी अधिक अभिप्राय होते हैं उतने ही कहानी में चरमबिन्दु रहते हैं।

प्रायः यह भी देखा जाता है कि किसी भी लोक-साहित्य में अभिप्रायों का विस्तार बहुत अधिक नहीं होता अपितु कुछ अभिप्राय ही घूम फिरकर नये-नये रूप में आते रहते हैं। डॉ० श्यामाचरण द्विवेदी का भी इस सम्बन्ध में यही मत है।

“अभिप्राय के आधार पर संपूर्ण विश्व के लोक-कथा-साहित्य का विश्लेषण हमें बतलाता है कि मानव की नये अभिप्राय निर्मित करने की शक्ति आश्चर्यजनक

रूप से सीमित है। थोड़े से ही अभिप्राय नये-नये रूपों में हमें मानव-जाति की लोक-कथाओं में मिलते हैं।^१”

इसी मत का देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने निम्नलिखित शब्दों में समर्थन किया है—

“लोककथाओं के अभिप्राय निस्संदेह एक दूसरे से इतने जुड़े हुए नजर आते हैं कि यदि उसकी बारीकी से छानबीन की जाय तो छँटकर स्वतंत्र अभिप्रायों की संख्या बहुत कम रह जायगी।^२”

खड़ीबोली प्रदेश में सकलित की गई कहानियों को हम अभिप्राय की दृष्टि से देखेंगे। इस प्रदेश में अन्य प्रदेशों की भाँति ही अनगिनत कहानियाँ प्रचलित हैं तथा उनमें अभिप्राय भी अनेकों मिलते हैं। इन अभिप्रायों तथा कहानियों को हम नीचे एक तालिका में दे रहे हैं —

अभिप्राय

कहानी

१—पार्वती जी के ज़िद करने पर
भोला के द्वारा मृत भाई को
जीवित कर देना।

दो भाई

२—पार्वती जी के ज़िद करने
पर शकर का लकड़हारे को
कई बार धन देना परन्तु
बिना भाग्य के धन नष्ट
हो जाना, फिर भोला के
द्वारा बताये जाने पर
लकड़हारे का भाग्य सीधा
करना तथा उसको नहला
घुला कर तिलक करना
और अंत में खोया हुआ
धन पा जाना।

उल्टा-सीधा भाग्य

—राजा के सात बेटा या बेटी
होना, सबसे छोटे बेटा या
बेटी के साथ कुछ अद्भुत
घटना होना और अंत में
उसे सफलता प्राप्त होना।

सब अपने अपने भाग्य का
खाते हैं

मानव और सृष्टि—डॉ० श्यामाचरण दूबे, पृ० १८२

लोककथा भ्रम—आजकल, मई १९५४, पृ० २३

- ४—किसी पाप के कारण पशु-योनि में
जन्म लेना, फिर पाप का प्रायश्चित्त
हो जाने पर पुन मनुष्य योनि में
आना । गंगा का न्हाण
- ५—पशु-पक्षियों द्वारा मनुष्य का शरीर
रख कर अहसानों का बदला
चुकाना । मददगार दोस्त
- ६—भावज का चुगली करना तथा ननद
को पति द्वारा मरवा देना । तत्प-
श्चात् नन्द का बेरी बनकर उगना
तथा उसकी बाँसुरी बनना । पुन
बाँसुरी की लडकी बन जाना तथा
अपने माई-मामी को घर से
निकलवाना । बाँसुरी
- ७—क्रोध में पत्नी को मार डालने पर
हरे साग के रूप में उगना, भैंस को
साग खिला देने पर भैंस के शरीर
में प्रवेश कर जाना, भैंस को
मरवा कर जूती बनवाना, जूती में
भी जीवित रहने पर जूती को कुएँ
में डाल देना । मिठुआ
- ८—तोते में या उसके गले में पड़े हार में
प्राण होना । मरनी जीनी रानी
- ९—सिरहान और पाँयत की ओर सटी
को अदल-बदलकर जीवित तथा
मृत कर देना । बाबाजी
- १०—झूठा पानी पीने से गर्भ रह जाना । मरनी जीनी रानी
- ११—मनुष्य का मक्खी बनाकर झोली में
रख लेना । बाबाजी
- १२—श्राप से पत्थर या कोयला हो
जाना । नदी सूख जाना, वृक्ष सूख
जाना, फिर अत में ठीक हो जाना । कहानी की बात

- १३—दाने द्वारा या देवी-देवता द्वारा
मनुष्य की भेट लेना ।
- १४—करामाती डंडे द्वारा पिटाई करना ।
- १५—चकोत-चकोतरी का राजा को अमी-
जल प्राप्त करने का साधन बताना ।
- १६—देवी को अपनी देह की बलि देकर
उससे सोने की झारी तथा अमीजल
की शीशी प्राप्त करना और उसके
द्वारा अपना वचन पूरा करना ।
- १७—पलग के पायो का बोलना तथा दाने
को मार आना ।
- १८—हीरामन तोते द्वारा शत्रुओं से चोरी
की गई वस्तुओं को वापिस लाना ।
- १९—सितार बजाकर झिलमिल का पेड़
अथवा मन-चाही वस्तु प्राप्त कर
लेना ।
- २०—अपने मतानुसार कार्य हो जाने पर
राजा द्वारा अपनी लड़की का डोला,
आधा राज्य तथा फौज फर्मा दिया
जाना ।
- २१—पशु-पक्षी से डरकर राजा का अपनी
लड़की से उनका विवाह कर देना ।
- २२—मनुष्य का पक्षी से विवाह करना तथा
अंत में पक्षी का शिव-पार्वती जी
की कृपा से मनुष्य बन जाना ।
- २३—च्ही का काम निकल जाने पर
चिड़िया को धता बताना ।
- २४—पशु-पक्षियों में मानवीय भावना
होना और उसी तरह के काम करना ।

क दो भाई
ख सकट चौथ
क बैत की परी का तैल
ख झिलमिल का पेड़
अमीजल

अमीजल

पलग का पाया

झिलमिल का पेड़

झिलमिल का पेड़

मददगार दोस्त

मुर्गे का व्याह

मैना का व्याह

चिड़िया और चुड़िया

क फास्ता
ख सोने के बाल
वाला बदर
ग . नेकी अक-बदी

- २५—सत के जमाने मे जो बात मुँह से
निकालते थे वह पूरी करते थे ।
- २६—तीन वचन भरवा कर मनुष्य को
वचनवद्ध कर देना ।
- २७—अपनी बात मनवाने के लिये स्त्री
का हठ करना और आसन्नपाटी
लेकर पड़ जाना ।
- २८—भाभी के ताने के कारण सबसे छोटे
देवर का अपूर्व सुन्दरी की खोज मे
निकल जाना तथा सघर्षों के बाद
उसे प्राप्त करना ।
- २९—दड देने के लिए बारा वर्ष का
दमोहा या दुहाय देना ।
- ३०—दान-पुण्य, व्रत-उद्यापान आदि
से दिन फिर जाना तथा उनकी अव-
हेलना करने से बुरे दिन आ जाना ।
- ३१—पूर्वजन्म के पाप-पुण्य को अगले जन्म
मे भोगना ।
- ३२—मिद्ध पुरुष के द्वारा कोई फल या
अन्य वस्तु लेने से गर्माधान हो जाना ।
- ३३—लाल भुजककड को ज्ञानी मानना तथा
उसके द्वारा मूर्खता के निर्णय देना ।
- ३४—पत्नी का सास तथा पति को नीचा
दिखाने के लिये जाल रचना और
स्वयं उसमे फँस जाना ।
- ३५—पत्नी का पति की चोरी-चोरी अच्छे-
अच्छे भोजन बना कर खाना ।
- ३६—पत्नी से लड़ने पर मर जाने का बहाना
करके पड़ जाना । बाद मे चिता से
निकलकर रास्ते चलते आदमियों को
डराकर उनका सामान आदि लेकर
- क राजा बीर
विक्रमाजीत
- ख अमीजल
- क अहोई आठे
- ख करवा चौथ
- बैत की परी का तेल
- अनार दे नार
- अजना
- क छत्तीस भावस की कहानी
- ख बृहस्पति की कहानी
- क धृतराष्ट्र
- ख रोटी का दान
- क घडा-बेटा
- ख रोटी का दान
- खुदा की सुरमेदानी
- अम्मा मेरी अक तेरी
- चटोरी-जाटनी
- कुम्हार

- ३७—मित्रता का अहसान उतारने के लिये
अपने पुत्र के रक्त से स्नान कराकर
मित्र का कोढ़ दूर करना और पुत्र
का पुन जीवित हो जाना ।
- ३८—सौतिया-डाह के कारण लडके या
लडकी को जल में बहाकर ईंट
पत्थर रख देना ।
- ३९—राजा का, रानी को ईंट पत्थर जतने
के कारण काग उडावनी का स्थान
देना और बच्चो के लिये उसके स्तनो
से दूध की धार बह निकलना ।
- ४०—भगवान् के द्वारा मनुष्य की आयु का
विभाजन होना ।
- ४१—देवरानी-जिठानी का गरीब और
अमीर होना । गरीब का दयावान
तथा अमीर का बेईमान होना । गरीब
के घर भगवान् का लक्ष्मी बरसाना
और अमीर के घर पाखाना करना ।
- ४२—बुरे आदमी की हड्डी से पेड़ का
सूख जाना ।
- ४३—पशु-पक्षी का मनुष्य से बदला लेना ।
- ४४—पशु-पक्षी का खेती करना ।
- ४५—मित्र की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी
से पापाचार की इच्छा करना तथा
अंत में उसका फल मिलना, कोढ़ी हो
जाना, फिर उसी स्त्री के द्वारा छीटा
देने पर निर्मल काया होना ।
- ४६—भगवान् में आस्था रखते हुए
अनुचित नाम लेने पर भी भगवान्
के दर्शन होना ।
- ४७—पक्षियों का मनुष्य की भाषा बोलना ।
- ४८—शेखचिल्ली का अद्भुत तथा
हास्यास्पद काम करना ।
- दो दोस्त
- काग उडावनी
- काग उडावनी
- आदमी की उमर
- अमीर-गरीब
- भला-बुरा आदमी
- चिरोट्टा भाई
- चिड़िया और कागा
करनी का फल मिलता है
- सच्चे की जीत होती है
- मैना और चना
- शेखचिल्ली
(पैसे में बह)

- ४९—राजकुमार का दाने की लडकी से गुलबकावली
व्याह करना तथा दाने की मदद से
मनचाही वस्तु प्राप्त करना ।
- ५०—एक आदमी का अपना कार्य सिद्ध गुलबकावली
करने के लिये चार-पाँच विवाह
करना ।
- ५१—किसी स्त्री का सदाबरत करना तथा चार-दोस्त
बिछड़े हुये प्रेमी का उस सदाबरत
मे मिल जाना ।
- ५२—बढ़ी करने वाले भाई को भी गुलबकावली
कैद से छुड़ाना ।
- ५३—मुसलमान राजा का हिन्दू देवी के अकबर
प्रताप से प्रभावित होना ।
- ५४—बच्चे का स्वर्ग के रुपए जमा करना । अच्छे कर्मों से स्वर्ग के दशन
होते हैं
- ५५—गुरु और चेले का भिन्न-भिन्न रूप हकीम जालीनूम
रखकर एक-दूसरे पर हमला करना
और अंत में चेले की विजय होना ।

लोककथाओं में भावाभिव्यक्ति—लोककथा, लोक-साहित्य की इकाई है । इसमें जो कुछ भी जुड़ता है वह इसी के बल पर दहाई बनाता है । इसकी आत्मा चेतनामय मानव के समान पूर्ण होती है । इनमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रहती है । यहाँ कल्पना के सहारे मुदर से सुदर चित्र सँजोए जाते हैं । यहाँ मनुष्य इच्छामात्र से सात समुद्र को लाँघता है, नौ खंड पृथ्वी की परिक्रमा करता है, किसी भी द्वीप की अनन्य सुन्दरी को अपने पौरुष से प्राप्त कर लेता है । यहाँ स्वर्ग की अप्सराएँ और पाताल की नागकन्याएँ पानी भरती हैं । सिंह और मर्प भी दोस्ती निबाहते हैं, पक्षी सदेश पहुँचाते हैं, और आवश्यकता होने पर भिन्नचित्र भी बोलने लगते हैं । शैली अत्यन्त मोटक तथा भाषा लोकोक्तियों तथा मुहावरों से भरपूर रहती है ।

कथानक प्रायः भगवान्, भाग्य और पुरुषार्थ से ही सबधित होते हैं । इन कथाओं में कल्पना की ऊँची उड़ान, भाग्य और दैवी बाधाओं के सामने पुरुषार्थ और मानवीय साहस की जीत, वचन की रक्षा में प्राणदान की उत्सुकता, भाई-बहन का

निश्छल स्नह और माँ की ममता के उन्कृष्ट उदाहरण है। इनमें मानवीय गुणों का तथा जीवन के व्यावहारिक दर्शन का उल्लेख मिलता है।

लोककथाएँ बालको की मनोभावनाओं के अति निकट होती हैं। इसके दो कारण स्पष्ट हैं—एक ओर तो वह सहज, सरल और प्रवाहमयी तथा दूसरी ओर मनोरंजक और कुतूहलपूर्ण होती है। लोककथाओं का विषय और क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। भाव-गहनता और पारलौकिकता कम है। यह हमारे नैतिक मूल्यों को छूती है। लोककथाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनके अभिप्रायों का विस्तार है, जो देश काल की सीमाओं से सर्वथा मुक्त है। लोककथाओं के अभिप्राय देश काल की सीमाओं से परे हैं। लोककथाओं में मानव की सहज जिज्ञासा को उभार कर कहानी को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास अधिक होता है। खड़ीबोली भाषा का ठेठ, सरल और स्वाभाविक रूप लोककथाओं में ही मिल सकता है।

इनमें कहानी कला के सभी तत्व मिल जाते हैं। ये सुखात, मंगलकामना की भावना, शिक्षाप्रद, आशाप्रद और प्रेरणात्मक होती हैं। इनमें रोचकता, कुतूहलता अलौकिकता तथा लोकजीवन का चित्रण विशेष रूप से दृष्टिगत होता है।

इनमें मनोवैज्ञानिक सामाजिक-तत्वों का प्राधान्य रहता है तथा यथातथ्य चित्रण मिलता है। मानवीकरण का पक्ष भी रहता है। यह प्रतीकात्मक होती है तथा इनके द्वारा मानसिक शिक्षा मिलती है। लोककथाओं में पात्रों का नामकरण प्रायः नहीं होता। पात्र जातिवाचक संज्ञाओं के रूप में आते हैं। कभी-कभी पात्र पशु-पक्षी के रूप में भी आते हैं। लोककथाओं का उद्देश्य कल्पना-मिश्रित, आदर्शोन्मुख यथार्थ-चित्रण करना होता है। लोककथाओं में विशुद्ध जनजीवन का दैनिक सुख, हर्ष-विषाद, राग-विराग होता है। यह जनजीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। लोककथाओं में कहानी के सभी गुण तथा कहानी तत्व मिलते हैं जिनमें सक्षिप्तता, एकस्रता, संवेदना, प्रासंगिकता मुख्य है। लोककथाओं का सच्चा स्वरूप लिखित नहीं, मौखिक होता है।

लोककथाओं में समानता का दर्शन होता है। उनकी सीता भी गंगरी से पानी भर कर लाती हैं। शिव-पार्वती, जन-दुखहरण के लिये साधारण वेश में जनता के पास जाते हैं और जनता का दुख देख कर समाधान करते मिलते हैं। 'गौरा पारवती' को अत्यन्त करुणामयी माता के रूप में समझते हैं, जो किसी की भी दुखमरी कहानी सुन कर या करुण-दृश्य देखकर द्रवित हो जाती हैं और अपने पति-देव शंकर भगवान् से उसका दुःख अवश्य निवारण करा देती हैं। 'गौरा' जगत्माता हैं और सब के दुःखों का अनुमान कर सकती हैं। लोककथाओं में राम और कृष्ण

इसलिए ही पूज्य नहीं है कि वे वैभवशाली हैं बल्कि उनके राम-कृष्ण ने विश्व के कल्याण के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। वे जनसाधारण के लिये उनके सुख-दुख में रोते हैं। विक्रमादित्य वेप वदल कर प्रजा के दुःख का पता लगाते हैं। वह आदर्श राजा थे जिनको प्रजा की वास्तविक स्थिति जानने की चिन्ता रहती थी और यथासामर्थ्य वह अपने राज्य में सबको सुखी रखना चाहते थे, इसके लिये प्रयत्नशील रहते थे। लोककथाओं में सामन्तशाही प्रथा की भी जाँकी मिलती है।

लोककहानियों में जहाँ एक ओर मानव हृदय की गहन अनुभूति मिलती है, वहीं दाम्पत्य-प्रेम के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का रूप भी दिया जाता है। इन कथाओं में प्रेम, घृणा, प्रतिहिंसा, क्रोध आदि मानवीय भावनाओं का चित्रण मिलता है। इनमें चरित्र-चित्रण प्रधान रहता है। प्राकृतिक वर्णन का स्वतंत्र रूप में अभाव मिलना है लेकिन यह प्रकृति से दूर नहीं होती। इनमें प्रकृति मानव की चिरसहचरी है, उससे भिन्न नहीं। वहाँ पक्षी, मनुष्य के साथ वार्तालाप करते हैं, पशु उनके दुःख में कातर होते हैं। मनुष्य और पशु एक-दूसरे के सहचर हैं।

लोककथाओं में अलौकिक तत्वों का समावेश भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह दिव्य आत्माओं, देवताओं, विलक्षण पुरुषों या राजा-रानी और राजकुमारी से संबंधित होनी हैं। इनमें असाधारण असम्भव घटनाओं का प्रदर्शन रहता है। राजा-रानी को किसी का शाप, शर्त, या कोई कठिन काम कर दिखाने, उसमें दैवी सफलता प्राप्त होने अथवा किसी साधु-संत, जादूगर या मानव की तरह सुनने और समझने और बोल-चाल वाले किसी वृक्ष, पशु अथवा पक्षी की सहायता मिलने से कार्यपूति का वर्णन होता है।

स्त्रियों की व्रत संबंधी धार्मिक कथाओं में विशेष रूप से निषेधों की चर्चा होती है। कहानियों का मूल, आदि मानव के अधविश्वासों में मिल सकता है। इसमें कल्पना-तत्व की स्पष्ट कमी होती है। स्त्रियों की कहानियाँ बहुत आदर भाव से कही-सुनी जाती हैं। सभी कहानियों को कहने की अधिकारिणी भी वे नहीं होती, क्योंकि कहानी का अंश भुलाया या आगे पीछे नहीं सुनाया जा सकता। ऐसी कहानी सुनने वाले दोनों ही अधिकारी निष्ठावान्, तन-मन से शुद्ध और पवित्र होते हैं। इनके द्वारा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान हो जाता है।

वैसे तो इस प्रदेश में प्रचलित प्रेम-कथाएँ अधिक नहीं मिलती, यदि हैं भी तो उनमें प्रेम का आदर्श विशुद्ध रूप में दृष्टिगत होता है। इनमें प्रेम का नग्न व भद्रा प्रदर्शन नहीं है, जिसको कि हर अवस्था के लोग एक जगह बैठ कर कह-सुन सकते हैं। परन्तु उन कथाओं में प्रेम के साथ-साथ बहुविवाह भी देखने को मिलता है। एक राजकुमार अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिये कितनी ही राजकुमारियों

से विवाह कर लेता है, उदाहरणार्थ—गुलबकावली कहानी में राजकुमार गुलबकावली का फूल लेने के लिये चार विवाह करता है जिससे प्रेम की पवित्रता पर घब्बा आ जाता है ।

लोककथाओं का अतः सुख तथा सयोग में ही होता है । उनमें मंगलकामना की भावना रहती है, यह मंगलकामना ही उनकी विशेषता है । लोककथाकार अपनी कथा के द्वारा लोक-समाज में विधादमय, निराशाजनक वातावरण उपस्थित नहीं करना चाहता है उसका उद्देश्य तो उनमें जीवन, जगन्नियन्ता के प्रति असीम, अटूट आस्था उत्पन्न करना होता है जिससे जीवन सरल और सुखी हो सके और इस प्रकार के जीवनयापन में नैतिक पक्षों का उल्लेख सहायता करता है । लोककथाओं में हम देखते हैं कि जीवन की कटु वास्तविकताएँ भी मधुर रूप धारण कर लेती हैं । कथा के नायक व नायिका के मार्ग में आनेवाली विघ्न-बाधाएँ स्वाभाविक रूप से हटती दिखायी देती हैं । अगर वे सत्य-मार्ग पर चलते हैं तो उनको सफलता अवश्य मिलती है । सत्य, झूठ और बुराई पर विजय होना अवश्यभावी है ।

कहानी के अंत में हम आशीर्वादात्मक वाक्य पाते हैं—‘भगवान् ने जैसा उसका भला किया, उसका गजपाट लौटाया, वैसा सब का करे ।’

लोककथाओं में अलौकिक और अमानवीय तत्वों का बहुत समावेश होता है । इनमें रहस्य, रोमांच, भूतप्रेत, पिशाच, दानव, परी आदि से सबंध रखनेवाली वस्तुओं का वर्णन मिलता है और अदभुत रस की प्रधानता मिलती है । रोचकता और मनोरंजकता बढ़ाने के लिये लोक-समाज में यह बहुत प्रसिद्ध है कि कहानी का सबसे बड़ा गुण सुननेवालों में उत्सुकता का भाव बनाये रखना है । जितनी ही देर तक वह अधिक उत्सुकता बनाये रहेगी उतनी ही सफल होगी । लोककथाओं में यह उत्सुकता अंत तक बनी रहती है और यही कारण है कि वह बहुत रोचक और सफल होती है ।

इन लोककथाओं में बहुत स्वाभाविक और यथातथ्य वर्णन मिलता है । कुछ विशेष ‘शेखचिल्ली’ आदि की कहानियों को छोड़ कर लगभग सभी में अतिशयोक्ति नहीं मिलती । बहुत सरल शैली में, छोटे वाक्यों में, बिना शब्दों के आडम्बर और कृत्रिमता के यथातथ्य सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है । लोकजीवन का सामाजिक तथा नृ-विज्ञान सबधी अध्ययन करने के लिये इन कथाओं का विशेष महत्व है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही मानवीय भावनाओं और भिन्न-भिन्न स्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं सबधी अध्ययन की बहुत सामग्री मिल सकती है ।

लोकमानस सब जगह एक समान है । इसी से अन्य प्रान्तों व देशों की कहानियाँ

पढ़ने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बोली और स्थानीय महत्वो तथा साधारण छोटे-मोटे मेदों के अतिरिक्त उनके कथानको में भावनाओं की आश्चर्यजनक समानता मिलती है। कहानियाँ यद्यपि कल्पनाशील होती हैं पर उनका आधार वही जनसमाज होता है। मानव-हृदय से सबधित भावक परिस्थितियाँ व उनकी प्रतिक्रियाएँ सभी जगह एक-सी मिलती हैं। मनुष्य, अगर वह वास्तव में मनुष्य है और उसमें मानवीय हृदय का स्पन्द है तो उस पर समान परिस्थितियों में समान रूप से ही प्रतिक्रियाएँ भी होगी। इन्हीं साधारण तथा अन्य कुछ अपवादस्वरूप होने वाली प्रतिक्रियाओं का उल्लेख भी इन कथाओं में मिलता है। लोककथाएँ जीवन से मित्त घरातल पर आधारित नहीं होती, उनमें हमें अधिक आत्मीयता का अनुभव होता है। लोककथाकार लोक-जीवन से ही प्रेरणा पाता है और लोक-जीवन को ही प्रेरणा देता है।

खड़ीबोली की लोककथाओं का कथा-शिल्प—गोव-साहित्य उस समाज का साहित्य है जो साहित्यिक सिद्धान्तों से सर्वथा अपरिचित है। वह जब कोई कहानी कहता है तो वह घटनाओं का वर्णन अपनी ही प्रकार से करता चलता है। घटनाओं को जोड़ने तथा उसका वर्णन करने की लोकमानव की अपनी ही परिपाटी होती है जिसके ऊपर कोई भी साहित्यिक सिद्धांत लागू नहीं होता। वास्तव में इन कहानियों की रोचकता तथा कलात्मकता का लोक रूप हमें सुनने से ही पता चलता है परन्तु फिर भी हम इन कथाओं को निम्नलिखित दृष्टिकोणों से परखना चाहेंगे—

१—कथावस्तु, २—पात्र, ३—चरित्रचित्रण, ४—कथोपकथन, ५—वातावरण, ६—रस, ७—उद्देश्य, ८—शैली (कहने-सुनने की कला)।

१. कथावस्तु—लोककथाएँ कथावस्तु के क्षेत्र में अत्यधिक सम्पन्न हैं। इन कथाओं में जीवन की समस्याएँ, सामाजिक परम्पराएँ, लोकविश्वास, अधविश्वास, नैतिकता-अनैतिकता, धर्म-अधर्म आदि सभी कुछ अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए हैं। लौकिक कथानकों के अतिरिक्त अलौकिक कथानक जैसे—परी, दानव, सिद्धपुरुष, जादू का डडा आदि भी इन कथानकों में मिलते हैं। ऐतिहासिक कथानकों को तो लोकमानव अपनी प्रकार से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ—‘सिकन्दर’ कहानी में लोककथाकार सिकन्दर को अत्याचारी सिद्ध करता है। इन कथाओं से प्रकट होता है कि जीवन के हर पक्ष के सबध में लोकमानव अपना ही दृष्टिकोण रखता है जिस पर न तो इतिहासकार प्रश्न उठा सकता है और न अन्य कोई शक्ति ही। वह अपने विचारों में निरकुश है।

लोककथाओं में अन्तर्कथाएँ भी रहती हैं जो मुख्य कथानक को पुष्ट करती हैं। मुख्य रूप से ये अन्तर्कथाएँ अलौकिक कहानियों में ही अधिक होती हैं जो नायक की कार्यविधि में श्रोताओं की रुचि को और अधिक जाग्रत कर देती हैं। वैसे ऐतिहासिक कहानी—राजा विक्रमादित्य की कहानी में भी अन्तर्कथाएँ हैं। इन कथाओं में कल्पना भी अधिक रहती है, जो कभी-कभी अवास्तविक-सी लगने लगती है।

लोककथाओं में प्रतीकात्मक कथानक भी मिलते हैं, जैसे—झिलमिल का पेड़, प्रतीकात्मक कथा कही जा सकती है। कहावतों सबधी भी कथानक हैं, जिसका सारांश एक ही वाक्य में निकल आता है तथा यह जीवन में चरम वाक्य के रूप में प्रयुक्त होते रहते हैं। शास्त्रों तथा पुराणों पर आधारित आख्यान भी लोकसाहित्य में लोक-कथा के रूप में सुरक्षित हैं जिनका महत्व धार्मिक तथा नैतिक रूप से समान है।

२ पात्र—किसी भी कहानी में कथानक के पश्चात् पात्रों का स्थान है। प्रकृति तथा सृष्टि का हर जड़-चेतन लोक-कथा का पात्र है तथा हर पात्र मुखर है और बात करता है। मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तुओं के अतिरिक्त ईश्वर, समुद्र, गंगा, अग्नि, वृक्ष, पृथ्वी, बादल, खूंट, लाठी, सब ही बोलते हैं तथा कहानी हर पात्र की के लिए समान रूप से आवश्यकता है। 'मैना और चना' की कहानी में मैना का चना खूंट में गिर जाता है। जब वह खूंट से माँगती है तो खूंट मना करती है। वास्तव में तो कहानी वही से प्रारम्भ होती है। इस कहानी में लाठी, आग, सागर, बादल आदि सब ही सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। ये कहानियाँ पात्रों की दृष्टि से तो प्रकृति का दर्पण हैं, जिसमें प्रकृति का हर रंग स्पष्ट दिखलायी देता है तथा इन कहानियों में सब को उचित स्थान मिला है। पात्रों में नायक सदा फल-उपभोग करता है, अन्य पात्रों को अपने-अपने अनुसार फल मिलता है। लोक-कथा का नायक आदर्श-वादी होता है तथा उसके साथी भी आदर्श को निबाहते हैं। अन्य पात्र, जो आदर्श के विरुद्ध चलते हैं, वह कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। लोकमानव पर कथा के पात्रों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। वह इनका अनुकरण करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। अविकतर पात्र प्रतिदिन के जीवन से ही आते हैं। इसलिये भी लोकमानव उनसे अधिक निकटता का अनुभव करता है।

३ चरित्र-चित्रण—पात्रों की तुलना में इन कथाओं में चरित्र-चित्रण का बहुत अभाव है। वास्तव में पात्र व्यक्तिगत रूप से नहीं आते। लोककथाओं में उनका समष्टि रूप ही मिलता है। पात्र नाम से नहीं आते अपितु जाति से सम्बोधित होते हैं जैसे आदमी, औरत, बनिया, जाट, गूजर आदि। चरित्र-चित्रण भी होता है तो

समष्टि रूप में ही होता है। कहीं-कहीं राजकुमारियों का रूप वर्णन मिल जाता है। यह रूप-वर्णन भी दूतियों द्वारा तथा तोते अथवा मैना द्वारा होता आया है, जिसको सुन कर राजकुमार उनके पीछे पागल हो जाता है। परन्तु प्रधान रूप में चरित्र-चित्रण गौण ही होता है।

४ कथोपकथन तथा वातावरण—जहाँ तक कथोपकथन का सम्बन्ध है, वह इन कहानियों में बहुत ही शिथिल रहता है। इसका कारण यह भी है कि लोक-कथाएँ अलिखित रूप में ही हैं तथा इन कहानियों को सुनाने वाले भी अशिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित होते हैं जो कथाओं को सुनकर उसी प्रकार में सुना देने में विश्वास करते हैं। वैसे कहानी के कथोपकथन को कोई-कोई सुनाने वाला पुष्ट भी कर देता है। ये कहानियाँ अधिकतर वर्णनात्मक ही होती हैं। इस कारण भी कथोपकथन की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

५ वातावरण—जहाँ तक वातावरण का सम्बन्ध है, लोककथाओं में वातावरण पूर्ण रूप से ग्रामीण ही होता है। इस पक्ष पर कहानी कहनेवाले के अपने चारों ओर के वातावरण का ही अधिक प्रभाव रहता है। इसके पात्र अपने कार्यकलापो से भी उसी प्रकार का लोक-वातावरण बना देने हैं। राजा का लडका, बैलो की गाड़ी में ही लकड़ी बेचने ले जाता है। कथाओं की भाषा भी खडीबोली प्रदेश के ग्रामों में प्रचलित भाषा ही होती है, जो हर प्रकार के वातावरण को लोकरूप में ही ढाल देती है, इसलिए कहानियों में आदि से अन्त तक लोक-वातावरण ही रहता है।

६ रस—लोककथाओं में लगभग सब ही प्रधान रस रहते हैं—वीर, शृंगार, वात्सल्य, हास्य, अद्भुत, वीमत्स, शात तथा करुण। अलौकिक कहानियों में स्थान-स्थान पर अद्भुत रस की अभिव्यजना हुई है। 'शेखचिल्ली' की कहानियाँ हास्य-रस से ओतप्रोत हैं। 'काग उडावनी' कहानी में वात्सल्य का उस समय उत्कृष्ट रूप मिलता है, जब काग उडावनी के स्तनो से दूध की धारा वह निकलनी है। अन्य सभी रस स्थान-स्थान पर लोककथाओं में दृष्टिगत होते हैं।

७ उद्देश्य—जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि यह कहानियाँ आदर्शवादी होती हैं। इनका उद्देश्य सदा नैतिक शिक्षा देना रहता है। इन कथाओं से जीवन के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापो से सम्बन्धित शिक्षाएँ भी मिलती हैं। ये कथाएँ लोकमानव को आस्थावान् बनाती हैं तथा इनके द्वारा उनका जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण बन जाता है। लोककथाओं का शिक्षात्मक चरित्र के अतिरिक्त मनोरंजक रूप भी होता है। इस प्रकार की कथाओं में मीदड़, लोमड़ी की कथाएँ, शेखचिल्ली की कथाएँ तथा ठगों की कथाएँ आदि ही आती हैं।

कभी-कभी इन कथाओं में व्यंग्य भी रहता है जैसे 'आधा सच आधा झूठ' कहानी में कलियुग के प्रति व्यंग्य मिलता है। 'अधेर नगरी चौपट राजा' नामक कहानी में व्यंग्य ही है, जो राजा की मूर्खता पर किया गया है। 'चिडिया तथा कौए' नामक कथा में पूँजीवाद की व्यंग्यात्मक आलोचना मिलती है।

८ शैली—इन सब तथ्यों के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि लोक-कथा की भाषा, शैली सब ही कुछ कहानी कहनेवाले पर ही निर्भर करता है। उसकी लोकभाषा होती है तथा कहते समय वह तथ्यों को बड़ा-चड़ाकर कहना चाहता है। कहानी कहने के साथ-साथ वह यह भी सोचता रहता है कि तथ्यों को किस प्रकार तोड़-मरोड़ कर, बड़ा-चड़ा कर, श्रोताओं के सम्मुख रखा जाय। कहानी का आरम्भ तथा अन्त तो एक-सा ही रहता है परन्तु बीच के अंश में अवश्य अन्तर हो जाता है। वास्तव में कहानी कहनेवालों की कुछ इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है कि वह कथा को लम्बी करके सुनाना चाहता है, इसलिये कहानी कहनेवाला कई बार दुहराता भी है।

वास्तव में लोककथा की अपनी ही शैली होती है। इसके साथ ही साथ यह भी कह देना आवश्यक है कि लघुछंद कथाओं में चम्पु शैली रहती है, परन्तु छंद अत्यधिक काव्यपूर्ण नहीं होते उनमें केवल तुक और लय रहती है।

कहानी कहने और सुनने वालों के बीच एक अनुबधन होता है जिसका पालन करना दोनों के लिये आवश्यक होता है। कहानी कहने वाला दिन में कहानी नहीं कहता। वह यह कह कर टाल देता है कि मामा रास्ता भूल जायेंगे। इसके पीछे यही भावना रहती है कि दिन के समय कहानी सुनाने वाले की एकाग्रता भग होने की पूर्ण सम्भावना रहती है। इसीलिए कहानी रात्रि को सोते समय ही सुनाने का प्रचलन है। कहानी कहनेवाला श्रोताओं के द्वारा व्यवधान पसन्द नहीं करता परन्तु वह चाहता है कि श्रोता 'हुँकारा' अवश्य देते रहे नहीं तो कहानी कहनेवाले की यही भावना होती है कि श्रोता कहानी में मन नहीं लगा रहे हैं। हर कहानी सुनाने-वाला समझता है कि जो कहानी वह कह रहा है, वह बहुत अच्छी और बहुत ठीक है। इसी कारण वह उसमें किसी प्रकार का सशोषण भी स्वीकार नहीं करता।

कहानी कहना वृद्धजनों के मुख से अधिक अच्छा लगता है क्योंकि कहानियों का भण्डार भी अनुभव के समान ही बढ़ता है तथा कहने की शैली में भी परिमार्जन आता है। गाँव में कुछ लोग तो इसलिये प्रसिद्ध हो जाते हैं कि वह कहानी कहने में पारंगत माने जाते हैं। जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि लोककथाएँ अलिखित होने के कारण उनके शिल्प तथा कला पक्ष का ठीक-ठीक मूल्यांकन करना असंभव-सा प्रतीत होता है, अतः इनके कहने की शैली के आधार पर ही लोककथाओं के

कलापक्ष को समझा जा सकता है । लोककथा में शब्दों में चाहे प्रादेशिकता हो परन्तु भावनाओं, घटनाओं तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से सार्वभौमिकता रहती है । लोककथाएँ पहाड़ी नदी के समान हैं, जिनके अन्तर में नुकीले, चिकने, बहते हुए तथा स्थिर, सभी प्रकार के पत्थर हैं परन्तु वह अपना मन्तुलन बनाये, सभी को सँभाले, तेजी से बढ़ती चली जा रही है ।

खड़ीबोली
की
लोक-गाथा
५

लोकगाथा लम्बा कथात्मक गीत होता है। यह अंग्रेजी के 'वैलेड' शब्द का समानार्थी है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सागोपाग चित्रण होता है तथा कथानक प्रधान होता है। यह आकार में साधारण मुक्तक गीतो से बड़ा होता है। कथाक्रम होने के कारण यह अधिक रोचक और सजीव होता है। इसको गाने की एक विशेष परंपरा होती है तथा इसका गायन सावन, होली, विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर ही होता है। इसके कथा-तत्वों में असाधारण कृत्यों तथा व्यक्तियों का वर्णन रहता है। यह लोकगाथाएँ इतनी विशद तथा विविधता लिये हुए हैं कि इनमें लोकज्ञान का अनन्त-कोष भर गया है। इनमें प्राचीन रीतियों के अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है।

“लिखित साहित्य से अलिखित साहित्य का महत्व कम नहीं है। यह अलिखित साहित्य शताब्दियों में लोकगाथा के रूप में प्रचलित है और जन-जन की वाणी से मुखरित होता रहा है। यद्यपि यह लौकिक-जीवन से प्रेरित हुआ है तथापि इसमें एक ऐसी आदर्श निष्ठा है, जो समाज को शताब्दियों तक स्थिर रखने में सहायक हुई है। इसे हम लोक-जीवन की आर लोकोत्तर जीवन की मधि का साहित्य मान सकते हैं। न्याय भावना के विकास के सदर्भ में इस लोक-साहित्य की ओर सकेत किया गया है, जिसमें अनेकानेक जनश्रुतियाँ सम्मिलित हैं। वे प्रतीक और रूपों के माध्यम से प्रकृति के साथ हमारा रागात्मक सबंध स्थापित कराती हैं। इस रागात्मक सबंध में 'प्रेम' का सबसे अधिक महत्व है। इसके द्वारा जहाँ हम पृथ्वी-पदों में जीवन के सबंधों का अवलोकन करते हैं, वहाँ उसमें ईश्वरीय प्रेरणा समझ कर हम अपनी वामनाओं से ऊपर उठते हैं।”^१

‘गाथा’ शब्द का प्रचार उत्तरी भारत में बहुत होता है। इसमें कथात्मकता और गेयता, दोनों का समावेश है, साथ ही यह प्राचीन परम्परानुगत शब्द भी है।^२

सर्वप्रथम ‘गाथा’ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है—(ऋग्वेद ८३२१)। यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा उस समय प्रचलित थी। इनके

१ साहित्य-शास्त्र डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०१

२ भोजपुरी लोकगाथा डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, पृ० २

गाने वालों को 'गाथिन' कहा जाता था ।—(ऋग्वेद १७१) ।^१

“हिन्दी में यह शब्द वृत्त या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है । गाथाओं में आख्यानो का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने के कारण कालान्तर में यह शब्द आख्यान, कहानी या जीवन-वृत्तान्त के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है ।”^२

‘गीत-कथा और लोकगाथा, दोनों में लोकगीत और लोककथा के तत्त्व सम्मिलित रूप से मिलते हैं । गीत-कथा मुख्यतः एक लोककथा, ही रहती है किन्तु रूप में वह गद्यात्मक न होकर पद्यबद्ध होती है । उसे हम लोकसाहित्य के अन्तर्गत खड-काव्य मान सकते हैं । इसके विपरीत लोकगाथा आकार-प्रकार में गीत-कथा से बड़ी रहती है और यद्यपि मुख्य कथा-सूत्र उसमें एक ही रहता है, कथा विकास-क्रम में स्थल-स्थल पर अनेक पात्र और घटनाएँ उससे सबद्ध हो जाती हैं । इस कारण अनेक गाथाएँ एक स्वतंत्र ‘कथा’ की अपेक्षा ‘कथा-समूह’ प्रतीत होती हैं । गीत-कथा और लोकगाथा का क्षेत्र विशाल होता है । एक ही लोकगाथा भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ पाई जाती है ।”^३ अनेक गाथाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि प्राचीन अथवा वर्तमान सामाजिक सठगन सबधी-निष्कर्षों पर पहुँचना भ्रामक होगा ।

“इन लोक-गाथाओं में सबसे बड़ी बात यह है कि ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं । इनके द्वारा किसी युग-विशेष की समस्त परम्पराएँ अपने स्वाभाविक क्रिया-कलाप में स्पष्ट हो उठती हैं । ये परम्पराएँ उत्सव, त्यौहार और मंगलमय आचारों की हृदयग्राही भावनाओं और उनकी स्मृतियों से जीवन की अनुभूति को और भी सरल बना देती हैं । प्रत्येक मंगलमय त्यौहार और उत्सव, संयोग या वियोग में प्रेम का आश्रय पाकर भावनाओं के अत्यन्त समीप आ जाता है और तब हम अनुभव करते हैं कि हमारी परम्पराएँ जीवन की कितनी गहराई से उठी हैं और उनके निर्माण में कितनी जातीयता या सगठन की भावना है ।”^४

“लोकगाथा की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं जिनका उल्लेख ए० बी० गमियर ने अपनी पुस्तक ‘ओल्ड इंग्लिश बैलेड्स’ की भूमिका में किया है—(१)

१ हिन्दी साहित्य कोष पृ० २५८,

२ वही — पृ० २५६

३ मानव और संस्कृति डॉ० श्यामाचरण दूबे, पृ० १७५

४ साहित्य शास्त्र डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०२

उनमे आत्म-व्यजक तत्व (सब्जेक्टिव एलिमेंट) का पूर्णतः अभाव होता है अर्थात् वह अनिवार्यतः वस्तु-व्यजक (ऑब्जेक्टिव) होता है। (२) वह लोक का काव्य है। लोक द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता है। कठानुकठ प्रसार और प्रचार होने के कारण उसका निश्चित पाठ नहीं होता और न उसकी लिखित प्रतियाँ ही होती हैं। (३) उसमे श्रमसाध्य कलात्मकता नहीं होती किन्तु यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति अधिक होती है। उसमे आवश्यक भरती की सामग्री और वाग्जाल नहीं होता। (४) उसमे परम्परा प्रेम की भावना, सहजोच्छ्वास भावनात्मकता और सग्ल कल्पना (डाइरेक्ट-विजन) की मात्रा जितनी अधिक होती है उतनी बौद्धिकता, कल्पनाशीलता और श्रमसाध्य कलात्मकता की नहीं। (५) उसमे भाषा और विचारों की सरलता होती है और नैसर्गिकता तो ऐसी होती है जो केवल प्रारम्भिक मानव समाज ही में मिलती है। (६) उसमे रूढ़ अस्वामाविक और श्रमसाध्य अलंकारों और शब्दों का अभाव होता है। उसमे प्रयुक्त अलंकार और शब्द, व्यावहारिक जीवन से गृहीत होते हैं, परम्परागत साहित्यिक स्रोतों से नहीं। उसमे कुछ विशेष अलंकारों, मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति बार-बार होती है। (७) उसका छंद सीधा-सादा और सरल होता है और तुको पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। (८) उसमे गेयता होती है, परन्तु वह शास्त्रीय संगीत से भिन्न, सरल होती है। (९) उसमे कोई छोटी या बड़ी कथा अवश्य होती है।”^१

लोकगाथा में संपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। आदिम काल से ही प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से नृत्य, संगीत, गीतों एवं लोकगाथाओं की रचना में लगे हुए हैं। जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष-विषाद, सुख-दुःख की भावनाएँ जागृत होती हैं, उसी प्रकार समूह के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते हैं। उत्सवों, मेलों तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर एकत्र होना इस बात का द्योतक है कि ऐसे अवसरों के लिये ही लोकगाथाओं की रचना की जाती रही होगी। यह मौखिक परम्परा की वस्तु है। लोकगाथाओं में घटनाओं का स्वाभाविक एवं गतिशील वर्णन तो रहता ही है, साथ ही साथ जीवन का यथार्थ चित्रण भी रहता है। लोकगाथा परंपरागत है जो प्रत्येक देश में, प्रत्येक युग में, बड़े चाव से सुनी जाती रही। प्राचीन काल में इनका आज से अधिक आदर था। राजा, सेनापति, मंत्री, कवि एवं ऋषि-मुनि सभी लोग गाथाओं का श्रवण करते थे तथा उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे। उस समय लोकगाथा सामाजिक चेतना एवं आदर्श को प्रस्तुत करती थी।

लोकगाथा लोक का काव्य है और लोक के द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता रहा है। इसका प्रचार व प्रसार एक कठ के द्वारा दूसरे कठ तक होता गया। लिखित पाठ कम उपलब्ध होने के कारण यह परिवर्तनशील भी रहा। जैसे-जैसे इसमें लोक तत्वों का समय-समय पर समावेश होता गया उसी प्रकार लोकरुचि और अवसरो के अनुसार रचनाएँ भी होती गयी। लेकिन उनमें आज भी सहजता तथा स्वाभाविकता उसी प्रकार से वर्तमान है जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि लोकगाथाओं की उत्पत्ति लोकपर्वों, धार्मिक उत्सवों जैसे सामूहिक अवसरो पर अनायास ही हो जाती थी, पर इन लोकगाथाओं में समूह-विशेष के द्वारा मान्य स्थानीय मान्यताओं, विश्वासों और सामाजिक परम्पराओं का उल्लेख भी पूर्ण रूप से रहता था।

लोकगाथाओं में जीवन के सरल वास्तविक सबंध व स्तंभ अपने स्वाभाविक रूप में रहते हैं, आत्मीयता, बहुत्व की भावना, यह सब अपने मूल रूप में मिलते हैं तथा नायक एवं नायिका का पूर्ण व ईमानदारी का रूप दृष्टिगत होता है। इनमें धार्मिक तत्व भी मिलते हैं। यह लोकगाथाओं के द्वारा अनपढ़ जनता के सामने उदाहरण रखती हैं जिससे वह श्रद्धा से नत हो जाती है और धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाती है।

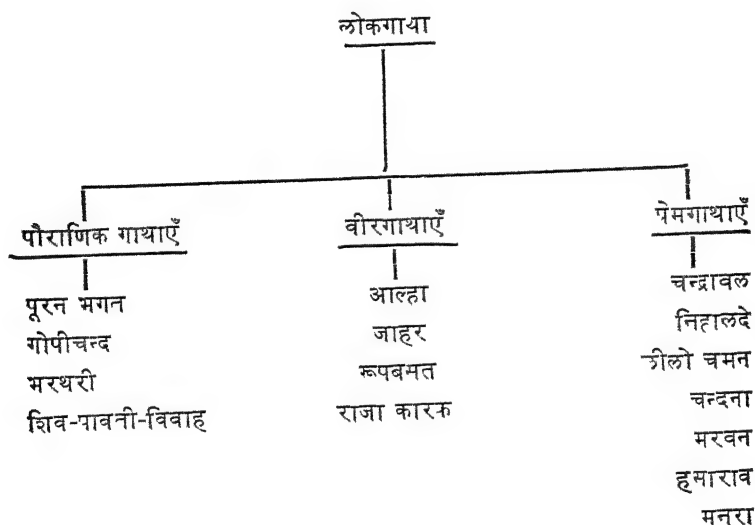
खडीबोली की लोकगाथाओं का वर्गीकरण—लोकगाथाओं के वर्ण-विषय, भाषा, पात्र तथा अभिप्राय आदि कथा-तत्वों के गंभीर अध्ययन के हेतु उनका कुछ दृष्टिकोणों के आधार पर वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है। प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि लोकगाथाओं के कथा-तत्वों में मानवीय जीवन से संबंधित सभी भावनाओं का चित्रण रहता है यद्यपि हर लोकगाथा में हर तत्व मिलता है, परन्तु मुख्यरूप से एक तत्व ही प्रधान होता है। इसीलिये स्थूल रूप से एक तत्व ही प्रधान होता है। हम लोकगाथाओं को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं,—वीर कथात्मक, प्रेम कथात्मक तथा योग सबंधी या अद्भुत गाथाएँ। यह वर्गीकरण अपने में पूर्ण व स्वतंत्र नहीं है। इनमें सभी में एक-दूसरे से सम्बन्धित सभी तत्व आ जाते हैं। उनको वास्तविक अर्थों में विभाजित करना बहुत कठिन है। उदाहरण के लिये प्रेमगाथाओं में वीरता, अमानवीय तथा अद्भुतता सभी का समावेश रहता है। सब तत्व होने पर भी किसी भी लोकगाथा में एक ही तत्व की प्रधानता होती है और इसी एक तत्व के आधार पर हम उनको पृथक्-पृथक् श्रेणियों में रख सकते हैं। उपलब्ध गाथाओं को तीन श्रेणियों में बाँटा है—

१—पौराणिकगाथाएँ

२—वीरगाथाएँ

३—प्रेमगाथाएँ

इनकी तालिका निम्नप्रकार है —



इन लोकगाथाओ मे से कुछ लोकगाथाएँ सावन के गीतो मे दी गई हैं । कुछ बहुत बड़ी होने के कारण परिशिष्ट मे नही दी जा सकी । अन्य लोक-गाथाएँ प्रकाशित रूप मे उपलब्ध हैं । पहले वर्ग के अन्तर्गत वह लोकगाथाएँ रखी गयी हैं जिनके नायक-नायिका पौराणिक पुरुष और स्त्रियाँ हैं । दूसरे वर्ग की लोकगाथाओ के नायक अपने युग के वीर सामत हैं । तीसरे वर्ग मे उन लोक-गाथाओ को रखा गया है जिनकी नायिकाएँ, प्रेमिकाएँ हैं अथवा ससुराल मे अत्याचारग्रस्त स्त्रियाँ हैं । पौराणिक गाथाओ को अधिकतर जोगी ही गाते है । इनका वर्ण्य-विषय अलौकिक होता है तथा किसी योगी, सिद्ध, सन्यासी से सबधित कथानक होता है ।

वीरगाथाओ मे स्थानीय राजाओ और रईसो का वर्णन होता है । इनमे जातीय

तत्व के साथ सामयिक शूरता का बखान भी रहता है तथा राजाओं की वशावली का इतिहास भी मिलता है, यथा—निहालदे, ढोला । इनको भाट, चारण तथा डोम गाते हैं ।

प्रेमगाथाओं में प्रेम मुख्य होता है तथा अन्य तत्व गौण होते हैं । इनमें सघर्ष भी पर्याप्त मात्रा में होता है तथा सामाजिक परम्पराओं का चित्र भी होता है । नायक-नायिका द्वारा उन परम्पराओं को तोड़ने पर उनको समाज का सामना करना पड़ता है, पर अंत में उनकी ही जीत होती है । इनको ऋतु सम्बन्धी कथागीत भी कहा जा सकता है । स्त्रियाँ इन गाथाओं को त्यौहार आदि पर गाती हैं या सार्वजनिक स्थलों पर निम्नजाति के चमार आदि गाते हैं ।

लोकगाथाओं के वर्ण्य-विषय—इन लोकगाथाओं के वर्ण्य-विषय विविध हैं । इनमें जीवन का सागोपाग चित्रण मिलता है । जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं, जहाँ लोकगाथाकार की दृष्टि नहीं गयी । लोकगाथाओं में स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीय-भावना, बौद्धिकता, अलौकिक प्रेम, सब से ही इनका निकट का परिचय है । इनमें परम्परागत प्रेम की भावना का वर्णन मिलता है तो इनमें प्रेम की गहनता भी उतनी ही है । लोकगाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है । यही किसी जाति अथवा समाज की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है ।

इनमें सामाजिक, व्यक्तिगत तथा जातिगत विशेषताओं का बहुत स्वाभाविक उल्लेख मिलता है । उनकी चित्त-प्रवृत्तियाँ, धर्माचरण, सदाचरण, ईर्ष्या एवं कलह के जीवन का स्वाभाविक चित्रण लोकगाथाओं में सफलतापूर्वक हुआ है । सामाजिक अच्छी रीतियों के साथ ही उनकी कुरीतियों का भी उल्लेख करना लोकगाथाकार नहीं भूला । उदाहरणार्थ—बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, पुरुषों के अत्याचार, विधवाओं की समस्या आदि का यथातथ्य उल्लेख इनमें समय-समय पर होता रहता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगाथाओं का वर्ण्य-विषय सरल, स्वाभाविक, समाज के गुण दोष युक्त जीवन का यथार्थ चित्रण रहा है ।

इनमें सामाजिक, व्यक्तिगत परिस्थिति समान रूप से वर्तमान रहती हैं । उदाहरण के लिये—नायक-नायिका का पूर्वानुराग, सपत्नी की ईर्ष्या, द्वेष-प्रेम की उत्कटता, परिस्थिति-जन्य वियोग, बारहमासा, सामाजिक अत्याचारों की प्रतिक्रिया तथा अन्य आश्चर्यजनक घटनाएँ, एवं भाग्यवाद का प्रभाव, भाग्य व धर्म जो अन्योन्याश्रित हैं, उनमें विचारों की प्रौढ़ता निर्भीकता के साथ दृष्टिगत होती है । इनमें अमानवीय तत्वों का प्रभाव प्रायः देखा जाता है तथा नायक व नायिका के कष्टों में पशु-पक्षी भी सहायता देते हैं ।

लोकगाथाओ में प्रयुक्त होने वाली भाषा—इन लोकगाथाओ में ग्रामीण-समाज की प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग होता है। इसमें स्वाभाविक प्रवाह और प्रभाव होता है। साहित्य के अंगों से अनभिज्ञ होते हुए भी इनमें अज्ञात रूप से इनका समावेश हो जाता है। वीर, शृंगार, करुणा आदि लोकगाथा के विशेष रस हैं। इनमें यद्यपि छन्द विधान नहीं है पर अलंकारादि स्वाभाविक रूप से आ ही जाते हैं।

लोकगाथा की भाषा स्थानीय व सरल तथा बोधगम्य होती है। भाषा के अनुरूप ही विचारों की सरलता भी होती है। यह नैसर्गिकता केवल प्रारम्भिक मानव समाज ही में मिलती है। इनमें रूढ़, अस्वाभाविक और श्रम-साध्य अलंकारों और शब्दों का नितान्त अभाव रहता ही है। इनमें प्रयुक्त अलंकार और शब्द, व्यावहारिक जीवन से गृहीत होते हैं, परंपरागत साहित्य-श्रोतों से नहीं। इनमें प्रयुक्त होने वाले अलंकारों, मुहावरों और विशेषणों की आवृत्ति भिन्न-भिन्न स्थलों पर बार-बार होती है। इनमें तुकों पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

लोकगाथाओं की भाषा, ग्राम्य वातावरण के कारण सदैव की जनपदीय रही है। इस भाषा में वर्णनात्मकता और भाषा का बहुत ही स्वाभाविक रूप है। आलंकारिकता और पद-लालित्य के लिये यहाँ पर कोई स्थान नहीं रहता।

लोकगाथाओं का संगीत पक्ष—संगीत पक्ष इन लोकगाथाओं की विशेषता है। यह शास्त्रीय संगीत से भिन्न व सहज होता है। लोकगाथाओं और संगीत का अभिन्न साहचर्य है। सभी लोकगाथा-गायक सारंगी बजा कर गाते हैं तथा अन्य लोक-वाद्यों का जिनमें ढोल, ढप्प, नगाडा, घडियाल आदि हैं, विशेष प्रयोग होता है। इस प्रदेश में लोकगाथा-गायकों की एक विशेष जाति होती है जो जोगी कहलाती है।

लोकगाथाओं में वर्णित धार्मिक स्वरूप तथा अमानवीय तत्व—भारत, धर्म-प्रधान देश है। यहाँ पर धार्मिक जीवन का ही प्राधान्य रहा है। इसलिये लोकगाथाओं में विशेष रूप से शैव, तथा शाक्य-धर्म की अधिकता है। नाथ-धर्म, गोरखनाथ आदि धार्मिक रूप गोपीचन्द, भरथरी, गुरु-गुग्गा जैसी गाथाओं में मिलते हैं। लोकगाथाओं में विष्णु, शिव, गणेश, पार्वती, राम, कृष्ण, हनुमान आदि का स्थान सर्वोपरि रहता है। शैव, शाक्त तथा नाथधर्म के पश्चात् लोकगाथाओं में इद्र तथा अप्सराओं का स्थल आता है। योग-कथात्मक लोकगाथाओं को छोड़कर शेष सभी में इद्र तथा स्वर्ग की अप्सराएँ वर्णित हैं।

लोकगाथाओं में सुमिरन और मंगलाचरण का प्राधान्य रहता है। गायक सर्वप्रथम लोकगाथा के प्रारम्भ में सभी देवी-देवताओं की आराधना करता है।

इसीलिये देवी-देवता, पीर-पैगम्बर तथा राजा आदि की वदना का लोकगाथा मे प्रथम स्थान है। वह पृथ्वी, ग्राम-देवता, देवी, दुर्गामाता, गुरु, ब्राह्मण, पाँचो पाडव, हनुमान, तथा गंगा जी का स्मरण (सुमिरन) करके गाथा का आरम्भ करता है। गायक किसी भी धर्म व राजा से विरोध नहीं करते। सब को बडा और पूज्य मान कर उनकी वदना करते है। धर्म का स्वरूप व्यापक और समन्वयवादी है। चरित्रो के विकास के लिये धर्म और विश्वासो का समावेश हुआ है।

पात्रो की योजना इस प्रकार रहती है कि उनसे मानव-धर्म, वीरता, उदारता, सदाचार, त्याग, परोपकार तथा ईश्वर के प्रति विश्वास प्रदर्शित हो। साधारणतया मानव-धर्म लोक-गाथाओ का विशेष अंग रहता है। इनका देश की सस्कृति से निकट का सम्बन्ध रहता है, इसलिये इनमे धार्मिक उथल-पुथल का भी वर्णन मिलता है। ग्रामीणजन की भी धर्म मे अटूट आस्था होने के कारण वह राजनीतिक परिवर्तन को तटस्थ भाव से ही देखता है, इसलिये राजनीतिक पक्ष लोकगाथाओ मे मौन रहता है।

लोकगाथाओ मे रोचक अवविश्वाम भली प्रकार से अपना स्थान बनाये रहते हैं, जिनसे सौंदर्य की वृद्धि होती है। इन गाथाओ के द्वारा अवतारवाद, पुनर्जन्म के प्रति विश्वास अति उत्तम ढंग से वर्णित रहता है। लोकगाथाओ के खलनायक जादू-टोना जानते है। जादूगरनी द्वारा नायको को कष्ट मिलना, तोता बनाना, मेढा बनना आदि का वर्णन लोकगाथाओ मे विशेष स्थान रखता है। इनमे आदर्श चरित्रो के विकास मे धर्म और विश्वास, सहायक के रूप मे चित्रित हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह आदर्शमार्ग प्रशस्त करते है। अवतारो का उल्लेख कई रूपो मे मिलते है। देवी-दुर्गा तथा गोरखनाथ की कृपा से व्यक्तियों का जन्म होता, है।

लोकगाथाओ मे जड पदार्थो का भी मानवीकरण होता है। यहाँ जड-चेतन मे समानता दिखायी गयी है—गंगा, यमुना, वनदेवी, हंस-हसिनी, तोता-मैना, घोडा आदि, इसमे मुखर पात्र रहते हैं। उत्तर भारत मे गंगा नदी, लोगो के धार्मिक जीवन का एक विशेष अंग है। अतः लोकगाथाओ मे भी इसका उल्लेख मिलता है। कोई भी लोकगाथा गंगा के बिना पवित्र नहीं हो सकती। अतएव कई स्थान पर भौगोलिक दृष्टि से गलत होने पर भी गंगा को गाथाओ मे स्थान दिया गया है।

इन लोकगाथाओ मे हमे आदर्शवाद और अध्यात्मवाद का गहरा पुट मिलता है। भारतीय जीवन मे आध्यात्मिक पक्ष का पूर्णरूपेण समावेश है जो कर्मवाद से भी अपना नाता जोडे हुए हैं। लोकगाथा सासारिक जीवन का भारतीय

दृष्टिकोण है। इसमें मानव-हृदय और चरित्र को स्वरूप मिलता है। इनमें आस्तिकता, आदर्शता, वीरता, करुणा व त्याग, दुष्टता, ईर्ष्या, क्रोध, सदाचार और दुराचार—सभी कुछ सरल तथा लोक रूप में ही वर्णित रहता है।

लोकगाथाओं में पात्र—लोकगाथाओं में भी नाटक के समान ही अच्छे-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। दोनों को परस्पर दिखला कर ही असत्य पर सत्य की विजय दिखायी जा सकती है। नायक के सहायकों में सभी प्रकार के पात्र होते हैं—दैत्य, राक्षस, डायन, जादूगरनी आदि। कुछ कौतुकपूर्ण कृत्यों को करने वाले भी होते हैं। कुछ दैवीय गुण युक्त चरित्र भी होते हैं जो अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते हैं। इनके द्वारा अलौकिक व असंभव कार्य भी सम्पन्न होते हैं।

नायिका में विशेष चरित्र विमाता को प्रदर्शित किया जाता है। नायक के साथ उसके प्रेम-प्रदर्शन का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिये, पूरन भक्त की कथा में इसका मूल कारण था बहु-विवाह। युवती अपने वृद्ध पति में कोई रुचि न पाकर कुटुम्ब के युवकों पर दृष्टि डालती थी। विचारे युवक भी अजीब सकोच और धर्मसंकट में पड़ जाते थे। स्त्री पात्रों में सच्चरित्र और दुश्चरित्र दोनों ही मिलते हैं।

डायनों का प्रयोग सदैव नायिका को पकड़ने के लिये किया जाता है। इनमें अपार शक्ति दिखायी जाती है। यह कार्य-सिद्धि के लिये हर उपाय कर लेती थी।

वीर-नायकों का इनमें विशेष उल्लेख रहता है। ये उत्साहपूर्वक और शौर्य-सम्पन्न कार्य करते हैं। ये पुरुष अपनी सस्कृति के त्राणार्थ प्राणों की बाजी लगाते हैं तो कभी शत्रुओं से बदला लेते हैं। कभी किसी अबला के सतीत्व की रक्षा करने के लिए तलवार उठाते हुए सामने आते हैं। इनमें अलौकिक वीरता का उल्लेख होता है। लोकगाथाओं में इन पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत ही सफलता से चित्रित किया जाता है।

लोकगाथाओं का जन्म, उद्देश्य और विशेषता—इनकी उत्पत्ति लोक-पर्वों, धार्मिक अवसरों या किसी विचित्र सामाजिक घटना से प्रभावित होकर होती है। ऐसे सामूहिक अवसरों पर इनकी सरचना अनायास ही हो जाती है। इन गाथाओं में समूह-विशेष के स्थानीय-विश्वासों एवं मान्यताओं का उल्लेख रहता है। यह सामाजिक परम्पराओं के अध्ययन में सहायक सिद्ध होती हैं।

इनका उद्देश्य लोक-जीवन में समन्वय उत्पन्न करना है। सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् की स्थापना करना ही इनका ध्येय होता है। यह समाज में मदाचार और कर्मशीलता उत्पन्न करने की चेष्टा करती हैं। इन्हीं गाथाओं के द्वारा भारत में

आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रतिभा का विकास हुआ। सत्य की विजय और असत्य की पराजय, इनमें स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है। सत्य का पक्ष देवी-देवता लेते हैं और अतः में सहायक बन कर उसी की विजय कराते हैं। बीच में, आरम्भ में चाहे कितने ही सघर्ष हो, कठिनाइयों का सामना करना पड़े, अधिकारों के लिये झगडा करना पड़े और अत्याचार तथा अन्याय सहना पड़े पर अतः में यथार्थ स्थिति स्पष्ट हो जाती है, अधिकारी को उसका भाग मिलता है, सब में सद्भावना जागृत होती है और इस प्रकार सत्य की विजय दिखाते हुए अतः सुखद होता है, जिसका प्रभाव सुनने वालों, पढ़ने वालों, तथा दर्शकों पर बहुत ही रुचिकर और गृहणीय होता है। साथ ही सत्यपरायण, शुद्ध, सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है।

लोकगाथाओं की विशेषताएँ—“इन लोकगाथाओं में जीवन की स्वाभाविक प्रेरणाएँ हैं, जो प्रकृति के प्रशात वातावरण में निर्जर की भाँति उमड़ पड़ती हैं, हृदय की ईश्वरीय विभूतियाँ अपने सहज-सौंदर्य से दिव्य आलोक विकीर्ण करती हुई अभिव्यक्ति में सहायक हुई हैं। इनमें सहज सहानुभूति है, स्वस्थ संवेदना और प्राकृतिक वातावरण की सहायता से सशक्त वैभव है। इनमें बुद्धिवैभव भले ही न हो तथापि इनमें भावना की ऐसी विभूति है कि वह जीवन के भीषण वनों को तपोवन में परिणत कर देती है।”^१ ये लोकगाथाएँ जातीय-संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं, इनके द्वारा किसी युग-विशेष की समस्त परम्पराएँ अपने स्वाभाविक क्रिया-कलाप में स्पष्ट हो उठती हैं।

लोकगाथा के काव्य में जीवन के सरल संस्कार प्रचुर मात्रा में वर्तमान रहते हैं। उसमें न तो जीवन की कृत्रिमता रहती है और न मनोभावों का अतिरजित वर्णन। मनुष्य के जीवन में जो नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ रहती हैं जैसे आत्मीयता, बहुत्व भावना, प्रेम, घृणा, अनुराग और अपनी प्रबल इच्छा के लिये आत्मोत्सर्ग करने की इच्छा—सब कुछ ही अपने सरल तथा उत्कृष्ट रूप में प्रकट होती हैं। इनमें पुरुष अपने सम्पूर्ण पुरुषत्व से और नारी संपूर्ण नारीत्व से समाज के सामने उपस्थित होती हैं।

लोकगाथाओं की गीतात्मकता ने ही लोक-नाट्य के रूप में अभिनयात्मकता दी है। यह लोक-नाट्य, लोकगाथाओं के दृश्यकाव्य का ही रूप है। इन लोकगाथाओं का मौखिक रूप ही अधिक मिलता है, लिखित रूप कम।

लिखित गाथाओ में कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं मिलता। इनका प्रबधकार अज्ञात होता है। लोकगाथाओ में स्थानीयता का पुट विद्यमान रहता है। यह काल्पनिक भी होते हैं। इन लोकगाथाओ का संगीत के साथ अभिन्न सबध रहता है। यह नीति, आचार और उपदेश से रहित नहीं है, इनमें इनका समावेश भी मिलता है तथा चारित्रिक बल की विशिष्टता भी वर्तमान रहती है।

इनमें अभिव्यक्ति की सरलता रहती है। इनका आरम्भ भी बिना प्रस्तावना के हो जाता है तथा उपसहार एवं भरत वाक्य आदि भी कुछ नहीं होते। गाथा-प्रवाह सर्वांगपूर्ण होता है और राग की गति भी बहुत तीव्र होती है। इनमें उच्च टैकनीक का पूर्णतया अभाव रहता है। यह शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से मौखिक रूप में प्रचलित रहती है अतः इस प्रकार गाथा का रूप भी बदलता जाता है। लोकगाथा के रचयिताओं का अज्ञात होना एक मुख्य विशेषता है। उनमें व्यक्तिगत नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया जाता है जिससे प्रतीत होता है कि उन गाथाकारों में नाम और यश के लिये उच्च महत्वाकांक्षा थी ही नहीं।

लोकगाथाओं का मूल उद्देश्य, उपदेश या नीति की शिक्षा तथा आचार की भावना नहीं होती, ये वास्तव में विषय-प्रधान काव्य होते हैं। प्रसंगवश यह पक्ष भी आ जाते हैं पर वह बहुत स्वभाविक रूप में नहीं। प्रवृत्ति प्रधानतया उस ओर नहीं रहती। मनोरंजन के साथ ही इनमें कुछ उपदेश व ज्ञान भी निहित रहता है। इनमें भाग्य और कर्म का संघर्ष दिखाया जाता है। इन पर प्रकाश अवय पडा है, उदाहरण के लिए गोपीचन्द, मरथरी, गुग्गा, आल्हा, पूरनमगत आदि में त्याग, तपस्या, वीरता, प्रेम, मातृ-भक्ति, देश-भक्ति आदि के प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं।

इन लोकगाथाओं में टेक पदों की तथा लघु अंशों की आवृत्ति गायक अपनी सुविधा के लिये करते जाते हैं। इसके कई लाभ हैं। राग की एकस्वरता दूर हो जाती है और श्रौतृमडल के द्वारा टेक पदों की आवृत्ति होने से राग में नवीन प्राणों का संचार होता है। गायक को अवकाश भी मिल जाता है तथा थकान भी दूर होती है और विश्राम मिल जाता है। आवृत्ति के कारण गीत अधिक प्रभावशाली भी हो जाता है। यह सार्थक व निरर्थक दोनों ही प्रकार की हैं।

लोकगाथाओं में पशु-पक्षियों की कहानियों की भी अधिकता रहती है। प्रायः यह गाथा के पात्र रहते हैं और मनोवाञ्छित व्यवहार करते हैं। यह मानव वाणी में ही बात करते हैं तथा अपने प्रिय की सहायता करते हैं। कभी-कभी यह शाप-

भ्रष्ट मानव, देवता, राक्षस, जादूगर आदि के रूप में भी होते हैं। इनमें अलौकिक अति-प्राकृत तत्वों की बहुलता होती है।

इनमें गाथा-चक्र होता है। एक कथा के भीतर कुछ प्रधान पात्रों को लेकर उन्हीं के माध्यम से अन्य कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। जो गाथाएँ बहुत लोकप्रिय होती हैं, वह बहुत आसानी से विभिन्न स्थानों और जातियों में दूर-दूर तक फैल जाती हैं। जो गाथा अधिक शक्तिपूर्ण होती है उसमें अनेक गाथाएँ अन्तर्मुक्त हो जाती हैं। इस तरह किसी गाथा की मूल कथा में अनेक उपकथाएँ जुड़ जाती हैं।

यह लगभग सभी जगह प्रचलित होती है, केवल कुछ भाषागत भेद ही होता है। इनकी सार्वभौमिकता के मुख्य कारण होते हैं। एक तो व्यापार सबंधी जातियों के कारण लोकगाथाओं का विस्तार होता है और दूसरा, मानव मनोविज्ञान के अनुसार मानव का समान परिस्थितियों में समानरूप से सोचना-विचारना भी कारण है।

इनमें एक ही व्यक्ति गायक होता है। शेष या तो श्रोता होते हैं या दर्शक। एक ही व्यक्ति के द्वारा लम्बी लय के साथ कथा कहने की प्रणाली है तथा स्थानीय बोली में कही जाती है। इन गीतों में कथा-कथन और वर्णन अधिक होता है।

इन गाथाओं में केन्द्र-बिन्दु के रूप में सत्य का कुछ न कछ अश्वय्य होता है जिसके चारों ओर मनुष्य की कल्पना-प्रियता और अति-रजनशील प्रवृत्ति के कारण कुछ ऐसी घटनाएँ जुड़ जाती हैं, जो सत्य भी हो सकती हैं और असत्य भी। गाथाओं को हम इतिहास का प्राथमिक रूप भी कह सकते हैं।

लोकगाथाओं के कथानक प्रायः पौराणिक कथाओं से लिये जाते हैं। पौराणिक-गाथाओं से बालकों तथा अन्य वयस्क सुनने वालों को बहुत प्रेरणा मिलती है।

कहानी के प्रति सहज औत्सुक्य की भावना रहती है और उसके द्वारा सुनने वाला उसमें सन्निहित नैतिक व आध्यात्मिक अंश को सहज तथा अज्ञात रूप में ग्रहण कर लेता है। पौराणिक-गाथाओं में मनुष्य की सबसे गहरी मान्यताएँ और आध्यात्मिक तथ्य सन्निहित रहते हैं जिनके द्वारा बुद्धि का विकास होता है।

लोकगाथाओं में वर्णित जो प्रेमगाथाएँ होती हैं, उनमें पारलौकिक प्रेम से सबधित सूफी ढंग की तथा पौराणिक गाथाएँ भी मिलती हैं। यह पौराणिक गाथाएँ कल्पना-प्रसूत तथा लोक प्रचलित हैं, अधिकांशतः तो ऐहिक प्रेम और लौकिक प्रेम से ही सबधित हैं। इनमें विवाह से पहिले प्रेम का विकास दिखाया जाता है। लौकिक-कथाओं में आध्यात्मिकता का संकेत भी मिलता है। इनमें प्रेम का प्रारम्भ गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन तथा स्वप्न-दर्शन से होता है तथा इनकी प्राप्ति

के लिए सखा-सखि, पशु-पक्षियो, गधर्व-किन्नरो, अप्सराओ तथा शिव-पार्वती का सहारा लिया जाता है। प्रेम एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति है। प्रेम ही के द्वारा नि स्वार्थ से नि स्वार्थ भावनाओ और कर्मों को बल और स्थिति प्राप्त होती है। शुद्ध स्नेह कभी भी उन्नति के मार्ग में अवरोधक नहीं होता, वरन् प्रेरणादायक होता है।

लोकगाथाओ में एक विशिष्ट बात यह भी होती है कि मनुष्य के अनुराग-विराग की भावनाओ से मानव ससार भी प्रभावित होता है। प्रायः देखा जाता है कि नायक के कष्टों में पशु-पक्षी भी सहायता करने के लिये तैयार हो जाते हैं।

लोकगाथाओ में कथा-तत्त्व—लोकगाथाएँ वास्तव में एक प्रकार के कथागीत हैं। यद्यपि इस प्रकार के लोकगीत समय और स्थान के अनुसार परिवर्तित होते हैं लेकिन कुछ मूल-तत्त्व भी होते हैं जो सार्वभौमिक होते हैं। गाथा में जो कथा होती है, वह लोक-जीवन से संबंधित होती है। गाथाएँ घटना-प्रधान होती हैं, वह व्यक्तिगत नहीं होती। इनमें वार्तालाप भी होता है। जो कथागीत होते हैं, उनमें किसी एक व्यक्ति का सागोपाग जीवन चित्रित होता है। इनमें कथा-विशेष होती है। सावन, होली तथा विवाह आदि में इस प्रकार के प्रबन्ध-गीत, कथा-गीत बहुत मात्रा में उपलब्ध हैं। उनमें से केवल कुछ का ही यहाँ पर उल्लेख है, मूल रूप परिशिष्ट में दिया गया है। पुत्र जन्म से संबंधित गीतों में लवकुश का जन्म और जगमोहन, इस प्रदेश के बहुत प्रसिद्ध कथा-गीत हैं।

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में 'नरसी का भात' प्रसिद्ध है, जिसमें एक बहन की कथा है। उसका सगा भाई मर चुका है। स्वयं नरसी भगवान् भात देने आते हैं। यह बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित गीत है और इसको भात के अवसर पर अवश्य गवाया या गाया जाता है। सुनने तथा गाने वालों पर इसका अमिट भक्ति पूर्ण प्रभाव पड़ता है। श्रोता ईश्वर में दृढ़ आस्था करने लगते हैं।

'मौसी का ताना' नामक गीत भी बहुत प्रमुख है कि जिसमें पूरन की सौतेली माँ का, उस पर मोहित हो जाने का तथा फिर उसको क्रोधित होकर दण्ड दिलवाने का वर्णन मिलता है। इसमें चार बातें मुख्य हैं—

- (१) सौतेली माँ का पुत्र पर मोहित होना।
- (२) पुत्र का अपने कर्तव्य से न डिगना।
- (३) पुत्र द्वारा प्रेम अस्वीकृत हो जाने पर सौतेली माँ के मन में प्रतिहिंसा जाग्रत होना।
- (४) पिता पर भेद खुलना।

सावन के गीतो मे भी कथा-गीतो का उल्लेख मिलता है जिनमे ऐतिहासिक वर्णन भी मिलता है। उदाहरणार्थ—‘चन्द्रावल’ के गीत, जिसमे मुगलकालीन, वर्णन मिलता है। किस प्रकार एक स्त्री ने मुगलो से अपने सतीत्व की रक्षा की, इसमे स्त्री के चरित्र का महत्व दिखाया है। यह हर प्रदेश मे किसी न किसी रूप मे मिलता है।

‘चन्दना’ नामक सावन के गीत मे एक स्त्री के प्रेम का वर्णन है। इनमे प्रेम और रसिकता तथा प्रेम के सत् के चित्र विशेष है। प्रेम ही इन गीतो का प्राण है। यह सावन का बहुत प्रसिद्ध प्रेमकथा-गीत है।

‘जाहरमियाँ’ भी सावन का गीत है। इसका अनुष्ठान भी होता है। यह कई प्रान्तो मे किसी न किसी रूप मे मिलता है। कथा लगभग वही रहती है केवल कुछ भेद होता है तथा मुख्य भेद भाषागत ही होता है। इस पर नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव प्रतीत होता है तथा अवतारवाद का भी उल्लेख है। इनके अतिरिक्त गोपीचद, हसाराव, मनरा, चन्द्रहास, शिवपार्वती का व्याह आदि वर्णित है।

ये प्रबन्ध-गीत यद्यपि वस्तु और स्वभाव से भिन्न है पर फिर भी इनमे एक विशेष प्रकार की सामान्यता होती है। इनकी कथाओ मे असाधारण कृत्यो व व्यक्तियो का वर्णन होता है। इनमे स्त्री के पातिव्रत्य की आदि से अत तक रक्षा की जाती है।

इनमे वर्णित विवाह-पद्धति मे बहुधा गधर्व या स्वयवर का वर्णन होता है। प्रेम दोनो पक्षो मे मिलता है। यह प्रेम रूप, गुण, श्रवण तथा चित्र-दर्शन से होता है इसमे पशु-पक्षियो का विशेष समावेश व सहयोग भी होता है।

खड़ीबोली
का
प्रकीर्ण-साहित्य
६

जनजीवन के मौखिक साहित्य में जिस प्रकार गीत और कहानियों आदि का स्थान है उसी प्रकार, वरन् कुछ अंशों में उससे भी अधिक, महत्वपूर्ण स्थान लोकोक्तियों का है। गीत और कहानियाँ तो समय-विशेष पर प्रयुक्त होती हैं पर लोकोक्तियाँ तो जीवन में स्थायी स्थान रखती हैं। वे सदैव ही लोकमानव के अन्तर्मन पर आच्छादित रहती हैं जो समय-समय पर अनायास ही प्रकट हो जाती हैं। ये दैनिक जीवन में इतनी अधिक व्याप्त हैं कि इनके लिये लघु प्रयासों की भी आवश्यकता नहीं होती, स्वतः ही सहज रूप से प्रकट हो जाती हैं। निरन्तर होनेवाले अनुभव, मनुष्य की चेतना के अंग बन जाते हैं और अपना गहन प्रभाव छोड़ते हैं, जो यदा-कदा लोकोक्तियों के रूप में व्यक्त होते रहते हैं। लोकोक्तियों की निधि वृद्धों के पास सुरक्षित रहती है जिसको वह आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी को देते रहते हैं। इनसे उनको एक विशेष प्रकार का मोह होता है, क्योंकि इनमें उनके अनुभवों का सारांश निहित है। इसलिये ये उनके पथ-प्रदर्शन तथा नैतिक सबल के रूप में मस्तिष्कों में निरन्तर कार्य करती रहती हैं। उनके जीवन में इनकी बहुत उपयोगिता है। उनका सहज विश्वासी हृदय इन पर श्रद्धा तथा विश्वास रख कर अपने जीवन की गुलियाँ सुलझाने में इनसे समय-समय पर सहायता लेता रहता है। परोक्ष रूप से ये उनके परामर्शदाता के समान हैं। ये जनजीवन के अर्च्यमान मन में इतनी समाविष्ट रहती हैं कि चेतना में आने के लिए केवल एक प्रेरणा चाहिये और उस प्रेरणा के लिये किसी भी ऐसी अनुरूप घटना की आवश्यकता होती है जिस पर कि वह उक्ति ठीक घटित हो सके। ये तत्काल बुद्धि की परिचायिकाओं और अनुभवों की सूत्रात्मक अभिव्यक्ति तथा जनजीवन की सहज-संगी हैं।

लोकोक्तियों की परम्परा—लोकोक्तियों का आरम्भ जनजीवन के आदिकाल से ही हुआ है। ये सार्वभौमिक हैं जो देश-काल व बोली की भिन्नता की उपेक्षा कर सभी जगह प्रचलित हैं। जन-जीवन में इनका स्थान नीति-शास्त्र के समान है। इनमें अनर्गल कथन नहीं है। ये जीवन के मूल्यवान् अनुभवों पर आधारित सूक्ष्म उक्ति ही होती हैं। जन-जीवन की ये चिन्मय सम्पत्ति होती है, जिसको वह अपनी प्रिय धाती के समान सदैव संजोकर रखता है तथा विरामत के रूप में

आनेवाली पीढ़ियों को दे जाता है। इनकी परम्परा अब शिष्ट समाज में भी मिलने लगी और भविष्य में भी निरन्तर बनी रहने की आशा है, क्योंकि यह सहज हृदयों की वास्तविक अनुभूतियों के प्रमाण है। इनको जीवन से निकाल देना मानव-जीवन को अनुभवहीन कर देना है। लोकोक्तियों की परम्परा के मुख्य दो ही रूप दृष्टिगत होते हैं—सामाजिक तथा ऐतिहासिक।

सदैव से ही समाज के वास्तविक चित्राकन के लिये लोकोक्तियों की सहायता लेनी आवश्यक रही है। समाज के रीति-रिवाजों, धार्मिक, नैतिक-परम्पराओं तथा जाति सबंधी पारस्परिक सम्बन्धों अर्थात् जीवन तथा समाज से संबंधित सभी बातों का उल्लेख इनमें सरलता से मिल सकता है। साहित्य समाज का दर्पण है, इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि लोक-साहित्य में लोकोक्तियाँ ही समाज का दर्पण हैं, जिनमें हर काल विशेष का चित्रण समय-समय पर होता रहता है।

ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार हम देखते हैं कि पौराणिक ग्रन्थों, प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों तथा संस्कृत में इन सूक्तियों का समय-समय पर बहुत उपयोगी ढंग से प्रयोग हुआ है। हर काल में सदैव ही इनसे पथ-प्रदर्शन हुआ है।

परिभाषाएँ—लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है। इससे इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, पर आज यह शब्द 'कहावत' व अंग्रेजी 'प्रोवर्ब' के रूप में ही रूढ़ हो गया है। जनजीवन के द्वारा अनुभव के आधार पर बनायी गई धारणाओं को संक्षिप्त शब्दों में जब किसी उक्ति के रूप में कहा जाता है तो वह लोकोक्ति कहलाती है। लोकोक्तियों की अनेकों परिभाषाएँ हैं—यहाँ पर हम केवल एक दो ही देंगे।

“लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ़ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत-सा समय लग जाता है।”

“लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक घातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती हैं, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुल्लिग (रेडियो एक्टिव) तत्वों की भाँति

अपनी प्रखर किरणों को चारों ओर फैलाती रहती है। उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्कबुद्धि शताब्दियों से सचित ज्ञान से आश्चर्य-सी बन जाती है और उसे अँधेरे में भी उजाला दिखायी देने लगता है, वह अपना कर्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाता है^१।”

“लोकोक्तियाँ जन-समूह के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखरे, इस सबध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु बहुत संभव है कि कहावतों का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्मारित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा में निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठ कर कहावतों का निर्माण नहीं किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबों की आँखों से देखने वाले निरबुद्धि विलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे, कहावतों के रचयिता जीवन के द्रष्टा थे^२।” किसी ने ठीक ही कहा है कि लोकोक्तियों में ज्ञान, नीति और मनोरंजन की त्रिवेणी बहती है, वे मानव-मनोविज्ञान के घनीभूत रत्न हैं।

वास्तव में लोकोक्तियाँ या कहावतें, शताब्दियों के अनुभव द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण के बाद बने स्थिर सिद्धान्त हैं। इनमें बहुत अमूल्य ज्ञान रहता है जो बहुत गहराई तक मनुष्य की चेतना में मिल जाता है। इस ज्ञान को व्यक्त करने का माध्यम ये लोकोक्तियाँ ही होती हैं।

लोकोक्तियाँ किसी एक ही व्यक्ति की उक्ति नहीं होती, यह तो मिश्र-मिश्र अवसर पर कही गई लोगों की अनुभवजन्य उक्तियाँ हैं। लोकोक्तियाँ जनजीवन के बहुत निकट हैं और उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं। इनमें साधारण घरेलू जीवन की वस्तुओं के माध्यम से उनके सादृश्य एवं तुलना आदि के द्वारा कितनी ही सूक्ष्म अनुभूतियों को अंकित किया गया है।

लोकोक्तियों में स्वभावतः समान-प्रवृत्ति प्रधान है। इनके रचयिताओं ने गागर में सागर भरने का अथक प्रयास किया है। यह यद्यपि देखने में छोटी होती है, पर उनमें विशाल भावराशि सिमटी रहती है।

लोकोक्तियाँ गद्य और पद्य दोनों ही में उपलब्ध हैं। इनकी भाषा बहुत सरल होती है। इनकी सरलता की सबलता ही मानव हृदय पर अमिट प्रभाव डालती है।

१. पृथ्वी पुत्र वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १११

२ राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन कन्हैयालाल सहल, पृ० ३६

खड़ीबोली की लोकोक्तियाँ—अभी तक हमने लोकोक्तियों का सामान्य परिचय पाया तथा उनकी सामान्य प्रकृति को पहचाना। अब हम अपने प्रदेश की लोकोक्तियों पर दृष्टिपात करेंगे। ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि अन्य प्रादेशिक बोलियों के समान ही खड़ीबोली में भी अपने प्रदेश की प्रायः समान भाव वाली होने पर भी, कुछ भिन्न, स्थानीय लोकोक्तियाँ मिलती हैं। इनमें देश, काल व बोलीगत अंतर अवश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परन्तु जिस प्रकार एक ही प्रकार के कपड़े की साड़ियों को भिन्न-भिन्न रंग में रँगने से भी उनके मूल कपड़े में कोई अन्तर नहीं आता, उसी प्रकार उनमें अन्तर्निहित अर्थ व भाव प्रायः समान ही रहते हैं। भौगोलिक प्रभावों के कारण कुछ चारित्रिक व स्थानीय विशेषताएँ मिलती हैं, उनका उल्लेख भिन्न-भिन्न प्रदेश की लोकोक्तियों में अपनी विशिष्ट बोली में मिलता है। हर प्रान्त का अपनापन इनमें दृष्टिगत होता है।

खड़ीबोली लोकोक्तियों के संग्रह में कुछ विशेष ओर भिन्न अनुभव हुए कि वे एक स्थान व एक ही व्यक्ति से उपलब्ध नहीं की जा सकती। उनका अवसर-विशेष होता है, वह किसी व्यवहार या घटना को देव कर याद आ जाती है जो उसी से संबंधित होनी आवश्यक है। कहावत का स्वतंत्र महत्व नहीं होता, उसका जन्म घटनाबद्ध होता है और उसका प्रयोग भी घटना के अनुसार ही किया जाता है। इसी कारण संग्रह में कठिनाइयाँ भी हुईं। गीतों के समान इनका कोई भी समय, अवसर-विशेष निश्चित नहीं होता और स्त्रियाँ या पुरुष बिना किसी प्रसंग या घटना के केवल पूछने से ही, लोकोक्तियाँ बताने में असमर्थ हो जाते हैं। कहावतों का संग्रह करने के लिये मनुष्य को हर समय सतर्क रहने की आवश्यकता है। मैं अपनी दादी या नानी से बातें करते समय प्रायः नोटबुक साथ रखती थी और उनकी कही हुई बात तुरन्त उनसे दोहराने को कहती और लिख लेती। वह प्रायः मेरी इस क्रिया पर हँसती थी कि इसके सामने तो बोलना भी कठिन है, यह हर बात लिख लेती है, इसे भी क्या किताब में देगी? इस प्रकार कानों को सतर्क करने पर ही मैं बहुत कठिनाई से ये कहावतें संग्रह कर सकी। मेरा स्त्री-समाज से ही अधिक सम्पर्क रहा, अतः मेरे संग्रह में उन्हीं के साहित्य की अधिकता रही। परन्तु पुरुष-समाज में प्रचलित कहावतों का भी नितान्त अभाव नहीं। कृषि-संबंधी कहावतें भी कम ही संग्रह कर सकी। पहले लोकोक्तियों का संग्रह केवल संग्रह के लिये ही किया, बाद में उसी के आधार पर वर्गीकरण करने की चेष्टा की है। वर्गीकरण की अपनी ही कठिनाइयाँ हैं पर फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए यह नितान्त आवश्यक भी है।

लोकोक्तियों से जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहता है। इनके विषय

बहु-पक्षीय होते हैं। एक ही पक्ष की व्याख्या कर ये मौन नहीं हो सकती। इनमें प्रदेश-विशेष के लोगो के आचार-विचार, रहन-सहन, स्वास्थ्य, घरेलू-चिकित्सा धार्मिक विचारो व अन्य विश्वासो के सबध में पर्याप्त तथ्य मिल जाते हैं। कुछ स्थानीय व ऐतिहासिक बातों का भी उल्लेख मिलता है, जिसका अपना स्वतंत्र स्थान होता है। कहावतों का क्षेत्र बहुत व्यापक है और उनमें मानव-जीवन का एक विशिष्ट रूप देखने को मिलता है। इनके द्वारा हम मानव-हृदय को भली प्रकार देख सकते हैं। यह विचारों के कोण हैं। इनमें वर्ण्य-विषय की दृष्टि से हर विषय मिल जाता है। धर्म व जीवन-दर्शन से सबध रखनेवाली, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली, शकुन सबधी, जातिगत चेतना से सबधित, भाग्य सबधी, कृषि-विषयक, वर्षा सबधी, पेड़-पौधों के सबध में, खेल तथा आशीर्वाद आदि की कहावतें भी मिलती हैं।

वास्तव में लोकोक्तियाँ बहुत अधिक निष्कर्षों का परिणाम होती हैं। इनमें जीवन की व्यावहारिक धर्म-सबधी सभी बातों का बुद्धिमानी से उल्लेख मिलता है। इनके द्वारा मानव जीवन की हर मूल का परिष्कार समझ है। जन-साधारण की आत्मा की ध्वनि आप इनमें सरलता से सुन सकते हैं तथा उनके अन्तर्निहित रहस्यों का भी पता लग सकता है। लोकोक्तियों में पापों के लिए चेतावनी मिलती है तो साथ ही अन्य व्यावहारिक लोगो के लिये, भाग्योदय के लिये प्रलोभन भी मिलते हैं। नैतिक आस्था के प्रमाण तो पग-पग पर स्वयं ही मुखरित होते रहते हैं, जो बौद्धिक और नैतिक विरासत के रूप में लोक-मानव को सहज प्राप्य है। इनमें ज्ञान की विशाल निधि रहती है। सामाजिक जीवन के विविध-पक्षों का प्रतिबिम्ब मिलता है एवं प्रचलित अधविश्वासों से परिचय होता है। नारी का समाज में क्या स्थान है, उसके प्रति लोगो की क्या धारणाएँ हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण अगर चाहें तो किसी भी समाज की लोकोक्तियों के अध्ययन से मिल सकता है। इनके अन्तर्गत मानवीय जीवन का तथा व्यवहार सबधी सभी विषयों पर, लोक-धारणाओं का पता चलता है। मानव का मानसिक, सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक तथा प्राकृतिक कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं रहा है। जीवन का हर दृष्टि से सूक्ष्म और गहन अध्ययन मिलता है। लोकोक्तियाँ मानव-जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण, विश्वास, त्रुटियों और अनुभवजन्य धारणाओं का परिणाम हैं, इसी से उनमें सत्य का अश्व अवश्य उपलब्ध होता है।

वर्गीकरण—लोकोक्तियों का उचित वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाय, यह वास्तव में एक जटिल प्रश्न है, क्योंकि कहावतों के कहने व समझने में भी मानवीय दृष्टिकोणों की भिन्नता, भेद उत्पन्न कर देती है। फिर कहावतों के

विषय विविध होते हैं। सर्वप्रथम हम कुछ विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण का उल्लेख करेंगे।

डॉ० महादेव साहा के द्वारा किया गया वैज्ञानिक वर्गीकरण उल्लेखनीय है^१ जो इस प्रकार है—

- | | |
|-------------------------------|-----------------------------------|
| (१) विदेशी प्रभावों का अध्ययन | (२) भाषा-शास्त्र सबधी लोकोक्तियाँ |
| (३) नृ-विज्ञान सबधी | (४) राजनीति-कानून सबधी |
| (५) भौतिक विषय सबधी | (६) ऐतिहासिक |
| (७) इन्द्रिय विषयक | (८) व्यंग्यपूर्ण |

यह वर्गीकरण यद्यपि अन्य विषयगत वर्गीकरणों की अपेक्षा अधिक व्यापक है, लेकिन मैंने इसको आधार नहीं माना, कारण मेरे पास इस वर्गीकरण के अनुसार अपर्याप्त सामग्री है और न ही मेरा इतना व्यापक अध्ययन ही है।

‘Behar Proverbs’ के सम्पादक ने कहावतों को निम्नलिखित छ. वर्गों में विभक्त किया है^२—

- | | |
|---|------------------------|
| (१) मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों का सबध | |
| (२) सासारिक ज्ञान-विषयक | (३) सामाजिक और नैतिक |
| (४) जातियों और विशेषताओं से सम्बद्ध | (५) कृषि और ऋतुओं सबधी |
| (६) पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सबधित | |

रूप और वर्ण-विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक छन्द, अलंकार, लौकिक अध्याहार, सवाद, सख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्वों पर विचार किया है, जिन्होंने राजस्थानी कहावतों को किसी न किसी अंश से प्रभावित किया है।

- | | |
|--|------------------------|
| (१) ऐतिहासिक कहावतें | (२) स्थान सबधी कहावतें |
| (३) राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र— | |
| क—जाति-सबधी कहावतें | ख—नारी-सबधी कहावतें |
| (४) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य— | |
| क—शिक्षा सबधी कहावतें | ख—मनोवैज्ञानिक कहावतें |
| ग—राजस्थानी साहित्य में कहावतें | |
| (५) धर्म और जीवन दर्शन— | |

१. Oriental Proverbs डॉ० महादेव साहा, अनुवादक-उदयनारायण तिवारी

२. राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन—कन्हैयालाल सहल, पृ० ५८

- क—धर्म और ईश्वर-विषयक कहावतें ख—शकुन-सबधी कहावतें
ग—लोक-विश्वास सबधी कहावतें घ—जीवन-दर्शन सबधी कहावतें
(६) कृषि-सबधी कहावतें—(७) वर्षा-सबधी कहावतें—
(८) प्रकीर्ण कहावतें^१

खडीबोली लोकोक्तियों का वर्गीकरण—यद्यपि वर्गीकरण के लिये मैंने लोकोक्तियों सबधी अनेक विद्वानों की पुस्तकों का अध्ययन किया, पर किसी का भी वर्गीकरण पूर्णरूपेण ग्राह्य नहीं हो सका। अतः वर्गीकरण अपने समग्रह के आधार पर ही किया है। डॉ० सहल का वर्गीकरण बहुत समीचीन है। मैं इसका आधार अवश्य ले रही हूँ लेकिन अपने ऐतिहासिक कहावतों को एक भिन्न श्रेणी में रखा है। आपके पास, इससे सम्बद्ध सामग्री थी जैसा कि अपनी पुस्तक में उद्धरण दिये हैं, पर खडीबोली लोकोक्तियों में यह मुझे बहुत कम उपलब्ध हो सकी है, अतः इनको भिन्न नहीं रखा। मैंने सामाजिक व ऐतिहासिक, एक ही में सम्मिलित कर लिया है, जिसमें सामाजिक सामग्री पर्याप्त है पर ऐतिहासिक कम है। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित करने की चेष्टा की है इसमें त्रुटियाँ हैं पर अपने सकलन के अनुसार ही यह किया है—

(१) सामाजिक कहावतें

क—जाति-सबधी ख—नारी-सबधी

ग—ऐतिहासिक घ—सामाजिक व्यवहार-ज्ञान सबधी

(२) भाग्य-सबधी कहावतें (३) खान-पान तथा स्वास्थ्य सबधी

(४) लोक-विश्वास (५) मनोवैज्ञानिक

(६) कथा सबधी (७) भाषाविज्ञान सबधी

(८) प्रकीर्ण

अब हम हर वर्ग के विस्तार में जायेंगे।

सामाजिक कहावतें—समाज जिस तथ्य को स्वीकार करता है वही कहावत के रूप में प्रचलित हो पाता है। इसलिये किसी भी प्रदेश के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करने के लिये उस प्रदेश की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमें अभीष्ट है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि के सबब में उस समाज के क्या विचार हैं, सामाजिक सस्थाएँ वहाँ किस रूप में विकसित हैं, मनुष्यों के जीवनादर्श किन सिद्धान्तों पर अवलंबित हैं, कौन से व्यवसायों को वह समाज में आदर की दृष्टि से देखता है और किन्हे वह हेय समझता है, इन सब

१. राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन—कन्हैयालाल सहल, पृ० ५८-५९

की जानकारी जितनी कहावतो के द्वारा हमें प्राप्त हो सकती है उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं। सामाजिक कहावतो का वर्ग सबसे व्यापक है। इसमें जाति-सबधी, नारी-सबधी, ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा सामाजिक-व्यवहार ज्ञान सबधी कहावते आती हैं।

जाति-सबधी कहावतें—हर जाति की अपनी चरित्रगत विशेषता होती है जिनका उल्लेख कहावतो में प्रशंसा, व्यंग्य आदि के रूप में समय-समय पर किया जाता है। इनसे विभिन्न जातियों की मनोवृत्तियों का पता चलता है, जो इस प्रकार है—

जाट—खड़ीबोली प्रदेश की बहुत ही वीर, उत्पाती तथा शक्तिशाली जाति है। यह बहुत साहसी और पराक्रमी होते हैं। इनके सबधमें कहावते प्रसिद्ध हैं—
'जाट मर्या तब जाणिये जब बरसोड़दी हो लेय'—यह कहावत भी उनके पौरुष का प्रमाण है। इसी प्रकार जाट-खोपड़ी भी अपनी विचित्रता के लिए प्रसिद्ध है। जाट की 'तुरत-बुद्धि' भी प्रशंसनीय होती है—

अणपठ जाट पढ्या बरोब्बर,

पढ्या जाट-खुदा बरोब्बर।

जाट कार्य-कुशलता के लिये युक्तियाँ काम में लाने में प्रसिद्ध है। इसी से इससे सबधित मुहावरा 'जटविद्या' भी प्रसिद्ध है। यह कृषि सबधी कामों में भी बहुत अधिक चतुर होते हैं तथा अशिक्षित व परिश्रमशील होते हैं।

जो आदमी जिस तरह का व्यापार करता है, जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसका ध्यान उसी ओर जाता है। जाट ने गंगा-स्नान किया तो पूछ बैठा—
इसको खुदवाया किसने ? 'जाट गंगाजी न्हायो—कह खुदाई कुण है' ? गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया। जाट दूध बेचने को पुत्र बेचने के बराबर समझता है।

गूजर—खड़ीबोली प्रदेश की प्रसिद्ध जाति जो जाट ही के समान प्रसिद्ध, कृषक तथा परिश्रमी जाति है और बलवान भी होती है। इस प्रदेश में इनकी प्रधानता रही है। यह वाह्य रूप से झगडालू व अक्खड प्रकृति के प्रतीत होते हैं जिसके कारण सभी अन्य जातियाँ इनका लोहा मानती हैं पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह कठोर व निर्दयी होते हैं। इनका चरित्र सिंह के समान होता है, जो अकारण ही नहीं उलझता पर अवसर पड़ने पर पीछे भी नहीं रहता। जाट, गूजर जातियाँ सहोदरा हैं और उनका प्रयोग भी समानता के रूप में होता है जिस प्रकार ब्राह्मण-बनिए का। यद्यपि इनमें अंतर होता है पर फिर भी समानता होती है। कहावत प्रसिद्ध है—

अहीर, गूजर, कजर, बिल्ली, बंदर, कुत्ते,
ये छऊ ना होते तो बिना खिड़कियाँ सोते ।

ब्राह्मण—ब्राह्मणो मे कुछ विशिष्टता भी है तथा अनेक उपजातियाँ है जैसे तगे ब्राह्मण आदि जो पूर्वीय जिलो मे नही मिलते । ब्राह्मण स्वभाव ही से अहवादी होते हैं, उनकी अपनी स्वभावगत व चरित्रगत विशेषता होती है । वे अपने को बहुत चरित्रवान्, विद्वान् तथा पवित्र समझते हैं । समाज मे अपना एक विशिष्ट सम्मान व स्थान आज के युग मे भी बनाये रखना चाहते है । यह ईर्ष्यालु तथा स्वार्थी प्रवृत्ति के होते हैं जिसका अभ्यास उनके सामाजिक आचार-विचारो से मिलता है । ये अपनी निश्चित सीमाएँ निर्धारित रखते हैं और प्राय अपनी ही जाति के विरोधी प्रमाणित होते है । ये कहावते इस सत्य को पुष्ट करती हैं —

‘बाम्भन कुत्ता हाथी, ये न जात के साथी’

तथा—

‘तीन कनौजिये तेरह चूल्हे’

यह उनके आपसी मतभेद को ही प्रकट करता है । ब्राह्मणो का मिष्ठान्न खाने के प्रति विशेष मोह होता है जिसके लिए वह ‘पेटू’ कुप्रसिद्ध है —

आये कनागत फूले काँस

बाम्भन उछले नौ नौ बाँस

गये कनागत टूटी आस,

बाम्भन रोवै चूल्हे पास ।

ब्राह्मणो मे मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्ठान्नप्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है ।

बनिया—बनिया व्यापारी जाति है और व्यापार-जगत् तथा समाज में विगिण्ट स्थान रखती है । यह जीवन मे धन ही को विशेष महत्व देते हैं । इसी का उपाजन करने मे तथा एकत्र करने मे जीवन का ध्येय समझते हैं । व्यापार के समय वह मित्रो तथा सबधियो का भी लिहाज नही करते । उन्हे भी आडे हाथ ही लेते है । वह सभी को एक ही तराजू पर तोलते है । कहावत है—

‘जाण मारें बाणिया, पहचान मारे चोर’

यह स्वभाव से ही सग्रहशील होते हैं, इसी से इनको ‘कजूस, मक्खीचूस’ विशेषण से विमूषित किया गया है । बनियो मे भी बहुद-सी उपजातियाँ होती हैं परन्तु सबसे उच्च अग्रवाल बनियो ही समझे जाते हैं और उनमे भी गर्भ गोत्र

वाले। इसकी पुष्टि लोकोक्तियों में भी मिलती है—‘गर्ग गोयले, बाकी सब कोयले’।

बनिये स्वभाव से ही स्वार्थी होते हैं तथा घनलोलुप। उनके अधिकतर सबध इसी नाते होते हैं तथा उनके सोचने का मापदण्ड भी यही होता है—

‘बनिये का बेटा कुछ सोच कर ही गिरेगा’

बनियों की लिखाई बहुत घसीट और अस्पष्ट होती है। उसके सबध में एक राजस्थानी कहावत है—‘लिखे, बणिया पढ़े करतार’—अर्थात् बनिया जिस घसीट लिपि में लिखता है उसे भगवान् ही पढ़ सकता है।

कायस्थ—कायस्थ वाक्चातुर्य, व्यावहारिक ज्ञान के लिये तथा चालाकी, लम्पटता के लिये प्रसिद्ध हैं तथा इनमें जातिगत पक्षपात बहुत होता है। यह अपेक्षाकृत स्वार्थी भी अधिक प्रसिद्ध हैं—

‘कायस्त कौवा कूबरा, ये तीनों मिल खायें।’

कायस्थ विश्वासपात्र जाति नहीं है और यह स्वार्थ ही के साथी होते हैं—

**कायस्त मीत ना कीजिए, सुन कथा नादान,
राजी हो तो धन हरे, बैरी हो तो प्रान।**

कायस्थ बुद्धिमान होते हैं, विशेषकर उनमें व्यावहारिक-बुद्धि बहुत मिलती है। इन पर लक्ष्मी जी से अधिक सरस्वती जी की कृपा रहती है। पर वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और तत्काल बुद्धि के लिये प्रसिद्ध हैं। ‘कायस्थ खोपड़ी’ मुहावरा भी इसी से प्रसिद्ध हो गया है जो इसी बात की पुष्टि करता है। इनकी सूझ दूर की होती है।

नाई—नाई जाति अपनी चालाकी के लिए प्रसिद्ध है—

‘जानवरो में कौवा, आदमियों में नौवा’

नारी-सबधी—लोकोक्तियों के अध्ययन से हमें स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वहाँ के समाज में नारी का क्या स्थान है? यही वहाँ की सभ्यता व संस्कृति का द्योतक है। स्त्री-समाज में अभी भी पुस्तकीय ज्ञान का अभाव है और उनका आदर घरेलू काम में निपुण होने पर ही होता है। स्त्री का सबसे बड़ा सौभाग्य उसका पुत्रवती होना है। मातृत्व पद का बहुत विशिष्ट महत्व है और उस स्थिति में पहुँच कर उसके साधारण दोष भी उपेक्षित हो जाते हैं—

‘दूध की गइया और पूत की मइया की लात भी सही जात है’

॥,

‘दूध की गइया और पूत की मइया सब को प्यारी लगे’

पुत्रवती नारी को तो सौभाग्यवती कहा ही जाता है, ज्येष्ठी कन्या को जन्म देने वाली नारी को भी अच्छा माना जाता है—

‘बो ही नार सुलच्छना,
जिसने जाई पहले लच्छमी’

अपनी माँ की महत्ता बहुत अधिक है। उसके स्नेह की तुलना किसी से नहीं की जा सकती है और इसी से उसकी ताड़ना भी शुभचिन्तक होने के नाते सराहनीय ही होती है जब कि अन्य किसी को भी असहनीय हो उठती है—

‘अपनी माँ मारनी फिर भी दुध्या धारणी’

अथवा,

‘अपनी माँ मार कर भी छामें डालेगी’

ससार में माँ का ही एक ऐसा सबब है जो सर्वस्व अर्पण कर सकता है, इसकी पुष्टि लोकोक्तियों में स्थान-स्थान पर मिल जाती है—

‘माँ पिस्तनहारी भी पाल लेगी, बाप लखपती भी नहीं पाल सकता’

‘भादो के बरसे और माता के परसें दुनिया अघावै’

अन्य सासारिक सम्बन्धों के विषय में जो उल्लेख मिलता है, उनमें सर्वोपरि माँ का ही सम्बन्ध है—

‘आस का बाप, निरास की माँ
होते की बहन, अनहोते का मित्र’

तथा,

‘माँ टोट्टे की, बाप नऊँ का
बहन हुए की, यार बखत का’

माँ और बेटे का साहचर्य चौबीसो घंटों का होने के कारण बहुत निकटता व अभिन्नता होती है। माँ को निरन्तर बेटे से अपने सभी कार्यों में सहायता मिलती रहती है परन्तु बेटे पराया घन होती है, विवाह के पश्चात् वह अपने घर चली जाती है और माँ को वृद्धावस्था में स्वयं ही सब गृहस्थी का भार उठाना पड़ता है। इसी से कहावत भी है—

‘घी की माँ राणी, बुढ़चान्त भरेगी पानी’

स्त्री त्यागमयी होती है, वह निस्वार्थ निश्छल स्नेह करती है। इसी कारण कठिन समय में वही काम आती है। स्त्री का सबसे बड़ा सौभाग्य है अपने पति की प्रिया होना—इसके लिए लोक-समाज में पहचान भी है—

‘जिसको पिया चाहें वही सुहागन’

तथा,

‘सास प्यारी की मेहदी,
पिया प्यारी का पान’

अथवा,

‘जो साजन की प्यारी बही सुहागन’

यह नारी के उज्ज्वल पक्ष के सबध में सकेत था, अब उसके कृष्ण पक्ष के सबध में वर्णन करेंगे। नारी, सास और सपत्नी के रूप में पुरुष हो जाती है तथा कुप्रसिद्ध है। सपत्नी के सबध में कहते हैं—

‘काँटा बुरा करील का और बदली का घाम
सौत बुरी है चून की और साझे का काम।’

‘सास’ का स्वभाव बहुओं के कार्य में हस्तक्षेप करने का होता है, इसी से वह शगडालू व बदनाम होती हैं। वृद्धावस्था में वह बेटे पर आश्रित होती है जब कि ससुर प्रायः पोषण करने वाला होता है तथा घरेलू बातों से प्रायः उदासीन रहता है। इसी से सास व ससुर के सबध में बनी हुई धारणाएँ इस प्रकार हैं—

‘रडवा ससुर सब को भावें
राँड सास किसी को ना भावें’

तथा,

‘सास मरी, बहू को ठौर’

सास अपनी जीवित अवस्था में बहू को घर में अधिकार नहीं देती। इसी कारण उनका सघर्ष होता है और शनै-शनै उसमें सास से पृथक् रहने की भावना जन्म ले लेती है।

‘धी रुस्सँ सौरे जाने को,
बहू रुस्सँ न्यारी होने को’

शक्तिशाली पति की पत्नी सब के लिए पूज्य होती है। शक्तिहीन तथा कमजोर की पत्नी को दूसरे लोगों का हर प्रकार का व्यवहार सहन करना पड़ता है जिसका आभास निम्नलिखित उक्ति में मिलता है। कहा जाता है कि स्त्री को अनुशासन में ही रखना ठीक है, नहीं तो पुरुष-समाज उसको विपथगामी बनाता है। इसी कप्रवृत्तियों के कारण उनको सुरक्षित रखा जाता है—

‘ठाड्डे की जोरु सब की दाही
अर माड़े की जोरु सब की भाभी’

इसी प्रकार अन्य निकट सबधो के ऊपर भी अनेको लोकोक्तियाँ उपलब्ध हैं जिनमे कुछ इस प्रकार हैं—

‘बहन के घर भाई कुत्ता
ससुर घर जमाई कुत्ता
सब कुत्तो का सरदार
जो बाप रहे धी के बार’

तथा,

‘सीखें री सीख पडोस्सिन की,
घर मे सीख जिठाणी की’
‘दूर जमइया फूल बराबर, शहर जमइया आधा
घर जमइया गधा बराबर, मन आया जब लादा’

ऐतिहासिक कहावतें—कुछ कहावते ऐतिहासिक तथ्यो से पूर्ण मिलती हैं, जिनके द्वारा इतिहास पर या क्षेत्रीय बात पर ध्यान जाता है। कहावतो तथा कहानियो मे राजा भोज का उल्लेख मिलता है—

‘कहाँ राजा भोज, कहाँ गलू तेली’

तथा,

‘राजा भोज भरम के भूले
घर घर बार मटियाले चूल्हे’

सामाजिक व्यवहार-ज्ञान सबधो कहावतें—सामाजिक कहानियो के अन्तर्गत ही सामाजिक व्यवहार-ज्ञान सबधो अनेक कहावतें मिलती हैं जिनमे इस प्रदेश-विशेष के अन्तर का आभास होता है तथा यहाँ की संस्कृति का आभास मिलता है। परम्परागत विचारो व विश्वासो के अनुसार जो व्यवहार हम करते हैं वही रीति-रिवाज है। नीति-शास्त्र भी स्व-निर्मित पाप-पुण्य का मापदंड है। क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए, इस सबध मे भी अनेको लोकोक्तियाँ मिलती हैं। नीति-सबधो लोकोक्तियो का पय-प्रदर्शन के लिये बहुत महत्व है। इनके द्वारा उचित-अनुचित का भान होता है। लोकसमाज मे जनता के आचार-विचार इनके द्वारा अनुशासित मिलते हैं। इनके द्वारा ही इस प्रदेश की विशेषता का आभास मिलता है। खड़ीबोली प्रदेश के निवासियो का यह स्वनिर्मित नीति-शास्त्र है, जिससे उनका समय-समय पर पय-प्रदर्शन होता है। जिनमे से कुछ का उल्लेख हम यहाँ पर कर रहे हैं—

‘बड़े का कहा और आँवले का खाया पीछे से भीठा लगता है’

‘दूरो फूल सुहावने, धोरे आये कुम्हलाये’

'थोडा खाया अंग लगाया, बौहता खाया अंग बधाया'
 'त्यो-नारी का काम ना करें, अर फूहड के लौंडे को न खिलायें'
 'काम प्यारा है चाम नही'
 'सीखे री सीख पडोसिन की, घर मे सीख जिठाणी की'
 'गुरु कीजं जान, पानी पीजं छान'
 'ना अधे को नौत्ते, अर ना दो जनै आवै'
 'मुहब्बत दूर की, खटाई अमचूर की'
 'घरा ढका तो भूल जा, लिखा ना भूला जा'
 'एक दिन पाहुना, दूसरे दिन अनभावना'
 'टूटे को जोडना और रुठे को मनाना आसान नहीं'
 'थोड़े मारा रोवं और ज्यादा मारा सोवै'
 'सुख दुख सब मे घूप-छाव की तरह आवै है'
 'घरम की कमाई की मिस्सी कुस्ती भी पूरी पकवान से बढ़ कर है'
 'घरम की जड़ सदा हरी'
 'नाम बिगोवा बच्चा भगवान दुसमन को भी ना दे'
 'राँड से परे, कोसना क्या'
 'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध'
 'मारे और रोवन ना दे'
 'बदा जोडे पल्ली-पल्ली, और मेहमान उडावें कुप्पी'
 'जाट की बेट्टी, बाब्बा जी नाम'
 'खात्ते पीत्ते नियत बुरी'
 'जो पहले बोल्ले सो कुंडा खोल्ले'
 'बेटी की माँ का, पेट और घर दोघो खाली'
 'हाक्कम के अगाडी और घोडी के पिछाडी कभी न रहे'
 'देज्जू की जोडी, और साहब की घोड़ी आगगे आगगे ही कुद्दे'
 'बटेऊ का आस्सन देवता बराबर'
 'व्याह जोडी सजोग की, बिहानी घडी बलवान'
 'बैर और प्रीति बराबर वालो मे ही होवे है'
 'भगवान ने मुंह एक दिया है कान दो'
 'मौत न घड़ी भर पहले आती है न पीछे'
 'राजा, जोगी, अग्नि, इनकी औधी रीत
 डरते रहिये परस राम, थोडी पाले प्रीत'

'लाचारी पत्थर से भी भारी'
 'हाट बाट मे एक से दो भले'
 'मन मिले का मेला, नहिं सबसे भला अकेला'
 'जोरु जोर की, नहीं तो और की'
 'साज्जा, गू का खाज्जा'
 'कमाऊ आवैं डरता, निखट्टू आवैं लडता'
 'सोना पहरे ढक के चलिये, पूत जनेगी नीके चलिये'
 'राजा भोज भरम के भूले, घर घर बार मटियाल्ले चूल्हे'
 'दूध की गइया और पूत की मइया सबको प्यारी लगे'
 'दुधारी गाय की दो लात भी सही जाती है'
 'सूत जैसी फेट्टी, माय जैसी बेट्टी'
 'अपनी अक्कल और दूसरे का घन सब को दुगना दिखाई दे'
 'एक इलाज सौ परहेज'
 'एक अनार सौ बीमार'
 'जबान शीरी और आलमगीरी'
 'गरम खावैं आप कू, नरम खावैं जग कू'
 'साठा पाठा'
 'नावा गंठ का और विद्या कठ की'
 'बड़ी मिरच, बड़ी मिरच, छोटी मिरच सुभानअल्लाह'
 'खावैं मन भावता और पहरे जग भावता'
 'चुपडी अर दो हों'
 'खावैं घी से नहीं जावैं जी से'
 'पूत की जात को सौ जोक्खो'
 'मुसीबत कह कं नी आती'
 'मुसीबत अकेल्ली नी आत्ती'
 'आग्ये खत्ती पिच्छे कुआ'
 'भगवान जब देवैं छप्पर फाड के देवैं'
 'गेहूँ की रोटियो को फौलाद का पेट चाहिये'
 'जाड्डा रुई से या दुई से'
 'काना खोत्ता कायर'
 'इनसे बात जब करे, जब हो हाथ मे ईंट'
 'बैहता पानी उडता पंछी इनकी क्या परतीत'

'भूख न देखे तवा परात
 नीद न जाने टूटी खाट
 इश्क न देखे जात कुजात'
 'घर का भेदी लका ढावै'
 'गरब तो राजा रावन का भी ना रहा'
 'छाज बोले तो बोले, छलनी बी बोल्ले जिसमे बहत्तर छेद'
 'डंडा सी पूछ बुढाने का रस्ता'
 'मीरा पुरी बगल मे छुरी'
 'मा पर धी, पिता पै घोड़ा
 बहुत नहीं तो थोडा थोडा'
 'कहीं का ईंट, कहीं का रोडा
 भानुमती ने कुनबा जोडा'

भाग्य सबधी कहावतें—लोकसमाज के जन-जीवन मे प्राय यह देखा जाता है कि यद्यपि उनमे आत्मविश्वास और परिश्रम आदि पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है पर फिर भी वह अहवादी नही होते तथा बहुत आस्तिक होते है । वह भाग्यवादी और कर्तव्यपरायण होते हैं । आस्थावान् तथा धार्मिक होते है और वास्तविक रूप मे व्यावहारिक तथा गीता-ज्ञान के अनुयायी होते है । उनके भाग्यवादी दृष्टिकोणो तथा आस्तिक आस्थाओ का पता हमे लोकोक्तियो मे स्थान-स्थान पर मिलता है । यही भाग्यवादी दृष्टिकोण उनके अभावपूर्ण जीवन को सरस बनाता है तथा विषम परिस्थितियो के प्रति सहिष्णु व सतोषी बनाता है । जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्म-सिद्धान्त की जड भारत मे बहुत दृढ है । उसी के फलस्वरूप अपनी स्थिति से सतोष कर लेना हमारी प्रवृत्ति बन गई है । 'हरि इच्छा बलवान है' कह कर भली बुरी सभी बातो को स्वीकार कर लेना हमारा स्वभाव हो गया है । ऐसा कहा जाता है कि—

'बिध गया सो मोत्ती, रह गया सो पत्थर'
 'अनहोनी होती नहीं, होनी होय सो होय'
 'जन्म घड़ी और मरण घड़ी टाले नहीं टलती'
 'करमहीन खेती करै, बैल मरे या सूखा परै'
 'चुपड़ी अर दो दो'
 'काणी के व्याह को सौ जोक्खों'
 'रूप की रोवें भाग की खावें'
 'अपनी-अपनी करनी सब भोगें'

‘माँ ने जाये सात पूत, कोई हाली कोई बालघी
 अर कोई करै बिगानी आस ।’
 ‘राजा की बेटी करम की हेठी’
 ‘दे दो बाबल भाड मे
 अर खावेगी अपने कपाल में’
 ‘कदी घी घणा, कदी मुट्ठी भर चणा
 अर कदी वो भी मना’
 ‘होणी अच्छे अच्छे को नाच नचा देव है’
 ‘माँ ने जाये सात पूत, करम ने दीनै बाँट’
 ‘क्वारी के भाग से व्याही मरे’
 ‘जिसकी यहाँ पूछ उसकी वहाँ पूछ’
 ‘सुख दुख सब पे धूप छाव की तरह आवें हैं’
 ‘कभी तो भैंस पसर को चली, अर तिलसड्डों मे जा अडी’
 ‘भगवान अपने गधो को भी हलवा खिलाता है’

खान-पान तथा स्वास्थ्य सबधी लोकोक्तियाँ—‘उस प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तके न थी किन्तु कहावतो मे स्वास्थ्य-विज्ञान के निर्देश मिल जाते थे। उस समय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की कोई शास्त्रीय व्याख्या उपलब्ध न थी किन्तु आर्थिक जीवन से सबध रखने वाले व्यावहारिक सकेत कहावतो के रूप मे अवश्य सुलभ थे। दर्शनशास्त्र और धर्मग्रन्थ, उस समय न थे किन्तु कहावतो के रूप मे जो लोक-विश्वास प्रचलित हुए होंगे वे ही उनके लिये दर्शनशास्त्र और धर्मग्रन्थो का माप देते होंगे। शास्त्र और दर्शन-ग्रन्थो के प्रति जिस प्रकार आदर भावना देखी जाती है उसी प्रकार कहावतो के प्रति भी सामान्य जनता मे बडा आदर पाया जाता है।’^१ इनका लोक-जीवन मे बहुत महत्व है। इनके अनुसार चलने से स्वास्थ्य तथा सुखी रहने मे सहायता मिल सकती है तथा काम उठाया जा सकता है—

‘नीबू का अचार जितना पुराना हो उतना ही अच्छा होवै है’
 ‘थोड़ा खाया अग लगाया, बौहता खाया कूडा बघाया’
 ‘आँत भारी तो माथ भारी’

‘भादवें का मट्ठा कुत्तो कू, अर कात्तक का पुत्तो को’ या
 ‘जाड्डे खरसाव मे पुत्तो कू, अर भादवे मे कुत्तो को’
 ‘किसी को बेंगन बायले, किसी को बेंगन पच्चे’
 ‘सावन करेला, भादो दही, मौत नहीं तो जहमत सही’
 ‘जाड्डा पूस न माह, जाड्डा लागा व्याल का’
 ‘खिचडी तेरे चार यार दही, पापड, चटनी, अचार’

लोक-विश्वास सबधी लोकोक्तियाँ—जनजीवन लोक-विश्वासो से ओत-प्रोत है। आधुनिक शिक्षित लोग बिना अनुभव की कसौटी पर कसे ‘अधविश्वास’ कह कर इनकी उपेक्षा करते हैं पर ये बहुत महत्वपूर्ण हैं। उन्हीं के आधार पर शकुन या ‘अपशकुन’ की गणना की जाती है।

आधुनिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि अपशकुन पर विचार करने वाले व्यक्ति के मन में कोई मानसिक ग्रंथि रहती है। रहस्यमय भविष्य के अज्ञान के कारण आशंका से अपशकुनो की ओर उन्मुख होता है। अनागत घटनाएँ शकुनो के रूप में पूर्वाभास दे जाती हैं।

इनका सबंध कार्य से नहीं, सामाजिक सत्कारों से होता है। जिस जाति में जिस मनुष्य का जन्म हुआ, वह उस जाति के विश्वासों भावनाओं आदि को उत्तराधिकार के रूप में अनायास ही प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जो कुछ बचपन से निरन्तर सुनता आता है उस पर अविश्वास नहीं कर पाता। इसी से ये धारणाएँ मान्य होती हैं।

‘शकुनशास्त्रियों की मान्यता है कि शकुन चाहे भविष्यवाणी के रूप में न हों किन्तु इस प्रकार की चेतावनी के रूप अवश्य हैं जिनसे लाम उठाने पर हम अनागत विपत्तियों से बच सकते हैं।

अत्युच्च बौद्धिक तथा वैज्ञानिक विकास होने पर भी मनुष्य जाति शकुन जाल से अपने आपको मुक्त नहीं कर सकेगी। जब तक सीमा मानव अपनी सीमाओं में बँधा है तब तक भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण विषयक उसका ज्ञान तथा प्रकृति और मन की शक्तियों पर उसका नियंत्रण कभी भी संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अज्ञात और अज्ञेय की भावना उसे सर्वदा दिग्भ्रान्त करती रहेगी। प्रकृति और मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये वह छटपटाता रहेगा। एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेने पर नित्य नये-नये क्षेत्र उसकी कल्पना के सामने आते रहेंगे। यदि अनागत का आवरण हट जाय, विश्व का रहस्य ज्ञात हो जाय तो शकुन-अपशकुन का प्रश्न ही न रहे।”

यद्यपि इन शकुनो का क्षेत्र विस्तृत है। प्रकृति में होने वाली अद्भुत घटनाओं,

सामाजिक जीवन की घटनाओं, विशिष्ट पशु-पक्षियों की क्रियाओं, शरीरजन्य अवस्थाओं, मानसिक परिस्थितियों तथा स्वप्नों के दर्शन से शकुनों के शुभाशुभ मानने की प्रवृत्ति शिक्षित, अर्धशिक्षित एवम् अशिक्षित सभी प्रकार के मानव समाज में पायी जाती है। इनके वर्गीकरण के अन्तर्गत प्राकृतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, मानसिक क्षेत्र, शारीरिक क्षेत्र, स्वप्न-जगत् तथा अवविश्वासों से उत्पन्न शकुनापशकुन है, जिनमें हमने यहाँ पर कुछ के ही उदाहरण दिये हैं। यह विषय स्वयं शोध का है, अतः विस्तार में जाना मेरे लिए समझ न था फिर भी कुछ सामाजिक जीवन से प्राप्त शकुनापशकुन का यहाँ कहावतों में उल्लेख है। उदाहरण के लिए—जाति-सबधी—ब्राह्मण, व्यापारी, योद्धा, शूद्रादि से प्राप्त शकुनापशकुन।

विकलाग मनुष्यों के दर्शन सबधी—काना, कुबड़ा, कोडी आदि से प्राप्त विभिन्न अवस्थाओं से सबधित।

स्त्री पुरुषों में—विधवा, सधवा, कुमारी, युवती, वृद्धा, बालक।

विभिन्न वस्तुओं के दर्शन से—जलपूर्ण अथवा रीता पात्र, ईंधन, शव, अग्नि, किसी वस्तु के टूटने, गिरने आदि से।

शारीरिक अवस्थाओं से प्राप्त—शरीर के किसी अंग-विशेष के स्फुरण से प्राप्त—आख भुजा, छीक।

यात्रा सबधी शकुन—

‘सोम सनीच्चर पूरब काला’

‘पडवा गमन न कीजै जो सोने की होय’

‘मगल करै दगल, बुध बिछोह होय’

‘जुमेरात की खीर खा के, जुम्मे को जाना होय’

नया कपड़ा पहनने के सबध में लोग कहते हैं—

‘कपड़ा पहने तीन बार

बुध, वृहस्पति शुक्रवार, भूले चुके रविवार’

‘जीभ दाँतो के नीचे जाने पर कोई बुराई करता है’

सिर न घोने के सबध में—

‘बुद्धा खोलिये न जुड़डा’

‘तेरस और तीज’ यह दो दिन शुभ माने जाते हैं।

शारीरिक अंग-विचार सबधी अनेक शकुन प्रचलित हैं—

‘काना व्यक्ति देखना अपशकुन है’

‘भूरीआँख’एव छोटे कद व गर्दन वाले व्यक्ति विश्वासघाती समझे जाते हैं ।

इंद्रिय संबंधी लोक-विश्वास—आँख, हाथ या कोई भी अंग फडकना विशिष्ट घटना का सूचक है । छीक यद्यपि एक स्वाभाविक क्रिया है परन्तु इसके सबब में भी अवसर के अनुसार अनेक धारणाएँ हैं ।

कुछ व्यक्ति विशेष शुभ या अशुभ समझे जाते हैं । विधवा अशुभ तथा सुहागिन लडके सहित शुभ मानी जाती है । यात्रा में शव देखना शुभ है । दाहिनी ओर बैल देखना शुभ है । नीलकण्ठ शुभ शकुन वाली चिड़िया है । बिल्ली का रास्ता काटना, उल्लू का बोलना और कुत्ते का रोना निश्चित रूप से अशुभ है ।

शकुन-शास्त्रियों की दृष्टि में सुनार का दाये-बाये किसी ओर भी मिल जाना एक प्रकार का अपशकुन समझा जाता है । यात्रा के समय तेली का मार्ग में मिल जाना अशुभ माना जाता है—

‘एक तेली मारग मिलै महा असगुन होय
सौतेली घर में बसे सगुन कहाँ ते होय’

आटा, काठ, घी का घड़ा, विधवा स्त्री, मेडिया, सुनार, बिना तिलक किये हुए पंडित ये अगर यात्रा के समय मार्ग में मिल जायें तो बहुत अशुभ माना जाता है ।

कौवे का बोलना प्रिय के आगमन की सूचना देता है ।

पैर में खुजली होना तथा जूती पर जूती चढने से दुखद यात्रा करनी पड़ती है । हथेली में खुजलाहट इस बात की द्योतक है कि शीघ्र ही कहीं से रुपया मिलेगा । बार-बार हिचकी आना किसी के स्मरण करने की पहचान है ।

पशु-पक्षियों के द्वारा शकुन निर्धारण—खर, शृगाल, गाय, तीतर, शकुन चिड़िया, तथा नीलकण्ठ आदि पशु-पक्षियों को दाये-बाये देख कर शकुन निर्धारण किया जाता है—

दाहिनी ओर आया हुआ बैल पद-पद पर लाभप्रद होता है ।

सुसज्जित हाथी यदि सामने मिले तो शुभ समझा जाता है ।

यात्रा के समय यदि हिरण आ जाय तो मृत्यु हो जाती है ।

गधे का रेकना, मरा गधा, शव, बच्चे को दूध पिलाती गाय, मरी मशक लिये मिस्ती, भगन, मछली, कन्या, दही यह सब अच्छे शकुन होते हैं ।

मनोवैज्ञानिक बहावर्ते—कुछ कहावतों के द्वारा मानव-मन का भली प्रकार अध्ययन किया जा सकता है । उनमें जीवन की व्यावहारिक सच्चाई की इस प्रकार

अभिव्यक्ति होती है कि उनके द्वारा मानव के अचेतन मन की प्रक्रियाओं का भी आभास मिल जाता है।

वास्तविक वस्तु या व्यक्ति को छोड़ कर किसी के भाव-प्रवाह का दूसरी ओर प्रवर्तित हो जाना मनोविज्ञान की भाषा में स्थानान्तरीकरण (Projection) कहलाता है।

‘कुम्हार का कुम्हारी पर बस न चला तो गधी के कान ऐंठ दिये’

आदत मनुष्य के स्वभाव का अंग बन जाती है जिससे जानते हुए भी बचना संभव नहीं होता।

‘चोर चोरी से गया तो क्या हेरा फेरी से भी गया’

‘कुत्ते की पूछ बारह बरस नलकी में रही फिर भी टेढ़ी की टेढ़ी’

प्रायः देखा जाता है कि अभावग्रस्त या हीनभाव वाला मनुष्य ही अपनी प्रशंसा के हेतु कुछ ऐसा अनोखा काम करता है जिससे लोगों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो। मनुष्य की यह स्वभाविक मनोवृत्ति है कि वह दूसरों की दृष्टि में नगण्य नहीं रहना चाहता। कहावत है—

‘कमाऊ आवैं डरता निखटू आवैं लड़ता’

तथा,

‘थोथा चना बाजें घना’

प्रायः मनुष्य दोषी होते हुए भी अपने दोष को स्वीकार करने का साहस इसलिये नहीं करता कि कहीं वह दोषी ठहरने पर दूसरों की दृष्टि में नीचे न गिर जाये। दुर्बल व्यक्ति को अधिक क्रोध आता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। क्रोध, वस्तुतः क्षति-पूर्ति का प्रयास मात्र है।

“जिस कार्य में कमी होती है वह उस कमी को ढँकने के लिए अपनी प्रशंसा करता है। जिसमें ज्ञान नहीं होता वह बड़-बड़ कर बातें बनाता है, जो ज्यादा धमकी देता है वह धमकी के अनुसार काम नहीं कर पाता। ज्ञान की कमी, चातुर्य का अभाव, अंग-विकार, अनेक कारणों से मनुष्य अपने ही भाव सा अनुभव करने लगता है। कहावतों में हीन भाव का कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं मिलता किन्तु वह हीन भाव किस प्रकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है इसके अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं।”

‘जो गरजता है बरसता नहीं’

कथा सबधी लोकोक्तियाँ—लोकानुभव प्राय घटनामूलक होता है। कोई घटना घटित होती है और हमारे जीवन सबधी अनुभव में वृद्धि कर जाती है। हम देख पाये चाहे न देख पाये मानव जाति के प्रत्येक अनुभव के पीछे एक छोटी-मोटी कहानी छिपी रहती है जिसका वह संकेत देती है।

कुछ कथाओं का अंतिम चरम वाक्य ही कहावत का रूप ले लेता है। यह बहुत मर्मस्पर्शी व प्रभावशाली होता है, उसमें तीखा व्यंग्य होता है। यही वाक्य कहावत के रूप में प्रचलित हो जाते हैं। प्रायः लोकोक्ति से सबद्ध कोई न कोई अन्तर्कथा रहती है जो उसको अधिक स्पष्ट कर देती है। उदाहरण के लिये उनमें कुछ ये हैं—

‘माया तेरे तीन नाम, परसा, परसू परसराम
टोट्टे तेरे तीन नाम, लुच्चा, भडवा बेइमान’
‘बड़ी बहू बड़े भाग, छोटी बनडो घणो सुहाग’
‘जो तुझे कह गया वो मुझे भी कह गया’

तथा,

‘बनिये का बेटा कुछ देख कर ही गिरता है’

इसकी कथा संक्षिप्त में इस प्रकार है—

‘एक बनिये का लडका सिर पर तेल की हाँडी रखे बाजार में से जा रहा था। एक जगह वह गिरा तो हाँडी फूट कर सारा तेल सड़क पर बिखर गया। किसी ने बनिये से जाकर कहा कि तुम्हारा लडका आज रास्ते में गिर गया और तेल की हाँडी फूट गई, तो बनिया बोला—

‘बनिये का बेटा यो गिरने वाला नहीं, कुछ देख कर ही गिरा होगा’

घर आने पर बाप ने बेटे से पूछा तो पता लगा कि रास्ते में एक अशर्फी देख कर वह गिरा था, यो झुक कर अशरफी उठाता तो कोई देख लेता। अशरफी पर गिरा और चुपके से उसे अटी में रख लिया। अतः इससे यह स्पष्ट हो गया कि—

‘बनिये का बेटा कुछ देख कर ही गिरता है।’

भाषा-विज्ञान सबधी लोकोक्तियाँ—कुछ कहावतों के द्वारा भाषा-विज्ञान सबधी तथ्यों का पता चलता है तथा उस दृष्टि से अध्ययन के लिये ये कहावतें महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। खडीबोली में द्वित्व प्रधान है, जिसका वास्तविक रूप हमें लोकोक्तियों में देखने को मिलता है—

‘ठाड्डे की जोरू सब की दाही
अर माडे की जोरू सब की भाब्बी’

द्वित्व के अतिरिक्त वर्ण सयुक्ति भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। देखा, कर्या, सुन्या आदि ।

‘सब दिन चगी, तिह्वार दिन नगी’

खड़ीबोली में ‘है’ के स्थान पर आवै, जावै, खावै आदि का प्रयोग होता है—

‘निखट्टू आवै डरता,

कमाऊ आवै लडता’

प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ—लोकोक्तियों के रचयिता जीवन-द्रष्टा होते हैं। वास्तव में जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताएँ ही उनको जन्म देती हैं। लोक मानस की दृष्टि व्यापक है, उसमें सब ज्ञान समाहित है, अनदेखा कुछ नहीं।

खड़ीबोली पुरुषार्थी लोगों की बोली है जिनका व्यवसाय साधारणतया कृषि है। जीवन की सब सुख-सुविधाओं से पूर्ण तथा स्वस्थ ये लोग बड़े मसखरे तथा प्रत्युत्पन्न मति के होते हैं। इनकी बोली में हाम्य-व्यंग्य तो मानो पूजीभूत हो गया है। इनमें कभी-कभी असमय अभिप्राय भी रहते हैं—

‘इस तरह चले गये जैसे गधे के सिर से सींग’

‘आँख के अंधे नाम नयन सुख’

कही अतिशयोक्ति भी मिलती है—

‘फूहड़ चाले नौ घर हाले’

‘बावली या तो चले नी, चलै तो रुकै नी’

कहावतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मानव जीवन की कोई भी ऐसी गतिविधि नहीं, जो इसके चक्र से बाहर हो। कहावतों में जीवन के सभी सुख-दुख, हर्ष-विषाद, रुचि व ग्लानि, विविध वर्णों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार-विचार, रीति-परम्परा आदि की अभिव्यक्ति में कहावतों ने सदैव ही सहयोग दिया है। देश-भेद के आवरण के पीछे मानव-मानव एक है। मानव प्रवृत्ति सर्वत्र एक है।

लोकोक्तियों में जीवन-जगन् के किमी न किसी पक्ष की अनूठी झलक है। लोक-साहित्य का अध्ययन इस मौखिक साहित्य के बिना अपूरा ही है।

साहित्यिकता की दृष्टि से खड़ीबोली की लोकोक्तियाँ अत्यन्त सारगर्भित हैं। इनका चयन कर हम हिन्दी को अधिक समृद्ध बना सकते हैं। इस प्रदेश की बोली अभिवा की अपेक्षा लक्षणा और व्यञ्जना से अधिक सम्पन्न है और प्रायः लोग गूढार्थ भाषा का प्रयोग करते हैं।

कहावतों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तव में किसी भी जाति की सम्यक्ता तथा सस्कृति का उच्च स्वरूप उसकी बोली में प्रचलित

कहावतो से ही जाना जा सकता है । कहावतो में अतीतकाल के अनुभव और ज्ञान बीज रूप में सुरक्षित रहते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि खडीबोली की लोकोक्तियाँ अपने में पूर्ण हैं यद्यपि उनका सकलन पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ ।

कहावतो में अनायास ही उपयोगी तत्व भी मिल जाते हैं । कहावतो से साहित्य का भी सौंदर्य बढ़ता जाता है । अलंकार-शास्त्र में तो 'लोकोक्ति' नामक एक अलंकार भी है ।

मुहावरे—लोकोक्तियों के समान ही मुहावरो का प्रयोग भी दैनिक जीवन में निरन्तर होता है । लोकोक्तियों में एक पूर्ण सत्य के विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है । वह इसी भाषा का अंश नहीं बनता वरन् एक स्वतंत्र वाक्य होता है । मुहावरो की लाक्षणिक शक्ति से भाषा में सयम आता है और आवश्यक विस्तार दूर हो जाता है ।

मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाले ये अपूर्ण वाक्यखंड हैं, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज और रोचक बना लेते हैं । मुहावरा लोकोक्ति के समान अपने में पूर्ण नहीं होता वह वाक्यांश होता है और उसकी सार्थकता वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही होती है । उसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता । यह सदैव अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है । शब्द में परिवर्तन करने से अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है । ससार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बहुत कौतूहल से देखा-समझा, और बार-बार उनका अनुभव किया, उन्हीं को शब्दों में बाँधा है, यही मुहावरे कहलाते हैं ।

भाषा-शास्त्रियों का कहना है कि मुहावरो की उत्पत्ति का रहस्य है मानव की प्रयत्न-लाघव प्रियता । वह छोटे से छोटे शब्दों में अपने को व्यक्त करना चाहता है । मनुष्य स्वभाव से रहस्यात्मकता-प्रिय भी है । वह कुछ गोपनीय कहने का आदी भी है, इसी से साधारण शब्दों में न कह कर भिन्न भाषा में प्रयोग करता है । मुहावरे सदैव गद्यात्मक होते हैं तथा बहुत लघु होते हैं ।

मुहावरो की परंपरागत व्यापकता—इनका इतिहास भाषा के ही समान प्राचीन है । मुहावरो का प्रयोग बहुत प्राचीन है । हजारों वर्षों से दैनिक जीवन में बार-बार प्रयुक्त होते रहने से वह हमारे पक्के साथी बन गये हैं । मानव-जीवन से सबंधित किसी भी पक्ष की उपेक्षा इसमें नहीं है ।

मुहावरो में जन-जीवन की स्पष्ट और सत्य झाँकी देखने को मिलती है । इनमें सामाजिक प्रथाओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं का उल्लेख भी पाया जाता है । साधारण जनता की आर्थिक दशा कैसी है, इस पर भी प्रकाश पड़ता है । भारतीय

संस्कृति का दर्शन भी इनमें मिलता है तथा इनके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का भी पता चलता है।

इन मुहावरों में पौराणिक कथाएँ, स्त्रियों के आचार-विचार, जातिगत विशेषताएँ तथा शकुन संबंधी धारणाएँ भी मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ, उल्लू बोलना, कौआ बोलना, आँख फरकना, हाथ फड़कना, पैर खुजलाना आदि। कुछ क्षेत्रीय मुहावरों इस प्रकार हैं जिससे भाषा-शास्त्र संबंधी तत्व भी ग्रहण किए जा सकते हैं—

- ‘बेरवा बिरान होना’
- ‘बारह बाट होना’
- ‘लेना एक न देना दो’
- ‘सेर का भाई बघेरा, वो कुढ़े नौ, वो कुढ़े तेरा’
- ‘नाक की सीध चलना’
- ‘सिर खुजलाना’ ‘हाथ खुजलाना’
- ‘करेल्ला और नीम चढ़ा’
- ‘ना सावन सुक्खा ना भादौ हरा’
- ‘बुखार की तरह चढे आना’
- ‘दाँत काट्टी रोट्टी’
- ‘रोट्टी यहाँ खाना तो पानी वहाँ पीना’
- ‘आँख का अघा गाँठ का पूरा’
- ‘आँख में सूअर का बाल होना’
- ‘ताक झाक करना’
- ‘कनसुए लेना’
- ‘होली दिवाली नहाना’
- ‘बोल्ली लगना’
- ‘गाली लगना’
- ‘आँखें दिखाना’
- ‘भाजी मारना’

मटियाले चूल्हे, जाट की खोपड़ी, कायस्थ खोपड़ी, परवा पछवा न जानना, सब दिन चगी तिब्हार के दिन नगी, दिह्ने फोडना, गऊ के जाय, घौले आणा, बटले करणा, बुडक मारना, कम्पनी के बैल, लगा लूतरी होना, बेरवा बिरान होना, घोट पतलाना, तग्गा तोड बात करना, ठोस्सा दिखाना, कुच्चा लगाना, दिवाली के दिण कूडी पै भी दीवा जलणा, मू बिटारना।

मुहावरो मे भी यद्यपि बहुत साम्य है परन्तु लोकोक्तियों से कम, क्योंकि इसका सबब बोली से ही अधिक है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तो यह बहुत ही उपयोगी है। खडीबोली मे द्वित्व की प्रधानता है, जो हमको मुहावरो मे प्रत्यक्ष दिखायी देती है—बोल्ली रोट्टी आदि। क्रिया मे 'है' की अन्तर्मुक्ति है तथा वर्ण-सयुक्ति के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं—गया, देखा, कर्या आदि।

मुहावरो की उपयोगिता भाषागत है। इनके प्रयोगो से भाषा अधिक प्रभावशाली हो जाती है, स्पष्ट चित्रमय हो जाती है। इनके द्वारा हम जो कुछ कहना चाहते हैं उसका स्पष्टीकरण मुहावरो द्वारा अधिक अच्छी तरह होता है। मुहावरो से भाषा को सबल बनाने मे सहायता मिलती है। व्यग्यवाणो के लिए भी इससे अधिक अच्छा शस्त्र मिलना सम्व नही। मुहावरो का अध्ययन करते समय सस्कारगत प्रथाओ का उल्लेख होता है। उदाहरण के लिए—हाथ पीले करना, कुल बखानना, सकरात पूजना।

कुछ पौराणिक कथाश भी मुहावरो मे मिल जाते है जिनका ऐतिहासिक तथा पौराणिक महत्व है। उदाहरण के लिए—द्रौपदी का चीर, रामबाण, ईद का चाँद, सुदामा के चावल, विदुर का साग आदि।

शकुन सबधी मुहावरे—इनके द्वारा भविष्य के लिए चेतावनी व सकेत मिल जाता है, यथा—

हथेली खुजलाना, पैर खुजलाना, आँख फडकना, बॉह फडकना, माथा ठनकना गाज गिरना आदि।

कुछ मुहावरो मे जातिगत विशेषताओ व व्यग्योक्तियाँ भी होती है। मुहावरो का वर्गीकरण विषयगत होना कठिन है। मानव जीवन से सबधित सभी विषयो पर मुहावरे मिलते है जिनमे कुछ विशष को ही यहाँ दिया जा रहा है—

साँग भरना, झावे की चिडिया होना, पके पान होना, बेटी का बाप, चूडी ठडी होना, पेट मे लाट्टी घूमना, जडो मे मट्ठा देना, कच्चा लगाना (आग लगना), सावन के गुड सा ढीला, आँखो लगना, दुहाग देणा, कौन सा मेरे ऊपर सोने का मँड्रा फिरवा देगी (मेढा एक प्रकार का औजार जो एक सा करने मे काम आता है), सारी रात रोये पर एक मरा, वह भी सुबह उठ कै भाग गया। अकड फू होना, आँखो सुख, कालजा ठडा होना, कान पक जाना, कुण्ठा होना, कच्ची गोली न खेलना, कोल्हू के बैल की तरह पिलना, कौन मवखी ने छीका है, खाट से लग जाना, घर आई गगा मे गोता न लगाना, छठी का दूध याद आना, ठकुरसुहाती कहना, घन मे साँप होना, पैर नौ नौ मन के होना, फूटी आँख न सुहाना, पेली पट्टियो राज करना, बैठी-बैठी को खेना, बोलते मे फूल झडना, मिली भगत होना, मिट्टी पलीत करना, राज

रजना, साँठ-गाँठ करना, सात पीढी बखान डालना, सौन कुसौन हो जाना, डडे पेलना, हाथ लगाये मैलली होना, मन मैलला न करना, हड्डी पसली इकट्ठी करना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहावरो मे जन-जीवन के दर्शन होते हैं । लोक-समाज का यथार्थ चित्रण तथा उनके सामाजिक आचार-विचार एवं सस्कृति-सभ्यता का पूर्ण परिचय इन्ही के द्वारा मिलता है । यह हमारे व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि भी करते हैं । इनके द्वारा खडीबोली की शक्ति का परिचय मिलना है । इनका अध्ययन करने से यहाँ के लोगो के स्वभाव का भी ज्ञान होना है । साहित्यिकता की दृष्टि से खडीबोली के मुहावरे अत्यन्त सारगर्भित हैं । इनका चयन कर हम हिन्दी को अधिक शक्तिशाली बना सकते हैं ।

खडीबोली की पहेलियाँ—भारतीय जन-जीवन मे मनोरजन के विविध साधनो मे पहेलियो का भी विशिष्ट स्थान है । प्रतिदिन के व्यवहार मे रहने वाली अनुभवगम्य अनेक वस्तुओ तथा क्रियाओ के सबध मे यह जोडी जाती है । यह प्रायः पद्यमय ही होती है । साधारण से साधारण वस्तु भी पहेली की पकड से नहीं बचती । यह युगो से थोडे से शब्दो के अंतर के साथ चली आ रही है । इनमे वर्णों का मनन, चिन्तन और विश्लेषण छिपा है । इनका स्थान कुछ मात्रा मे लोकोक्तियो से भी अधिक प्रतिष्ठापूर्ण है क्योकि ध्वनिमय और छोटी होने के कारण यह अधिक समय तक स्मृति मे स्थायी रूप धारण कर सकती है । इनके बूझने, बुझाने से बुद्धि का विकास होता है और मर्म की विविध बातें ज्ञात होनी हैं । बुझावल मे जिस वस्तु का वर्णन होता है उसके गुण, रूप-रंग, आकार-प्रकार, उपयोग या स्वभाव के बारे मे श्लेषात्मक संकेत रहता है । वस, उसी को पकड कर मूल-वस्तु की खोज की जाती है । पहेलियो के द्वारा ज्ञान-वृद्धि की प्रतियोगिता होती है तथा कल्पना-शक्ति की वृद्धि होती है ।

पहेलियो मे एक शब्दचित्र होता है । प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके उत्तर देने के लिये प्रतिपक्षी से उस चित्र के उत्तर की आकाँक्षा करता है । पहेलियो का प्रधान उद्देश्य मनोरजन है । पहेलियो मे छिपाने की प्रवृत्ति रहती है जिससे बुद्धि-कौशल के द्वारा ही उनके मर्म को जाना जा सके । पहेलियो के द्वारा मनोरजन की नहीं वरन् लोक सस्कृति की अभिव्यक्ति भी होती है । पहेलियाँ जाडे की लम्बी रातो के काटने के लिये या बैठे ठाले अपनी बुद्धिमत्ता की धाक जमाने के लिये गर्वमिश्रित सयानेपन के साथ लोग कहते हैं । पहेलियाँ तीक्ष्ण निरीक्षण शक्ति की परिचायिका हैं ।

पहेलियो का प्रचलन बहुत प्राचीन है । ऋग्वेद मे इसके उदाहरण मिलते हैं ।

अतर केवल इतना ही है कि वह उच्चकोटि के ज्ञानियों के लिए होती थी और यह सर्वसाधारण के लिए, उसके अनुसार सहजगम्य ।

पहेलियों में ज्ञान की अमूल्य निधि है । मानव प्रकृति रहस्यात्मक है । जब मनुष्य चाहता है कि उसके कथन को सर्वसाधारण न समझ सके तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जो जन-साधारण की समझ से परे होती है । मनुष्य की यही गोपनीय प्रवृत्ति पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है ।

संस्कृत में पहेली को पहेलिका कहा गया है और ब्रह्मोदय भी कहा गया है । पहेलियों की परम्परा अत्यंत पुरातनकाल से चली आ रही है । डॉ० सत्येन्द्र के मतानुसार पहेली-साहित्य को लोकोक्तिसाहित्य का एक अंग माना जाता है । पहेलियों द्वारा वस्तु के सबंध में कुछ विशेषताओं के साथ संकेत रहता है । रूप, रंग, गुण, आकार-प्रकार भी साकेतिक रूप में व्यक्त किये जाते हैं तथा उन्हें आधार मान कर उत्तर निकाले जाते हैं । गाँवों में तो इनका प्रयोग मुख्यतः मनोरंजन ही के लिये होता है । स्त्रियाँ तो इन्हें अपना अस्त्र ही समझती हैं । ससुराल में दामाद की परीक्षा लेने के लिए स्त्रियाँ पहेलियों की झड़ी लगा देती हैं । कोहबर में विवाह के पश्चात् पूछी जाने वाली पहेलियाँ 'छन' कहलाती हैं । यह वास्तव में पहेलियों का ही एक रूप होता है ।

जन-जीवन से संबंधित सभी वस्तुओं के सबंध में पहेलियाँ पाई जाती हैं जिनमें खेत सबंधी, भोज सबंधी, घरेलू तथा प्राणी सबंधी, प्रकृति सबंधी तथा अंग-प्रत्यंग सबंधी विविध विषयों पर प्रचुर मात्रा में मिलती हैं । यहाँ पर हम एक तालिका द्वारा पहेलियों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न करेंगे—

पहेलियाँ				
शरीर सबंधी	जीव सबंधी	प्रकृति सबंधी	खानपान सबंधी	प्रकीर्ण
दैनिक व्यवहार में आने वाली				

शरीर संबंधी पहेलियाँ—वह पहेलियाँ जिनका शारीरिक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं से संबंध रहता है, इनका सबंध इन्द्रियों से है ।

'कटोरे मे कटोरा, कटोरे मे अडा
 बता तो बता नई मारूँ सिर मे डडा'
 'गधा उदासा क्यों था, मुसाफिर प्यासा क्यों था'
 'सगरी रैन मोहे सग जागा, भोर हुई तो बिछरन लगा
 वाकै बिछरत फाटै हिया, हे सखी साजन ना सखि दीया'
 'हाथ जोड बेगम खड़ी, सिर पर धरे अगार
 जब बजाई वॉसरी, निकला काला नाग'
 'एक कहानी मै कहूँ सुनले मेरे पूत
 बिन परो के उड गया बाँध गले मे सूत'

खान-पान सबधी पहेलियाँ—मनुष्य को सबसे प्रिय खान-पान की वस्तुएँ होती हैं। दैनिक जीवन में इनका बहुत महत्व है, अतः इनसे संबंधित बहुत ही पहेलियाँ मिलती हैं, जिनका उत्तर बहुत रोचक होता है—

'अक्कल की कोठरी, बक्कल के किवाड
 मोतियों के झुमके, पानियों के दरयाव ।' (तरबूज)
 'राजा के राज में नीं, माली के बाग में नीं
 फोडो तो गुठली नीं, छिल्लो तो छिल्लक नी ।' (ओला)
 'महता रे महता तू कौन गली में रहता
 ठीकरी का पानी पीता पत्ते निच्चे रहता ।' (बेगन)
 'इधर भी खूट्टा, उधर भी खूट्टा
 गाय मरखनी दुद्धा मीट्ठा ।' (सिघाड़ा)
 'स्याम बरन सिंगा धरै, तन काले दिल स्वेत
 मइया बाकी जल बसै पिता बसै अकास
 पुराने चाहिए तो भेज दे, नये तो कात्तक मास ।' (सिघाड़े)
 'आगे आगे बहना आई, पीछे पीछे भइया
 और दाँत निकाले बाबा आये, और बुरका ओढे मइया ।' (मुट्टा)
 'जब थी मैं याणी बाली, सात परदो की थी राणी
 जब हुई मैं लोगगम लोग, टुकड़ी ठाठा देखें लोग ।' (मुट्टा)
 'अक्कास मारा मीमला, पत्ताल काढ़ी खाल
 ऐसा जानवर कौण सा, जिसकी भित्तर-बाल ।' (आम)
 'घर में उपजे घर बह जाये
 खेत में उपजे सब कोई खाये ।' (फूट)

‘चार कबूतर चार रंग, महल मे जाकै एक रंग ।’ (पान)

‘आती थी जब आध सेर, सूख गई तब सेर भई

सज्जन सोच विचार उत्तर दीजिये मेज सही ।’ (रोटी)

‘एक ही नाम दो बार, एक ही नाम घरा करतार

एक छोटी एक बड़ी कहाई, एक मेहगी एक सस्ती ।’ (इलायची)

प्रकीर्ण पहेलियाँ—इनमे क्षेत्रीय बोली का पुट रहता है, जिससे उनके उसो प्रदेश का होना प्रमाणित होता है। यद्यपि विषय सामान्य ही रहता है पर शैलीगत-भेद ही उनकी विशिष्टता होती है—

‘एक नारी उसके दाँत कटीले,

पिया ने पकड़े खींच आती है तो आ री ।’ (आरी)

‘राँड की राँड मटकती जाय

गज का डोरा लटकता जाय ।’ (सुई-डोरा)

‘पहाड से आये बुगले, हरी टोपी लाल झगले ।’ (लालमिर्च)

‘अस्सी गज का चौतरा, नब्बे गज का डोर

सीता चली बाप के, कौण उडावै मोर ।’

‘पेली है पर पेली, बेसन की नहीं

बनाते हैं, पर खाते हैं ।’ (अठमासी)

‘चाची के दो कान, चाचा के वो भी नहीं

चाची चतुर सुजान, चाचा कछु जानै नहीं ।’ (कढ़ाई-तवा)

‘घौली घरती काला बीज

बोवने वाले गाँवे गीत ।’ (किताब)

‘स्याम बरन द्वारिका बासी, पै नहीं भगवान

चिन्ता हरन सबन की, राखत सकल जहान ।’ (ताला)

‘पहाड से आये रोडे, आत्तो ही सिर फोडे ।’ (अखरोट)

‘एक जना ईबाजना, नदी किनारे चुगता है

सोने की सी चोच निकले, दम दम पानी पीता है ।’ (दीवा)

‘एक कहानी में कहूँ सुनले मेरे पूत

बिना पैरी के उड गया, वाँघ गले मे सूत ।’ (पतंग)

‘हसी की हसी, ठिठोली की ठिठोली

मरद की गाँठ लुगाई ने खोली ।’ (ताली)

‘सोने की वो चीज कहावै, दाल भात के मोल बिकावै

बुरज लगै है उसमे चार, बुरज बुरज पै पहरेदार ।’ (खाट)

‘माली की री माली की तू, आँगुरी पहरे जाली की
खडी सलाम करै बैठी तो काम करै ।’ (खाट)
‘जनाब आली, सिर पै जाली
पेट खाली पसली अगगिन ।’ (मूढी)

यह सब उन्ही कुछ वस्तुओं के उदाहरण हैं जो साधारण जीवन में प्रायः प्रयुक्त होती हैं। यहाँ पर सग्रहित कुछ वही पहेलियाँ दी गयी हैं जिनका प्रयोग क्षेत्रीय है या बोलीगत विशिष्टता है। यहाँ पुस्तकों का आधार नहीं लिया गया है।

गाहे-पल्हाये (मल्होर)—लोक-साहित्य में लोकोक्ति साहित्य, मुहावरे व पहेलियों के अतिरिक्त पल्हाया मंत्र तथा दोहों के रूप में अनन्त जन-साहित्य की राशि सुरक्षित है, जिनसे हम कम परिचित हैं।

पहेलियों के समान ही ‘मल्होरे’^१ पल्हाया भी प्रश्नोत्तर के रूप में पहेलियों का ही एक प्रकार है जिसका परम्परागत व परिष्कृत रूप, अथर्ववेद, ऋग्वेद, महाभारत तथा ब्राह्मण-गाथाओं में मिलते हैं। “पहले इनको कुछ भागों में ‘गाहा’ भी कहा जाता था।”^२

“गाहा” प्रचीन गाथा का प्राकृत रूप है। गाथाओं का प्रयोग प्रायः वैदिक छन्दों के बाहर लोकगीतों के लिये किया जाता था।”^३ प्राचीन गाथाओं की ही कुछ परम्परा ‘मल्होर’ या गाहाओं में बच गयी। ‘मल्होर’ का दूसरा नाम ‘पल्हाया’ भी लोक में मिला। यह संस्कृत ‘प्रवल्हिका’ का प्राकृत रूप है। ‘एतश प्रलाप’ का ठीक अनुवाद ‘बावली मल्होर’ है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ और महाभारत में ऐसी कितनी ही प्रश्नोत्तरी शैली की गाथाएँ हैं। ‘मल्होर’ की गाथाएँ उसी परम्परा की स्मारक हैं। “बावली मल्होरों की शैली में कुरुजनपद के ऐतश प्रलाप, प्रवल्हिका, आजिज्ञा-सेन्या, प्रश्नोत्तरी आदि शैली के लोक-साहित्य की परम्परा छिपी है।”^४

‘मल्होर या पल्हाया’ कुरु-प्रदेश में गाये जाने वाले श्रमगीतों का नाम है, जो विशेषतया ‘कोल्हूगीत’ भी कहलाते हैं। पहले जब चीनी की मिल नहीं थी, इस प्रदेश में गन्ने की अधिकता होने के कारण जगह-जगह प्रत्येक गाँव में कई कोल्हू चला करते

१ मल्होर—कुरु जनपद में गाये जाने वाले कोल्हू गीत जो श्रमगीत है।

२. जनपद—गणेशदत्त गौड़, पृ० ७७, खंड १—अंक २, जनवरी ५३

३. जनपद—वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० ७०

४. वही पृ० ७१

थे, और उसके पास ही भट्टी जला कर गुड बनता था। यह गुड बनाने का काम जाडो की रात में ही होता था। रात्रि के समय को कम नीरस बनाने के लिये तथा काम की अधिकता व कठिनाता को मनोवैज्ञानिक रूप से सरल बनाने के हेतु ही जन-समाज ने गीतो का, दोहो का, तथा प्रश्नोत्तरी का सहारा लिया जिसके द्वारा वह मनोरजन कर सकते थे। इससे समय का सदुपयोग भी हो जाता है और बौद्धिक वृद्धि भी।

‘मल्होर’ को कुछ भागो में ‘गाहा’ भी कहा गया है क्योंकि इस गीत के माध्यम से छोटे-छोटे कथानक गाये जाते थे। ग्रामीणों का सामाजिक दर्शन, उनके श्रृंगारिक भाव तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण हमें मल्होरो के रूप में प्राप्त होते हैं। इन मल्होरो में अभिव्यक्तिभावधारा का सूक्ष्म अध्ययन करने से पता लगता है कि कबीर की साखी, बिहारि के श्रृंगारिक दोहे, हाल की शप्तसती की गाथा तथा तुलसी, वृद्ध और रहीम के दोहो से इनका घनिष्ठ संबंध है। श्रृंगारिक मल्होरो और बिहारि के दोहो में कहीं-कहीं बहुत समानता मिलती है तथा कबीर की साखियाँ और वैराग्य-पूर्ण मल्होरो में बड़ी घनिष्ठता है। मल्होरो में दोहे और छंद होते हैं तथा पीछे एक विशेष प्रकार की टेक होती है—‘रे मेरी बावली मल्होर’।

यद्यपि मल्होरो का प्रमुख विषय श्रृंगार ही है पर इनके अतिरिक्त नैतिक, सामाजिक, तथा वैराग्य संबंधी भी पर्याप्त मिल जाते हैं जिनसे जन-जीवन के विस्तृत दृष्टिकोण का पता लगता है। इन्हीं के द्वारा उनकी भावनाओं की विविधता का ज्ञान होता है। कार्यारंभ करते समय वह ग्राम-देवता की स्तुति करते हैं। यह मंगलाचरण का रूप सब जगह उपलब्ध है—

**‘घन खेड़े घन भूमिया, कोई घन बसावणहार
घन खेड़े के चौधरी रे तेरा खेड़ा बसे गुलजार’**

मल्होरो का अध्ययन व वर्गीकरण करने से हमें उसमें तीन-चार पक्ष विशेष-रूप से दृष्टिगत होते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) **दार्शनिक पक्ष**—वह ‘मल्होर’ जिनमें जन-जीवन के दार्शनिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है कि उनकी जीवन संबंधी क्या विशिष्ट धारणाएँ होनी हैं, वह भाग्यवादी होते हैं तथा आस्थावान्। यह उनके चरित्रगत आदर्शों का परिचय देते हैं। इनको सुन कर कबीर की साखियों का स्मरण हो जाता है। जीवन की विचारधारा परिवर्तित करने के लिए कभी-कभी छोटा-सा उदाहरण भी पर्याप्त होता है। इस नद्वार ममार की साधारण घटनाओं को देख कर ही मनुष्य की आँखें खुलती हैं और वह अपने जीवन पर भी उसको घटाने लगता है तथा

कुछ क्षण-विशेष के लिये उसका दृष्टिकोण दार्शनिक हो जाता है । उदाहरण के लिये—

‘कित बोये कित उबजे रे,
बीरा कहाँ लड़ाये लाड
ऐ जी कुदरत का व्यौरा नहीं
कोई कहाँ खिड़ा दे हाड
रे मेरी बावली मल्होर’

इनमे भाग्यवाद तथा भविष्य के सबध मे अनिश्चितता मिलती है जिनके कारण मनुष्य का अह नष्ट हो जाता है और उसके जीवन मे एक प्रकार की असीम शांति तथा सतोष का समावेश हो जाता है—

‘पत्ता टूट्या डालते रे
कोई ले गई पवन उडाय
ऐ जी अब के बिछडे कद मिले
कहीं दूर पडेंगे जाय
रे मेरी बावली मल्होर’

और,

‘पीले मुंह की पीपली रे,
बीरा कर गई हस हंस जवाब
हम आये तम चल पड़े
ऐ जी ह्या अपनी अपनी बार
रे मेरी बावली मल्होर’

कबीर का निम्नलिखित दोहा इसी से मिलता जुलता है—

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार ।
फूले फूले चुन लिये काल्ह हमारी बार ॥

इनमे जीवन के प्रति निराशा ही स्पष्ट होती है तथा उनका निराशावादी व भाग्यवादी दृष्टिकोण ही मिलता है ।

मल्होर मे श्रृंगार-पक्ष तो है ही पर इससे भी अधिक श्रृंगारिक वर्णन, संयोग व वियोग के अतिरिक्त, एक तीसरे प्रकार की अवस्था भी मिलता है और वह है अनमेल विवाह की परिपाटी का द्योतक । पति-पत्नी की अवस्थाओं मे पर्याप्त अन्तर होना साधारण बात है । पत्नी तो सदैव ही पति से कुछ छोटी आयु की होती है पर कभी-कभी बहुत छोटी भी होती है । कभी-कभी जब इसके विपरीत परिस्थिति होती है, पत्नी-पति से बड़ी होती है तब समस्या बहुत विषम होती है ।

ऐसी स्थिति में सुहागिन पत्नी सयोगावस्था में होने पर भी वियोगिनी के ही समान रहती है तथा उसकी मनोगत लालमाएँ उपेक्षित ही रह जाती हैं। इसके सबध में बहुत ही सुंदर व उपयुक्त मल्होर प्रचलित है, इनमें भावनाओं का बहुत ही सूक्ष्म वर्णन है जो इस प्रकार है—

‘रतन कटोरी घी जलै रे बीरा,

चुल्हे जलै रे कसार

घुघट में गोरी जले, जाके याणे हो भरतार

रे मेरी बावली मल्होर’

‘महल जलै माढी जलै बीरा, बिच बिच जलै दलान

घुघट में गोरी जलै जिसके कत नादान’

तथा,

‘कल्लड़ सुक्खी काँगनी रे, कोह ढ़ेरो सुक्खे धान

मरवन सुक्खी बाप के ऐ जी कोई केला कैसी गोभ

रे मेरी बावली मल्होर’

जिस सयोग-वियोग के मध्य की स्थिति का यहाँ सूक्ष्म वर्णन है, वह बहुत ही मनोवैज्ञानिक है पर साहित्य में अल्प प्राप्य ही है। इसका उल्लेख कम मिलता है। यह अवस्था बहुत ही अधिक दुखदायी होती है क्योंकि इसमें दूसरे लोग उनकी व्यथा का अनुमान भी नहीं लगा सकते और वह सयोगवश तथा परिस्थितिबश कुछ भी कहने में असमर्थ रहती है। अतः अधिकांश वेदना स्वयं ही उठानी पड़ती है। लोक-साहित्य में मल्होरो के इन रूपों का भी प्रहेलिका के समान ही महत्व है। यह प्रश्नोत्तर के रूप में तो है पर इनमें मानवीय भावनाओं का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इनमें उपमायें, कल्पनाएँ, दूर की सूझ तथा अतिशयोक्ति भी मिलती है—

‘जो मैं ऐसा जाणती रे,

आंगन बोत्ती खजूर

वा पै चढ के देखती

मेरा साज्जण किल्ली दूर

रे मेरी बावली मल्होर’

निम्नलिखित मल्होर में बारह महीनों का बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण है—

‘साम्मण आम्मण कह गया रे,

कोई बीत्ते बारहमास

छप्पर पुराने पड गये जी

कोई चटकन लागे बास

रे मेरी बावली मल्होर'

श्रृंगार-रस से सबधित पल्हाये जिनमे रूप-यौवन का वर्णन मिलता है, इनमे विशेषता यह है कि कल्पनाएँ व्यावहारिक जीवन से ही ली गई हैं। उदाहरण के लिये—

‘अम्बर मे तारें खिलें, थल मे खिलें बबूल

गोरी का जोवन नू खिलै, जैसे खिले कमल का फूल’

श्रृंगारिक मल्होर प्रश्नोत्तर के रूप मे भो पर्याप्त है—

प्रश्न— ‘लबा खेत ज्वार का रे प्यारे

दो गोरी रखवाल

कौन सी गोरी ऐसी जो गोपफे^१ देय चबवाय

रे मेरी बावली मल्होर’

उत्तर— ‘गोपफे म्हारे कचकचे,^२ नूह^३ पारो रस जाय

उल्टे से फेरा करना मुसाफर

गोफे देंगे चबवाय’

एक नायिका, नायक की प्रतीक्षा मे स्वत कहती है—

‘गोपफे हमारे पक गये, बोये १२ खेत

ए सखी ना बाहवडे^४ जिसने गोपफे मांगे खेत रे’

ऊपर लिखी तीन मल्होरो के दो अर्थ हैं। दो युवतियाँ जो पहले अज्ञात यौवना थी, अब एक वर्ष की अवधि तक पूर्ण यौवना हो गई और अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करती हैं। यहाँ ‘गाफे’ की आड मे कितनी सुंदर भावामिव्यक्ति है। निम्नलिखित मल्होर रूपगविता नायिका के मुँह से कहे गये हैं—

‘सुरमा साहूँ तो दस मरे,

बिंदी लाऊँ तो बीस मरे

मांग भहूँ सिन्दूर की, तौ मर जावें पूरे तीस

रे मेरी बावली मल्होर’

१. ज्वार के ऊपर की बाल।

२. कचिया, दूधिया।

३. नाखून लगाते ही।

४. लौटना, लौटे।

‘सुरमे की म्हारे आन है, बिन्दी लावै बलाय
 पलक उभार कर देख लू, जग परलो सी होय’
 ‘महल तुम्हे बतलाती, आना आप जरूर
 जो नर करे इसक, तेरे गिनै क्या हूर’
 रे मेरी बावली मल्होर’
 ‘अपने कोठे में खड़ी, खड़ी सुकाऊँ केस
 यार दिखाई दे गया, भर जोगी का भेस’
 रे मेरी बावली मल्होर’
 ‘नील्ली घोड़ी, छब छबीली पातलिया सवार
 गजब पडा तेरे रूप पर, चलता मुसाफर दियामार’
 ‘अम्बर बरसै रस चुबै भीगो नौलखहार
 घने दिनो की दोस्ती आज हो गई निरास’
 मेरी बावली मल्होर’
 ‘जोबन था जब रूप था गाहक थे सब कोय
 बाला रतन गमाय के मैं रही निमाणी होय’
 ‘जोबन भी चल्या रूठ कैं, पड लिया लम्बी राह
 कैसे भी पकड़ूँ दौड कं मेरे गोड्डो मे दम नाय’
 रे मेरी बावली मल्होर’
 ‘जोबन तेरे लाड करूँ, रिस भर राधू खीर
 न्यौत जिमाऊँ बालमा, कहीं सगी ननद का बीर’
 रे मेरी बावली मल्होर’

धार्मिक तथा नैतिक उपदेशों के सबब में जिनमें जन जीवन का दर्शन मिलता है, महत्त्वपूर्ण है—

‘पर नारी पैनी छुरी, कोई मत लाओ अग
 रावन की मुक्ति हुई, पर नारी के संग’
 धार्मिक मल्होरो में अटूट आस्था मिलती है—
 ‘राम बढाये सब बढे, बल कर बढ़ा न कोय
 बल करके रावन बढो, वो दिया छनक मे खोय’

अह, दम की निस्सारता तथा जीवन की नश्वरता के प्रति मार्मिक संकेत है। कुछ प्रश्नोत्तर के रूप में मल्होर मिलती है, जिनका ज्ञान-वृद्धि ही उद्देश्य रहा होगा—

- प्रश्न— 'कौन तपस्वी तप करै, अर कौन नित उठ न्हाय
कौन तो उगले सब रसन को, अर को सब रस खाय'
- उत्तर— 'सूरज तपसी तप करै, बिरमा नित उठ न्हाय
इनदर उगलै सब रसन को, घरती सब रस खाय'
- प्रश्न— 'नदी किनारे रूखडा, मै जानू कोई होय
जाकै कारन जोगन भई, वही न जलता होय'
- उत्तर— 'नदी किनारे रूखडा, गोरी मल मल न्हाय
कछुआ चुम्बा ले गया, बगला नाक लगाय'
- प्रश्न— 'मछली बिकती मै सुनी, धीवर के दरबार
ए मछली मै तुझे बूझता, कैसे फस गई जाल'
- उत्तर— 'पानी मे म्हारा बास है, रहती ताल पताल
कलक खाती बन गई, मै इस विध फँस गई जाल'
रे मेरी बावली मल्होर'

इस प्रकार हम देखते हैं कि खडीबोली प्रदेश के लोक-साहित्य मे इन पल्हायो का अपना विशिष्ट तथा मौलिक स्थान है। इनके अतिरिक्त कुछ और पल्हाये और भी यहाँ दिये जा रहे है जो मिश्रित हैं—

- 'अगिया तेरी रेसमी, लग्या हजारी सूत
घूँघट के पट ना खुलै, तेरा मरो गोद का पूत
रे मेरी बावली मल्होर '
- 'अगिया मेरी रेसमी, ना लग्या हजारी सूत
घूँघट के पट खोलिये, तेरा जीवै गोद का पूत
री मेरी बावली मल्होर'
- 'कोट्ठे उप्पर कोठरी, उसमे घडै सुनार
बिछुवे घड दे बाजणे, जो चार सुणे झन्कार
री मोरी बावली मल्होर'
- 'जोबन तेरे कारणे, छोडे माई बाप
सात्तन छोड्डी सात की, हिरना बरगी नार'
- 'लील्ला लेहू लील का, फेंकू पेले पात
सीसा फोडू ले दू दमकणा, जो चले म्हारे साथ
मेरी बावली मल्होर'
- 'हर बड़े हिरना बडे, सुगनी बड़े किसान

अर्जन रथ को हाँक दे, भली करे भगवान

मेरी बावली मल्होर'

'सध्या सुमरन आरती, भजन भरोसे दास

मनसा बाछा करमना, जब तक घट मे आस'

'चेंटी ब्याई झुड मे खीस दिया मन तीस

गुरुसिस्स सब छक रहे, बचा खेस मन बीस'—मेरी बावली०

'माला मन से लड पड़ी, प्यारे क्या भिडावै मोय

मन को निहचें राखिये, राम मिला द्यूगी तोय'—री मेरी०

'कर साँसा की सुमरनी, अन्या का कर जाप

प्रेम तत्व का ध्यान घर, सोहे आयो जाय'—रे मेरा०

'गाडी के गडवा लिया, तेरी गाडी भरी है मसूर

हौले हौले हाँकिये अभी, मज्जिल पडी है दूर'—रे मेरे०

जिनका अँचा बैठणा, जिनके खेत निवाण

तिनका बैरी क्या करे, जिनके मोत दिवाँण'—रे मेरे०

'मारु मारु सब कहै, मारु यहाँ का देस

मारु यहाँ के रुखडा, तू अपनाई मारग देख'—रे मेरे०

'बुध राजा के बाग मे, प्यारे उतरे ढोल कवार

बगला मरवन नार का, कहीं बैठे आसुन मार'—रे मेरे०

'फुलका पो दो लपझपे, हरियल घर दे साग

लम्बी सी दे दै लाकड़ी, गौसे पै घर दे आग'—रे मेरे०

'किस राजा जी के चने, किसके बाडी बाग

किस राजा की स्त्री, काहे ते तोडे साग'—रे मेरे०

'ढोला भी वहाँ से चल दिया, होकर के असवार

पीछे से सेना आलई, कहीं समन्दर में पकड़े जाय'—रे मेरे०

'अपने कोठे पै खडी, तले खडा मेरा जेठ

ढाई पाट का ओढ़ना, कहीं मू ढकू के पेट'—रे मेरे०

'चालन दे अब चाकरी, प्यारे पीसण दे अब नाज

जो साँई के लाल हैं, लै मोती की लड आज'—रे मेरे०

'कीकड काटू कस कहूँ, कस कर कहूँ मलान

काटन वाले चल बसे, अब किस पर कहूँ गुमान'—रे मेरे०

'चलती चाकी देख कै, प्यारे दिया कबीरा रोय

दो पाटो के बीच मे, कहीं साबत रहा न कोय'—रे मेरे०

‘राम झरोके बैठ के, सब का मुजरा लेय

जैसी जाकी चाकरी, उसको वैंसा ही देय’—रे मेरे०

दोहा-साहित्य (पत्रों में लिखे जाने वाले दोहे)—पत्रों का मानव जीवन की भावनाओं के आदान-प्रदान से बहुत गहरा संबंध है। प्राचीन काल में जब पढ़ना-लिखना सामान्य जन के लिये नहीं था और आवागमन के साधन भी विकट थे, तब की, उन पत्रों की शैली तथा सामग्री आज अध्ययन तथा मनो-विनोद का कारण बन सकती है। उनमें बहुत घनी पीड़ा और मूल्यवान् अपनापन था। हमारी ग्रामीण नारियाँ जो प्रायः अशिक्षिता ही होती थी और उनकी अपनी भावनाओं के अभिव्यक्ति के साधन भी सीमित थे, पति व्यापार के लिये परदेस जाते थे, अतः उनकी कुशल-क्षेम पाना तथा अपनी विरह-व्यथा का संदेश भेजना उनके लिए एक समस्या हो जाती थी। वह भोली नारियाँ जो स्वयं पत्र भी नहीं लिख सकती थी, अपनी भावनाओं को लिखित रूप में व्यक्त करने में असमर्थ थी। नारी सदा से ही भावना प्रधान होती है। पहले दोहों में लिखने की प्रथा थी जिनमें जन-साहित्य की विशेषता तो है ही, साथ ही इनसे नारी-हृदय के प्रेम का भी परिचय मिलता है। यह दोहे उसी प्रेमाभिव्यक्ति के माध्यम हैं। तब दोहों के रूप में ही भाव-प्रदर्शन का प्रचलन था। इनमें उनकी अनोखी सूझ और प्रेम की गहनता ओत-प्रोत रहती है। प्राचीन महिला-जगत् में महिलाएँ अपने स्मृति-पटल पर इनको अंकित रखती थी और इनका अपने दैनिक जीवन में समय-समय पर प्रयोग करती थी। हृदय की घुटन तथा अपनी कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के साधन सीमित थे, परन्तु विरहिणी-स्त्री की वेदना असीम थी। पत्रवाहन के लिए संदेशवाहक-मनुष्य ही नहीं होते थे वरन् पक्षी भी पाले जाते थे। मानव-जीवन की भावनाओं के आदान-प्रदान में इनका विशेष योगदान है। इनके अभाव में भावनाएँ पगु होती हैं। पक्षियों द्वारा समाचार भिजवाने का हमारे प्राचीन-साहित्य में बहुत वर्णन है। कबूतर इस कार्य के लिए बहुत व्यवहार में आते थे। नल के पास दमयन्ती ने हंस के द्वारा पत्र भेजा था। आज कल जापान में कबूतरो द्वारा बहुत काम लिया जा रहा है। आधुनिक संसार को यह जापान की आविष्कृत बात मालूम होती है, पर भारत के लिए यह नई नहीं है। तोते भी पत्र ले जाते थे। वे घर की, प्रिय की विरह-दशा का वर्णन करते पाये गये हैं। वे बहुत प्रेमपारखी तथा अनुभवी थे तथा रूप-गुण वर्णन एवं विरह-वर्णन करने में निपुण होते थे। इनसे संबंधित बहुत बड़ी-बड़ी प्रेम-गाथाएँ भी मिलती हैं।

ये तो पत्रों के अनेक रूप मिलते हैं—व्यापार-संबंधी, कुशल-क्षेम के घरलू

पत्र, तथा विवाह-शादी में निमंत्रण के रूप में—पीली चिट्ठी, पति-पत्नी के पत्र तथा मृत्यु-सूचक पत्र जो कोनाकटी चिट्ठी कहलाती है। यहाँ पर हम केवल उन्हीं प्रेम-पत्रों पर ध्यान दे रहे हैं, जिनमें दोहे भी लिखने का विशेष प्रचलन था।

प्रेम, मानव की शाश्वत-भावना है और आँखों से ओझल होने पर तो इसकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम पत्र ही रह जाता है। प्रेमी जगन् में इसका मुख्य स्थान है और रहेगा।

प्रारम्भ के पत्रों में जब कि लोग अधिकांश निरक्षर भट्टाचार्य होते थे, वे स्वयं पत्र न लिख सकने के कारण आवश्यकता होने पर किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति से लिखाते थे। पत्र, सीधा पति या पत्नी को न लिखवा कर अपने लल्ला, बहन या माँ को लिखवाते थे। उनका सबोधन होता था मुन्नी के बाप, नन्दी के बीर, देवर जी के भाई। पति का उत्तर भी माँ या पत्नी के नाम होता था। लल्ला की अम्मा को मालूम हो—आगे समाचार यह है कि यहाँ सब कुशल है, आप की कुशल श्री भगवान् जी से नेक चाहती हूँ। और इसके बाद वह घर-गृहस्थी और गाँव के हर पहलू पर प्रकाश डालती थी—गाँव में कौन मरा, कौन पैदा हुआ—किसकी शादी हुई, किसके बच्चे हुए, यहाँ तक कि किसके घर झगडा हुआ, अपने घर में कितने प्रकार के अचार पड़े, गाय, भैंस कितना दूध देती हैं, कौन सी गाय व्याने वाली है, किसके घर भात देना है। इनमें व्यक्तिगत प्रेम नहीं प्रदर्शित किया जाता था। अतः में लिखती थी—लल्ला और मुन्नी आपको याद करते हैं मानो लल्ला और मुन्नी की याद में ही वह अपनी याद मिला देती थी।

यह तो साधारण पत्नी का पत्र होता था। पर तब के प्रेम-पत्रों में यह मुख्य विशेषता होती थी कि वह पत्रों में व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व चाहते थे, बल्कि यह कहिये कि उनमें कलेजा ही निकाल कर रख दिया जाता था। इन पत्रों की कागज और स्याही भी साधारण भौतिक रसायनों से न बन कर दिल और आँखों से तैयार की जाती थी। आँखों की स्याही को घोल कर रोशनाई बनाकर लिखे हुए पत्र की विशेषता होती थी कि 'जब तुम इसे देखो, मरी आँखें तुम्हें देख लेंगी'—प्रेमिका लिखती है—

लिखती हूँ पत्र खून से स्याही न समझना,

मरती हूँ तेरी याद में ज़िन्दा न समझना।

स्त्रियों में सदा से ही मौखिक ज्ञान की विशेषता रही है। उनकी स्मरण-शक्ति विशेष ताव्र होनी है और वह बहुत ही प्रत्युत्पन्नमति की होती हैं। प्रेम तो

उनके जीवन में सर्वत्र व्याप्त रहता है। वह प्रेम की अभिव्यक्ति की भावना, कविता या दोहों के रूप में करती है। उनके सोचने का माध्यम भी पत्र ही था। स्वयं न लिख सकने के कारण वे जाने वाले परदेसियों के द्वारा ही समाचार कहलाती थी। प्रिय की दिशा में जाने वाला परदेसी भी उनके लिये प्रिय हो जाता था। वह उसके सम्मुख गभीरता से अपने मनोभावों को व्यक्त करती थी। उधर परदेसी भी उनको जो, वचन देता था, उसको सच्चाई से निभाता था। वह सुंदर विश्वासों का युग था। ऐसी ही राह चलते लोगों से वह पत्र लिखवा लेती थी जिनका वर्ण्य-विषय होता था उनकी प्रिय के लौटने के सबन्ध में उत्सुकता, उनके देर से लौटने के कारण वह उनको बेमुरखत कह कर उलाहना देती थी। उनका देर तक खबर न लेना 'मुह देखे की प्रीत' कहलाती थी। साथ ही वह विरहावस्था का हाल भी लिखाती थी कि वह कितनी क्लेशग्रात हो गयी हैं। प्रिय की दिशा में जाने वाला वह परदेशी जो प्रिय को सदेश देने वाला है—नायिका को बहुत प्रिय होता था। प्रेम से सराबोर यह पत्र वह बहुत प्रेम से भेजती थी क्योंकि उन सरल हृदयों का यह अनुमान रहता था कि उनका प्रिय, पत्र को देख कर तथा उनके हृदय के भावों को यथातथ्य समझ कर, उनकी आँसू भरी आँखों को याद कर तुरंत ही चला आयेगा। प्रेम-पत्रों को भेजने और पढ़ने की यह साधारण प्रथा थी।

इसके बाद स्वयं चिट्ठी बाँचने व लिखने की योग्यता रखने पर तो वह गुलाबी रंग के लिफाफे में गुलाबी कागज पर उसमें सेट लगा कर और गुलाब की पखुडियाँ रख कर भेजती थी। इनमें भी दोहों का माध्यम अपनाया जाता था। तब साहित्यिक अध्ययन से प्रभावित होने के कारण पत्रों की भाषा व शैली में भी उनके अंशों का ही प्रयोग होता था। उनमें स्पष्ट भावना व्यक्त नहीं होती थी, वरन् प्रकृति-वर्णन के माध्यम से तथा उससे तादात्म्य कर भूमिकाएँ बाँधी जाती थी। उनमें प्रयुक्त भाव और उपमाएँ साहित्य से ही ली गई होती थी—यह स्वभाविक नहीं कि वे हृदय से कम सबधित एवं बुद्धि से, पुस्तकीय ज्ञान से अधिक सबधित होती थी। इसका कारण पर्याप्त अवकाश और नये-नये साहित्य अध्ययन का प्रभाव ही कहते हैं, इनमें दोनों को लिखने की भी बहुत प्रथा थी। गद्य से अधिक पद्य को अभिव्यक्ति का साधन मानते थे। एक दोहे में वह अपनी स्थिति का वर्णन करती है कि मैं तुम्हारे बिना निर्जीव सी हूँ—

शीशी भरी गुलाब की भेजू किसके हाथ,
बड़ हमारा यहाँ पड़ा, दिल तुम्हारे पास।

खडीबोली का प्रकीर्ण-साहित्य

इन दोहो का विषय प्रेमाभिव्यक्ति ही थी । परदेसी के प्रति जो निर्मोही है, कोई उलाहना देती है तथा अपने वियोगी हृदय का यथातथ्य और स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करती है । वह कहती है—

हरा नगीना दम दमा, उँगली मे दुख देय,
ऐसे के पाले पडी, हँसे न उत्तर देय ।

प्रतीक्षा की भी कोई सीमा होती है । हरे-भरे वृक्षों को मुरझाया देख कर यौवन और जीवन दोनों के गुजर जाने का आभास हो जाता है । वह अपने सदेह को पत्र में प्रकट करती है—

नदी किनारे रुखडा, पात गये सब सूख,
गोरी सूखे बाप के, तोरी कैसा फूल ।

प्रेम की अधिकता से कागज़ और उसको व्यक्त करने की उसकी असमर्थता का बोध होना स्वाभाविक है । इसी भाव को बहुत सुंदर शब्दों में व्यक्त करती है—

कागज़ थोड़ा हित घना, क्योंकर लिखूं बनाय,
सागर में पानी घना, गागर में न समाय ।

प्रिय का पत्र न आने पर वह व्याकुल हो उठती है तथा उसका विश्वासी हृदय भी एक बार आशक्ति हो उठता है —

साजन पाती ना लिखी, बहुत दिना गये बीत,
हम जानत हैं जगत में, मुख देखे की प्रीत ।

फिर वह कहती है कि आपके विरह में मेरी क्या दशा है—यह केवल अनुभव करने की बात है, कहने की नहीं—

कहन सुनन की है नहीं, लिखी पढी नहीं जात,
अपने जी से जानिये, मेरे जी की बात ।

एक दोहे में वह कहती है, प्रियतम ही तो सुहागिन के जीवन की एकमात्र शोभा है । वह अन्य उपमाओं के साथ तुलना करते हुए उसके महत्व को समझाती है—

डाल की शोभा कमल है, धन की शोभा दान,
मेरी शोभा आप हैं, जैसे मुख में पान ।
कही पर वह लिफाफे को संबोधित करके कहती है—
चला जा रे लिफाफे तू कबूतर की चाल,
मोहब्बत होगी गर, तो देंगे जवाब ।

उसे पूर्ण विश्वास है कि उसका प्रेमी, प्रेम-विभोर होकर अवश्य ही उत्तर देगा। उसकी दृष्टि में प्रेम का आदर्श बलिदान ही है—

प्रीति ऐसी कीजिए, जैसे लोटा डोर,

गला फसावे अपना लावै पानी बोर।

यहाँ पर बहुत मनोवैज्ञानिक चित्र है, मनुष्य जब कहने या लिखने बैठता है तो अपनी असमर्थता का अनुभव करता है—

लिखना था सो लिख दिया, लिखना था कुछ और,

कलम हाथ से छूट गया, कागज है बेगौर।

इस प्रेमविभोरावस्था में भावुकता के कारण वह बहुत कुछ न कहने वाली बातें तो लिख जाती है और लिखने वाली बातें उससे छूट जाती हैं। तब के पत्रों में आर्थिक व पारिवारिक कष्टों व दुखों का वर्णन, स्त्रियों के प्रेम की सच्चाई का वर्णन, बहुत ही मर्मस्पर्शी भावनाओं के साथ मिलता है।

उस समय के पत्र, व्यापार-संबन्धी या साधारण होते थे जो नीरस और भावशून्य होते थे तथा स्पष्ट शैली में होते थे। उस समय पारिवारिक घरेलू पत्रों का भी एक निश्चित रूप था, उदाहरणार्थ—पिता के पत्र पुत्री के नाम, माता के पुत्री के लिये, इनकी शैली उपदेशात्मक होती थी तथा इनके द्वारा समाज में प्रचलित मान्य, नैतिक व सामाजिक शिक्षाओं का पता चलता था जो साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से अपना मूल्य रखते हैं। तब लोगों का ध्येय आदर्शवादी जीवन व्यतीत करना तथा करवाना होता था जो देश, काल और सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप होते थे। उनमें सामाजिक मान्यताओं का उल्लेख मिलता है।

आज के पत्रों में परिस्थिति और वातावरण के अन्तर के कारण अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ गया है। इनमें उस समय की नारी की मनोदशा की प्रतिक्रिया है। तब नारी दबी हुई, दीन, दुर्बल, असहाय व पराधीन थी जब कि आज की नारी शिक्षित होने के साथ ही साथ, आत्मविश्वासी, स्वतंत्र और सबल है। आज प्रेम किताबी ही नहीं, कुछ अशो में व्यावहारिक हो गया है। यद्यपि नारी ने सघर्ष करके बहुत से बघन तोड़ डाले हैं पर फिर भी प्रेम और विरह, ये दो शाश्वत भाव अब भी वर्तमान हैं और सदैव रहेंगे।

युगों के परिवर्तन के बाद उनमें किञ्चित् मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। आज के व्यस्त जीवन में किसी को भी इतना समय नहीं और न ही आज का युग केवल प्रकृति-चित्रण का है। अब भाव सरल शब्दों में प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त किये जाते हैं, शब्दों के जाल में ही उलझे नहीं रह जाते।

खड़ीबोली का प्रकीर्ण-साहित्य

यह सरल, स्पष्ट शब्दों की अभिव्यक्ति अपना प्रभाव डालती है। आज के स्वच्छन्द और शिक्षित वातावरण में पत्र-व्यवहार एक अति साधारण घटना है, अतः वह जीवन का एक स्वाभाविक अंग बन गया है और इसी से यह कृत्रिमता और साहित्यिकता से भिन्न है।

पत्रों का यह क्रमिक विकास साहित्य व समाज के अध्ययन में सहायक सिद्ध हो सकता है। इनका संग्रह, विश्लेषण व अव्ययन उपयोगी है। कुछ अन्य दोहों को यहाँ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

हाथ दर्ई कैसी भई, अनचाहत का सग
दीपक को भाये नहीं, जल जल मरे पतंग ।
प्रीत करै ऐसी करै, जैसो लीलो रंग,
घोये से छूटै नहीं, जाय प्राण के सग ।
सक्कर भरी परात, चाखो एक डली,
फूहड़ की सारी रैन, चतर पिया की एक घडी ।
आँख की स्याही को, स्याही में मिला कर खत लिखा,
पढते समय आँखें हमारी, देख लेगी आपको ।
प्रीति ऐसी कीजिए, जैसे कच्चा सूत,
उलझे से सुलझे नहीं, गाँठ पडी मजबूत ।

खड़ीबोली का लोक-नाट्य

७

लोक-नाट्य से हमारा तात्पर्य उन नाटको से है जिनके अभिनय के लिये रगमच और प्रसाधन की तैयारी नहीं करनी पड़ती। इनमें संगीत प्रधान होता है। लोक-नाट्यों का जन-जीवन में एक विशेष महत्व है। विशेषतया लोक-समाज में उल्लास के क्षणों को इनके द्वारा ही उचित मान्य अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें जीवन का यथातथ्य चित्रण मिलता है। यथार्थवाद व आदर्शवाद की अधिकता तथा कल्पना का अंश कम होना ही इनकी विशेषता है।

“लोक-नाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक-कथानको, लोक-विश्वासों और लोकतत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।”

“संसार के प्रायः सभी देशों में नाटक के आदि रूप का उदय किसी न किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के फलस्वरूप हुआ है। वीरपूजा की भावना अथवा धार्मिक आदेश जो कि प्रायः प्राणिमात्र के हृदय में किसी न किसी अंश में निहित रहता है, धीरे-धीरे नाटक का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि अपने आदि रूप में यह नाटक बड़ा ही साधारण और अपरिमाजित होता है।”

जन-जीवन में इन नाटकों का एक विशेष महत्व था तथा हिन्दीभाषा-भाषी प्रदेश के प्रातःप्रातः में लोगों की सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी मिला-जुला हुआ करती थी। वह अपनी रुचि के अनुसार ही अपने इष्ट देवता तथा उनसे संबंधित पौराणिक-कथा चुना करते थे। इन नाटकों का उद्देश्य न केवल मनोरंजन वरन् जनता का नैतिक उत्थान करना ही होता था। राम-लीला और रासलीला इन नाटकों का एक सामान्य रूप है जो थोड़े बहुत अंतर के साथ सभी जगह प्रचलित है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम देखते हैं कि मानव आत्माभिव्यक्ति करने वाला प्राणी है। बिना शारीरिक क्रियाओं, मुख-मुद्राओं और कायिक अभिनय से उसे

१ भारतीय नाट्य-साहित्य—संपादक डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८४

२ हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—वेदपाल खन्ना, पृ० १५

सतुष्टि नहीं होती। जब हम शब्दों द्वारा भावामिव्यक्ति करने में असमर्थ रहते हैं तो स्वाभाविक रूप में हाथों से स्थिति स्पष्ट करते हैं तथा वह भी अभिनय का ही एक रूप है। आदिनिवासी तो इस प्रकार भाव-विभोर होकर नाच भी उठते थे। सभ्यता और सस्कृति के साथ धीरे-धीरे मानव ने अपनी भावनाओं का नग्न-प्रदर्शन सयत कर लिया और अब वह सभ्य रूप में सयमित अभिव्यक्ति करता है। यही सयत अभिव्यक्ति नाटको का आदि-स्रोत मानी जाती है। इनमें शिक्षा, सभ्यता और सस्कृति का योग है।

भारतीय नाटको की तथा अभिनय कला की उत्पत्ति धार्मिक समारोहों तथा पर्वों पर ही विशेष रूप से हुई है। लोकनाट्यों के यही धार्मिक व सामाजिक रूप शनै-शनै अनुभव के द्वारा तथा शिक्षा के द्वारा शास्त्रीय नाटक का रूप ले लेते हैं। लोक-नाट्य में हमें नृत्य, संगीत और अभिनय, यह तीनों तत्त्व मिलते हैं। यह तीनों ही तत्व उद्दाम प्रेरणाओं की, कामनाओं की कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। इन लोक-नाट्यों में आधुनिक एकाकी नाटको के मूल-तत्त्व, सक्षिप्त, अभिनय, रगमच और कथोपकथन आदि अविकसित रूप में मिल सकते हैं। यह एकाकी नाटक बहुत ही शक्तिशाली माध्यम है। परिष्कृत साहित्यिक नाटको की आधारभूमि यही लोक-नाट्य हैं।

“लोकनाट्यों की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोक-जीवन से उसका अग-अगी का नाता है। वाह्याडबरो और नागरिक सुसस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल ‘लोकधर्मी नाट्य शैली’ में ही संभव है। लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोकजीवन में इन नाटको का अपना अनोखा आकर्षण है।”

“हिन्दी नाट्य परम्परा का मूलस्रोत यह जन-नाटक ही है जो ‘स्वाग’ आदि नाम से प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान है। क्रमशः इन जन-नाटको की एक शाखा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण किया। इस चिरन्तन प्रवाह में काल तथा देश के संयोग से संस्कृत आदि भाषाओं के स्रोत भी आ मिले। इस सम्मिलन से यह प्रभाव अधिकाधिक रम्य तथा गतिशील होता रहा है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दी नाटक मौलिक है, अन्य भाषाओं से अपहृत नहीं।”

लोकनाट्यों की विशेषता उनके विभिन्न अंगों में स्पष्ट दिखायी पड़ती है

१. लोकधर्मी नाट्य परम्परा—रयाम परमार, पृ० ७

२. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डॉ० दशरथ श्रोभा, पृ० ४२

खडीबोली का लोक-नाट्य

जिनके प्रत्येक पक्ष का हम विस्तृत अध्ययन आगे करेंगे। यहाँ स्थूल रूप में कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं जो सामान्यतः मिलती हैं।

इन समस्त नाट्यों में व्यक्ति का महत्व नगण्य है। समूह, जाति अथवा समाज की भावनाएँ मंडलियों के संयुक्त अभिनय द्वारा व्यक्त होती हैं। अभि-व्यक्ति का माध्यम भावावेश से संबंधित होने के कारण पद्यमय अधिक और गद्यमय कम होता है। गद्य भी स्थानीय और सरल रंगों से पूरित होता है। पद्य में साधारण बातों का उल्लेख एवं लोकगीतों की बँबी-बँधायी रूढ़ शैली का प्रवाह होता है।

खडीबोली के प्रचलित विभिन्न रूपों में—नौटकी, स्वाग, भगत और ख्याल आदि प्रचलित रूप हैं। रामलीला और रासलीला तो इन नाटकों का एक सामान्य रूप है, जो थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी जगह प्रचलित हैं।

खडीबोली प्रदेश में नाटकों का एक रूप नौटकी भी प्रचलित है। इसको संगीत भी कहते हैं। 'संगीत' में संगीत और पद्य की प्रधानता है। इसका विषय रामायण, महाभारत, पुराणों एवं महापुरुषों की घटनाओं से लिया गया है। कभी-कभी लौकिक वीरों और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन भी रहता है। इनमें वार्तालाप का माध्यम पद्य रूप में ठेठ लोकभाषा ही रहती है। पात्र, गद्य कम ही बोलते हैं।

‘नौटकी’—स्वाग और लीला के समान ही नौटकी भी लोकनाट्य का प्रमुख रूप है। इसका प्रारंभ मुगलकाल से पहले का है। रामलीला के समान इसका रंगमंच भी अस्थिर, कामचलाऊ और निजी है। इसमें छोटे-छोटे बालक, स्त्रियों कावेश धारण करते हैं और उनका अभिनय किया करते हैं। “नौटकी का चर्च-विषय भी पौराणिक आख्यान ही होते हैं। लौकिक वीर प्राणी, साहसिक, भक्त पुरुषों के कार्यों से भी संबंध होता है। उन्हीं का इनमें अभिनय व प्रदर्शन होता है। उदाहरण के लिए—गोपीचन्द, हकीकतराय, पुरनभगत, रूपबसंत आदि।”

खडीबोली लोक-जीवन में ‘स्वाग’ जिसे साँग भी कहते हैं, जनता को बहुत प्रिय है। एक तरह से इसे ‘ओपेनएयर थियेटर’ कहा जाना चाहिये। ‘स्वाग भरना’ विचित्र वेशभूषा पहनकर नक़ल करना या अभिनय करना कहलाता है। ‘स्वाग भरना’ हिन्दी का प्रचलित मुहावरा भी है। लड़के ही स्त्री का भी अभिनय करते व नाचते हैं।

“पश्चिमोत्तर उत्तरप्रदेश दिल्ली और विशेषतः पंजाब के स्थानीय भागों

मे नायक का एक तीसरा भाग भी प्रचलित था जिसे नौटकी या 'सागीत' कहा जाता था। रास धारी मडलियों के समान ये नौटकियाँ भी दूरवर्ती स्थानों की यात्रा करके अपनी कला का प्रदर्शन करती थी। रासलीला की भाँति इनका भी अपना घरेलू ढंग का कामचलाऊ-सा रगमच होता था। इन सागीतों में सगीत और पद्य की प्रधानता होती थी और अधिकतर रामायण, महाभारत तथा पुराणों के महापुरुषों के जीवन की घटनाओं को इन नौटकियों की लीलाओं का विषय बनाया जाता था। कभी-कभी लौकिक वीरों और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन भी इनमें रहता था। गोपीचन्द, पूरनभगन और हकीकतराय की कहानियाँ, जो कि आज भी पंजाब में बड़ी लोकप्रिय हैं, इन नौटकियों में बहुत प्रचलित थी।^१”

‘नौटकी’ अथवा ‘सागीत’ के उदय के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसा कि डॉ० सोमनाथ गुप्त का विचार है, सागीत शब्द की व्युत्पत्ति ‘सगीत’ शब्द से हुई होगी। नौटकी या सागीत में सगीत की प्रधानता होने के कारण इस मत की पुष्टि भी हो जाती है। अथवा ‘सागीत’ शब्द को साँग (नकल) के अर्थों में ग्रहण कर लिया गया होगा। मध्यकाल में प्रचलित आमोद-प्रमोद के साधनों में ‘साग’ या ‘स्वाग’ का विशेष स्थान है।

“सरल जनता में किसी बात को प्रभावोत्पादक ढंग से कहने-सुनने के लिये अनुकरण—स्वाग को अपनाया जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति अथवा घटना का चित्रोद्घाटन ही नहीं होता बल्कि ऐसा करते हुए आदमी दूसरों का पर्याप्त मनोरंजन भी करता है। स्वाग गाँवों में बड़ा लोकप्रिय है। स्वाग अनुकरण (नकल) का ही परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप है। किन्तु नकल प्रायः हास्य विषय को ही लेकर की जाती है जब कि स्वाग की परिधि में आने वाले विषय हैं—धार्मिक (मोरध्वज, नरसी, हरीचन्द), ऐतिहासिक अथवा सामाजिक (प्रताप शिवाजी, अथवा दयाराम, रघुबीरसिंह आदि), स्वागों में राष्ट्रीय अथवा स्थानीय चरित्रों का चित्रण रहता है, या उनका आधार सत्य वा अर्धसत्य प्रेमगाथाएँ हुआ करती हैं।^२”

“इन सागों में जीवन से सबधित सभी मूल भावनाओं का चित्रण रहता है किन्तु इनमें अधिकतर वीर, शृंगार, कर्षण, अथवा भक्ति की भावनाओं का ही विस्तार किया जाता है। कदाचित् ‘साग खेलना’ वाक्य में ध्वनि है कि

१. हिन्दी नाट्य साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—वेदपाल खन्ना, पृ० १७

२. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डॉ० सोमनाथ गुप्त पृ० १६

ग्राम्यो में स्वाग, वीर-योद्धाओं के रण-कौशल की अनुकृति के रूप में ही चले । कुहप्रदेश में स्वागरचयिता कवि काफी सख्या में हुए हैं, इनकी शिष्य परम्परा भी विशाल है ।^१ साग नाटको में प्रायः सभी विषयों का समावेश मिलता है जिनमें पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मुख्य हैं ।

स्वाग में शृंगार रस भी प्रधान होता है तथा लौकिक-प्रेम की भी प्रधानता मिलती है । इनकी अभिनयव्यवसायी मडली गाँव-गाँव में भ्रमण करती हुई दिखायी देती है । स्वांग का ही दूसरा नाम सगीत नाटक है । इन नाटको में ही सुल्ताना डाकू से लेकर मर्तुहरि और अलाउद्दीन बादशाह से भक्त पूरनमल जैसे महात्मा बनाये जाते हैं । इसमें अभिनेता नृत्य-कुशल होते हैं और सपूर्ण कथानक का अभिनय नृत्य के द्वारा प्रदर्शित करते हैं । इन्हें सगीत का पूरा ज्ञान होता है तथा सभी रागों के गीत इन्हें कठस्थ होते हैं । इनमें कथोपकथन भी कविता के माध्यम से होता है । ये लोग भजन, गजल, गरबा, रास, दुहा, दोहरा, साखी, सोरठा, छप्पय, रेस्ता आदि का प्रयोग करते हैं ।

“स्वाग नाटक के मुख्यतः दो रूप प्राप्त होते हैं—पूर्वी और पश्चिमी । पूर्वी रूप—हाथरस, एटा आदि जिलों में प्रचलित है और पश्चिमी रूप हरियाणा और रोहतक में । पूर्वी रूप के आधुनिक कवि नथाराम और पश्चिमी के लक्ष्मी एव हरदेवा माने जाते हैं । हरियाणा ब्रजभूमि और मेरठ कमिश्नरी के विस्तृत भू-भाग में लोकनाटको की यह परम्परा शताब्दियों से निरन्तर चली आ रही है ।”^२

“यह स्वाग-परम्परा शताब्दियों से मौखिक आ रही थी । लेखबद्ध स्वाग का प्रमाण १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिलता है । ५० रामगरीब चौबे स्वाग की व्युत्पत्ति के सबध में लिखते हैं कि अम्बाराम नामक एक गुजराती ब्राह्मण सहारनपुर में निवास करते थे । सर्वप्रथम आधुनिक शैली में उन्होंने स्वागों के नामों की रचना की और सन् १८१९ के आसपास इनका अभिनय हुआ ।”^३

उपलब्ध स्वाग-साहित्य हाथरस और रोहतक की दो शैलियों में लिखे जाने के कारण दो रूपों में मिलता है । देहात में यह वार्ता अति प्रचलित है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में दीपचन्द नामक स्वागी था । उसमें काव्य-

१ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, १६ वाँ भाग, नामरी प्रचारिणी सभा, पृ० ५०५

२ भारतीय नाट्य साहित्य—संपादक डॉ० नगेन्द्र पृ० ८३

३ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डॉ० दशरथ ओझा, पृ० ३६

प्रतिभा के साथ-साथ अभिनयकला सबधी गुण भी थे। उसने अश्लील और शृंगारी स्वागो का बहिष्कार करके वीररसपूर्ण स्वागो की रचना की और जनता में वीरता के प्रति उत्साह पैदा किया। उसकी शिष्य-परम्परा रोहतक में अभी तक चली आ रही है। उसके नाटक पौराणिक, राजनीतिक तथा सामाजिक होते हैं। हास्य-रस का स्वाद स्थान-स्थान पर मिल जाता है।

आजकल जनसमाज में स्वाग के कई रूप प्रचलित हैं। आधुनिक स्वाग नाटको में गद्य का प्रवेश स्पष्ट रूप से साहित्यिक नाटको का प्रभाव है यथा— नौटकी, निहालदे, हीरराज्ञा, नवलदे। स्वाग के अतिरिक्त होली के समय ग्रामीण जनता 'भाड़' नामक नाटक द्वारा मनोविनोद करती है।

“नौटकी का कथानक प्रणय वीरता, साहसपूर्ण घटनाओं से भरा रहता है। वह किसी लोकप्रसिद्ध वीर, साहसी या भागवत पुरुष की कथा पर अवलंबित रहता है। इसमें अनेक स्त्री-पुरुष पात्र होते हैं। स्त्री-पात्रों का अभिनय या तो विवाहिता या कुमारी स्त्रियाँ करती हैं अथवा वेश्याएँ करती हैं। वेश्याएँ दृष्टांत में, मंच पर आकर अपने नृत्य-गान, हाव-भाव, मुद्राओं से जनता का मनोरंजन करती हैं और नैपथ्य में अभिनेताओं को रूप-सज्जा आदि करने का अवकाश देती हैं। रंगभूमि में एक ओर गायको, वाद्य-वादको का समूह भी रहता है जो अभिनय, सवाद, नृत्य की तीव्रता, उत्कटता बढ़ाता रहता है। तबला और नगाड़े का विशेष प्रयोग होता है। तबले के तालों और नगाड़े की चोटों की गूँज रात में मीलों सुनाई पड़ती है जिसके आकर्षण से सोते हुए ग्रामीण भी नौटकी देखने पहुँच जाते हैं। रुचि-वैचित्र्य के समाधान, स्वाद के परिवर्तन और शक्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिये हास्यपूर्ण प्रसंगों की योजना रहती है जिसमें नारी-पुरुष के रूप में पात्र प्रहसन उपस्थित करते हैं। प्रायः सवाद पद्यप्रधान होते हैं। अभिनेता मंच पर दर्शकों की ओर जा-जाकर उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं और प्रश्न करते हैं। इस प्रकार सवाद प्रायः प्रश्नोत्तरात्मक होते हैं। उनमें उत्तेजना, साहस और दर्पपूर्ण उक्ति का बाहुल्य और प्रेम-प्रसंगों का आधिक्य रहता है। अधिकतर किसी वीर नायक को प्यार के फाँस में फँसा दिखाया जाता है जिसके कारण उसका पतन हो जाता है। अन्त में परिणाम, उपदेशपूर्ण दिखाया जाता है। उदाहरण के लिये हम 'सुल्ताना डाकू' को ले सकते हैं। जहाँ भक्त-चरित को दिखाया जाता है वहाँ भक्त के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ दिखायी जाती हैं, अंत में उसकी विजय प्रदर्शित की जाती है। यद्यपि नौटकी के समाप्त होने तक उद्देश्य प्रकट कर दिया जाता है तथापि सूत्रधार अंत में फिर मंच में आकर भलाई करने और बुराई से बचने, सत्य-धर्म के निबाहने की शिक्षा देता है।

नौटकी रात के ८ बजे से सबेरे ५ बजे तक चलती है।”^१

प्रायः नौटकी कार्तिक-मार्गशीर्ष अथवा चैत्र-वैशाख के महीनों में हुआ करती है। मेलों के अवसरों पर इनका विशेष आयोजन होता है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी जिलों—फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, एटा, इटावा, मैनपुरी, मेरठ, सहारनपुर आदि की नौटकी विशेष प्रसिद्ध है। ग्वालियर की नौटकी भी प्रख्यात हैं। रास मंडलियों के सदृश नौटकी की भी मंडलियाँ होती हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थानों पर घूम-घूमकर नौटकी के प्रदर्शन किया करती हैं। नौटकी ग्रामीण जनता की नाट्य-वृत्तियों का समाधान करने वाले मुख्य साधनों में अत्यधिक महत्वशाली हैं।

नौटकी, स्वाग, भगत प्रायः पर्यायवाची हैं। भगत, भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम है। स्वाग में प्रारम्भिक सरस्वती वदना रहती है। स्वाग का धार्मिकता से कोई सबंध नहीं, हालाँकि स्वाग मूलतः सगीत रूपक है। इसमें प्रसिद्ध लोककथा खेली जाती हैं। शृंगार-रस-प्रधान अथवा प्रेमगाथा की कोटि की रचनाएँ ही प्रधानता पाती रही हैं। प्रेमलीला अथवा रोमांस का सस्पर्श किसी न किसी रूप में होना ही चाहिये। नौटकी मूलतः किसी प्रेम कहानी की केवल नौटक वाली कोमलगी नायिका रही होगी।

इन सब का मुख्य छंद चौबोला है। इसके दो रूप मिलते हैं—लम्बी तान और छोटी तान। प्रत्येक चौबोल का आरम्भ दोहे से होता है जिसका अन्त चरण कुण्डलियों से होता है। इसके सहकारी वाद्यवृन्दों में नगाडा अनिवार्य है।

लोकनाट्यकार कथानक का कोई भी बंधन नहीं मानता। यद्यपि अधिकांश सामाजिक-जीवन व समस्याओं से ही सबंधित होते हैं पर वह आवश्यकता पड़ने पर तथा उपयुक्त प्रतीत न होने पर अपना कथानक पुराणों से भी ले सकते हैं तथा इतिहास के अंश से भी ले सकते हैं। यह किसी लोक-कथा तथा कल्पना से भी काम चलाता है। वे किसी काल्पनिक राजा या रानी का मबध किसी भी राजघराने से जोड़ सकता है क्योंकि उसका उद्देश्य इतिहास कहना नहीं अपितु भावामिव्यक्ति है और यही कारण है कि उसका कथानक इतिहास सिद्ध न होने हुए भी अमर रहता है। उसके लिये देश-विदेश का भी कोई बंधन नहीं रहता। वस्तुतः वह समाजवादी दृष्टिकोणों को लेकर लिखता है। कथानक के

द्वारा समाजवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करने का लक्ष्य दिखायी पड़ता है— उदाहरण के लिये जमींदारों का अत्याचार, भाई-भाई के झगड़े, स्त्री-पुरुष के झगड़े, पुरुषों की कामान्धता तथा उसकी शिकार स्त्रियाँ। खड़ीबोली प्रदेश में भी अन्य स्थानों की भाँति स्त्री-शिक्षा का अभाव है। युग-युग से पुरुष जाति ने स्त्रियों पर कितना भयकर अत्याचार करके उन्हें घर में ही बंदी बना रखा है, उन्हें किस प्रकार उनके जन्मसिद्ध अधिकारों से अपरिचित रखा है, इन सभी का वर्णन इन नाटकों, नौटकियों, ख्याल, भगत, लावनी, तथा स्वाग आदि में स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है।

पुरुषों के व्यवहार तथा शराब आदि व्यसनो में ग्रस्त रह कर अपने गार्हस्थ्य-जीवन के कर्तव्यों की उपेक्षा करने का सजीव चित्रण लोक-नाट्यों में अपने यथार्थरूप में दृष्टिगत होता है। लोकनाट्यों में समाज की अस्वस्थ और दुःखदायी स्थिति को जनता के सम्मुख नाट्यरूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य, सुधार ही रहता है। इनमें जमींदारों, साहूकारों, मिल-मालिकों, राजा-महाराजा आदि की पोल तथा उनके वास्तविक चरित्रों का वर्णन रहता है। ग्रामीण किसान, पूजापति साहूकार और मिल-मालिक के दुहरे पाटों के बीच में पड़कर किस प्रकार पिसा जाता है, इसका मर्मस्पर्शी चित्रण दिखाया जाता है। इसमें जमींदार और मिल-मालिक, किसान तथा मजदूरों को जोक की तरह चूसते हैं।

लोकनाट्यों में, अंग्रेजों के द्वारा शासन में किये गये परिवर्तनों, अत्याचारों तथा सुधारों पर भी ध्यान दिया जाता है। सामाजिक समस्याओं को भी इनमें प्रदर्शित किया जाता है तथा धार्मिक और राजनैतिक समस्याओं को भी अपने दृष्टिकोण से उपस्थित किया जाता है। कुछ नाटकों में भारत के स्वतंत्र होने के बाद का उल्लेख मिलता है। इसके अनेक मनोरम चित्र लोकनाट्यों में उपलब्ध हैं।

अधिकांश लोकनाट्य प्रेमगाथाओं से सबधित होते हैं। प्रेम, मानव-जीवन की शाश्वत अनुभूति है जिसकी अपूर्व महिमा है। इसी से सबधित त्याग, सुख, दुःख, सहानुभूति, ईर्ष्या इत्यादि का उल्लेख मिलता है। मानव-जीवन किसी भी परिस्थिति में हो, उसका हृदय प्रेम या विरोध एवं प्रतिक्रिया तथा घृणा से ओतप्रोत रहता है जिसकी उपेक्षा करना देवत्व-गुण है, जो ससार में दृष्टिगत नहीं होता। अतः लोकनाट्य में सबसे स्वभाविक और अधिक प्रचलित कथा प्रेममत्त्व सबधी मिलती है। इन प्रेम सबधी लोकनाट्यों में जातिभेद दिखलाया जाता है जिस पर प्रेम की विजय होती है। अनेक सधर्षों के पश्चात् अतः में विजय सच्चे प्रेम की ही दिखलायी जाती है। सच्चे प्रेम के द्वारा, लौकिक-प्रेम को ही पारलौकिक प्रेम का आधार माना जाता है।

इन कथानको मे कथाप्रवाह होता है यद्यपि प्रारम्भ शिथिल होता है पर मध्य मे द्रुत गति, लोकभावनाओ के अनुरूप चलती है। चामत्कारिक अभिनय और अस्वामाविक कथनो से नाटक के प्रति जनाकर्षण अधिक होता है। जन से सबधित रीति-रिवाजो, प्रथाओ, मान्यताओ और विश्वासो का बोलवाला सभी तरह के लोकनाट्यो मे रहता है। लोकनाट्यो मे स्त्रियो की पर्याप्त महत्ता दिवाई गई है। इतिहास एव पुराण से अनेक योग्य महिलाओ का चारित्रिक इतिवृत्त बनाया गया।

लोकनाट्यो के पात्रो मे स्थानीय वैशिष्ट्य अवश्य होता है। प्रत्येक पात्र किसी सामाजिक प्रवृत्ति-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। कला की सूक्ष्मताओ के अतिरिक्त उनमे एक अनगढ़ व्यक्तित्व होता है, जो उनकी स्थूल विशेषताओ के कारण प्रकट होता रहता है। यह अपनी विशिष्टताओ से विमूषित होते हैं, जो प्राय जाने-पहिचाने एव प्रचलित समाजगत प्रवृत्तियो के वाहक होते हैं—खूसट, बुड्ढा, सौत, दुर्गुणी पति, ढोंगी साधु, कर्कशा औरत आदि। लोकनाट्यो मे पात्रो को अभिनय की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। अधिकतर चार या दो स्त्री-चरित्र रखने से काम चल जाता है। उस समय हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं था अत अधिकतर मुसलमान ही अभिनय करते थे।

इनमे Prompter (सत्वरक) भी होते थे। वे निर्देशन करते थे और लय आदि सिखाते थे। गाने वालो को अलग-अलग जगह से बुलाया जाता था और कई महीने तक इनका अभ्यास कराया जाता था। स्वांग मे, अभिनय में भूल होने पर उसके लिए क्षमा न होती थी और अभिनेता को जला तक देते थे।

स्त्रियो के अभिनय के लिए पुष्ट ही वेश धारण करते हैं, अत स्त्रियो के चरित्र-चित्रण मे लालिन्य की कमी रहती है। 'विदूषक' अपने हास-परिहास से चरित्र की आन्तरिक बातों पर प्रकाश डालता है। नाट्य की विशेषताओ को प्रकट करने की अपेक्षा उमके द्वारा खलनायक और अन्य पात्रो की विकृतियाँ अधिक सच्चे ढंग से प्रस्तुत की जाती है।

रूप-योजना-प्रसाधन—लोकनाट्यो मे लम्बे-चौड़े प्रसाधन, अलंकार, मडकीले वस्त्रो की आवश्यकता नहीं होनी। कोयला, काजल, खडिया, गेरू आदि पोत कर तथा मुखौट लगाकर एव रंगीन वस्त्र धारण कर पात्र मंच पर प्रवेश करते हैं।

वेशभूषा—इनमे धोती, अगरखा, धाघरा, छडी आदि का उपयोग होता है। धोती के पहनने तथा छडी के धारण करने के ढंग से पात्र राजा या फकीर,

पडित या कृषक, मंत्री या सिपाही बन जाता है। इनमें सबसे विलक्षण पहरावा ओढनी है। ओढनी को सिर पर धारण करने की शैली और मुखमुद्रा के परिवर्तनों के द्वारा पात्रों की मनोवृत्ति आशिक रूप में अभिव्यक्त होती है।

स्वाँगादि के पात्रों की वेशभूषा कभी-कभी बहुत कीमती भी हुआ करती थी। पुरुष चूड़ीदार पाजामा, अचकन, और शादी के समय पहने जाने वाले कमलूबाब के जोड़े पहनते थे। यह राजसी-पोशाक का काम करती थी। पोशाक पत्तीदारों के घरों से किराय पर भी मिलती थी। यह Make up (मेकअप) करने में भी विशेषज्ञ होते थे। उस समय वह बिल्कुल स्वाभाविक से प्रतीत होते थे। यह लोग असली जेवर भी पहनते थे। अगर किसी कारणवश नहीं पहन सके तो दर्शक उनके अभावों की आलोचना करते थे। इस अवसर पर और भी वास्तविकता लाने के हेतु वातावरण में बहुत-सी नवीन वस्तुओं का निर्माण कर लेते थे, जिसका उदाहरण, हमें देव बन्द में सोरठ का कुआ देखने को मिला। पता चला कि यह सोरठ का साग खेलते समय सोरठ के पानी भरने के लिए बनवाया गया था, जो अब तक विद्यमान है।

खडीबोली प्रदेश में देवबन्द,^१ स्वागों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यह खेलने के लिये भी तथा रचयिताओं के लिये भी प्रसिद्ध है। पहिले देवबन्द में होली पर स्वाग खेलने की प्रथा थी। जो स्वाँग खेले जाते थे वह यही के रचयिता ही स्वयं लिखते थे। यह लोग पुराना या किसी दूसरे का लिखा हुआ स्वाग खेलने में अपना अपमान समझते थे। अतः हर वर्ष होली के अवसर पर नये-नये स्वाग रचे जाते थे। यह देवबन्द की ही विशेषता थी। यहाँ के जीवित स्वाग रचयिता^२ इसका उल्लेख गर्व से करते हैं। अन्य स्थानों पर मुजफ्फरनगर, मेरठ आदि खडीबोली प्रदेश के जिलों में स्वाग का चुनाव व अभिनय करते समय लोग इस पर ध्यान नहीं देते थे और उनके इस कार्य पर कोई आपत्ति नहीं होती थी। उनमें रचयिता की प्रतिभा का अभाव भी था। अब तो इस प्रतिभा का लोप हो रहा है। पिछले २५ वर्ष से देवबन्द में भी इसका अभाव मिलने लगा है। यहाँ पर हम देवबन्द के स्वाग के सबंध में विशेष विस्तार से चर्चा करेंगे।

देवबन्द में स्वाग फागुन सुदी एकादशी से आरम्भ होता था और फाग-दुलहड़ी-पडवा के दिन समाप्त होता था। इन पूरे पाँच-छ दिनों में एक ही

१ सहारनपुर जिले में एक बड़ा कस्बा।

२. पं० ज्योतिप्रसाद मुख्तार।

कहानी खेली जाती थी। इस का समय रात्रि के १० बजे से ४ बजे तक रहता था। इसमें अभिनय करने वाले सब पात्र पुरुष ही रहते थे और वही आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियों का भी अभिनय कर लेते थे। यहाँ पर स्वांग खेलना और खिलवाना एक प्रकार का शौक था जिसमें बहुत व्यय किया जाता था। इसका सब प्रबन्ध करने वाले व इस पर रूपया व्यय करने वाले पत्नीदार कहलाते थे। उनकी भी एक पार्टी होती थी। वह किसी न किमी उस्ताद को नियुक्त करते थे। स्वांग कई स्थान पर होते थे—एक ही समय में चार-चार स्थान तक में। उनमें तुलना, आलोचना तथा स्पर्द्धा होती थी, इसी कारण इनमें बहुत सावधानी भी रखने की आवश्यकता होती थी। दर्शक व अन्य पार्टी के लोग बहुत ही सूक्ष्म-निरीक्षण करते थे तथा कड़ी आलोचनाएँ भी होती थी। दर्शकों में कुछ तो शायरी से सवधित होते थे। वह प्रायः स्वांग के अभिनय की आलोचना उसी समय करते थे, पीछे नहीं और अभिनय करने वाले तथा करवाने वाले उसका उत्तर-प्रत्युत्तर भी उसी समय देने थे। इससे प्रनीत होता है कि वे लोग बहुत साहसी, तथा उत्साही प्रकृति के होते थे और हर प्रकार के आक्षेपों को मुनकर, अपमानित होकर भी हतोत्साहित नहीं होते थे, वरन् उसमें सुधार के संकेत खोजने थे और आवश्यक सुधार करते भी थे।

रगमंच—इनके लिये रगमंच की, या लोकमंच की आवश्यकता हुई। सर्वप्रथम तो रामलीला, रासलीला और नौटंकी आदि का अभिनय करते समय ही उसकी आवश्यकता का अनुभव हुआ। उनका रगमंच बहुत साधारण तथा घरेलू ढंग का होता था। लोकनाट्य के मंच खुले होते थे। मन्दिर के आँगन या चौराहे पर, किसी ऊँचे स्थान पर बलियों के सहारे तख्त डाल कर बनाये जाते थे। एक-दो पर्दों के द्वारा की गयी सजावट ही पर्याप्त होती थी। इनमें पर्दे बदलने की व्यवस्था नहीं होती थी।

साग मंच के लिये कुछ भिन्न आवश्यकताएँ भी होती थी। नीचे कई तख्त बिछाकर स्टेज बनाया जाता था और ऊपर शामियाने होते थे। शामियाने कम या अधिक सामर्थ्यानुसार ही होते थे। तख्त कड़ियों तथा लोहे की पत्ती आदि से तीन दरवाजे बनवाते थे। उनके आगे भी तख्त बिछाकर उस पर चौकियाँ बिछाते थे जिससे ऊँचाई रहे। इसी पर चढ़ कर लडके गाते थे। एक या दो लडकों को ऊपर के स्थान पर, महल में, बिठा देते थे जिससे लोगो को उत्सुकता रहे कि यह भी कुछ कहेंगे। जो अतिरिक्त लोग महल में होते थे उनकी सख्या केवल चार या पाँच होती थी। इनमें भी असली दो ही होते थे—नायक तथा खलनायक। तख्त के ऊपर दरी या चाँदनी बिछाई जाती थी। यह साग मंच, 'ओपेनएयर'

थियेटर का ही मूल रूप है—अनगढ़ रूप में। इसमें पदों का प्रयोग नहीं होता था जो भी होता था, वह वास्तविक दृश्यों में सबके सामने ही होता था।

कुछ दृश्य ऐसे अवश्य होते थे जिन्हें मंच पर नहीं दिखाया जा सकता था। अथवा वे दृश्य जिन्हें मंच पर दिखाना अभीष्ट न होता, उनका काम केवल सूचनामात्र से लिया जा सकता था। उदाहरण के लिये कोलाहल, आग लगना, खून खराबी, हत्याकाण्ड—आदि दृश्यों के लिये नेपथ्य काम में लिया जाता था।

दर्शक, आडम्बरो की ओर ध्यान न देकर कथा व कथोपकथन ही अधिक ध्यान में रखते हैं। ऐसे मंचों पर अभिनेताओं को अनेक प्रकार की सामाजिक स्वतंत्रताएँ प्राप्त होती हैं जो न तो दर्शक को अखरती हैं और न नाटक मंडलियों में ही कभी आलोचना का विषय बनती हैं।

वाद्य—स्वाग में वाद्यों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है। सबसे आवश्यक वाद्य सारंगी और तबला होते हैं। सारंगी के बिना स्वाग नहीं चलता। बोल को वही अदा करती है। सारंगी की विशेषता होती है कि इसमें बोल स्पष्ट सुनायी पड़ते हैं। उस समय सारंगी बनाने वाले भी विशेषज्ञ होते हैं। स्वाग में प्रयुक्त होने वाले अन्य वाद्य हैं—ढप्प, (चग पर ख्याल आदि गाते हैं), नक्कारा, ढोलक, चिमटा, हारमोनियम, खडताल, घडा, घटा, फूल की थाली, कटोरदान, अलगोजा (दो बाँसुरी), सारंगी तथा एकतारा।

संगीत नाट्यो की शक्ति है—ढोलक, झाँझ, मजीरे, करताल, बाँसुरी तथा हारमोनियम। ढोलक व नगारे के बिना भी काम नहीं चलता। इसपर पूर्णरूपेण आचलिकता का प्रभाव है। ऊँची आवाज, सामूहिक ध्वनि तथा आदि से अत तक वाद्यों का बजना, सबको प्रभावित करता है।

साग आरम्भ होने से पहिले बहुत देर तक नगाडा बजता रहता है जिससे सब गाँववालों को ज्ञात हो जाता है कि अमुक स्थान पर साग होने वाला है। नगाडे की ध्वनि बहुत ऊँची होती है, साग प्रारम्भ होने पर सभी वाद्यों का प्रयोग किया जाता है जिनमें हारमोनियम, सारंगी, नगाडा मुख्य होते हैं। अलगोजे का भी प्रयोग किया जाता है। कुछ सागी घडे का भी प्रयोग करते हैं। आवाज तेज करने के लिये यह लोग एक कान पर हाथ रख कर गाते हैं। साग में समयानुरूप सभी वाद्यों का प्रयोग होता है। इन वाद्यों के सम्बन्ध में हम तीसरे अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से कह आये हैं।

कथोपकथन—लोकनाट्यो में भावामिव्यक्ति का माध्यम अधिकतर पद्य ही होता है। पद्य बहुत सरल होता है जिसको सर्वसाधारण जनता समझ सकती है। यही ८० वर्ष पहले 'हिन्दुस्तानी' का रूप था, जो आधुनिक हिन्दुस्तानी का

प्राचीन रूप माना जाता है। उनमें प्रयुक्त होने वाली भाषा पद्यमय गद्य होती है। भाषा जब भी काव्यमयी होती है, गद्य का प्रयोग कम होता है। यह केवल भाड़ों के हास्यात्मक अभिनय अथवा इतिवृत्तात्मक प्रसंगों से किया जाता है। यह गद्य भी पद्यात्मक होता है।

पद्य में उर्दू और फारसी के शब्दों का भी प्रयोग रहता है। उर्दू और फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करना उस समय की विशेषता थी। यह जन-साधारण की भाषा थी। इनमें अलकारों का प्रयोग भी रहता ही है और इनमें सुन्दर रूपक, उपमा आदि भी मिलती हैं जो भाषा में स्वामाविक रूप से ही आ जाती हैं। यह ऊपर से थोपी हुई नहीं प्रतीत होती है। इनपर संस्कृत शैली का भी प्रभाव है। इसमें ख्याल शैली का रूप भी दृष्टिगत होता है।

इनके कलापक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनमें छंद का आग्रह उतना नहीं है जितना तर्ज का। तर्ज या रगत, जिनमें कविगण स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर उनको नित-नूतन नाम देते हैं, इस बात का प्रमाण है। स्वाग में चौबोले की तोड़ होती है जिसे चलन कहते हैं। ख्याल और झूलना कहने वाले, पिंगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं। जिन रागों का व्यवहार अधिक है वह आसावरी, मल्हार और जोगिया हैं। इन स्वागों में गायन इतनी जोर से होता है कि ८-१० हजार लोगों का समूह उसको भली प्रकार सुन सकता है, आव ज जोरदार और सुरीली होती है। पहले आधुनिक लाउडस्पीकर नहीं थे, पर जनता को उनकी आवश्यकता नहीं अनुभव होती थी।

तर्ज-लय—स्वाग में प्रयुक्त होने वाली तर्ज विशेष प्रकार की होती थी। ये सब अपने-अपने ढंग की अलग हैं। इनके उदाहरण अन्त में दिऐंगे हैं। यहाँ पर केवल नामों का उल्लेख कर के उनका परिचय ही दिया गया है यथा—लावनी, ख्याल, भेंट, रागिनी, मजन, गजल, दोहा, चौपाई, रेम्ता, दौड, तोड, शेर, गाना, मुनादी, जिकडी, तिकडी, चौबोला, बहरे-नबील, झूलना, कडा आजकल सिनेमा के गानों की तर्ज पर भी इनका गायन होने लगा है।

इनमें प्रयुक्त होने वाली मुख्य ताल नगमा, तीनताल, सोलह मात्रा, कहरवा, चारताल तथा रूपक है। स्वाग के आरम्भ में सबसे पहले निरगुन गाया जाता है। जिसके द्वारा देवी-देवताओं का मंगलाचरण करते हैं, इसे भेंट कहते हैं फिर प्रार्थना। उसके बाद जो उस स्वाग का उस्ताद होता है वह अपने स्वाग का परिचय देता है। किसी भी स्वाग के अखाड़े के उस्ताद को 'पाधा जी' कहा जाता है। वह अपने गुरु की स्तुति करता है।

इन स्वागों में कहीं पर भी नीरसता नहीं आने पाती थी, पहले दो चार चौबेले,

फिर रागिनी तथा अन्त मे भी रागिनी ही होती है। बीच-बीच मे कोरस गान भी होता है और अन्त मे जय-जयकार होती है। यह स्वाग कम से कम तीन-चार घंटे तथा अधिक से अधिक रात भर होते है। इनमे कोई भी अर्धविश्राम नहीं होता।

स्वाग खेलने के अवसर-विशेष भी होते है। सावारणतया तो यह होली से पहले खेले जाते है पर होली के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर भी कराये जाने की प्रथा है उदाहरणार्थ—मन्दिर बनवाना, कुआ खुदवाना, धर्मशाला के चन्दे के लिये, स्कूल के चन्दे के लिये अथवा मुहूर्त आदि के समय, तालाब बनवाने के अवसर पर तथा विवाह आदि के अवसर पर और कभी-कभी पुत्र-जन्म की प्रसन्नता के समय भी लोग स्वाग कराया करते है।

स्वाग अधिकांश सुखान्त ही होते है। इनमे सदैव सत्य व अच्छाई ही की विजय दिखायी जाती है जिसे जनता उसको देख व सुन कर अपने जीवन मे भी आदर्श उपस्थित करे तथा घर जाते समय जीवन व जगत् के प्रति एक अच्छी धारणा मन मे लेकर जाये।

स्वाग का आधुनिक रूप—स्वाग का चलन, ढाँचा वही है जो पहले था। इतना परिवर्तन अवश्य हुआ है कि उसकी तर्जों मे अब फिल्मी गानों को तथा उनकी तर्जों को भी ले लिया है। अब शब्दों मे भी कुछ परिवर्तन होता जा रहा है।

इधर मुजफ्फरनगर व मेरठ तथा सहारनपुर आदि खडीबोली प्रदेश मे जो स्वाग अत्यधिक प्रचलित है, उनमे से कुछ के नाम ये है—रूपबसन्त, पूरनभगत, हरिश्चन्द्र, अमरसिंह राठौर, पिरथीसिंह, किरणमयी (पतिव्रता), मोरध्वज, राजा नल, शाही लकड़हारा, चन्द्रहास, भगतधुरू, लैला-मजनू, शीरी-फरहाद आदि। पर ये स्वांग करना तो सागी अपनी साख के विरुद्ध समझते है। हाँ, कभी-कभी छोटे-छोटे सागी गाँव आदि मे अवश्य कर लेते है।

इधर मुजफ्फरनगर मे अधिकतर साग बुन्दू व पीर के चलते है, जो नाबीना थे तथा खानपुर जिला मेरठ के रहने वाले थे। इसी प्रकार मुसद्दी सागी मुजफ्फरनगर मे प्रसिद्ध है वैसे मगलसैन, रामचन्द्र, छोटेलाल भी है। रामचन्द्र खटीक है और छोटेलाल हरिजन। मुसद्दी का उस्ताद हरदेव पाधा था, जो करवाडा जिला मुजफ्फरनगर का रहनेवाला था।

आजकल प्रायः स्वाग एक ही रात मे समाप्त हो जाते है। यह केवल परम्परागत पेशा है और जीविकोपार्जन का साधन है। प्रतिभा तथा लगन के अभाव मे अब मौलिक रचनाएँ नहीं मिलती है। यह प्रायः दूसरों की रचनाओं का ही अभिनय करते हैं। पहले लोग दूसरों के द्वारा रचित रचनाओं का अभिनय करना अपना

अपमान समझते थे। वह स्वयं ही रचना करते थे और यह सब विशेष रुचि, शौक के कारण ही होती थी तथा उसमें प्रतिद्वन्दताएँ भी होती थी। तब इनका उद्देश्य केवल घनोपार्जन ही नहीं था। स्वाग का निमन्त्रण यह लोग इलायचियाँ बाँट कर करते थे, परन्तु अब केवल मनादी करा देते हैं।

उस समय ख्याल के भी दगल हुआ करते थे। स्वामी नारायणानन्द जी ने इस पर पुस्तक लिखी है। वह भी देवबन्द ही में रहा करते थे। इसमें भी दो-दो पाटियाँ हुआ करती थी—कलगी और तुरा। अब इस प्रकार के दगलो का प्रचलन नहीं रहा, क्योंकि ख्याल की कविता कठिन होती थी, इसमें शब्दचयन का बहुत ध्यान रखते थे। आधुनिक स्वागो में लावनी और चौबोलों का प्रयोग होता है। वास्तव में लावनी भी ख्याल का ही रूप है। लावनी सबसे पहले 'वनारसीदास' ने लिखी तथा 'चौबोली' की रचना 'बालकराम योगी' ने की। ये पंजाब के थे तथा कनफटे साधु थे। सागीत की दो प्रमुख तर्ज होती है—बैठीताल तथा खडीताल। बैठीताल के प्रवर्तक घनश्यामदास हैं तथा खडीताल के प्रवर्तक परशदीलाल, बलवन्तसिंह, बुद्धमीर, सगुवासिंह।

सागीत में चन्द्रलाल के सागीत भी बहुत चलते हैं। उन्होंने भावों के ऊपर विशेष महत्व दिया है तथा उसमें धार्मिक दृष्टान्त व ब्रह्मज्ञान का अधिक्य है। इस प्रकार के सागो में 'जाहरपीर', 'ढोला मारू' तथा 'निहालदे' आदि अधिक प्रचलित हैं। इस प्रदेश के आधुनिक मजन, होली, निरगुन, सागीत तथा ख्याल-रचयिताओं में निम्नलिखित लोक कवियों का नाम प्रसिद्ध है—

चौधरी घीसाराम, फूलसिंह, मीरदाद, सेठूसिंह, बालकराम, घीसा (सत), घनश्यामदास, लटूरसिंह (शिष्य खिम्मनसिंह)।

पहले स्वागो में नृत्यो का समावेश नहीं था। सभी भावमगिमाएँ हाथों से व इशारों से होती थी। परन्तु अब नृत्य ही प्रमुख होता है।

देवबन्द में सावन में राधावल्लभ के मन्दिर में झूले होते हैं जिसमें हमें रास का रूप मिलता है। यह स्वाग का रूप है, यहाँ जुलूस आदि बहुत अच्छी तरह से निकलते हैं। सन् १९११ से पहले रामलीला सूक्ष्म रूप में होती थी पर १९११ से बलवा होने पर बन्द हो गयी। अब सन् १९४८, १९४९ से यह फिर आरम्भ हुई। दो साल तक बाहर की पाटियाँ आकर रामलीला करती थी। अब तो यही के लोग करने लगे हैं। यहाँ पर रामलीला भी नाटक के रूप में होती है, रामायण के आधार पर नहीं।

होली के अवसर पर दिन में स्त्रियाँ स्वाग अलग करती थी। स्त्रियों के गाने

पृथक् स्वररचित होते थे। यह भी स्वाग का ही एक रूप है। विवाह आदि में खोडिए पर जो अभिनय होता है वह भी स्वांग का ही रूप है।

खोडिया—यह स्त्रीसमाज का लोक-नाट्य है। इसमें स्त्रियाँ बहु-बन्ने बनती हैं। दो स्त्रियाँ इसका अभिनय करती हैं तथा विवाह किया जाता है। यह कृत्रिम विवाह होता है। इसका उद्देश्य होता है असली वर-वधू का आधि-व्याधि टालना। कहीं-कहीं पर विवाह पहले वृक्ष आदि से कराया जाता है। खोडिये में विवाह के अतिरिक्त स्त्रियाँ गीति-नाट्य भी करती हैं जिनके लिये वे गूजरी, मनिहारी, लला, व्याही या मुर्गा के गीत गाती हैं। पुरुषों के न रहने पर वे इस अवसर पर अश्लील गीत भी गाती हैं। यह केवल स्त्रियों का ही उत्सव होता है।

सागी बेहूसिंह—देवबन्द (सहारनपुर) में बेहूसिंह प्रसिद्ध सागी हुए हैं। उन्होंने लगभग ४० स्वांग लिखे भी थे तथा लिखवाये भी थे। यह काम वह अपने निर्देशन में ही करवाते थे जिससे उसमें कोई त्रुटि नहीं होती थी। देवबन्द के चौबोलों का एक विशेष रूप था। इनकी तर्ज (रगत) बिलकुल भिन्न थी। यद्यपि पंडित बेहूसिंह निरक्षर थे पर वह बहुत ही अद्भुत स्मरणशक्ति के व्यक्ति थे। आपकी स्मरण शक्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि आप चटाई पर बैठ कर एक चौबोला बनाकर एक-एक तिनका तोड़ कर चटाई के नीचे रख देते थे। इस प्रकार दिन भर में २०-३० चौबोले, ख्याल, रागिनी, रेस्ता, कड़ा बना लेते थे। शाम को उमराव सिंह को एक-एक तिनका उठाकर लिखा देते, फिर तिनका फेंक देते। उनका सकेत तिनको में रहता था। आप से पहले स्वाग निम्नकोटि की कविता थी, जो वासनापूर्ण और अश्लील हुआ करती थी। आपने उसमें परिवर्तन किया और दार्शनिकता का पुट दिया। आपकी भाषा बोल-चाल की सरल भाषा थी। आप उसमें उर्दू और फारसी का प्रयोग करते थे। आपके पुत्र उसको उर्दू लिपि में ही लिखा करते थे। आपके स्वागों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिलती हैं, जो ८० वर्ष पूर्व की हैं। जिनका अनुवाद होना आवश्यक है। आपके साग 'राजामर्तृहरि' के दार्शनिक पक्ष का कुछ भाग यहाँ उदाहरण के लिए दिया जाता है—राजा मर्तृहरि पिगला की मृत्यु पर शोक कर रहे हैं तथा कहते हैं—

‘मेरी हॉडी फूट गई, मैं जलकर मरूँगा’

तभी बाबा गोरखनाथ जी आते हैं और राजा से एक हडिया माँगवाते हैं, राजा हडिया लाते हैं, वह जानबूझ कर उसे गिरा कर तोड़ देते हैं, हडिया के गिर जाने पर राजा से कहते हैं कि तू मेरी हडिया वापिस लाकर दे, इस पर राजा कहते हैं—

‘एक गई दो-चार मगाई, सोना चाँदी कूटी

बो वस्तु ना मिले, जो मेरे हाथ से छूटी’

गोरखनाथ जी राजा से हठ करते हैं, तो राजाजी कहते हैं—

‘मै समझूँ था नाथ जी, पाँच तत्व का अग
उन पाँचो के और भी पाँच रहे हैं सग ।
ए गुरुजी पाँच रहे हैं सग, काम उत्पत फल बोत्ता,
जो ना होत्ता मोह, जगत काहे को रोत्ता ।
ए गुरुजी, उसी सग की सिला, उसी पत्थर का मोत्ती
पारस भी पासाण, लाल पत्थर की जोती
ए गुरुजी, जो गीता, बेदाँत भू पठते सारे
ना धरती आकाश रवि होत्ते तारे’

तब बाबा गोरखनाथ जी कहते हैं—

‘कौन सासतर से पढा तै राजा ये गियान
इसी बास्ते जगत से लोप हुए सतवान
लोप हुए सतवान, विधि ने यही बाच रक्खा था
पाप बेल बो लई धरम से, सतबीज हरना था
तीनो युगो से खाली नरक कुड भरता था
अपने तन मे होत है सुई लगे दुख डेर
और बिगाने अग में पडी लगै शमशेर
ए बच्चा रे, पडी लगो शमशेर, लगे जिसके वही जाने
अनलागत मे मस्त दर्द किसका पहचाने,

ए बच्चा रे—

माटी की एक हंडिया सोइ सोइ रानी
तके दूसरा भेद, मूढ़ जग मे वो प्रानी
ए बच्चा रे—लख चौरासी जून, सब यही की माया
तै राजा क्या चीज, नारी की समझी काया’

इसप्रकार मिट्टी का बरतन मँगाकर तोड़ना तथा उसी को लेकर राजा भर्तृहरि को उपदेश देना, बाबा गोरखनाथ जी की इसी वार्ता को सुनकर तथा प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर राजा को वैराग्य हो जाता है, समार की निस्सारता समझ मे आ जाती है । आपके स्वाग सभी हस्तलिखित हैं जिनमे कुछ के नाम हैं—

लवकुश, भर्तृहरि, राजा विक्रम की कहानी, चन्द्रमान, वैतालपचीसी की ११ वी कहानी, पूरनमल नवलदे, सोरठ का साग, चन्द्रकला, रूपकला, मदनसिंह । आपका केवल एक स्वाग ‘स्याहपोश’ ही प्रकाशित हुआ है ।

इन स्वागो के कथानक प्रायः लौकिक प्रेम ही को लेकर लिखे गये हैं । इनमें

तीन बातें प्रमुख होती हैं—नायक, नायिका का प्रेम, मिलन तथा बिछोह । पहले योग-गाथाएँ भी मिलती थी । इनमें दो प्रकार की रगत प्रमुख थी ।

खड़ी रगत, चलती रगत—पूरनमल के स्वाँग में से इन दोनों तर्जों के उदाहरण यहाँ पर दिए जाते हैं—

चलती रगत—‘अजी, भौरे में बेटा मेरा, बीच में कइ साल
रवि दरसन होता नीं पूरन मेरे लाल’

चौबोल— ‘पूरन मेरे लाल हवा ना लगे तुम्हारे तन के -
जिससे ऐश खुशी ना होवें आग लगे उस धन के
जैसे सरप पडा पटियारी, दे दे मारे फन को
चन्द रोज में बाहर चलेगें, क्यों भटकावें मन को’
दोहा

खड़ी रगत— ‘भोड पडी सिमरूँ तुझे, तैं कर माता कल्याण
पाँच चोर तन भस्म हो, तो दे मुझको वरदान ।’
चौबोला

‘दे दीजें वरदान मेरी, हे लाइडो ज्वाला जी
मादर के मन्दिर चला, राखिये लाज माता जी
क्या जी मादर, कै जी मनु चला
दे दीजें राखिये लाज
ए चरनो में सीस धरूँ, नू ना अजमाइयो जी
मैं बालक नादान करो प्रान सहाई, माता प्रान सहाई
क्या जी मैं बालक नादान—करो’—

खड़ी रगत की विशेषता यह है कि इसको बहुत खींच कर गाते हैं । इसी प्रकार स्वांगों से पहले सुमिरन या भेंट गाने की प्रथा थी जो इस प्रकार होती थी—

‘बिघन हरन मगल करन, गिरजा पुत्र गनेस
अरघगी गिरजा सहित रच्छा करो महेस ।’

चौबोला— ‘रच्छा करो महेस आज एक ग्राम का लिखूँ फँसाना
चन्द्रकला पै प्रेमसैन दिल से हुआ दिवाना
उस शमा रूप पर हुआ एकदम दिल उसका परवाना
उसके इसक में उसने जाकर कुले वीराना छाना ।’

बेह्रसिंह जी के द्वारा रचित स्वांग में ‘लवकुश’ में बारहमासा का यह रूप अब तक प्रचलित है जो इस प्रकार है—

- ‘त्यागी बन के बीच, हरी मै क्या अवगुन कीना
तडप रही बेचैन अकेली, पीट रही सीना’
- आषाढ— आया घनघोर बरसता रिमझिम रिमझिम रिमझिम बारी
सुन कोयल की कूक इस जग मे खौफ लगे भारी
बोले चातक भोर भवर गूजै डारी डारी
मारग हो गये बन्द, भरे जल थल क्यारी क्यारी
- सावन— दामिनी, दमदम दमकै
घन घन घूमै जुगनू चम चम चमकै
सो सदमे दिल पर गम गम गमकै
- भादों— कारी रैन अधेरी है मुसकिल री जीना
तडप रही अकेली पीर
लगा असौज मास, कनागत करने की रत आई
जागै पितर निरास पास नहीं मेरे रघुराई
कौन पायता करै, कौन पूजै दुरगा माई
खाली चले तिब्हार, करम ने गरदिस खाई
तडप रही अकेली—
- कातक— सब करें दिवाली, भई रोसनी घर घर आली
इस मौसम मुझको बन डारी, कैसे कटे उमर मेरी बाली
- मगासीर— जाड़ा पड़े लगै है सीतल पसमीना,
तडप रही अकेली—
- पोह— पाला जोर शोर कर एकदम से आया
मुझ पापन को छोड गया लछमन घर को घाया
चढ़ी बदन में लहर, जुदाई का जलवा छाया
घरनी पर सिर धनु पड़ी ज्यू जहर का खाया
तडप रही अकेली—
- साह— अम्बा मौले उटकै
सहज सहज सर्वो रितु सटकै
हरी मिलन को ये दिल भटकै
यहाँ सह रही विपता के झटकै
तडप रही अकेली—
- फागुन— होवें फाग मेरा दिल होता ग्रमगीन
तडप रही अकेली—

कथ के कल्ले बयान प्रभु आ करो हृदय मे बास
दो बुद्धि वरदान तुम्हारे हों चरनो का दास
कडा ३— ऐ प्रभु जो पूरन करना आस, कहें दिलचस्प कहानी
जोधपुर के दरम्यात थे एक राजा और रानी ।

ख्याल— 'जैसा जो बावें बीज प्राणी वैसा फल पात्ता
बोए खार का बीज, बता फिर आम कहाँ से खात्ता
फलै न हरगिज जुलम हमेशा जालिम दुख उठात्ता है
खुद होत्ता है तबाह, किसी को नाहक जो सतात्ता है
जैसा जो बोवें बीज—

रावन ने किया जुलम देख वह तडप तडप मर जात्ता है
हिरनाकुल को देख, जुलम क्या उसकी गती बनात्ता है
करे जुलम क्यों खौफ खुदा से नहीं घबरात्ता है
ए मूरख जाने क्यों बकवास लगात्ता है ।'

प० ज्योतिप्रसाद जी का ही एक वाग्दमामा इसमे इस प्रकार दिया गया है—

'रो रही है बेचैन आह का भर रही है नारा
बरसैं दोनो नैन अशक की बह रही है धारा ।
कहाँ प्रीतम आप सिधारे, नहीं सुनते बचन हमारे
में मल्ले, आह के भर रही नारे'

दोहा— लगा महीना साढ का बरस रहा घनघोर
उमड उमड कर नाचते फिर रहे बन मे मोर
शेर— दामिनी दमके अबर गरजे जिया डरपा रहा
जिनके प्रीतम सग मे, बस लुट्फ उनको आ रहा
दोड— आया सावन मास एक बार, करै तीज्जो का तैवहार
झूल पड रहे घर बार जी,
रलमिल झूले सब नरनार, मेरी किस्मत की मार
में तो हो रही बेज्जार जी

उडान— रात भादों की अन्वियारी पति बिन है कटनी भारी
कभी उठती है घटा कारी

तोड— बिना पिया चल रहा, मेरे दिल पर गम का आरा
असौज मे बिप्र जिमावै, नित नित सराव का मौसम आवै
पायतों पूज्जै खुशी मनावै

- दोहा— कात्तक मे दीपमाल का, हो बड़ा तिब्हार
आला आत्मा रोशनी, होती घरबार
- शेर— मुझ अभागन को कहाँ अच्छे लगे तिब्हार
रोते रोते काटती है सब यूँ ही लो निहार
- दौड़— मगसिर मे यही मलाल, मेरी करता जान हलाल
मुझको रहता यही खयाल जी
कर दिया किस्मत ने पामाल सारा जाता रहा जलाल
अब तो आ ही गय ज़वाल जी
- उड़ान— आया पोह का मास निराला
पडने लगा तभी से पाला
बीरन ने किया मुझे तह बाला
- तोड़— 'सरदी का है जोर पती तुम बिन किसका सहारा है
माह मे अबा मौले कोयल कूक बोले है
कूक पिक जिगर को धोले है
- दोहे— फागन मे रलमिल सखी गावे उमदा राग
पी संग मिल मिल नार सब खेले होली फाग
- शेर— रग भर पिचकारियाँ कोई कोई मलता गुलाल
मुझ अभागन के रहे, हर बख्त ही दिल मे मलाल
- दौड़— हुए चैत के असार लगी मौसम बहार
मेरे दिल मे दरार जी
कहाँ दिल को करार हुई मै तो बेमार
रही पी को पकार जी
- उड़ान— मेरे निकले प्रान, हुई अकल हैरान
लगा ईश्वर से ध्यान
- तोड़— लगा माह बैसाख, चलै लू तपै सारा जहाँ
गरमी ने बदन तपाया मुझको बेमार बनाया
ईश्वर ने क्या दुख दिखाया
- दोहा— शिद्दत से गरमी पड़ी, लगा जेठ का मास
नार सभी पखा करे, बैठी प्रीतम पास
- शेर— आतिशे फुर्कत से मैं जल गई मिसले कबाब
चैन एक पल को नहीं तडपूँ बनी भट्टी की आग
- दौड़— मेरी निकली जाती जान नहीं बचने के प्रान

पति मुझपै कुरबान जी
 लिया क्या जी मे ठान—पती कहीं सी है धियान
 हुई मै तो परेसान जी
 उडान— पती क्या है देरी खबर आ लो मेरी
 मै तो थारी चेरी
 तोड— लगा महीना लौंद—मेरा जी घायल कर डाला
 रो रही—

ज्योतिप्रसाद जी का एक भजन इस प्रकार है—

‘मन किस उलझन मे पडा, हाय सुमिरता क्यों नहीं कृष्णमुरार
 भगतो का दुख हरने वाला, सारे जहाँ का रखवाला
 आखिर सब का वही सहारा, उसी का सब ससार
 मन किस उलझन मे पडा

भाई बन्धु पिता और माता
 स्वारथ का है नाता
 बेटा पोता बीबी भ्राता, सब मतलब के यार
 मन किस उलझन मे पडा .
 मोह ममता के त्याग डगर को
 हिरस हवा के छोड सफर को
 होश मे आ भज ले ईश्वर को
 करे वो बेडापार

मन किस उलझन मे पडा .
 धन दौलत और बाग बगीचे
 सग न जाये कभी किसी के
 तू क्यों भूला फिरे बावरे सग जा घरम उपकार
 मन किस उलझन मे पडा . ’

खड़ी बोली के लोक-नाट्यो की विशेषता—लोकनाट्यो के अध्ययन करने पर हम इन निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं —

लोकनाट्य, समाज व समुदाय की वस्तु है। यह व्यक्तिविशेष का काय नहीं है। अतः इसमें सम्पूर्ण समाज ही का दायित्व होता है। इसी कारण यह अधिक सफल भी हो जाता है।

लोकनाट्य पद्य-प्रधान होते हैं। इनमें गद्य का अभाव होता है पर फिर भी कभी-कभी उसका प्रयोग अवश्य होता है। पद्य अधिक प्रभावोत्पादक होता है तथा

सहजग्राह्य होता है और याद भी सरलता से हो जाता है, इसी से इनमें पद्य का ही प्रयोग विशेष रूप से होता है ।

स्वाग में अधिक आडम्बर नहीं होता, अतः यह ग्रामीण जनता की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं व अभिरुचियों के अनुकूल होता है । ये प्रायः खुले में होते हैं । तख्तों का ऊँचा मंच बनाकर उसके चारों ओर बाँसों का घेरा बना लिया जाता है । पट-परिवर्तन का विधान नहीं होता । प्रवेश व प्रस्थान सब दर्शकों के समक्ष खुले में होते रहते हैं । दर्शक मण्डल इस मंच के तीन ओर बैठ जाता है । इनमें कुछ भी अंक आदि नहीं होते । समस्त कार्य क्रमपूर्वक होते हैं । गीत-नृत्य और बीच में वार्त्ता भी चलती रहती है । इन स्वागों में सकेतों का प्रयोग भी बहुलता से होता है ।

इनका रूप परिवर्तनशील होता है । कथानक प्रायः पुराण, इतिहास एवं वर्तमान जीवन की घटनाओं से लिया जाता है जो सभी जनमत को अनुरजित करने वाले होते हैं । कथानक ढीलाढाला भी होता है । इनमें गति एक-सी नहीं होती । पूर्वार्द्ध में शिथिल गति से बढ़ती है और उत्तरार्द्ध में द्रुतगति हो जाती है ।

इनकी प्रेमकथाओं में प्रेमियों के बीच लम्बे कथोपकथन की सृष्टि की जाती है और फिर कवि उन दोनों के प्रेममार्ग की कठिनाइयों का विस्तृत व्यौरा स्वयं उपस्थित करने बैठ जाता है । रस की दृष्टि से यह बतरस है । यहाँ जीवन की झाँकियाँ बड़ी चित्ताकर्षक और स्वाभाविक मिलती हैं ।

मण्डली का प्रत्येक सदस्य अभिनय करना जानता है । वह हर पात्र का अभिनय कर सकता है । आपस में ही कोई एक व्यक्ति निर्देशन कर लेता है । अतिरिक्त निर्देशक कोई नहीं होता । हर व्यक्ति हर प्रकार के उत्तरदायित्व को निभाने को प्रस्तुत रहता है ।

इनमें लोकमान्यताओं का पूर्णरूपेण समावेश मिलता है । परम्परागत रीति-रिवाज तथा अभिप्राय किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते हैं । इन स्वागों में स्थानीय तत्व अवश्य मिलते हैं तथा समसामयिकता की छाप रहती है । काव्य में ठेठ लोकभाषा का ही व्यवहार होता है पर वक्रता और विदग्धता के साथ । इसी कारण वह जनसाधारण के लिए ग्राह्य होती है । इसमें सरल शब्दों में उपदेश की प्रवृत्ति का आधिक्य रहता है ।

इनमें शास्त्रीय पक्ष का अभाव रहता है । पिगल और सगीत, दोनों का ही अनुकरण रहता है, समावेश रहता है, लेकिन उसमें त्रुटियाँ दृष्टिगत होती हैं, वास्तव में उनका उद्देश्य यह नहीं होता । इन रचनाओं के कलापक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनमें छंद का आग्रह उतना नहीं है जितना तर्ज का ।

तर्ज व रगत जिनमे कविगण स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर उनको नूतन नाम देते रहते हैं, इनकी प्राण है ।

दोहा, चौबोला, चौपाई, कडा, दौड, तोड, छद, लावनी, आल्हा, झूलना और ख्याल स्वाग मे चौबोली की जोड होती है जिसे चलन या मुक्ताल नाम से पुकारा जाता है । ख्याल और झूलना कहने वाले पिगल के नियमों का पालन कुछ अच्छी रीति से करते हैं । इसमे उपदेशात्मक प्रवृत्ति पाई जाती है । जन-साधारण के जीवन पर आदर्श सुझावों का अमिट प्रभाव पड़ता है । वे उनका अज्ञात रूप से भी अनुकरण करने लगते हैं ।

लोक-नाट्यों के रचयिता लोक-कवि—लोकनाट्यों के ज्ञात और अज्ञात रचयिताओं के लिए लोककवि की ही सजा उपयुक्त है । यह लोककवि मूलतः लोक-गाथाओं की रचना करते हैं जिनको हम प्रबन्धगीत तथा लघुरूप में कथागीत भी कह सकते हैं । इसके हम दो भाग कर सकते हैं —प्रथम, वह जो केवल गेय है तथा दूसरे वह जो अभिनेय है । जो गेय है वह लोक-गाथा की श्रेणी में आते हैं और जो अभिनेयत्व रखते हैं वे लोकनाट्य की सजा में । खडीबोली प्रदेश में इन लोककवियों का बाहुल्य है । उनके नाम इस प्रकार हैं^१—

नाम	ग्राम	प्रसिद्ध रचनाएँ
१—सेढूसिंह	हापुड (जि० मेरठ)	होली, भजन, रागिनी
२—धीसा	भटीपुर "	होली
३—फूलसिंह	नगला कबूलपुर	भजन
४—शकरदाम	जिठौली	भजन
५—साधु गगादाम	जिठौली	भजन
६—लटूरसिंह	मउ खाम	भजन (निर्गुन)
७—बुल्ली	भगवानपुर नागल	स्वाग, रागिनी
८—प्रिथ्वीसिंह बेधडक	शिकोहपुर	रागिनी, भजन
९—बख्शीदास	शिकोपुर	"
१०—खूबी जाट	टीकरी	भजन रागिनी
११—चन्द्रलाल जाट	टीकरी	"
१२—नन्धू	मीरापुर (जिला-मुजफ्फरनगर)	"
१३—मास्टर न्यादरसिंह		"

१४—बुन्दू	मुजफ्फरनगर	स्वाग
१५—बलवन्तसिंह	"	"
१६—चन्द्रवादी	दत्तनगर	"
१७—तोफासिंह	कोटवालपुर	होली

इनके अतिरिक्त कुछ भक्त लोक-कवि भी हुए हैं। इनकी रचनाओं की प्रकाशित सूची परिशिष्ट में दी गयी है। वास्तव में लोक-कवि जनता से भिन्न कोई नहीं होता वह उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही की श्रेणी में है। ये अपने विषय से सुपरिचित होते हैं और उसकी गहराई में उतरने का प्रयास करते हैं।

इन लोककवियों को लोक-साहित्य की परम्परा ने ही जन्म दिया। मैं इनकी रचना को, जिनका हम प्रदेश में अनन्त भण्डार है, विशुद्ध लोक-साहित्य नहीं मानती। लोक-कवि अर्धशिक्षित जनता का मनोरंजन करते हैं परन्तु ये लोकजीवन के समीप हैं और उनके साहित्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन पर महत्व देने के अनेक कारण हैं —

(१) इन लोककवियों ने आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के वातावरण में भी प्राचीन कथाओं, गीतों, कथानकों आदि को सुरक्षित रखा। उनके इस उपकार के लिये लोक-साहित्य तथा उससे प्रेरित हिन्दी-साहित्य, उनका अनुगृहीत है।

(२) लोककवियों ने ही उस व्यक्तित्वहीन लोक-साहित्य की परम्परा को हर दृष्टि से बढ़ाया है। इन्होंने अपनी रचनाओं से योगदान किया है।

(३) इनकी भाषा ठेठ लोकभाषा से कुछ परिष्कृत है। इनमें पिंगल और संगीत दोनों का रूप मिलता है, यद्यपि किसी का भी पूर्ण ज्ञान नहीं।

(४) लोक-कवि अपने अनुभवजन्य तथा पंडित-ज्ञान के मिश्रित आधार पर रचनाएँ करते थे। इनमें प्रतिभा से अधिक साधारण ज्ञान और भावुकता है।

इस प्रकार के लोक-कवियों का इस क्षेत्र में बाहुल्य है। इनकी जीवनी, व्यक्तित्व, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ व इनकी कृतियाँ जिनमें शृंगार व भक्तिरस का प्राधान्य है, एक पृथक् अध्ययन व अनुसंधान का विषय हैं। यहाँ पर स्थानाभाव व समयाभाव के कारण मैं इसके विस्तार में न जाकर केवल प्रकाशित सामग्री की सूची व मुख्य लोक-कवियों के नाम ही परिशिष्ट में दे रही हूँ। यहाँ के लोक-जीवन में ये रचनाएँ बहुत अपना ली गयी हैं और जनता इनका होली तथा सावन और अन्य अवकाश व मनोरंजन के अवसरों पर बहुत ही स्वतन्त्रता से उपयोग करती है। एक पढ़ा हुआ व्यक्ति इसको पढ़ कर सुनाता है और अन्य इसको कठस्थ कर लेते हैं। इन कवियों के द्वारा ही संरक्षण और

सम्बर्द्धन हुआ। लोक-साहित्य को सुरक्षित रखने का श्रेय इन्हीं को है।

“लोक-कवियों से बढ कर प्रचारक कोई नहीं हो सकता। इस काम के लिये इनके पास उपयुक्त भाषा, सरलभाव और नैसर्गिक अभिव्यक्ति, ऐसी वस्तुएँ हैं जो साहित्यकार अथवा अन्य किसी प्रचारक में नहीं मिल सकती। इसके लिये इनका उपयोग किया जा सकता है। ये समाज में पारस्परिक सौहार्द्र, सांस्कृतिक जीवन में रुचि, समता और वीरता की भावनाएँ भर सकते हैं।

इसका प्रमाण स्वाग, झूल, ख्याल तथा कव्वालियों के वे दगल हैं जिनमें अपार जनता एकत्रित होती है। ये कवि चलते-फिरते पुस्तकालय ही नहीं, अपितु ये ‘जगमतीर्यगज’ हैं। गंगा-यमुना के इस प्रदेश—कुरुजनपद—में आज भी ऐसे अनेक कवि हैं तथा यहाँ की उर्वरा भूमि के गर्भ में विशाल वटवृक्ष बनने वाले न जाने ऐसे और भी कितने कवि-बीज छिपे हुए हैं।”

खड़ीबोली
की
लोक-संस्कृति
८

संस्कृति, अन्तर की तथा वाह्य जीवन की अभिव्यक्ति है। इसके अन्तर्गत हमारे जीवन के सभी भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य आ जाते हैं। वास्तव में हर समाज के मूल में कुछ नैतिक स्तर, धार्मिक विश्वास, संस्कार, सामाजिक नियम तथा अन्य सामाजिक क्रिया-कलाप होते हैं जिनको सामाजिक तथा धार्मिक स्वीकृति प्राप्त होती है। इस सब की पृष्ठभूमि में युगो-युगो से चला आता इतिहास छिपा रहता है। हर देश तथा समाज की उत्कृष्ट संस्कृति की आधारशिला वहाँ का लोकसमाज होता है। इसी लोकसमाज की संस्कृति—लोक-संस्कृति कहलाती है। लोक-संस्कृति पवित्रबद्ध कोई लेखा नहीं अपितु ये एक मानसिक धरोहर तथा विश्वास है जो लोकमानव को युगो से पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में मिलती रही है। यद्यपि सभ्यता, इस संस्कृति में सामयिक परिवर्तन करती रहती है परन्तु लोकमानव इस सभ्यता की ओर से मूक रह कर संस्कृति के प्रति उत्तरदायी रहता है। वह अपनी सभ्यता भी उसी संस्कृति को मानता है तथा मानना चाहता है। यदि वह परिवर्तन करता भी है तो परिस्थितिगत विवशता के कारण ही करना पड़ता है। इसीलिए किसी भी देश की लोक-संस्कृति में स्थायित्व होता है।

वैसे तो सम्पूर्ण भारत ही संस्कृतियों का देश है और सब संस्कृतियाँ अपना ही महत्व रखती हैं परन्तु खड़ीबोली-प्रदेश की लोक-संस्कृति इतिहास के पथ में मील के पत्थर की भाँति हैं जिस पर भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगतियाँ अपना चिह्न छोड़ती गई हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस प्रदेश को केवल हिन्दू-धर्म का ही क्षेत्र नहीं माना जा सकता। इस्लाम-धर्म पिरानकलियर तथा देवबन्द में अपने स्तम्भ लिये स्वतंत्र रूप से खड़ा है। जिला मेरठ में सरधना है। यहाँ इमाइयो का गिरिजा आज भी ईसाई धर्म की कहानी कह रहा है। तल्हेडी बुजुर्ग का मन्दिर जो सहारनपुर जिले में है, अपनी वाममार्ग की परम्परा निवाह रहा है। हिन्दू-धर्म के विरुद्ध तो हरिद्वार, शाकुम्बरी देवी, शुक्रताल, हस्तिनापुर, गडमुक्तेश्वर, दारानगर गज, विदुर आश्रम में लोक-जन की आस्था को सहारा देकर बढ़ाये चले जा रहे हैं।

इस प्रदेश में विभिन्न धर्मावलम्बी होते हुए भी सब के विश्वास एक हृद तक अन्योन्याश्रित है। यहाँ पर हिन्दू तथा मुस्लिम, दोनों ही संस्कृतियों का अपूर्व

समन्वय है जिसका उदाहरण हमे यहाँ के गांतो, रीति-रिवाजो, त्योहारो तथा भाषा आदि मे लक्षित होता है। हिन्दू, मुसलमानो के पीर मुर्शिद पर चादर जोडा शीरनी चढाते है, तो मुसलमान भी अखाडे मे उतरते समय 'बजरग बली' का लाल 'लगोट' वारण करते है और हनुमान जी का प्रसाद वॉटते है। इसी प्रकार हिन्दू-मुसलमान, ईसाई सभी धर्म के लोग एक-दूसरे के यहाँ विवाह-शादी मे आकर मुक्त रूप से भाग लेते है व हाथ वॉटाते है। कहीं-कहीं पर यह भी देखा जाता है कि ईसाइयो के दिन-प्रतिदिन के जीवन मे भी कुछ हिन्दू धर्म मे प्रचलित रिवाजो को माना जाता है—जैसे सध्या समय दीपक जलाते समय हाथ जोडना। इस धार्मिक सहनशीलता का एक विशेष कारण यह भी है कि ये प्रदेश दिल्ली से बिल्कुल ही लगा हुआ वसा है। दिल्ली के हर उथल-पुथल को इस प्रदेश ने खुली आँखो से देखा है। हर सस्कृति, सभ्यता तथा धर्म ने इसी देश पर अपना सबसे अधिक प्रभाव डाला है परन्तु इस प्रदेश ने उन सबको अपने रग मे रग कर अपना लिया है। यही कारण है कि यहाँ का वासी अपनी स्पष्टवादिता, अक्खडपन के साथ ही साथ दयालु, धर्मभीरु तथा सत्कार करने वाला भी रहा है।

यहाँ की घरती किसान का साथ देता है, उसकी मेहनत को कई गुना कर उसी को वापिस देती है। यही कारण है कि यह प्रदेश समृद्धिशाली भी रहा है। यहाँ का व्यक्ति केवल कृषक ही नहीं वह मशीन का उपयोग करना भी खूब जानता है। हलो के साथ-साथ वह ट्रैक्टर से भी खेती करता है तथा डेकली, अरहट के साथ 'ट्यूबवेल' भी उसको प्राप्त है। फिर भी वह धर्मावलम्बी तथा धर्मभीरु है। वास्तव मे लोक-समाज का एक विशाल जीवनदर्शन होता है जिसको वह अपना धर्म मानता है और जो उसके आचार-विचार तथा दैनिक कार्यकलापो मे मुखर रहता है। उसकी कथनी और करनी मे अधिक अंतर नहीं होता और यही उसके जीवन का मुख्य गुण है। उसका आचरण सीधा, सच्चा व धर्म-परायण होता है। वह पाप-पुण्य के प्रति जागरूक रहता है। वह अपने जीवन मे झूठ बोलना, चोरी करना, धोखा देना, हिंसा करना आदि महापाप मानता है और अपने को पाप से बचाने के लिये ही इनसे यथासम्भव दूर रहता है और पुण्य-लाम करने के हेतु परोपकार करता है। दोनो ही कृत्यो मे उसका स्वार्थ निहित होता है। वह इस लोक की सुख-सुविधाओ के लिये अपना परलोक नहीं बिगाड सकता क्योंकि पुनर्जन्म व कर्मवाद मे उसकी अडिग आस्था है। यही दो विशिष्ट धारणाएँ उसको सत्य पर ले चलने मे सहायक होती है।

लोकधर्म—लोक सस्कृति के अन्तर्गत जनजीवन का व्यापक लोकधर्म आ जाता है। विज्ञ-समाज का धर्म वेदो, शास्त्रो, तर्कसंगत तथ्यो, तथा अन्य वैज्ञानिक दृष्टि-

कोणो पर आधारित होता है। उनके लिए धर्म तथा उससे सबंधित समस्त अगमीमासा तथा आलोचना के विषय होते हैं परन्तु लोकमानव के लिए वेद, शास्त्र तथा धर्म, नाम से ही श्रद्धा की वस्तु है। इनके सम्मुख धर्मभीरु लोकमानव नतमस्तक हो जाता है। उसके पास भावनामय हृदय है, तर्कभरा मस्तिष्क नहीं। उसके धर्म में सृष्टि का हर अंग प्रकृति, जलवायु, आकाश, पृथ्वी, मानव, पशु-पक्षी पूज्य बन कर आता है। सृष्टि की सम्पूर्ण वस्तुएँ जो उसके इस जगत् अथवा दूसरे जगत् में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी रूप में सहायक हैं, उसकी उपासना के अंग हैं। उसकी अनुभूति व्यापक है। जीवन की वास्तविकताओं से उसका सहज साहचर्य होता है। उसके जीवन को जो प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, वह उसके मूर्त देवता हैं तथा जो अप्रत्यक्ष तथा अलौकिक रूप से उस पर प्रभाव डालते हैं, वे तो अमूर्त तथा सामर्थ्यवान् शक्तियाँ हैं ही। इसीलिए लोकधर्म को हम सहज रूप से दो अंगों में बाँट सकते हैं—प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष।

लोकधर्म के प्रत्यक्ष अंग के अन्तर्गत वे सभी सृष्टि के अंग आ जाते हैं जिनकी पूजा खडीबोली का लोकमानव जान कब से करता आया है। वह सूर्य, चन्द्रमा तथा मिनारो को भी पूजता है। प्रतिदिन प्रातः ही हर व्यक्ति सूर्य को प्रणाम करता है तथा अर्घ्य चढ़ाता है तथा रविवार को व्रत रखता है। चक्र बनाकर उसकी पूजा करता है तथा सूर्यास्त से पूर्व ही व्रत खोलता है। इस प्रकार चन्द्रमा की पूजा में पूर्णिमा का व्रत रखा जाता है तथा विभिन्न त्योहारों पर चन्द्रमा के दर्शन करके ही स्त्रियाँ पानी पीती हैं तथा भोजन करती हैं। 'चन्दनछठ' पर तो छोटी लड़कियाँ भी व्रत रहती हैं। जल की पूजा नदियों, कूपों तथा कुंडों के रूप में की जाती है। गंगा-जमुना आदि नदियाँ बहुत पूज्य मानी जाती हैं क्योंकि इनमें धुँस करने की अलौकिक शक्ति है तथा पालन की क्षमता भी है। खडीबोली प्रदेश के लोग नदियों पर शराब की धार चढ़ाते हैं, नदियों की तामसिक पूजा करते हैं तथा दलिया चढ़ाते हैं। कूप तथा कुंडों की भी पूजा की जाती है। परीक्षित गढ़ का नवलदे कुआ बहुत पूज्य है। कहा जाता है कि इसमें स्नान करने से कोढ़ तक दूर हो जाता है। इसमें भीम ने नागलोक का अमृत रखा था। इसी प्रकार मेरठ का सूर्यकुंड तथा देवबन्द का देवीकुंड तथा परीक्षित गढ़ का गाधारी का तालाब हगिठार का सनीकुंड भीम-गोड्डा आदि भी इसी प्रकार मान्य व पूज्य हैं। इन सबकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई ऐतिहासिक घटना घटी है। इसी प्रकार पंचतत्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा सभी का अपने-अपने रूप में पूजन होता है। ये शक्ति के द्योतक हैं। वृक्ष भी लोकमानव के विश्वास तथा श्रद्धा के मुख्य पात्र हैं। पीपल, बड़ तथा तुलसी लोकमानव की पूजा के विशेष पात्रों में से हैं। पीपल तथा बड़ की भी विभिन्न त्योहारों पर पूजा

होती है। तुलसी की पूजा तो प्रतिदिन ही होती है। आम, ढाक, जाँड आदि लड-कियाँ हवन की समिधाएँ हैं ही। आम की पत्तियाँ ही मंगलकलश में डालते हैं तथा बन्दनवार बनाने आदि शुभ कार्यों में प्रयुक्त की जाती है। सिरस की टहनी दिवाली पर दरवाजे पर लगायी जाती है। इससे वायु दूषित नहीं होनी। इसके अतिरिक्त लोक-समाज में कुछ असाधारण परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति भी पूज्य माने जाते हैं। यह व्यक्ति असाधारण शक्ति सम्पन्न होते हैं। पठन-पाठन, भक्ति पूजा, जप-तप आदि ऐसे ही कार्य हैं। इसी से लोकमानव ब्राह्मण को देवता की भाँति पूजता आया है। ग्रामों में आज भी प्रचलित है कि ग्राम के ब्राह्मण अथवा पुरोहित को अन्य जातियाँ देवता मानती हैं, इसीलिए उसको 'बाम्भन देवता' के नाम से संबोधित किया जाता है। यहाँ तक कि ब्राह्मण के बच्चे तक को 'बाबू' कहा जाता है। उसका नाम नहीं लेते। वह व्यक्ति भी उसके लिये पूज्य हैं जो मंत्र झाँक-फूँक आदि जानते हैं। उनको लोक-भाषा में 'भगत जी' के नाम से पुकारा जाता है। अतिथि भी देव-तुल्य माने जाते हैं। अतिथि देवता कहलाते हैं। इसीलिए अधिकतर घर के बड़े-बूढ़े अतिथि भी प्रतीक्षा करके ही स्वयं भोजन करते हैं। राजा भी ईश्वर का रूप माना जाता है, अतः पूज्य है। यद्यपि ये परम्परा अब समाप्त हो गयी है परन्तु लोक-समाज में प्रचलित कथाओं से हम इस बात का समर्थन पाते हैं। कन्या को देवी का रूप मानते हैं। विभिन्न देवी के त्योहारों में विशेषकर नवरात्र में तथा गाय के व्याने पर भी कन्या ही जिमाई जाती है। देवी अष्टमी के दिन कन्या जिमा कर उसके पाँव पूजते हैं, टीका लगाते हैं और वस्त्र-द्रव्य आदि सामर्थ्य तथा प्रथानुसार देते हैं। पहली लडकी को लक्ष्मी का रूप मानते हैं।

इसी प्रकार धार्मिक पुस्तकों का भी पूजन किया जाता है। सत्यनारायण जी की कथा की पुस्तक, हनुमान चालीसा, गीता, रामायण, विष्णुपुराण, विष्णु सहस्रनाम तथा भागवत आदि पुस्तकों को लोक-समाज पूजा में रखता है और पूज्य समझता है। वास्तव में अशिक्षित होने के कारण वह पढ़कर तो पुण्य उठा नहीं पाता, अतः पूजा करके ही पुण्यलाभ कर लेता है।

लोकजन के ससार में पशु-पक्षियों को भी उचित स्थान मिला है। पशुओं में गाय, विशेष रूप से काली तथा कपिला गाय तो सभी से अधिक पूज्य होती हैं। घुड़-चढ़ी के समय घोड़े को भी पूजते हैं। काले कुत्ते को माता का वाहन मान कर उसे दही पेड़ा आदि खिलाते हैं। बैल का भी पूजन होता है तथा गोबरधन के दिन तो घर के धन (पशु-गाय भैंस, घोड़ा) के गोबर से आकार बनाकर उसकी पूजा की जाती है। कुछ पशुओं की पूजा तो नहीं की जाती पर मान्य अवश्य है उनकी हत्या करना पाप समझते हैं जिनमें हाथी, बन्दर, लंगूर, सूअर, लोमड़ी आदि आते हैं।

हाथी, बन्दर, लगूर, सूअर आदि पशुओं का देवताओं से सम्बन्ध माना जाता है।

कुछ पक्षी भी पशुओं की भाँति पूज्य होते हैं जिनमें नीलकण्ठ, हंस, मोर आदि आते हैं। इस प्रदेश में हंस तो देखने को नहीं मिलता केवल कल्पना तथा धार्मिक ग्रन्थों तक ही सीमित है—लेकिन नीलकण्ठ अवश्य सहज दृश्य है। नीलकण्ठ का सीधा सम्बन्ध विष्णु भगवान् से है, ऐसा लोक विश्वास है। दशहरे के दिन इसको देखना अत्यन्त शुभ माना जाता है। इसी से लोग नीलकण्ठ के दर्शन हेतु मीलों तक चले जाते हैं। मोर के पखों से 'बाच्छी' अर्थात् आशोर्वाद दिया जाता है। साईं लोग अधिकतर मोर के पखों को झाड़ू की भाँति बाँध कर रखते हैं और इमी से ये लोग, बाच्छी देते हैं। श्राद्ध के दिनों में कौबो को भी 'ग्रास' दिया जाता है।

जाव-जन्तुओं को भी शुभ माना जाता है जिनमें सर्प मुख्य है। सर्प को लोग मारना नहीं चाहते तथा इनको देव-पितर माना जाता है और दूध पिलाते हैं। कहीं कहीं पर सर्पों के मन्दिर भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ—मुजफ्फरनगर में डल्लू देवता का मन्दिर इसी प्रकार का है।

इसी प्रकार चाक, कुआ आदि का भी विवाह में तथा पुत्रजन्म के अवसर पर पूजन होता है। ये भी लोक मानव की श्रद्धा और विश्वास के अंग हैं।

अब हम संक्षेप में अप्रत्यक्ष शक्तियों का उल्लेख करेंगे। जिनसे जन-जीवन का अटूट सम्बन्ध है। इनमें देवी-देवता, व्रत-त्योहार, लोक-विश्वास आदि आते हैं। लोक-मानव यद्यपि वेदों तथा शास्त्रों से बिल्कुल ही अनभिज्ञ है परन्तु वह अपनी सब क्रियाओं तथा अनुष्ठानों को शास्त्रसंगत मान कर ही करता है। अधिकतर अनुष्ठान तामसिक तथा तान्त्रिक विधियों पर ही आधारित होते हैं परन्तु लोकमानव उनको परम पवित्र मानता है। सिद्धियों में उनका बहुत विश्वास है। उल्टा सीधा मन्त्र मिल जाने पर वह उसी को जपता रहता है तथा अशास्त्रीय साधनों से भी सिद्धि करना चाहता है। वह देवी की सिद्धि, माँस मदिरा से करता हुआ पाया जाता है। भूतप्रेतों, दानव आदि को भी वह शक्ति मानता है तथा विभिन्न क्रियाओं से उनको प्राप्त करने का वह प्रयत्न करता है। वह पीर की पूजा करता है तथा श्मशान में जाकर स्वार्थ सिद्धि के लिए सयानों से 'हँडियाँ' आदि छुड़वाकर विभिन्न उपचार कराता है। शास्त्रीय विधियों को लोकमानव ने लौकिक रूप दे डाला है, वह उसकी अपनी निधि बन गयी है। जिसका उसे ज्ञान नहीं होता, उसको भी वह सत्य व पूज्य मान कर अटूट आस्था से निरन्तर मानता रहता है। यदि उसे विश्वास हो जाता है कि किसी वृक्ष पर प्रेत अथवा दानव रहता है तो वह उसे कटवाता नहीं, अपितु उस वृक्ष के नीचे दीपक जलाने लगता है। लोक-विश्वासों का इसके जीवन पर इतना अधिक प्रभाव है कि बीमारियों की चिकित्सा भी उसने अपनी तरह से

अपने लोक-ममाज में ही पा ली है । गला खराब हो जाने पर चाकू से पानी को काट कर पी लेने में वह ठीक कर लेता है । इसी प्रकार अन्य बीमारियों के इलाज भी लोक मन्त्रों द्वारा करते हुए देखा जाता है तथा उसके जीवन के बहुत से आस्था-विश्वास उसमें अपने लोकविश्वास में ही पलते हैं । जिन वस्तुओं को लोक-मानव बचपन से देखता आया है उनके अनुरूप चलना उसके जीवन का विधान है । यदि वह इसके विपरीत चला जाता है तो उसके जीवन में कोई भी अनिष्ट का कारण उपस्थित हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-मानव का एक अपना निजी लोकधर्म है जिसको वह शास्त्र-संगत मानता है । उसकी अपनी एक सरल और सहज लीक बन गयी है और वह उसी पर निरन्तर सच्चाई से चले जाता है । यदि वह उसकी सत्यता के सम्बन्ध में कभी शक्ति होता है उससे पाप हो जाता है और अनिष्ट के कारण उपस्थित हो जाते हैं । यदि हम ऊपर कहे गये 'निजी लोक धर्म' की विवेचना करें तो हम वहाँ पर मुख्यतः उसके लोक-विश्वासों को ही प्रधान रूप से उपस्थित पायेंगे । इन लोक-विश्वासों के अन्तर्गत उसके दिन प्रतिदिन के क्रिया-कलापों को प्रभावित करने वाले अन्धविश्वास, मन्त्र, टोनें-टोटके, देवी-देवताओं की उपासना तथा वनस्पति पूजन आते हैं ।

ये लोक-विश्वास सर्वव्यापी हैं तथा इनमें व्यक्तिगत धार्मिक, सामाजिक सभी परम्परागत तत्व मिलते हैं । लोक-जन के जीवन पर इनका इतना अधिक प्रभाव है कि बड़े से बड़े कार्य को रोक देने तक की शक्ति इनमें है । इसी प्रकार किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने की प्रेरणा भी यही देते हैं । इनका सच्चे अर्थों में वर्गीकरण करना तो बहुत कठिन है, फिर भी हमने स्थूल रूप में वर्गीकरण करने का प्रयास किया है । इसी वर्गीकरण की सहायता से हम अन्धविश्वासों का अध्ययन करेंगे । इन अन्धविश्वासों को दो मुख्य भागों में रखा जा सकता है—प्रथम, सामाजिक लोकविश्वास तथा दूसरा, पौराणिक लोक विश्वास ।

सामाजिक लोकविश्वासों को हमने छ दृष्टिकोणों से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है जो इस प्रकार हैं—

- | | |
|----------------------|--------------------------|
| १—मनुष्य सबधी | २—तिथि, वार तथा मास सबधी |
| ३—पशु-पक्षी सबधी | ४—प्रकृति-सबधी |
| ५—स्वास्थ्य सबधी तथा | ६—मिश्रित । |

१—मनुष्य सबधी—सामाजिक लोकविश्वास जो बालक के जन्म-दिवस, विवाह, मृत्यु तथा स्वप्न आदि से सम्बन्धित हैं, उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया गया है । यद्यपि यह पूर्ण नहीं है, परन्तु फिर भी अधिकांश भाग यहाँ लेने का हमने प्रयत्न किया है ।

जिन लोगों के बच्चे नहीं जीते हैं, बच्चे के जन्म के समय कान छेद दिये जाते हैं और जिह्वा पर गर्म सलाई से 'ऊँ' लिख दिया जाता है । माथे पर दाग लगा दिया जाता है तथा वर्ष भर तक या पाँच साल तक या किसी विशेष समय तक माँगे हुए कपड़े (पुरानी कतरन) पहनाये जाते हैं । गंगा माँ को बालक चढ़ाया जाता है । बाप बच्चे को जल में फेंकता है, बुआ या पुरोहित जल में खड़े रहते हैं तथा तुरन्त जल में सम्माल लेते हैं । उनको रुपये देकर बच्चा उनसे मोल लिया जाता है । इस प्रकार फिर वह बालक गंगा माँ का दिया हुआ प्रसाद रूप में माना जाता है ।

बालक के जन्म तथा जीवन के लिए जिनकी मनौती मानी जाती है, उनमें शाकुम्बरी देवी, हरिद्वार तथा गढ़गंगा आदि हैं । यहाँ पर बाल उतरवाने की भी मनौती मानते हैं । गढ़ की गंगा में नाव भी चढ़ायी जाती है । जो बच्चे किसी देवी-देवता की मनौती मानने पर उत्पन्न होते हैं, उनका नाम उन्ही देवी-देवताओं के नाम पर रख दिया जाता है । इसी प्रकार से दिनों के ऊपर भी नाम रखे जाते हैं । ठाकुरों में तथा कुछ जातियों में बच्चे के जन्म के लिये जिस देवी-देवता की मनौती मानते हैं, जन्म लेते ही माँ बच्चे को उसी स्थिति में डोली में ले जाती है तथा मंदिर के द्वार से ही लौट आती है ।

जन्म के अवसर पर घर में बाहर कोई न कोई स्त्री बैठकर रखवाली करती है और सौर-गृह के दरवाजे पर अग्नि, लोहा, बेल का कांटा आदि वस्तुएँ रखी जाती हैं । इसी भाँति सतिये रखने तथा बरतन चीतने की परम्परा के पीछे भी वेद की अपेक्षा लोक की प्रधानता रहती है । जन्म के बाद सौर-गृह में बिल्ली को नहीं जाने देते । इसके पीछे यही भावना होती है कि कहीं बच्चे की 'सूड़ी' न तोड़ लाये । छठी के दिन वैमाता बालक की भाग्यरेखा लिखने के लिये आती है । मूल नक्षत्र में जन्म होने पर २७ कुओं का जल, २७ पेड़ों के पत्ते तथा २७ अनाज आदि से मूल शान्ति करते हैं । बालक के नाम के सम्बन्ध में भी कुछ लोक-विश्वास हैं कि यदि पुत्र मामा के घर उत्पन्न होता है तो उनका नाम 'मामराज' भी रखा जाता है और अगर नाना के यहाँ तो 'ननकू', 'नानक' आदि नाम रखे जाते हैं ।

बच्चे के ऊपर वाले दाँत यदि पहिले निकले तो वह मामा के ऊपर भारी होता है । मामा इसका उपाय—चाँदी की कटोरी, सतनजा (मात नाज) तथा अन्य कुछ वस्तुएँ उजाड़ में—जहाँ कोई देख न सके—फेंक कर करता है ।

बालकों के बाल व कपड़े इधर-उधर नहीं फेंकते, क्योंकि बन्ध्या-स्त्री टोने-टोटके कर देती है । बच्चों को भीठा खिलाकर घर से बाहर नहीं निकलने देते क्योंकि भूत-प्रेत लगने का डर रहता है । अगर भोजनाही पड़े तो बाद में उपले (गोसे)

या कडे की राख चटा देते हैं। इसके पीछे यही धारणा रहनी है कि इससे 'अलाबला' वच्चे पर प्रभाव नहीं डालेगी। सोते हुए अगर लडकियाँ दाँत किटकिटाती हैं तो माता-पिता के लिये अशुभ होती है। लडका सोते हुए अगर दाँत किटकिटाए तो शत्रु को अशुभ होता है। जिन लडके-लडकियों के गालों में हँसते हुए गड़बा पड़ जाता है उनके सास नहीं होती। जिस लडकी की पीठ पर भाई होता है तो उस बहन की पीठ पर गुड़ की 'मेल्ली' फोड़ी जाती है। इसके पीछे यही भावना रहती है कि बहन की पीठ पर लडकी होने के कारण जो भार रहता है वह भाई ने जन्म लेकर समाप्त कर दिया। छोटे महीने में बालक के दाँत निकलना शुभ होता है।

छोटे वच्चों को, प्रसूता अथवा नव वर-वधू को पीर के स्थान पर अकेले नहीं जाना चाहिये। कहा जाता है कि ऐसा करने में उन पर अलाबला का प्रभाव हो जाता है। तीन बेटों के बाद भी बेटों भाग्यशालिनी होती है पर तीन बेटों के बाद का बेटा अभागा। बेटों गर्भ में हो तो माँ मोटी होती जाती है, बेटा हो तो कमजोर हो जाती है। जिस स्त्री का तलुआ पोला हो और सिर ऊँचा उसका पति असमय ही मर जाता है। पुरुष की छाती पर बाल न हो तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। स्त्री की छाती पर बाल हो तो वह बन्ध्या होती है। कोई फूल, विशेषकर चमेली लेकर सती की थान के पास नहीं घूमना चाहिये। चाँदनी रात में मिठाई-पान खाकर या दूध पीकर कहीं बाहर नहीं जाना चाहिये। किसी कन्न या समाधि पर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। वस्त्रों में सुगंधित द्रव्य या बालों में सुगंधित तेल लगाकर निर्जन में नहीं जाना चाहिये। बूढ़े अगर अधिक खाने लगे तो दरिद्रता आती है। ऐसा भी लोक-विश्वास है कि जब वृद्ध अधिक खाने लगते हैं तो उसका अन्त समय आ जाता है।

ग्रहण के समय गर्भवती स्त्रियों को कुछ काम नहीं करना चाहिये और न अपना कोई अंग मोड़ना चाहिये, नहीं तो बालक अग-मग रूप में जन्म लेगा। गर्भवती स्त्रियों के लिये ग्रहण देखना भी ठीक नहीं होता। उस समय गर्भवती स्त्रियों के हाथ-पाँव के नाखून गेरू से रंगे जाते हैं तथा पेट पर सतिया (स्वस्ति) चिह्न बना दिया जाता है।

लग्न के बाद से वर को तथा लडकी को अपने हाथ में लोहे की वस्तु पहननी पड़ती है। उसको घर से बाहर भी नहीं जाने दिया जाता है। लडके और लडकी के हाथ का कगना इसी का द्योतक है। बारात जाते समय पचतत्वों की पूजा करके उन्हें बन्द करके रखते हैं, जब तक कि वर निर्विघ्न वधू को लेकर घर

नहीं लौट आता। बिजली कड़कते समय मामा भाऊजे एक साथ बैठ कर खाना नहीं खाते। जेठे लडके, साँप, भैंस तथा काली वस्तु पर जल्दी ही बिजली गिरने का डर रहता है। दिन में कहानी नहीं सुनाते हैं, कहते हैं इससे मामा रास्ता भूल जाते हैं।

मकरसंक्रान्ति के दिन से या माघ मास में प्रतिदिन प्रातः पति का चरणोदक लेकर पीने से महात्तम (माहात्म्य) होता है और सौभाग्य वृद्धि होती है। मंगली लडकी का विवाह पहले तुलसी, केला या पीपल से करते हैं, बाद में असली वर से। इससे वैधव्य योग का खण्डन हो जाता है। रात के समय खाट नहीं कसते हैं, नहीं तो केवल लडकियाँ ही लडकियाँ होती हैं। बालको के सिर पर नहीं मारना चाहिये इससे 'लच्छन' झड़ जाते हैं।

बालको के दाँत टूटने पर चूहे के बिल में डाल देने हैं और कहते हैं कि जैसे नेवले के दाँत तेरे बच्चों के निकलते हैं, ऐसे ही मेरे निकले। यह गोबर में लपेट कर छत पर फेंक देते हैं या किसी पौधे के नाँचे दवा देते हैं। कोई भी कार्य प्रारम्भ करते समय प्रायः यह दोहा कहने की प्रथा है—

सदा भवानी दाहिनी गौरी पुत्र गनेस।

पाँच देव रक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

कुछ व्यक्तियों के नाम नहीं लिये जाते हैं। किसी कजूस, कम्बख्त या निपूत का नाम भी सबेरे-सबेरे नहीं लेते। कहते हैं कि सबेरे नाम लेने से दिन भर खाना नहीं मिलेगा।

पति, पत्नी का तथा पत्नी, पति का नाम नहीं लेते। जेठे (ज्येष्ठ) बेटे का तथा अपना स्वयं का नाम भी नहीं लिया जाता। रात के समय साँप तथा उल्लू का नाम नहीं लेते। तथा सबेरे बन्दर का नाम नहीं लेते। प्रातः अधिकतर लोग सबेरे सर्वप्रथम अपने हाथ की हथेलियाँ देखकर या धरती छूकर उठते हैं।

स्वप्न में चाँदी का देखना शुभ होता है। सोना देखना अशुभ माना जाता है। स्वप्न में मिठाई खाना बीमारी का द्योतक है। स्वप्न में विवाह होना भी अशुभ है, ऐसे स्वप्न से किसी सकट की समावना की जाती है। स्वप्न में जिस व्यक्ति की मृत्यु देखो, उसकी आयु की वृद्धि होती है। स्वप्न में पाखाने से भर जाना शुभ होता है। खराब स्वप्न को 'पाखाने' में कह देने से उसका दोष हट जाता है। देहली पर बैठ कर खाने से कर्जा होता है। खड़े होकर दूध पीने से गाय-भैंस का दूध सूख जाता है। थाली में उल्टी रोटी देना अशुभ होता है। उल्टी खाट खड़ी करना अशुभ होता है, किसी की मृत्यु होने के बाद ऐसा किया जाता है।

किसी के यात्रा पर जाने के बाद घर में तुरन्त झाड़ू नहीं लगाना चाहिये—मृत्यु के बाद शव को ले जाने पर ऐसा करते हैं। शाम को दोनों समय मिलने पर (सवि काल) घोड़ी को कपड़े नहीं देना चाहिये। अगर पुरुष दाये हाथ की हथेली खुजलावे तो आमदनी होती है। बाये हाथ की हथेली खुजलाने से खर्च होता है। इसके विपरीत स्त्रियों का बायी हथेली खुजलाना आमदनी का द्योतक तथा दायी हथेली खुजलाना खर्च का द्योतक है। स्त्री की बाँयी आँख फडकना शुभ कहते हैं 'साईं मिले या बीर'—पर दायी आँख फडकना अशुभ माना जाता है। पुरुष की दायी आँख फडकना शुभ तथा बायी आँख फडकना अशुभ। हथेली पर नमक देने लेने से लड़ाई हो जाती है। पैर का तलवा खुजलाना यात्रा का सूचक होता है। चप्पल पर चप्पल चढ़ना अशुभ माना जाता है। पिता के जीवित रहते हुए पुत्र का मूँछ मुड़वाना पिता के लिये अशुभ माना जाता है।

स्वप्न में सर्प दिखना पितरो का रूप माना जाता है। मृत्यु के समय यदि दूध पिला दिया जाय तो मनुष्य दूसरे जन्म में सर्प की योनि में जाता है। शकर जी का प्रसाद गृहस्थ नहीं खाते हैं। जो व्यक्ति कर्ज लेकर मरता है, वह बैल बन कर अदा करता है।

बालक के जन्म पर राशि का नाम रखते हैं या देवी-देवता या ईश्वर के नाम पर यथा—रामचन्द्र, किशनलाल, देवीदत्त, पवित्र तीर्थों के नाम पर—हरद्वारी लाल, मथुरादास, काशीप्रसाद, प्रयागसिंह, गंगा, जमुना, भागीरथी, सरयू आदि। पवित्र पौधों के अनुसार भी नाम रखे जाते हैं जैसे—तुलसीदास, गेन्दासिंह, अशोक आदि। अशुभ ग्रहों की उपशान्ति के लिए असुन्दर नाम भी रखते हैं—मगलू, घसीटा, बुद्धू, बदलू, रामलोटन, गगू आदि।

गर्भवती स्त्रियों के लिये बहुत से विधि और निषेध होते हैं जो इस प्रकार हैं —

वह नये कपड़े नहीं धारण कर सकती। नई चूड़ियाँ नहीं पहन सकती। मेहदी, स्याही और बिन्दी नहीं लगा सकती। साध पहरने का दिन निश्चित हो जाने पर ५ अथवा ७ दिन पहले स्नान व श्रृंगार नहीं कर सकती। इसे मैल छोड़ना कहते हैं।

गर्भवती स्त्री के स्वप्नों के भी आशय निकाले जाते हैं। अगर गर्भवती स्त्री को जौ का खेत और हरी-हरी दूब लहरें लेती हुई दिखायी दे तो लडका होने का सूचक होता है। अगर स्वप्न में अम्बुआ का पेड़ झलर-झलर करे तो वह पुत्रजन्म

का घोटक है। स्वप्न में लौकी देखना लड़की होने का सूचक है। पुत्र-जन्म की शुभ सूचना पास-पड़ोसियों को फूल की थाली बजाकर दी जाती है।

जच्चा के लिए भी नारी समाज में कई विधि और निषेध प्रचलित हैं —

जच्चा को कभी अकेले नहीं रहना चाहिये। उसके सिरहाने चाकू या छुरी रख देते हैं। सौर-गृह में आग कभी नहीं बुझाते और उस पर धूनी डालते रहते हैं। बिल्ली को अन्दर नहीं घुसने देते। छठी से पहिले बच्चे को कपड़े नहीं पहनाते। अगर बालक कृष्ण पक्ष में हो तो जच्चा का प्रथम स्नान शुक्लपक्ष में होता है। यदि गर्भवती स्त्री का चलते समय पाँव पर अगली ओर जोर पड़ता है तो पुत्र का जन्म होता है और यदि पीछे की ओर पड़ता है तो कन्या का जन्म होता है।

अविवाहित युवक की मृत्यु हो जाये तो उसे कबे पर नहीं उठाते। बालक का नाम रात को नहीं लेते क्योंकि कोई उल्लू सुन लेगा तो वह दोहरायेगा और बच्चा मर जायेगा। जब तक बालक को दाँत न निकले उसे शीशा नहीं दिखाना चाहिये। शीशा देखने से दाँत निकलने में कष्ट होता है। प्रायः बड़ी अवस्था होने पर लोग सबसे अधिक पसन्द फल या सब्जी, किसी तीर्थ पर जाकर स्वर्ग में मिलने की आशा के लिये छोड़ देते हैं। किसी व्यक्ति को यात्रा पर या किसी शुभ कार्य के लिए जाते समय टोकना नहीं चाहिये। अगर कोई टोक दे तो पान खाकर जाना चाहिए।

बीमारी में शीशा नहीं दिखाते। मृत्यु के समय भी शीशा नहीं दिखाया जाता। शाम के बाद शीशा देखने से आयु कम होती है। रात को देखने से आदमी भूत होता है। जो मेहमान अपने मेजबान के घर नाखून काट कर डालता है, वह उसके घर में गरीबी बुलाता है। जो कोयले से घरती पर लिखता है उसके घर में कर्ज होता है। जो व्यक्ति जनेऊ गलत कबे पर पहिनता है उसके माता-पिता की आयु कम होती है। तीर्थयात्रा करके लौटने वाले व्यक्ति के सब छोटे सम्बन्धी पैरों के नीचे से धूल लेकर लगाते हैं, उनके पैर धोकर सब पर छिड़कते हैं। बाँझ स्त्री से फल का पेड़ नहीं लगवाना चाहिये। दोहद की पूर्ति न होने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री या पति की कोई न कोई हानि हो जाती है अथवा गर्भस्थित बालक या उस स्त्री की भी क्षति हो सकती है।

तिथि वार, और मास सबधी लोकविश्वास—‘पडवा’ को यात्रा पर नहीं जाते—कहावत भी है—‘पडवा गमन न कीजिए जो सोने की होय।’ एक भाई की बहन सोमवार और मंगल को सिर नहीं धोती।

बुधवार को भी सिर नहीं धोते हैं। कहावत है—‘बुद्धा खोलिए न जुड्डा’। बृहस्पति को एक भाई की बहन और एक बेटे की माँ सिर नहीं धोती, तथा सुहागन भी नहीं धोती। इससे धन व परिवार की हानि होती है। शनिवार को भी सिर नहीं धोना चाहिये, कहते हैं कि इससे शनि चढता है। शनिवार को पीपल वृक्ष की पूजा करते हैं, सब देवताओं का वास इसमें रहता है। बुधवार को चूड़ियाँ नहीं पहननी चाहिये। स्त्री को रविवार तथा मंगल को चूड़ी पहनना मना है और जूड़ा खोलना व बाँधना भी मना है, इन दिनों में करने से मिरदर्द होता है।

स्त्री का पुत्रजन्म आदि के बाद प्रथम बार बृहस्पति को नहाना अशुभ समझा जाता है। विवाह में, हल्द, बान आदि, मंगल, बुध और बृहस्पति को नहीं होते तथा शनिवार को भी नहीं होते। शुक्रवार को अच्छा दिन मान कर करते हैं। बुधवार को बहू-बेटी विदा नहीं होती, कहते हैं कि बुद्ध-बिछोह नहीं होना चाहिये। इतवार या सोमवार को आने वाला बृहस्पतिवार को ही जा सकता है। कहावत भी प्रसिद्ध है—

मंगल करै दगल, बुध बिछोहा होय,

जुमेरात की खीर खा के जुम्मे को जाना होय।

मंगल और शनिवार को दाढ़ी और नाखून नहीं बनवाते। शुक्रवार को दामाद को टीका नहीं करते हैं। नया कपड़ा बुध, बृहस्पति तथा शुक्रवार को पहनना चाहिये। शनिवार को नया जूता और कपड़ा नहीं पहनते। मंगल और बुध को चारपाई नहीं बुनवाते। शनिवार, रविवार तथा मंगल को आधासीसी का दर्द झाडते हैं। बुधवार को यात्रा के लिये प्रस्थान नहीं करते पर दिशाशूल का भी ध्यान रखते हैं। कहावत है—

सोम सनीचर पूरब न चालू,

मंगल बुध उत्तर दिसि कालू।

शास्त्रीय ज्योतिष के मत से शनि में पूर्व, शुक्र में अग्निकोण, बृहस्पति में दक्षिण बुध में नैऋत्यकोण, मंगल में पश्चिम, सोम में वायुकोण और रविवार में उत्तर दिशा में काल रहता है। इसका परिहार इस प्रकार है—

अगर रविवार को घृत, सोम में दूध, मंगल में गुड, बुध में तेल, बृहस्पति में दही, शुक्र में जव तथा शनि में माण भोजन करके यात्रा करे तो दिशाशूल का दोष मिट जाता है। शनिवार को खाली बार और बृहस्पति को रोगी बतलाया जाता है, इसीलिए स्त्रियाँ इन दोनों दिनों में से किसी को भी शुभकार्य नहीं करती।

जैठ के दिनों में गंगा दशहरे के दिन मरने से सौधे स्वर्ग मिलता है। श्राद्ध

(कनागतो) के दिनों में मरने से खुले किवाड़ो जाते हैं। लोकविश्वास है कि उन दिनों स्वर्ग के दरवाजे सबके लिए खुले रहते हैं। इतवार को नमक नहीं खाने है। जो आदमी सोमवार को दाढ़ी बनाता है, उसके लडके की आयु कम होनी है। जो स्त्री सोमवार को सीती है, उसके लडके की आयु कम होनी है। इतवार को चने खाने से दरिद्रता होती है। शनिवार को चने खाना और दान करना अच्छा होता है।

होली से पहली रात और दिवाली की रात को दूध नहीं पीते क्योंकि इन रात्रियों में प्रेतात्माएँ वातावरण में भ्रमण करती हैं।

देव उठावनी एकादशी को देव उठते हैं। उस दिन में शुभ कार्य आरम्भ किया जाता है। देव सोने के समय खाट नहीं चुन्ते, व्याहली बहू को बिदा नहीं कराने तथा नया काम भी आरम्भ नहीं करते। पथरा चौथ के दिन चाँद देखने से दोष लगता है। अगर चाँद दिख जाता है तो उसका दोष समाप्त करने के लिए चाँद को पत्थर से मारते हैं। जो पत्थर लोगो की छत पर आकर गिरते हैं तो, कहते हैं कि जितनी गाली मिले उतना ही दोष उतरता है। बृहस्पति के दिन काजल या सुरमा नहीं लगाते। कहते हैं कि उस दिन पीर ग्नीव अपनी दरगाह से निकलते हैं तथा अन्य प्रेमात्माएँ भी वातावरण में निवास करती हैं। पुत्र-जन्म के बाद शनिवार, रविवार और मंगल को कुँआ नहीं पूजते हैं।

चैत में बाहर खाट नहीं निकालते, कहते हैं कि चैत में चिन्ता होती है। पूष में व्याह नहीं होते। देव उठावनी एकादशी को बिना बिचारे भी सब तरह की शादी हो सकती है। सावन-भादो में उपले नहीं पाये जाते। सावन में पाथने से पति के लिए अशुभ होता है तथा भादो में माई के लिये।

माघ मास की सन्तान बाघ की तरह बलवती होती है। जेठ की सन्तान हीन होती है। जेठ में जेठे लडके (बड़े लडके) का विवाह नहीं करते। सूक डूबने पर (शुक्रास्त) भी शुभ कार्य नहीं करते। विशेष रूप से बहू-बेटी मसुराल आदि नहीं आती-जाती—यदि आती-जाती हैं तो उसका उपाय करना पड़ता है या तो वे सूक में ही लौट आती हैं या वे रात को मन्दिर में जाकर ठहरती हैं, जिससे सूक का प्रभाव टल जाता है।

जुताई-हलाई के आरम्भ के लिए मंगलवार वर्जित माना जाता है। बुधवार विशेषतः शुभ दिन माना जाता है। बुध को बुवाई आरम्भ करनी चाहिये और शुक्र को कटाई। प्रत्येक पक्ष की प्रतिपदा तथा चतुर्दशी को जुताई और बुवाई आरम्भ नहीं करनी चाहिये, कनागतो में बुवाई करना अहितकर माना जाता है। खेती के बैलो को अमावस्या के दिन काम में नहीं लिया जाता। माघ मास में

सक्रान्ति को कुआ, गाडी और हल नहीं चलाते हैं। पशु क्रय-विक्रय के लिए मंगल तथा शनिवार अशुभ माने जाते हैं।

पशु-पक्षी सबधी लोकविश्वास—मेरठ में पशु-देवता के रूप में चॉमड की पूजा होती है, इसको विशेषतः भैंसे की स्वामिनी कहा जाता है। बन्दर का नाम सबेरे नहीं लेते, कहते हैं उस दिन खाना नहीं मिलता। रात को साँप तथा उल्लू का नाम नहीं लेते। ऊँट, सियार, सूअर, कुत्ता, उल्लू तथा भेड़िये को भी अशुभ माना जाता है। नेवला देखना शुभ तथा घर में रहना भी शुभ माना जाता है।

काले कुत्ते का घर में आना अशुभ मानते हैं, यह बीमारी का द्योतक है। उसे दही पेड़ा खिलाते हैं—माता का वाहन मान कर। घर में कानखजूरा निकलना शुभ माना जाता है। यह लक्ष्मी का द्योतक है। कुत्ते तथा बिल्ली का घर के बाहर रोना अशुभ सूचक है। बिल्ली को नसैनी, कमबख्त तथा मनहूस कहते हैं, वह चाहती है कि सब घर के लोग अन्धे हो जायें तो खूब खाने को मिले। कुत्ता खैरखाह, शुभचिन्तक माना जाता है। वह चाहता है कि परिवार और अधिक बड़े जिससे मुझे खूब टुकड़े मिले। गाय को बहुत पूज्य मानते हैं, पहली रोटी गाय को निकालते हैं। गरु-प्रास का भी बहुत महत्व है। जब बछड़ा होता है तो गाय रोती है तथा जब बछिया होती है तो प्रसन्न होती है।

जो बैल या बछड़े खड़े-खड़े हिलते रहते हैं वे अशुभ माने जाते हैं। जिन बछड़ों की जिह्वा पर साँपन होती है तथा उसे हर समय बाहर निकाल कर घुमाते रहते हैं, वह स्वामी के लिये अशुभ होते हैं। गाय यदि अपने आप दूध पीने लगती है तो वह कमबख्त मानी जाती है। जिन गाय या भैंसों के थन सख्त होते हैं, उनके नीचे घी बहुत होता है। छोटे थन वाली गायों के नीचे दूध कम होता है, बड़े थन वाली गायों के नीचे अधिक। पहली-दूसरी बार ब्याई गाय उत्तम होती है और काफी दूध देती है। भैंस तीसरी या चौथी बार की ब्याई बहुत अच्छा दूध देती है। उत्तम गाय अथवा भैंस वह होती है जो बच्चे को भी थनो में सरलता से हाथ डालन देती है। कपिला गाय सबसे उत्तम मानी जाती है तथा उसके खुर भी लाल होते हैं। काली गाय भी असली और अच्छी होती है उसका दूध उत्तम तथा शक्तिशाली माना जाता है। लम्बी पूँछ वाले बैल अच्छे होते हैं तथा लम्बे सींग वाले बैल भी अच्छे माने जाते हैं। नाटा बैल ताकतवर माना जाता है। शोटे को खेती के काम में नहीं लाते, क्योंकि वह यमराज की सवारी माना जाता है।

घोड़े का उसके बाल तथा बोहरी से बिचार किया जाता है। कुछ बोहरियाँ विभिन्न आकार बना देती हैं। पच कल्याण जिसके माथे पर सफेद तिलक तथा चारो पैर सफेद होते हैं, वह उत्तम होता है। जिन घोड़ों की जीम पर सांपन होती है वह अशुभ माना जाता है। घोड़े की पीठ पर यदि सांपन होती है तो वह सवार के लिए अशुभ होता है। अगर घोड़े की गर्दन पर सांपन होती है तथा उसका मुँह सवार की ओर होता है तो वह भी सवार के लिए अशुभ माना जाता है। जिन घोड़ों के दोनों नेत्रों के बीच में गोल बोहरी होती है, वह अच्छे होते हैं परन्तु जिनकी बोहरी आँखों के नीचे होती है वह रोगी रहते हैं। ऐसी बोहरी को 'ऑसू ढाल' बोहरी कहते हैं। सबसे उत्तम घोड़ा कालाही माना जाता है। अरबी घोड़ा बहुत तेज तथा हमदर्द होता है। जो घोड़े खड़े-खड़े जमीन में एक पाँव मारते हैं वह भी अशुभ माने जाते हैं।

पशुओं की बीमारियों के लोकोपचार—अधिकतर गाय या बैल मुँह तथा पैर से आ जाते हैं, गाय के मुँह में छोटे काँटे होते हैं जो सख्त हो जाते हैं तथा चुभने लगते हैं। उनको मोची बुलाकर कटवाया जाता है। पैरों में छाले पड़ जाने को पैरों से आना कहते हैं। इसमें पैरों पर चोकर बाँधा जाता है। अधिकतर पैरों से आने की बीमारी गेहूँ की फसल में होती है जब बैलों को लान गाहना पड़ता है। इन्हें छेदने की बीमारियाँ भी होती हैं जिसमें सेधा नमक चटवाया जाता है। जब गाय तथा बैलों को गोबर नहीं होता तो उस समय नाल से मट्ठा तथा तेल देने हैं। मट्ठा, तेल बछड़ों तथा कटारों को वैसे भी दिया जाता है। ये स्वास्थ्यप्रद होते हैं। चने की दाल, बैल व घोड़ों के लिये शक्तिशाली मानी जाती है। विनौले, गाय व भैंस को दिया जाता है जिससे दूध बढ़ता है। हरी घास भी इनके लिये उत्तम होती है। बरसीम तथा एवरग्रीन आदि घास भी इनके लिये विशेष घाम होते हैं। गन्नों के महीने में गौले भी जानवरों को खिलाये जाते हैं। साधारणतः गाय-बैलों को भूसा दिया जाता है। जई की घास, घोड़ों के लिये उत्तम होती है। बरसीम घोड़ों को भी दिया जाता है। घोड़ों को विभिन्न प्रकार के मसाले भी दिये जाते हैं।

घोड़ों को कमी-कमी चाँदनी लग जाती है, ये बीमारी कमी-कमी चाँदनी में बँधे रहने के कारण हो जाती है। इसमें घोड़े के पेट में दर्द होता है और वह मग जाता है। घोड़ों के पावों में बैँजे हो जाते हैं और घोड़े लग करने लगते हैं। घोड़ों के घुटनों में छोटी-छोटी गाँठें पड़ जाती हैं इनको बैँजे कहते हैं—ये बढ़ जाने हैं और घोड़ा चलने से विवश हो जाता है।

पक्षी—उल्लू के सामने किसी का नाम लेकर नहीं पुकारते क्योंकि उल्लू नाम

रटने लगता है, और वह व्यक्ति धीरे-धीरे सूखता जाता है और अन्त में मर जाता है। उल्लू का किसी के घर में बैठना या बोलना अशुभ मानते हैं। दिवाली को शराब पिलाकर इससे धन के सञ्चय में पूछते हैं, क्योंकि जन विश्वास है कि इसको खजाने का पता मालूम रहता है। मरने के बाद उल्लू के अंग तान्त्रिकों के काम आते हैं। गिद्ध तथा चील का घर के ऊपर बैठना अशुभ मानते हैं। मुसलमान, गिरगिट को बुरा समझते हैं और मकड़ी को अच्छा। कारण जब हसन मियाँ लड़ाई से भागे थे तो वे कुएँ में जाकर छिप गये थे और मकड़ी ने ऊपर से जाला पूर दिया था। जब शत्रु पहुँचे, उसी समय गिरगिट ऊपर से कूद पड़ा और जाला टूट गया, दुश्मनों ने उनको पकड़ लिया, तभी से गिरगिट को मुसलमान अशुभ मानने लगे। हिन्दू, गिरगिट को नहीं मारते तथा शुभ मानते हैं क्योंकि राजा नृग को गिरगिट की योनि में रहना पड़ा था। नीलकंठ देखना बहुत ही शुभ माना जाता है। विशेषकर दशहरे के दिन तथा यात्रा को जाते समय नीलकंठ को देख कर जाने की कामना करते हैं—

‘नीलकंठ पटवारी तुम नीले रहना

मेरी बात राम से कहना

सोते हो तो जगा के कहना

जागते हो तो कान में कहना’

प्रातः कौवे का घर की मुँडेर पर बोलना पाहुना आने का द्योतक है। कौवे का बोलना सुनकर कहते हैं ‘कौन आएगा—कोई आने वाला है तो उड़ जाओ’। अगर वह तुरन्त ही उड़ जाता है तो पाहुन का आना निश्चित हो जाता है। काले कौवे का सिर पर या बिस्तर पर बैठ जाना अशुभ मानते हैं। सर्प नमक के निकट नहीं जाता।

प्रकृति सम्बन्धी (वृक्ष)—हर वृक्ष की आत्मा होती है, अतः उसे चेतन की तरह समझना चाहिये। इसीलिये रात को पेड़ नहीं छूते—कहते हैं कि वह सो जाते हैं—उनको सोते से जगाना पाप है। पीपल, बेल, गूलर, बरगद और आम के वृक्षों का लगाना पुण्य समझा जाता है। इनके पास चबूतरा बना कर देवी-देवता की स्थापना भी करते हैं। नीम का वृक्ष लगाकर देवी को प्रसन्न करने की भावना निश्चित होती है। पीपल को बहुत पवित्र मानते हैं। कहते हैं, इसमें विष्णु जी का वास होता है। इसको हिन्दू अपने हाथ से नहीं काटते, पाप समझते हैं तथा पीपल के नीचे मल-मूत्र त्यागने का भी निषेध है।

सोमवती अमावस्या को तथा शनिवार को सौभाग्यवती स्त्रियाँ इसकी पूजा

तथा प्रदक्षिणा करती है जिससे सौभाग्य की वृद्धि होनी है और मन्तान-प्राप्ति होती है। वट वृक्ष को काटना भी निषिद्ध है। जेठ में बडमावस को बड की पूजा विशेष रूप से होती है। इसे मुख-सौभाग्य का देने वाला मानते हैं।

चैत्रमास में नवरात्र में नीम की पूजा विशेष रूप में होती है। अगर इस समय इसकी सेवा न करे तो देवी रुष्ट हो जाती है। माता निकलने पर नीम का झाडा दिया जाता है। बेल की पत्तियों को बहुत पवित्र मानते हैं तथा इसको शिव जी के ऊपर चढ़ाते हैं। खण्डित बेलपत्र चढ़ाने से दोष लगता है। बेल की लकड़ी घर में जलाने से दोष लगता है। इस वृक्ष के नीचे मल-मूत्र त्यागना वर्जित है।

कार्तिक मास में आँवले की पूजा करते हैं, विशेषकर 'आँवला एकादशी' को। आम की पत्तियाँ हर शुभ कार्य पर प्रयोग में लायी जाती हैं। इसको मंगलघट में लगाते हैं, बन्दनवार बनाते हैं। आम की मूखी लकड़ियाँ हवन की ममिघाआ में प्रयोग की जाती हैं।

बृहस्पति के दिन कन्याएँ केले की पूजा सुयोग्य वर पाने के लिए करती हैं। कार्तिक मास में इसकी विशेष पूजा होती है। यह बहुत पवित्र माना जाता है। सन्तान-प्राप्ति के लिये तथा सौभाग्य के लिये इसका पूजन होता है। तुलसी का बिरवा घर-घर में हर हिन्दू के यहाँ होता है तथा बहुत पवित्र माना जाता है। कार्तिक मास में विशेष रूप से इसकी आरती तथा दीपदान करते हैं। तुलसी को माता का रूप मानते हैं और देवउठानी एकादशी को तुलसीविवाह करते हैं। रविवार और मंगल को तुलसी तोड़ने का निषेध है।

फलों के बाग में बरगद तथा पीपल भी लगवाते हैं और उनका विवाह अन्य वृक्षों से कर देते हैं, ऐसा करने से बाग में ठीक फल आते हैं।

स्वास्थ्यसंबंधी सामाजिक लोकविश्वास तथा उनके उपचार—शेर का नाखून अथवा मूँछ के बाल को गले में ताबीज बना कर बाँधने से बच्चे को डर नहीं लगता। इसी प्रकार यदि किसी स्त्री के बच्चे नहीं जीते तो बच्चे को शेग्नी का दूध पिलाने पर वह जी जाता है। शेर का गोष्ठ भी मुँचाकर खाया जाता है। यह भी बच्चे को सर्दी लग जाने पर घिस कर पिलाया जाता है। रीछ के बाल का ताबीज बच्चों के गले में नजर व डर के लिए बाँधते हैं।

कबूतर की बीट बच्चों को सर्दी हो जाने पर दी जाती है। कबूतर के पखों में से निकली हुई हवा बच्चों के लिये शुभ होती है। इसलिये बच्चों के घरों में कबूतर पाले जाते हैं।

बच्चों के निमोनिया को मीठा कहते हैं। जिन बच्चों को मीठा रोग हो जाता है उनको लेकर स्त्रियाँ मस्जिद के द्वार पर खड़ी हो जाती हैं—नमाज पढ़-पढ़कर

लोग निकलते जाते हैं तथा उस पर फूँक लगाते जाते हैं। गौरैया की बीट भी बच्चों की बीमारी में काम आती है। आघासीसी के दर्द में शनिवार और रविवार तथा कोई-कोई मंगल को भी झाड़ते हैं यह झाड़ दो प्रकार की होती है—

१—रीठा पड के दिया जाता है और उसको कूट कर कपड़े में बाँध कर गले या हाथ में बाँध देते हैं।

२—घूप में परछाई को मंत्र पढ़ कर कीलते हैं। यह सूर्य निकलते ही झाड़ते हैं। कुछ लोग दोपहर को १० बजे झाड़ते हैं।

दाँत कीलना—जिसके दर्द होता है वह अगर बाँये दाँत में दर्द है तो दाँये हाथ से पकड़ कर और दाँये दाँत में दर्द है तो बाँये हाथ से पकड़ कर किलवाता है और कीलने वाला व्यक्ति कागज़ पर कुरान की आयत लिख कर कील से कीलता रहता है।

कमहड़ा—बच्चों की बड़ी खतरनाक बीमारी है। इसमें एक विशेष घास का उपयोग किया जाता है। उस घास का रंग सफेद होता है।

बवासीर के लिए एक घास-विशेष कूकरछलनी का प्रयोग किया जाता है। चायु व पेट के दर्द के लिये निम्नलिखित चूर्ण को प्रयोग में लाते हैं—

सूठ सुहागा सोचले^१ गाँधी^२

सौंजने के अर्क में गोली बाँधी

सत्तर सूल बहात्तर बाय

कह धनत्तर तुरत जाय'

चोट लग जाने पर दूध में हल्दी घोल कर पिलाई जाती है। हड्डी टूट जाने पर भेंड के दूध में—साँवक के चावल उबाल कर बाँधते हैं। जख्म हो जाने पर मकड़ी का सफेद जाला अथवा रेशम जला कर उसमें भर दिया जाता है।

जिला मुजफ्फरनगर में हरसौली ग्राम में एक मुसलमान जाट है। उसके खानदान को किसी फकीर का वरदान है कि वह किसी भी मनुष्य की टूटी हुई हड्डी को किसी भी तरह तोड़ कर बाँध दे तो वह तुरन्त जुड़ जाती है। यह वरदान उसके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी चलेगा जब तक कि वह उससे धन उपार्जन नहीं करता।

यदि कोई मनुष्य आम के बौर को जिससे वह पहले-पहल देखता है, तोड़ कर दोनों हाथों पर मल लेता है तो उसके ऊपर बरें तथा बिच्छू के काटने का प्रभाव नहीं होता। यदि दूसरे मनुष्य के भी जिसे बरें या बिच्छू ने काट लिया हो—वह

मनुष्य उस स्थान को हाथ से मल देता है तो 'झल' नहीं होती। इसी प्रकार चर्मरोगी के लिए गंगा जी के रेत को मल-मल-कर नहाने है।

'चौथइया' बुखार के लिये कीकर की पूजा करते हैं। पीपल के पत्ते को गम करके तथा सरसो का तेल लगा कर फोडे या फुन्सी पर बाँध देते हैं तो वह पक कर फूट जाता है। ताँबे के बरतन में रात भर रखे हुए पानी को पीने से बवासीर ठीक हो जाती है। अष्टघातु का छल्ला पहनने से भी बवासीर ठीक हो जाती है। कुछ लोग बवासीर के लिए एक कड़ा बनवा लेते हैं। आबदस्त लेते समय कड़े पर पानी डाल कर ही आबदस्त लिया जाता है।

शीतला के प्रकोप के दिनों में बालको के कुरनों पर या पीठ पर गेरू में ननिया काढ़ दिया जाता है। बालको के गले में सोने या चाँदी का बना सूर्य का चिह्न भी डालते हैं। गला खराब होने पर चाकू से पानी काट कर पिला देने से गला ठीक हो जाता है। कमर में चनका आने पर ऐसे व्यक्ति से जिमका जन्म उल्टा हुआ हो (पैर की ओर से), बाँये पैर से पाँच अथवा सात बार कमर छ्वाते हैं। ऐसा करने से दर्द जाता रहता है। आक की पूजा से तीसरे दिन का बुखार जाता है।

नीम का, सूर्य पूजा और बहुत सी औषधियों में प्रयोग करते हैं। नीम का झाड़ा चेचक में लाभदायक होता है। भूत भगाने के लिए नीम की पत्तियों का प्रयोग करते हैं। इसका सम्बन्ध सूर्य से भी होता है। नीम का मद खून की सफाई के लिए भी काम में आता है। बेल की पत्तियाँ औषधि के काम में आती हैं। खुजली या खारिश में मुलतानी मिट्टी लगाने से या दूध में गवक मिला कर पीने से भी लाभ होता है। गर्म पानी के चश्मे में नहाना भी लाभदायक सिद्ध होता है।

शीतला के सम्बन्ध में लोक-विश्वास—किसी के माता निकलने पर जल का लोटा भर कर उसमें गेहूँ के दाने व फूल अथवा चावल, गंगाजल व लौंग का जोड़ा डाल कर नित्य सायंकाल रोगी के सिरहाने रखते और मुँह-अन्वरे ही उसके मिग से पैर तक पाँच या सात बार उतार कर घर से बाहर द्वार के कौले पर या चौराहे पर या नीम में सिला देने हैं। माता निकली होने पर रोगी की कोठरी के द्वार पर नीम की टहनी टाँग दी जाती है और स्नान करने के अनन्तर उसके पास कोई नहीं जाता। बिना खाये-पिये भी रोगी के पास जाना निषिद्ध है।

परछावा पड़ने के मय से ऋतुमती या कोई अन्य स्त्री जो गदी रहती हो, जैसे भगिन, चमारिन, कुम्हारिन आदि रोगी के पास नहीं जाती। यदि रोगी की माँ ऋतुमती हो तो उसके लिये छूट होती है।

'माता का उठावना' (एक टका गंगाजल से धोकर तुलसी के गमले में या किसी

शुद्ध स्थान में रखते हैं तथा कहते हैं कि रोग शान्त होने पर हम तेरी जात देगे, मैया जल्दी हाथ दे, इससे रोगी शीघ्र ही ठीक हो जाता है। अगर घर में किसी को माता निकले तो छौक नहीं लगाते। इससे आँखों के खराब होने का भय रहता है। रोगी के अच्छा होने पर नीम की टहनी से छीटा दिया जाता है।

मिश्रित लोक-विश्वास—मिश्रित लोक-विश्वास के सम्बन्ध में हम वह सब लोक-विश्वास दे रहे हैं जिनको पहले दिये गये किसी भी वर्गीकरण में स्थान नहीं मिला है। इनका एक अलग मिश्रित परिवार बन गया है। यहाँ पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित सब ही लोक-विश्वास उपलब्ध हो गये हैं। यह भले-बुरे सभी प्रकार के लोक-विश्वास हैं।

चूड़ी मौलाना—वैसे तो मौलाना शब्द का प्रयोग अधिकतर वृक्षों के बौरने के लिये ही किया जाता है। जब नीम पर बौर आता है अथवा कोई पेड़ काट दिया जाता है और उसकी विभिन्न शाखाएँ निकल आती हैं तो इसे मौलाना कहते हैं। इस प्रकार मौलकर वृक्ष अपना विस्तार करते हैं।

जब चूड़ी टूट जाती है तब भी स्त्रियाँ उनके लिए टूटना शब्द का प्रयोग नहीं करती अपितु मौलाना ही शब्द कहती हैं। क्योंकि यदि वस्तु टूटती है तो दुबारा नहीं बनती। इसलिए टूटने के स्थान पर मौलने का प्रयोग किया जाता है क्योंकि साधारण स्थिति में तो चूड़ी टूटने पर फिर भी पहनी ही जाती है। चूड़ी टूटना अशुभ अर्थ में प्रयुक्त है। जब विधवा की चूड़ियाँ समाज के द्वारा तोड़ी जाती हैं और वह भविष्य में सदैव के लिये वचित कर दी जाती है—इसलिए चूड़ी बदलने से सुहाग की आयु और मौलती है।

अगर त्यौहार के दिन किसी की मृत्यु हो जाती है तो यह 'खोटी' हो जाती है और कई चीजों की बनने व खाने की आन हो जाती है। पर फिर वर्षों बाद अगर कभी उसी दिन कुटुम्ब में किसी के भी घर पुत्र-जन्म होता है तो वह आन खुल जाती है और त्यौहार ठीक तरह से मनाया जाने लगता है। नये घड़े का पानी सबसे पहिले किसी पुरुष को पिलाना चाहिये नहीं तो पानी में से नयेपन की सुगंध नहीं आती।

बघरे (जिला मुजफ्फरनगर) में एक मौलवी हैं जो अगर कचहरी में जाकर भभूत उड़ा देता है तो हाकिम पक्ष में हो जाता है। आँख में डालने का सुरमा भी देते हैं जो वशीकरण का काम करता है तथा अँगूठी ताबीज़ आदि भी सिद्ध कर के देते हैं। अपनी छीक भी शुभ होती है। यह विश्वास होता है कि छीकने-वाला आदमी अभी नहीं मरेगा। जब एक व्यक्ति को छीक आती है तो उसके हितैषी प्रसन्न होकर कहते हैं 'छत्रपति'। चकपदी (छत्रपति) एक देवी मानी

जाती है जो ब्रह्मा जी के छीकने पर मक्खी के रूप में उत्पन्न हुई थी। छीकने समय उसी का नाम लिया जाता है।

वाल बनाने समय हाथ से यदि कषा गिर जाये तो वह अनिधि के आगमन का सूचक होता है। 'सोना' खोना या पाना, दोनों ही अशुभ माने जाते हैं। उल्टी खाट खड़ी करना अशुभ होता है क्योंकि जब कोई व्यक्ति मरता है तो उसकी खाट उल्टी कर दी जाती है। शाम को झाड़ लगाना अशुभ माना जाता है। लोक विश्वास है कि सन्ध्या समय लक्ष्मी स्वयं द्वार पर आती है, अतः उस समय झाड़ देना लक्ष्मी का अपमान करना है और उस समय काले कुत्ते का आगमन मना होता है। दोनों समय मिलने पर (सधि काल) लेटना बुरा होता है। सन्ध्या समय भजन-पूजन का होता है इस समय वृद्ध या रोगी लेटते हैं। कड़ाही में खाने वाले के विवाह में वर्षा होती है। मृतियों का स्वप्न में रोना देश के ऊपर आफत का द्योतक होता है। सोने समय जाँघ पर तेल लगाने से डर नहीं लगता। 'हनुमान-चालीसा' पढ़ कर सोने से भूत-प्रेत स्वप्न में नहीं दिखायी पड़ते।

लोक-विश्वास है कि यदि सोते समय तकिये में प्रातः उठाने के लिये कह दिया जाय तो उसी समय नींद खुल जाती है। सिर में तेल डालते समय पानी नहीं पीते, नहीं तो सिर में जूँ हो जाती हैं। टेढ़ा टीका लगाने से टेढ़ा दूल्हा मिलता है। जिस स्त्री के हाथ में मेहदी अच्छी रचता है उसको सास बहुत प्यार करती है। जिस स्त्री के पान अधिक रचता है उसके पति अधिक प्यार करते हैं। ५, ७, ११, २१, ५१, १०१ ये शुभ संख्याएँ मानी जाती हैं। इसी कारण शुभ अवसर पर पाँच सुहागिने हाथ लगाती हैं। पाँच मेवा होते हैं, सात नाज होते हैं तथा लेन देन में भी ११, २१, ५१, १०१ रुपये का ही चलन है। ३, १३ संख्या अशुभ मानी जाती हैं। इनका सम्बन्ध अशुभ दिनों से है।

चोर का पता लगाने के लिये जूता घुमाते हैं और जिस व्यक्ति का नाम लेने से जूता नाचने लगता है, वही चोर समझा जाता है। चोर को चोरी करने जाते समय यदि कोई टोक दे तो उसका सगुन खराब हो जाता है। घरों में हर काम करने के लिये 'सगुन विचरवाने' का प्रचलन होता है।

चोर पकड़ा जाने पर उससे एक लोटा पानी में नमक डलवाते हैं। वह नमक डालते समय कहता है कि यदि कभी कोई चोर उस घर में फिर आया तो मैं इसी प्रकार से नमक की तरह गल-गल-कर मरूँगा। चोरी करने जाते समय चोर को बिल्ली का मिलना शुभ है और कुत्ते का अशुभ। रात को खाट कसने से लड़कियाँ ही लड़कियाँ होती हैं, अतः रात में खाट कसने का निषेध है। घर से

निकलने पर सबसे पहिले किसी स्थान पर खाना मिलने पर मना नहीं करना चाहिये नहीं तो दिन भर खाना नहीं मिलता ।

कहते हैं, जाड़े की एक टाँग मकर सक्रान्ति को टूट जाती है और दूसरी वसन्त के दिन, अतः उसके बाद जाड़े की शक्ति समाप्त हो जाती है और जाड़ा कम हो जाता है । कहा जाता है कि करवाचौथ के दिन जाड़ा करवे की टोटी से निकलता है ।

मुसलमानों में मृत के लिये आवाज देकर नहीं रोते, क्योंकि उनका यह विश्वास है कि इससे रूह को तकलीफ होती है । खुरैरी (बिना बिस्तर वाली खाली खाट) पर सोने से व्यक्ति दिन भर चिड़-चिड़ाता रहता है यदि कोई व्यक्ति चिड़चिड़ाना है तो कहावत है कि “क्या खुरैरी खाट पर सोया था ?”

अक्सर पूछा जाता है कि किसका मुँह देखकर उठे—‘सबरे सर्वप्रथम किसका मुँह देखा है’ इसका बड़ा महत्व होता है । शुभ का या अशुभ का । शुभ व अशुभ व्यक्ति अनुभव के आधार पर निश्चित किये जाते हैं । लोक-विश्वास है कि परिवार में नवागत व्यक्तियों जैसे बहू या नवजात शिशु का परिवार की सुख समृद्धि पर प्रभाव पड़ता है ।

तिल या जौ बोने से आपत्ति टल जाती है । जादू की कहानियों में जादू के लिये नीला डोरा अपेक्षित होता है । गाँव में जब कुँआ खोदा जाता है तो हनुमान जी की मढी बनाई जाती है । विश्वास है कि ऐसा करने से समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं और पानी भी मीठा निकलता है । स्वसुर के शव के साथ जामाता का जाना ठीक नहीं समझते । इससे ससुर की गति नहीं होती । टूटता तारा देख लेने पर उसकी ओर थूक देने से उसका अशुभ प्रभाव समाप्त हो जाता है । मगाई तथा लगन लेकर आने वाले ब्राह्मण को नमकीन व खट्टी वस्तु अचार आदि नहीं खिलायी जाती । इससे सम्बन्धों में मिठास नहीं रहता ।

दक्षिण को यम दिशा कहा जाता है । यहाँ पर मृतात्मा निवास करती है । अतः चूल्हे का मुँह दक्षिण को नहीं बनाया जाता । सोने वाला दक्षिण को पैर करके नहीं मोता, मृत व्यक्तियों के पैर दक्षिण को कर दिये जाते हैं । एक ग्रामीण दूसरे साथी का तिल व तेल उपयोग में नहीं लाते । बनिया सर्वप्रथम-बोहनी के समय उबार नहीं देता ।

लाल तथा पीला रंग प्रधान माने जाते हैं । पीला हल्दी का रंग मागलिक और विघ्नविनाशक माना जाता है । लाल रंग शक्ति तथा सौभाग्य का चिह्न है और जादू टोने में इसी रंग का विशेष प्रयोग होता है । मन्दिर पर लगाई जाने वाली पताकाओं और शक्ति विग्रहों के वस्त्र भी लाल रंग के ही होते हैं ।

अनिष्ट तथा भूत-प्रेत आदि व्याधि दूर करने के लिये घर के मुख्य द्वार पर

दाये-बाये दोनों कौलो पर पानी डाल कर 'कौले ठंडे' करते हैं। पानी पचतत्वो मे से एक है, अतः उसमे शक्ति का निवास मानते हैं।

गीत 'घरने' (आरम्भ करने) और गीत बढ़ाने (समाप्त करने) के दिन घी और गुड़ या बताशे तथा रोली और चावलो से ढोलक की पूजा की जाती है। ढोलक मे कलावे का एक टुकड़ा बाँधते हैं और टका चढ़ाया जाता है। क्योंकि परिवार मे ढोलक का बजना शुभ-मचक माना जाता है। इसके पीछे यही भावना होती है कि ढोलक घर मे सदैव इसी प्रकार बजती रहे। 'ढका दिन', त्योहार 'खोटा होना' उसे कहते हैं जिस दिन परिवार मे कभी कोई दुर्घटना हो जाने के कारण स्त्रियाँ भविष्य के इस दिन कोई शुभ कार्य नहीं करती और यदि इस दिन को त्योहार भी पड़ता है तो उसे नहीं मनाती। यह दोष निवारण परिवार मे उसी दिन पुत्रोत्पत्ति अथवा गाय के बछड़े के ब्याहने पर होता है।

विवाह के थापे के बीच एक सराई लगा कर सभी ऊँच, सत्ती, जाहर आदि का नाम लेकर कलावे की माला लटकाई जाती है और घी का नाल दिया जाता है। यदि घी अलग-अलग दो नालो मे बँट जाये तो सम्बन्ध ठीक रहते हैं और दोनों नाले (लकीरे) मिल जाये तो वर-वधू मे सघर्ष हो जाता है।

छोटे-छोटे बालको को वृद्ध-मृतको के विमान अथवा अर्यो के नीचे से निकाला जाता है क्योंकि उनका विश्वास है कि ऐसा करने से वे दीर्घायु को प्राप्त होंगे। इसी विचार से बच्चों की टोपी अथवा कुर्ता बनाने के लिये लोग श्मशान से विमान का कपड़ा ले आते हैं।

सायंकाल यदि कोई स्त्री अपने मृतक बालक के लिये रोती है तो कहा जाता है कि माँ रोये तो बालक को कष्ट होता है क्योंकि यमराज के यहाँ छोटे-छोटे बालक पानी भरने का काम करते हैं। जब दिन भर पानी भर चुकते हैं तो शाम को एक दिवला भर पानी मजदूरी के रूप मे उनको पीने के लिये दिया जाता है। यदि ऐसे समय बालक की माता रो पड़े तो जितने आँसू गिरते हैं उतना ही पानी बालक को नहीं मिल पाता और वह प्यासा रह जाता है, इसलिये उसकी माँ को कदापि नहीं रोना चाहिये।

शिवजी का पूजन करते समय सधवाये शिवलिंग का स्पर्श नहीं करती। कच्चा खाना (रोटी, दाल) जब तक कि उसमे नमक नहीं पड़ता, छूत नहीं मानते। प्रायः दाल कोई भी चढ़ा सकता है पर नमक न डाले। नमक डालने के बाद उसको कोई छू नहीं सकता।

हिन्दुओं के कुछ व्रतो मे नमक नहीं खाते हैं। उदाहरण के लिये इतवार और

एकादशी । लेकिन सेवा नमक, नमक नहीं माना जाता और उसका प्रयोग अलोने व्रतो मे भी करते है ।

मृत्यु के ५ महीने पूर्व से ध्रुवतारा नहीं दिखता और नीम कड़वा नहीं लगती । अनार मे एक ऐसा दाना होता है जो यदि अनार खोलते ही उसे उठाकर मृतक के मुँह मे रख दिया जाय तो वह जी उठता है ।

पौराणिक लोक-विश्वास—पौराणिक लोक-विश्वासो मे वह सब लोक-विश्वास आ जाते है जिनकी आस्था को पुराण आदि ग्रन्थो से बल मिला है । लोकविश्वासो ने लोक-मानव के धार्मिक जीवन को प्रभावित किया है तथा जीवन के अन्य अंगो को अनुशासित किया है । इनके अन्तर्गत निम्नलिखित लोकविश्वास है —

शाप और वरदान का लोकजीवन मे बहुत अधिक प्रभाव है । शाप से वह डरता है और वरदान पाने के लिए प्रयत्न करता है । उसका भोला विश्वास है कि भगवान भक्त के वश मे होते आये है । पशु-पक्षी बोलते है तथा वह मनुष्य की आवश्यकता पडने पर सहायता भी करते है । कुछ पशु-पक्षी मनुष्य का रूप धारण कर लेते हैं तथा कुछ योगी पशु भी पक्षी का रूप धारण कर लेते है । सिद्ध लोगो मे चमत्कार होता है, उनका यह अटल विश्वास होता है । नदी, पर्वत, वृक्ष आदि सभी शरीर धारण कर सकते है तथा शकुन-अपशकुन, लोक-मानव को दैनिक जीवन मे उत्साहित तथा हतोत्साहित करते है ।

वीर-पूजा और वीर मे देवत्व का अंश होता है । लोग चरणधूलि से तर जाने मे विश्वास करते हैं, इसी से गुरुजनो तथा साधु-संतो की चरण-रज लेकर मस्तक पर लगाते हैं । अवतारो व देवताओ के चमत्कार से मानव भलीभाँति परिचित होता है, उसका पुरोहित और गुरु मे विश्वास होता है । मन्त्र-शक्ति अद्भुतशक्ति है । यह मन्त्र सब कुछ कर सकते है । उसमे लोकमानव पूर्ण विश्वास करता है । जड़ी-बूटी बोलती हैं तथा मुर्दो को देखकर ये जड़ी बूटी छिप भी जाती है । अमृत कूप दानव और देवताओ के वश मे रहते है और मनुष्य अमृत पीकर अमर हो सकता है । भिन्न-भिन्न देवताओ की नगरी अलग-अलग थी—उदाहरण के लिये—अमरावती । अतिथि मे देवता का वास होता है । राजा के पाप-पुण्य से प्रजा को दुख-सुख होता है—यथा राजा तथा प्रजा ।

कलियुग के सम्बन्ध मे जन-विश्वास है कि कल्कि अवतार होने पर ही पृथ्वी से पाप दूर होगा । कलियुग के सम्बन्ध मे जन-विश्वास है कि कल्कि ६ वर्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न होगा और इस युग मे एक-एक फीट के आदमी होंगे । इसमे पण्डितो का निरादर होगा और मूर्ख पण्डित माने जायेंगे ।

एक महीने मे दो ग्रहण होना अशुभ माना जाता है । जब आठ ग्रह मिल

जाते हैं तो देश में भयकर रूप से अव्यवस्था होती है। महाभारत के समय में तो केवल छ ही ग्रह मिले थे और परिणामस्वरूप इतना बड़ा युद्ध हुआ था।

मंत्र व टोने-टोटके—मंत्र, टोने-टोटके लोक-विश्वासों का अधिक व्यावहारिक और तामसिक रूप है जब कि पूजा-उपासना उसका अधिक मानसिक और सात्विक रूप है। मंत्र, टोने-टोटके लोक-जीवन के प्रमुख अंग बने हुये हैं और इनकी मान्यता तथा उपयोगिता हर क्षेत्र में स्वीकार की गई है। इनके द्वारा ओंछे, स्थाने, अघोरी, मौलवी, सिद्ध आदि अपना जीविकोपार्जन करते हैं।

लोक-साहित्य में संस्कृत के 'मंत्र' शब्द को मंतर कहते हैं। मंत्र का एक विशिष्ट रूप सकटमोचन का साधन है। जनजीवन में इसका प्रयोग कष्ट-निवारण के लिये ही विशेष होता है। 'मंत्र' शब्द रूप से प्रभाव करता है। मंत्र का अधिकांश प्रभाव उसके उच्चारण पर ही निर्भर रहता है। उपयुक्त व्यक्ति के द्वारा ठीक उच्चारण किए हुए मंत्रों से वांछित फल मिलता है पर साथ ही अशुद्ध उच्चारण से तथा अनुपयुक्त व्यक्ति के द्वारा किये जाने से न केवल उसका प्रभाव ही नष्ट होता है वरन् अनिष्टकारी भी सिद्ध हो जाता है, जैसा कि डॉ० सत्येन्द्र ने अपने लेख में कहा है कि—“समस्त वेदमंत्र, संस्कार-अनुष्ठान से सम्बन्ध रखते हैं। वे Ritualistic हैं। मंत्रों के साथ यह टोने-टोटके की भावना लगी हुई है कि यदि इनका उच्चारण हम सविधि करेंगे तो उनसे हमें अवश्य ही फल मिलेगा। मूलतः मंत्रानुष्ठान टोने के एक आवश्यक अंग थे।”

वैदिक कर्मकाण्डियों के लिए मंत्र टोने के रूप में काम करते थे। इसी प्रकार लौकिक-जीवन में भी उनका महत्व है। इनकी प्रतिक्रिया विशेष रूप से दैनिक-जीवन पर ही आधारित होती है। लोकसमाज में मंत्रों का ज्ञान व उनका फल प्राप्ति के लिये उच्चारण करने का अधिकार, सबको नहीं होता। उसके लिये ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है। किसी भी जाति का व्यक्ति विधिपूर्वक सिद्धि प्राप्त करने के वाद इनका प्रयोग कर सकता है।

मंत्र द्वारा जो जादू-टोने होते हैं, वे मंगलकारी हैं पर कभी-कभी विघ्नकारी होने के साथ ही माय किर्मी दुमरे के लिये अनिष्टकारी भी होते हैं। सिद्धि प्राप्त कर लेने पर इनमें वह शक्ति आ जाती है जिससे इनका प्रयोग दोनों रूपों में कर सकते हैं—इष्ट के लिये तथा अनिष्ट के लिये भी। इनकी सिद्धि चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के समय ही प्रायः की जाती है। इनका शिक्षित होना आवश्यक नहीं होता। ये

प्रायः अर्थों से भी विदित नहीं होते, केवल कठस्थ रहते हैं लेकिन वे उनका प्रयोग पूर्ण आस्था और विधि से करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये सिद्धियाँ परम्परागत हों। वे बेटे के काम नहीं आती। 'स्याने' लोग मन्त्रों को अपनी विधि मानते हैं और उसको दूसरों को बताना भी उचित नहीं समझते। कुछ लोग तो यह निधि अपने साथ ही लेकर समाप्त हो जाते हैं।

“अधविश्वास का दूसरा बड़ा वर्ग है मन्त्र-तन्त्र। इस वर्ग के भी अनेक उपभेद हैं। मुख्य भेद है—रोग-निवारण, वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि। विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मन्त्र प्रयोग प्राचीन तथा मध्यकाल में सर्वत्र प्रचलित था। मन्त्र द्वारा रोग-निवारण अनेक लोगों का व्यवसाय था। विरोधी व उदासीन व्यक्ति का अपने वश में करना या दूसरों के वश में करवाना मन्त्र द्वारा संभव माना जाता था।^१”

इसके पूर्व कि हम मन्त्रों की विवेचना करें, यहाँ पर इस बात की ओर सकेत कर देना भी आवश्यक है कि इन मन्त्रों का शाब्दिक रूप संस्कृत अथवा साहित्यिक भाषा-मण्डित नहीं है। इन भाषाओं का रूप भी लोक-भाषा से ही सजा सँवारा मिलता है। यदि कोई कही ऐसा मन्त्र देखने को मिलता भी है जो भाषा की दृष्टि से लोकभाषा से अलग है, ऐसे मन्त्रों को लोक-समाज अपने ही उच्चारण से रग लेता है। इसलिए जितने भी मन्त्र इस समाज में दृष्टिगत होते हैं वे सब लोक-समाज तथा लोक-भाषा से ही अधिक प्रभावित हैं। इन मन्त्रों में एक और विशेष गुण भी होता है कि यह तुकान्त और गेय होते हैं। इनमें किसी न किसी देवता या पीर-पैगम्बर का नाम भी होता है, जिसके प्रभाव से कार्यसिद्धि होती है। लोकमन्त्रों में उन वृक्षों के नाम भी आते हैं जिससे उस व्याधि को लाभ होता है। साथ ही साथ ऐसे वृक्षों का प्रयोग भी किया जाता है जैसे नीम, इससे भी माता तथा स्याही को लाभ होता है।

यहाँ पर हम कुछ विशेष मन्त्रों का उल्लेख करते हैं जो खड़ीबोली प्रदेश में भिन्न-भिन्न समय तथा स्थानों पर प्रयोग किये जाते हैं।

चूल्हा बाँधने का मन्त्र—

‘जल बाँधूं जलमाई बाँधू जल की बाँधू काई
चार खंटे चूल्हे की बाँधू और बाँधू अगनी माई
तले सूखे या उप्पर सूखे, भँरो जागे
हुक्म लगा हनुमान का हाँडी कूदे ना पक्के

मेरे बचनो से टले तो नवी कुण्ड मे जले

डुहाई हनुमान महाराज की'

मोच उतारने का मंत्र—

'मोच मोच की पाल, भूमि का जाल

जाल सरकै मोच भडकै, सुनो मियाँ सुनो माणा

मेरे गुरु का बचन साँचा'

यह मंत्र तीन बार पढ़ने है जिसकी विधि इस प्रकार है— राख मे झाड़ने हैं और ७ बार लेकर छोड़ देते हैं। इसको ग्रहण के समय मित्त करने हैं। झाड़ने वाला आर झाड़ने वाला दोनों ही मौन रहने हैं।

जानवरो के व मनुष्यो के घाव मे कीड़े पड़ने पर—

'ओम नमो सात नारियाँ देशाधर को

झाड़ू कीड़े बाँधू स्याही

सुनो मियाँ, सुनो माणा

मेरे गुरु का वचन साँचा'

यह नीम की टहनी मे, जहाँ पर घाव हो झाड़ने हैं। इसमे कीड़े भी जड़ जाते हैं।

पीलिया तथा आँख के फोले झाड़ने का मंत्र—

'नदी पार दो हल चुगं

कौन चुगावै गाय

हाँक मारै हनुमान को

नजर और फोला भागा जाय'

काला भैंरो काली रात, तुमै बुलाऊँ आधी रात

हाड फूल की डक रो, सठफूल का बाण

भैंरो बाबा मदद कर बक्स बच्चे का प्राण'

झपटा, भूत प्रेत का अमर तथा माता मे भी इसी ऊपर लिखे दोहे को पढ़ कर वलिदान दे जिसमे प्रयोग मे आने वाली सामग्री इस प्रकार है—

उबले चावल, बूरा और उसके ऊपर दही, यह बालक के ऊपर से उतार कर चौराहे पर रख दे। यह क्रिया बिना बोले करना चाहिये। यह दोपहर को या रात के १२ बजे के समय करे। इसको लगातार ३ या ७ दिन तक करे। लोक-धारणा है कि चौराहे पर रखी हुई इस प्रकार की सामग्री को लाँघने वाला व्यक्ति उन सभी कुग्रहो मे पड़ जाता है। इसी से गर्भवती स्त्रियो को विशेषतः इसका निषेध है कि वह चौराहे पर न जाय वैसे तो साधारणतया सभी वच कर चलते हैं।

मसान—(यह बालको का एक रोग विशेष है) इस रोग के अतिरिक्त बच्चो को पीलिया, हरे पीले दाँत या सूखा रोग हो तो भी यही मंत्र पढ़ा जाता है—

‘लौटे सगली रूपै घड़ी, लैके तखमई, कालिखा चढ़ी

गुरु रत्ती गुरु के ढाई बाण

बकसो लोहू भागो मसान’

यह भी ३ दिन या ७ दिन करते हैं। चरमा की पिंडी, एक रोटी तेल में चुपड़े और उसके ऊपर उस पिंडी को रख दे। किसी भी तरह का फूल रखे या सरसो के दाने रखे। इस तरह इसको भी ३ या ७ दिन तक चौराहे पर बिना बोले हुए रखे। बालक स्वस्थ हो जायगा।

नजर उतारने का मंत्र—लगातार रोना, दूध न पीना, दस्त आना, नजर के विशेष लक्षण होते हैं। इसी समय इस मंत्र का प्रयोग होता है—

‘दमादम मिटा सुतलतान अहमद कबीर, कुलाबे की जंजीर

जल बाँधो जल वायु बाँधो, बाँधो जल का नीर,

डकनी कलिहारी की नजर को बाँधो तो हनुमन्ता बीर।’

इसकी सामग्री इस प्रकार है—आटे की चोकर, ७ या ५ डल समेत मिर्च, ७ ककर नमक, राई, रास्ते की मिट्टी, ७ बार बालक के ऊपर से उतार कर आग में डालते हैं। माँ अपने हाथ से नजर कभी नहीं उतारती। बुआ, चाची, ताई, बहिन, आदि उतारती हैं। नजर उतारने के समय कहते हैं—‘माँ बापकी, हलियाये झलियाये की, गली गलिहारे की, अडोस्सन पडोस्सन की। नजर उतारने के अन्य मंत्र भी हैं।

‘आकू बाकू सान सवाकू,

गोरे लला को काला टीका,

नजर दे वाकै फोड़ दीदा’

× ×

‘शुक्र शनीचर मंगलवार टोना हिन

चलो बीर दरबार, झारझूर चगा किया

टोनाहिन के मुडवा पर पटक दिया’

इस मंत्र को सिद्ध करने की विधि इस प्रकार है कि शुक्रवार के दिन सवा हजार गोलियाँ मंत्र पढ़ कर आटे की बनावे, शनिवार को मंत्र पढ़ कर जल में मछलियों को डाले, सिद्ध हो जाय। फिर जिसकी नजर दूर करनी हो लेकर उसके ऊपर २१ बार मंत्र पढ़ कर बच्चे की माता को दे दे। बच्चे के मुँह, नाक,

पेट और मस्तक पर भस्मूती लगा दे । बच्चा अच्छा होकर दूध पीना आरम्भ कर देता है ।

लोक विश्वास है कि निम्नलिखित मन्त्र रक्तचदन से भोजपत्र या कागज पर लिख कर बालक के गले में बाँधे तो नजर न लगे । यह इस प्रकार है —

ऊ	हीं	श्री
काली	ह	नु
म	ताय	नम

बिच्छू, ततैया, साँप, पागल कुत्ता तथा कोई भी जहरीले जानवर के काटने पर—इस दोहे को पढ़ कर चाकू या लोहे से काटते हैं (चाकू कील या लोहे की पत्ती से)—

दोहा—‘मूल कृत्तिका आर्द्रा, असलेखा, मघा, जान
बिसाखा भरणी, प्रान ले, काटे सर्प या स्वान’

इसके लिये झाड़ इस प्रकार है—

‘काला बिच्छू कोतल हारा, हरीपख सोने का डारा
चढ़े तो माहँ उतरे तो उताहँ’

इसको २१ बार पढ़ कर लोहे आदि से झाड़ने हैं । लाल या पीला ततैया काटने पर इस मन्त्र के द्वारा भी झाड़ते हैं—

‘लाल ततैया या पीला ततैया
विष का भइया, विष के बाँधू डोर
लाल ततैया की हनुमान जी महाराज
गरदन पकड़ कै तोड़’

यह भी २१ बार पढ़ कर झाड़ते हैं । बिच्छू की झाड़ इस प्रकार की भी है—

‘काला बिच्छू ककर माला हरी पूछ सोने की माला
कोरा करवा जल भरा रे गौरा आगे घरा, गौरा माई
कर असनान उतर रहे बिच्छू सिर के तान’

आख का फोला क्षाडने का मंत्र—

‘इन्द्र तारा की सात बेंटी, सातों कांधे कुदारी
सातो चलीं फोला काटने, फोला काटी
आखें राखी, दोहाई ईश्वर महादेव
नंना योगिनी कामरू काम या गौरा पारबती को’

छोटी माता, निमोनिया तथा खांसी के क्षाड का मंत्र—

‘कल कल करती कालका, धुक धुक करे मसान
ऊंचे खड़े भूमिया, लोट रही चौगान’

यह मंत्र पढ़ कर २१ या ७ बार बच्चे के ऊपर गुड का शरबत करके कुत्ते को पिलाये और चौमुखा (जिसमे चार बत्ती हो) दीया तेल का हनुआ, ये चौराहे पर रख आये। यह सब एक सै (सौ) एक (मिट्टी की तश्तरी में रखें)

जच्चा के ऊपर का मंत्र—

‘काली काली महाकाली, चारों हाथ बजावे ताली
तेरी चोट न जाये खाली बुआ की पुत्री इन्दर की साली
हमारे इलम को राजा मेटे, राज से जाये
प्रजा मेटे आस औलाद से जाये
हस के वाचा मेरे गुह का सब कुछ’

९ बार, १३ बार या १७ बार पढ़ कर फूँक मारते हैं। इसको चाबुक या चाकू से झाड़ते हैं।

जच्चा के पास नीम की खल, नीम की निबौली, घूनी जिममे काला दाना अरमल, लोबान, गवक, अजवायन, सब को एक जगह मिलाकर आग के पास रखने हैं—जच्चा के पास जाने से पहले यह घूनी दी जाती है, जिसके कारण फिर जच्चा पर कोई भी आशका नहीं रहती।

लोहें की वस्तु से कहीं शरीर में कट जाने से अगर खून निकल रहा हो तो उसे इस मंत्र से झाड़ा जाता है जिससे खून का निकलना बंद हो जाता है—

‘तत्ता लोहा गढे लुहार
मैं बांधू लोहे की धार
धार धार सो महा धार
तीर की धार सौ कटार की धार
पक के ना फूटे निकतर न छूटे
यहीं खड़ा खड़ा सूखे

मेरा भगत मेरे गुरु की शपथ
जो इन बचनो से टले तो दो ही हनुमान पड़े'
अन्धासीसी (आधे सिर मे दर्द होने पर)—
काली, चीचड़ी काले बन को जाये
उठो मोहम्मद झाड दो, फलाँ की आघा सीसी जाय'
दाढ़ के दर्द की झाड़—

काला कीड़ा कबरा कीड़ा, बत्तीस दात चराय
दाढ झाडू फला की मेरे झाडे ना झडे तो
लूना चमारी के जनम नर्क कुड मे जाय'
थनेला की जाड़—

'नदी पार हल चले, जाटनी छुटावन जाय
उठो मोहम्मद झाड दो, फला का थनेला जाय'
मोहिनी मत्र—

ओम नमो आदेश गुरु का राजा मोहू परजा मोहू
मोहू ब्राह्मण कन्या, हनुमन्त रूप से जगत मोहू
जो रामचन्दर परमानंद मेरी भक्ति गुरु की शक्ति
फिरो मत्र ईश्वर बाचा'

बच्चो के मीठे की झाड़—

'ओम हिरिंग शिर्लिंग क्लक
असी आरप्पा नम
स्वार्थ सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा'

बच्चो के डब्बे की झाड़—

१ समुद्र २ समुद्र ३ समुद्र ४ समुद्र ५ समुद्र ६ समुद्र ७ समुद्र
सात समुद्र पर कपला गऊ
कपला गऊ के पेट मे बच्चा
बच्चे के चार खूरी, घरा कालजा बढ़ा सर
मोरी भगती मेरे बचनो से
टले तो नर्क कुड मे जले
दुहाई गोरखनाथ की'

मवेशियो के घाव के कीड़े झाड़ने का मत्र—

गंगा पार बूकल के गाढ़ी, झड़े कीड़ा झडे रसोई
ईश्वर महादेव, गौरा पारवती की दुहाई'

‘ठ ठ ठ ठ स्वाहा’ इस मंत्र को पढ़ कर मिट्टी के गोले से सात बार झाड़े तो कुत्ते के बाल मिट्टी के गोले के अन्दर आ जाते हैं। गऊ की रक्षा में इस मंत्र को सात बार जप कर गऊ पर हाथ फेरते जाते हैं, इससे सब प्रकार उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। नारियल की गिरी, छोहारा, दाख, घी, शक्कर, मधु बारह हजार होम करने और इस मंत्र को अपने पास रखने से सब उपद्रवों की शांति होती है। पगडी के कोने में बाँध लेने और उस गाँठ को लटकाने पर दुर्जन व शत्रु वशीभूत हो जाता है। इसी मंत्र से सात बार फूँक देने से दाढ़ की पीड़ा दूर होती है। नौ कन्या के काते हुए धागे के सूत को सिर से पैर तक नाप कर उसमें सात गाँठ दे। इक्कीस बार अभिमन्त्रित कर गुग्गुलु की धूप देकर स्त्री की कमर में बाँधने से गर्भ-स्तभन होता है। २१ बार मंत्र में फूँक देकर स्त्री को वस्त्र उढ़ाने से, उसका बालक होने से रुकता है। चन्दन को घिस कर जल में मिला दें और उस जल को अभिमन्त्रित कर भूतमय पीड़ित को पिलाने से भूतमय दूर हो जाता है।

इन मंत्रों का प्रयोग करने वालों के लिये कुछ विधि व निषेध हैं जिनमें मुख्य है पवित्रता। मंत्रों का प्रयोग करने वाले को बहुत शुद्ध आचरण से रहना चाहिये। उसको प्रसूतिगृह में तथा रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिये।

मंत्रों से चल कर ही लोक मानव टोने-टोटके पर पहुँचा। मंत्रों के लिये सिद्धि तथा अनुष्ठान की आवश्यकता पड़ती है परन्तु टोने-टोटके कर्मकांड के अंग बन गये हैं। इनमें क्रिया की ही आवश्यकता होती है। कुछ विशिष्ट टोने-टोटके—जैसे हडिया छुड़वाना आदि तो ‘स्पाने’ ही करते हैं परन्तु वह सर्वसाधारण दैनिक जीवन में नहीं होते हैं। यहाँ हम साधारण और दैनिक जीवन सबधी टोने-टोटकों का ही अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

टोने-टोटके की मान्यता—वास्तव में आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से अनभिज्ञ लोक-समाज, आज भी टोने-टोटके में अपना संपूर्ण विश्वास तथा आस्था रखता है। वह इस बात से परिचित है कि बड़ों ने जो कुछ भी कहा है उसमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य है, क्योंकि वे बहुत अधिक समझदार, बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी थे। लोक-जन आधि-व्याधि के निवारण के लिए पूर्णरूपेण डाक्टर, वैद्य तथा हकीम पर निर्भर नहीं रहते हैं। उनके अपने आस्थानुसार भिन्न भिन्न उपचार हैं जो घरेलू हैं और सहज सुलभ हैं तथा तुरंत फलदायक होते हैं। वह साथ ही साथ अपने टोने-टोटके से ही व्याधि का उपचार कर लेते हैं। बीमार के ठीक हो जाने पर श्रेय इन्हीं को मिलता है। २० वीं सदी में भी इन टोने-टोटकों का पनपने का सबसे बड़ा कारण है कि लोक, मानव धर्म से इनका गहन संबंध मानता है। कोई भी कष्ट, आपत्ति, बीमारी अथवा सुख, देवी-देवता के प्रकोप तथा प्रसन्नता का फल होता है। यदि दुख है तो देवता

अथवा अन्य किसी अमानवीय शक्ति को प्रसन्न करने से ही दूर होता है और सुख के लिए उसे पत्र-पुष्प आदि अर्पण करने पड़ते हैं जिससे वह सदा अपनी प्रसन्नता बनाये रखे।

सत्य तो यह है कि टोने-टोटको की इस दीर्घायु के पीछे, लोकमानस का धर्म-भीरु सरल, अविकसित तथा अनभिज्ञ अन्तरमन है, जो उमे समाज, बड़ो तथा अपनी भावनाओं से विरासत के रूप में मिला है। उसकी भोली भावना तथा उसका सीमित ज्ञान इन सस्कारों को तोड़ नहीं पाता। यह लोकविश्वासों का ही अभिन्न व्यावहारिक पक्ष है जिसमें विधि-निषेध पर विशेष ध्यान दिया जाता है और 'टोकने से' उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। टोने-टोटके का टोकने से विरोध है। इसी से संभवतः इसका यह नामकरण हुआ। टोकने के भय के कारण ही यह एकान्त में किये जाते हैं। लोकविश्वासों का सबव सरल हृदय से होता है, अतः तर्क बुद्धि से उसको समझने की चेष्टा करना भी निष्फल सिद्ध होता है। इनका अच्छा बुरा महत्व भी इन्हीं सरल हृदयों के लिये है। शका का इसमें कोई स्थान नहीं और न शका समाधान का ही प्रश्न उठता है। वह समाज में प्रतिदिन सुनता है कि अमुक व्यक्ति पर प्रेत का प्रभाव हो गया और उसको अमुक सयाने ने ठीक किया। उसी परिस्थिति के समान जब दूसरे के सामने कोई परिस्थिति आती है तो वह भी सम्भवतः वही उपचार करता है। अगर उस उपचार से भी वह किसी कारणवश ठीक नहीं हो पाता है तो भी वह अपनी आस्था नहीं छोड़ता अपितु यह विश्वास करता है कि संभव है उसके विधि-विधान में ही कहीं कमी रही है या भाग्य का दोष है। टोने-टोटके की जड़े लोकमानव के मानस में बड़ी दूर तक पहुँची हुई हैं। यदि इन टोटकों की खोज की जाये तो दूब की नाल की भाँति लोकजीवन में आदि से अंत तक इनका विस्तार है। साधन हीन तथा सरल मानव इनको अपने विश्वास से निरंतर सींच रहा है। यदि हम टोने-टोटको का इतिहास खोजें तो हमको विशेष रूप से इसके प्रादुर्भाव का ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। केवल इसके अस्तित्व मात्र का पता चलता है। यह आर्यकालीन पद्धति नहीं है, इतना निश्चित है। वेदों तथा शास्त्रों में इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते। आर्यों का जीवन इतना अधिक बँधा हुआ नहीं था अपितु वह अधिक मुक्त था। यदि हम पिछड़ी हुई जातियों की ओर दृष्टिपात करें तो हमें इस प्रकार की परम्पराओं की बहुलता आज भी देखने को मिलेगी। टोने-टोटके तांत्रिक पद्धति के अधिक निकट हैं। इनकी उत्पत्ति भी उसी काल में हुई होगी, जैसा कि श्री जनार्दन मुक्तिदूत के इस कथन से स्पष्ट होता है—“इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति का एकदम ठीक-ठीक अन्दाज़ लगाना ज़रा कठिन है फिर भी मोटे तौर पर हमें दोनों शब्दों का प्रचलन वेदों के अप्रचार और पुराणों की

प्रतिष्ठा के कई शताब्दी पश्चात् मन्त्र युग में ही मिलता है । अथर्ववेद में वर्णित मन्त्र-शास्त्र जिसमें यात्रिक तथा केवल वैधानिक दोनों ही प्रकार के तन्त्र हैं, धीरे धीरे भूल जाते लगा और मन्त्रशास्त्र के नाम पर जो कुछ पुगण तथा परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध या उसे ही एकमात्र शास्त्रीय मान कर मन्त्रशास्त्र के नाम पर अनेक लाभ-दायक तथा हानिप्रद प्रयोग चल पड़े । कालान्तर में इन्हीं प्रयोगों का उनकी उपयोगिता के आधार पर टोना या टोटका नाम पड़ा ।^१

टोने-टोटको पर शास्त्रीय विधि-विधान तथा कर्म-कण्ड का भी प्रभाव देखने को मिलता है । शास्त्रीय विधि विधान का अनुष्ठान बहुत सट्टदार तथा आडम्बर-पूर्ण हो जाने के कारण मनुष्य तांत्रिक विधियों की ओर बढ़ा था । यही कारण था कि धर्म के इतिहास में तांत्रिकों तथा कापालिकों का भी राज्य आ गया था । उस काल में कार्यसिद्धि, बलि देना, काय-कण्ड से इच्छित फलप्राप्ति के लिए अमानवीय शक्ति की ही सिद्धि करना बहुत प्रचलित हो गया । सयाने, ओझा आदि आज भी पाये जाते हैं । ये लोग भी अमानवीय शक्तियों को सिद्ध करते हैं तथा उचित अनुचित मनोरथों की सिद्धि का दावा करते हैं ।

यहाँ पर हम कुछ बहुत ही लोकप्रचलित टोने-टोटके देख रहे हैं जो जितना यश ही अधिक है । मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने प्रिय के अनिष्ट की आशंका की कल्पना से भी सहिर उठता है और अपना बच्चा मनुष्य को, विशेषकर नारी को सबसे अधिक प्रिय होता है । इसीलिए उसके अनिष्ट निवारण के लिए नारी समाज ने अपनी तरह के अनेक समाधान निकाल लिए हैं जिनको आस्थापूर्ण हृदय से करके निश्चिन्त हो जाती है । यह क्रिया प्रसव से पहिले से ही आरम्भ हो जाती है । प्रसव से कुछ दिन पूर्व सौरगृह के बाहर की दीवार पर गोबर से चक्रव्यूह का आकार बना दिया जाता है । गर्भवती स्त्री की कमर से काले डोरे से लटका कर बहेड़ा या हड बोंध देते हैं । उसके सिरहाने सदैव ही तथा शिशु के जन्म लेने से कुछ घंटे पूर्व ही बुल-हुआ चाकू या तलवार रख दी जाती है । चाकू या तलवार रखने का क्रम बच्चे की एक वर्ष की आयु होने तक चलता रहना है । लोकविश्वास है कि सिरहाने चाकू होने से बच्चे या उसकी माता को किसी प्रकार की भूत बाधा नहीं होती और बच्चे सोते-सोते चौकने या डरते नहीं ।

अपने बच्चों को माताएँ सबसे सुंदर समझती हैं, इसी से अचानक कुछ भी शारीरिक रोग होने पर उनका ध्यान सर्वप्रथम नज्जर की ओर ही जाता है । उनका विश्वास है कि अधिक सुंदर व अच्छे बालकों को कु-दृष्टि असर कर जाती है । वह

स्नान कराने के बाद बच्चे के काजल लगाने वाली उगली पर बचे हुए काजल से उसके माथे पर डिठौना (चांद, तारा) बना देती है तथा उसके हाथों व हथेलियों तथा पाँव के तलुओं पर काजल की रेखा बना देती है। गले में बजरबटू^१ बना कर पहनाती है। हाथों में काले डोरे या काले डोरे में पिरोई हुई काली तथा सफेद पोत तथा कमर में काली करघनी भी पहनाते हैं। यह सब कुप्रभाव और मुख्यतः नजर लगने से बचाव के हेतु उपाय है। कभी-कभी इतने प्रव्रव के बाद भी बालको को नजर लग ही जाती है जिसकी पहचान है कि अच्छा भला, हँसता खेलता बालक अचानक बार-बार रोंने लगता है, दूध पीना छोड़ देता है। तब वह नजर उतारने के लिए निम्नलिखित उपचार करती है—

गोधूल के समय नजर की सामग्री (राई, नमक, आटे की भूसी, साबित सात लाल मिर्च, झाड़ू का तिनका) हाथ में लेकर बच्चे के ऊपर से सात बार उतार कर टोटका करने वाली चूल्हे की ओर पीठ देकर टाँगों के बीच से हाथ की सब चीजों को चूल्हे में डाल देती है। अगर मिर्चों की वास जरा भी न आए तो समझ लो बहुत नजर लगी है। यह कार्य करते समय किसी को टोकना नहीं चाहिए।

माताएं अपने बच्चों को एकदम दूध पिलाकर बाहर खेलने नहीं जाने देती और उसे राख चटा देती हैं, इससे कुछ कुप्रभाव होने की आशंका नहीं रहती।

बच्चों को नहलाते समय भी माताएं नजर उतार देती हैं। उस समय वह पहले जमीन की मिट्टी उठाकर बच्चे पर सात बार उतार कर माथे पर लगा देती हैं, बाद में स्नान कराती हैं।

जिन पुरुषों का विवाह अधिक अवस्था तक नहीं होता, उनके लिए यह विधान है कि वह कुम्हार का चाक फेरने की लकड़ी चुरा लाते हैं। उसे बृहस्पतिवार को घर लीप पोत कर लहंगा, दुपट्टा, बिंदी महावर लगा कर कोने में खड़ा करके और उसकी गुड़ चावल से पूजा करते हैं। सात बार सात लकड़ी चुराने के बाद जितना ही कुम्हार नाराज होगा और अपशब्द कहेगा उतनी ही जल्दी उसका प्रभाव होगा।

घरों में देवठावनी एकादशी के दिन सोते हुए देव जगाये जाते हैं। कच और देवयानी की पूजा होती है। कच और देवयानी की मूर्ति ऐपन^२ या मिट्टी से बनायी जाती है और उसे पटरी से ढँक दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता

१. एक प्रकार की माला—जिसमें रुद्राक्ष गुमची छोटा सा चांदी का चांद, तांबे का सूर्य, नीले गुरिष तथा शेर का नाखून होता है।

२. हल्दी और चावल का आटा पीस और घोल कर तैयार किया जाता है।

है कि सूर्य भगवान् देवयानी के पिता है और उनका कन्या तथा उसके पति का मुख देखना वर्जित है। द्वादशी के सबरे ही घर के कुमार लड़को या कुमारी कन्याओं को पटरे पर बिठा दिया जाता है। लोक विश्वास है कि एक वर्ष के अन्दर उनका ब्याह हो जाता है।

दिशा-शूल के लिए भी कुछ टोटके होते हैं। पचाग के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को विशेष दिशा में जाने के लिए दिशाशूल हो तो इसके लिए प्रत्येक वार के लिए पृथक्-पृथक् टोटका होता है। जिस दिन जाना हो उस दिन कुछ खाकर जाने से दिशाशूल नहीं होता, उदाहरण के लिए—रविवार को पान खाकर जाने से, सोमवार को शीशा देखकर जाने से, मंगल को थोड़ी बायबिडग खाकर, बुध को कहीं भी जाना वर्जित होता है। अगर जाना फिर भी आवश्यक हो तो पेड़ा खाकर जाये। बृहस्पतिवार को राई खा कर, शुक्रवार को घनिया तथा शनिवार को माथे पर हल्दी का टीका करा कर जाने से दिशाशूल नहीं लगता। जाने के एक दिन पूर्व एक रूमाल में थोड़े से चावल, एक सुपारी, एक हल्दी की गाँठ, तथा दो पैसे बाँध कर घर से बाहर किसी मंदिर या घर में रखा देते हैं। हल्दी उस व्यक्ति की प्रतीक होती है। चावल उसके भोजन, दो पैसे राह का खर्च तथा रूमाल उसके कपड़ों का प्रतीक समझा जाता है। उसे एक दिनपूर्व कहीं और स्थान पर रखने का अर्थ है कि वह व्यक्ति एक दिन पूर्व ही यात्रापर चल पड़ा, इस प्रकार प्रस्थान हो जाता है। वह मानो मंदिर में विश्राम कर रहा है। ग्रहों का प्रभाव इस प्रकार नष्ट हो जाता है। इसको लौकिक भाषा में 'परस्थान' कहते हैं। यह सभी घरों में प्रचलित होता है।

हत्था-जोड़ी तथा सेई का काँटा—हत्था-जोड़ी गोहरे नामक जन्तु के पेट से निकलती है, एक छोटी सी हड्डी पर दो मिले हुए हाथ बने रहते हैं। उसे सिन्दूर में रखा जाता है और होली, दीवाली तथा सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण के पर्वों पर उसे घूप दी जाती है। इससे पति, दास की भाँति आज्ञापालन करने लगता है।

गोघूल वेल में किसी के घर सेई का काँटा और चोटली (रुत्ती) डालने से कलह होता है। किसी दुश्मन को मरवाने के लिए हड्डिया छुड़वाते हैं। इसको 'स्याने' लोग ही करते हैं। हड्डिया को मंत्र से बाँधते हैं। उसमें सामान रखते हैं तथा जिसका अनिष्ट करना हो, उसका नाम लेकर छोड़ते हैं। इसको 'मूठ' छोड़ना भी कहते हैं। यह प्रायः होली, दीवाली की रात को विशेष रूप से करते हैं। यदि कोई दूसरा 'स्याना' देख ले और हड्डिया को पलट दे तो उमका छुड़वानेवाले पर ही सारा कुप्रभाव होता है। इसमें बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है तथा यह बहुत खतरनाक भी होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे टोटके भी होते हैं। किसी नव-विवाहिता की शादी की ओढ़नी में से चौकोर टुकड़ा काटना—इससे उसका अनिष्ट होता है। इसी प्रकार बच्चों के बाल काटना, तथा टोपी कुरता आदि चुरा लेना, किसी स्त्री के बीच माँग से बाल काट कर उसे बाँझ करना, चोटी काटना, किसी के बच्चे को दूध पिलाना, किसी के दरवाजे पर चालीस दिन तक शाम को दिया जला कर रखना तथा किसी के लिए चौराहे पर 'उतारे' रखना भी हैं।

काले तिल, सिन्दूर, तथा लौंग आदि का जादू करने के लिए विशेष प्रयोग करते हैं। आटे का पुतला बनाकर जलाना, तथा अनिष्ट कामना करना भी लोक समाज में प्रचलित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकसमाज में विशेषतया गृहस्थ-जीवन में टोने-टोटके भी उनके अन्य दैनिक कार्यों की भाँति ही जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। इसलिए वह किसी के कहने-सुनने की भी अपेक्षा नहीं करते हैं। यह स्वाभाविक और प्रथम प्रतिक्रिया होती है। मनुष्य का मन जन्म से ही आशावादी तथा शकाशील प्रवृत्ति का होता है। वह अपनी, अपने निकटतम सबंधियों की तथा प्रियजनों की शुभ व सुरक्षा हर दृष्टि से चाहता है जिसके लिए अगर कभी किसी अन्य व्यक्ति का अनिष्ट भी करना पड़े तो वह पाप नहीं समझता और अपने स्वार्थ-हेतु उसे न्यायसंगत ठहरा लेता है। जहाँ टोने-टोटके, मंगलकामना सुरक्षा तथा इच्छाओं की पूर्ति के माध्यम हैं, वहाँ लोकमानव अपनी प्रतिशोधक भावना की पूर्ति के लिए भी उन्हीं का आश्रय लेता है।

यदि लोकजीवन का अध्ययन किया जाय तो हम पायेंगे कि टोने-टोटके लोक-मानव के जीवन में अच्छे-बुरे, मानवीय-अमानवीय, लौकिक-अलौकिक, साधारण, अद्भुत, सभी रूपों में दृष्टिगत होते हैं।

खड़ीबोली प्रदेश में धर्म का व्यावहारिक पक्ष पूजा-उपासना—लोक-जीवन में धर्म का विशिष्ट सहयोग है। लोक मानव परिस्थितियों की क्रूरता से कभी इतना अधिक आक्रान्त हो जाता है कि वह अपनी सामर्थ्य तथा अन्य वाह्य शक्तियों में अधिक विश्वास नहीं कर पाता। उस समय वह ऐसी शक्तियों की ओर दौड़ता है जो अमानवीय तथा अलौकिक हैं जिनका सबब किसी अद्भुत शक्ति अथवा देवी-देवता आदि से होता है। इन शक्तियों में देवी-देवता, वनस्पति, नदियाँ, पशु-पक्षी आदि सभी आ जाते हैं। इन सब की उपासना लोक-जन की दुर्बल मानसिक स्थिति को पुष्ट बनाने में सहायता देती है। लोकजन अपने किसी काम में विघ्न-बाधा नहीं चाहता। इसीलिए वह भूत प्रेत की पूजा भी करता है और उनकी पूजा में अनैतिक तथा तामसिक साधन भी अपनाता है।

यह सब वह इसलिए करना है कि उसका जीवन कष्टों में बचा रहे तथा उसके कार्यों में इन सब शक्तियों के द्वारा व्यवधान न पहुँचे। शास्त्रीय देवी-देवताओं को वह इसीलिए पूजता है कि उनके प्रभाव से उसको मनोवांछित फल मिल जाय। वह समझता है कि अगर देवी-देवता प्रसन्न रहेंगे तो दूसरी तामसिक शक्तियों का प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। हनुमान उनके सबसे निकटतम देवता हैं जिनके प्रभाव से 'भूत-पिशाच निकट नहीं आवें'।

वैष्णवों के पंच 'ग' कार (गंगा, गीता, गाय, गोविन्द, गायत्री) का यहाँ भी उतना ही मान है जितना कि अन्य कहीं देखा जा सकता है—

‘कुरुधर्म यानी कुरुदेश के लोगों का चरित्र सारे भारतवर्ष के लिए एक आदर्श माना जाता था।’

लोकमानव इतना सरल होता है कि उसे न तो अनुष्ठान की रीति ही मालूम है और न वह नवधामक्ति ही जानता है। यज्ञ-हवन आदि से भी उसका विशेष परिचय नहीं है। उसके पूजन की विधियाँ बहुत सरल होती हैं और साधारण हैं। वह कार्यसिद्धि के लिये प्रसाद बोलता है। नियम से मंदिर जाता है, जल से स्नान कराता है, फूल-पत्र चढ़ाकर दीप जला देता है अथवा एक पैसा चढ़ा देता है। इतना ही करने से उसके मन को शक्ति मिलती है तथा उसकी आस्था को सहारा मिलता है। वह प्रकृति को भी ईश्वर का रूप समझता है। जो प्राकृतिक अंग उसके लिये लाभदायक है तथा उसकी जीवन यात्रा में सहयोगी हैं वह उनकी पूजा कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वनस्पति, नदियाँ, पशु-पक्षी आदि पूजन की लोक-विधियाँ हैं। इन विधियों की पृष्ठभूमि में कर्मकांड अथवा शास्त्रीय विधियाँ नहीं होती। इन विधियों में न मंत्रों की ही आवश्यकता होती है और न पंडितों की। लोक-समाज में पूजा-उपासना का यह घरेलू रूप अपना लिया गया है। इस उपासना का क्षेत्र बहुत व्यापक है। शाश्वत देवी-देवताओं के अतिरिक्त और भी अनेक देवी-देवता हैं जो इनके निजी देवी-देवता हैं जिनकी पूजा की विधि भी उसकी अपनी ही है। वह इन देवी देवताओं की पूजा घर में सहज उपलब्ध वस्तुओं से ही करता है। माता की पूजा वह दाल, बिनौले, दही तथा हल्दी आदि चढ़ा कर ही कर लेता है। यही उसकी पूजा है।

अब हम लोकमानव की पूजा उपासना के विविध पात्र तथा देवी-देवताओं का यहाँ पर उल्लेख कर रहे हैं जिनकी पूजा से लोकमानव अपने जीवन को सार्थक बनाता है इनको हम निम्नलिखित तालिका के द्वारा स्पष्ट कर सके हैं—

पूजा-उपासना

देवी	देवता	वनस्पति	पंचतत्व	पशु	मिश्रित		
शाश्वत	ग्राम	शाश्वत	ग्राम	पेड़-पौधे	जल-देवता	गाय	
दुर्गा	चंडीदेवी	शिव	हनुमान	पीपल	नदी-पूजा	गाय	चाकपूजना
सरस्वती	मनसादेवी	गणेश	भूमिया	नीम	गंगा	चामड	कुआ ,
पार्वती	बेमाता	राम	भैरो	आवला	सूर्य-चंद्र	नीलकंठ	ढोलक ,
लक्ष्मी	शीतला	कृष्ण	चामुंडा	बेल	वरती	कालाकौआ	कलम- दावात
सत्ती	जाहर	केला	अग्नि	गरुड	पुस्तके		
सीकरीदेवी	बूढ़ेबाबू	तुलसी	तारागण	बदर	स्वस्तिकी-		
चामुंडा	उलग	बरगद	पर्वत-पूजा	कछूए	चिह्न		
तुरकनमाता	(उग्रदेवता)	आक	गोवर्धन	मोर	चक्र पूजा		
मसानी	अत		शालिग्राम				
वासन्ती	भैरो						
महामाई							
मोलमदे	मीरा						
लमकडिया	रुवाजाखिजर						
अगमानी	बालेमिया						
छठीसतवाई	प्यारेजी						
वाराही	तेजनाथ की पूजा						
फुलको	सकट						
लालता	वब्रुवाहन						
अगमदे							
कठी, खसूटा, बुद्धो, अहोई,							
साक्षी, शाकम्बरीदेवी, नरगरकोट की देवी							
सदला, झुनकी, मिदला, महकला, मंडला, अक्को-खक्को,							
रेंटो-फोटो, हसनी-खेलनी							

इन्ही विभिन्न भागों के अन्तर्गत आने वाले पूजा-उपासना के आलम्बनों पर पृथक्-पृथक् विस्तार से विचार किया गया है। इस प्रदेश में शिव और शक्ति की उपासना का बहुत प्रचार है। शिव देवताओं में प्रमुख और सनातन हैं। इसी प्रकार शक्ति आदि देवी हैं। जिनके विभिन्न रूप सरस्वती, पार्वती तथा लक्ष्मी आदि शास्त्रों में भी उपलब्ध हैं। इनका पूजन विधि-विधान तथा अनुष्ठान द्वारा होता है जिसका अधिकार विज्ञ-पंडितों को होता है तथा उन्हीं के द्वारा सम्पन्न भी होता है। इन्हीं आदि शक्ति के लोक-जीवन में पारिवारिक तथा मुलम रूप भी देखने को मिलते हैं जिनके विभिन्न नाम तथा विभिन्न शक्तियाँ हैं। यह स्थान विशेष से भी सबधित होती हैं तथा प्रत्येक का भिन्न क्षेत्र भी होता है जिसके लिए वह पूज्य मानी जाती हैं। इन ग्राम देवियों के नाम इस प्रकार हैं—

चडी देवी, मनसा देवी, शीतला, वैमाता, सत्ती, साझी, सीकरी देवी, चामुडा, तुरकन माता, वाराही, महामाई, मुस्सी, छठी, सतवाई, फुलको, लालता अगमदे, कठी, खसरा, बुद्धो, ममानी, वासन्ती, पोलमदे, लकडिया, अगमानी, शाकुम्बरी देवी, नगरकोट की देवी।

इनमें से कुछ देवी का उल्लेख विस्तार से इस स्थान पर कर रहे हैं—

सरस्वती देवी—गढमुक्तेश्वर मार्ग पर मेरठ से २॥ मील दूर है। इनकी पूजा रविवार को होती है। इनकी पूजा से मनोकामना पूर्ण होती है अतः जन-समाज में इनकी बहुत मान्यता है।

चडी-देवी—हरिद्वार में पहाड़ी के ऊपर चडीदेवी का बहुत प्राचीन मंदिर है। चडी चौदस के दिन यहाँ पर बहुत बड़ा मेला लगता है। इसकी बहुत मान्यता है। चडी देवी शक्ति की प्रतीक मानी जाती है। किसी स्त्री को विकराल रूप में देख कर यही कहा जाता है कि चडी सी बिखर रही है। इसी कारण लोकजीवन में चडी का बहुत निकट का संपर्क है।

शाकुम्बरी देवी तथा नगरकोट की देवी—इनकी पूजा चाणक्य के समय में भी होती थी। यहाँ जात देने के लिए तथा बालकों का मुडन कराने के लिए प्रतिवर्ष बहुत से लोग दशहरे पर उसके थान पर जाते हैं। चैत्र तथा वार में मुहूर्त शोधकर जात के लिए प्रस्थान करते हैं।

‘शाकुम्बरी देवी का मन्दिर छुध्न देश का सबसे बड़ा तीर्थस्थान था। शिवालक की उपत्यका में स्थित यह मन्दिर उस युग में बड़ा पवित्र माना जाता था और भगवती शाकुम्बरी के दर्शन के लिए लाखों यात्री वहाँ प्रतिवर्ष जाया करते थे। इस मन्दिर के चारों ओर घनघोर जंगल था और दिन के समय भी वहाँ आना-जाना भय से शून्य समझा जाता था। यही कारण है कि शाकुम्बरी

के यात्री 'बृहदहट्ट' नामक नगर में ठहर कर दिन के समय टोली बनाकर शाकम्भरी के मन्दिर के दर्शन के लिए जाया करते थे। बृहदहट्ट नगरी शाकम्भरी के मन्दिर से एक योजन की दूरी पर उस राजमार्ग पर स्थित थी, जो कुरुदेश से उत्तर की ओर जाता था।^१

महामाई और अमरोह वाली देवी की पूजा चमारो में होती है। यह लोग थान पूजते हैं। महामारी को भी महामाई कहते हैं।

सतवाई या छठी—यह एक निशाचरी है, जिसके सतुष्ट करने के लिए प्रसव के छठे दिन प्रसूता से यह पूजा कराई जाती है। गदगी के कारण 'लाकजा' रोग हो जाता है। लोग इसी को प्रेत-बाधा मानते हैं जिसे दूर करने के लिए 'छठी' पूजन किया जाता है। इस प्रकार इस टेहले में आदि मानव के विश्वासों की छाया वर्तमान है। वाणभट्ट ने हर्ष-जन्म पर भी जातमातृदेवी की मूर्ति का बनाया जाना व पूजा जाना लिखा है। इस देवी का एक नाम चंचिकादेवी भी है। पुत्रजन्म के छठे दिन 'बेमाता' की पूजा भी होती है। इसको देवी का विधाता रूप मानते हैं विशेषकर इनको बच्चे बहुत प्यारे होते हैं। यह उनका निर्माण करती है तथा रक्षा करती है। यह मातृका देवी कहलाती है। लोकविश्वास है कि अगर लड़की हो तो वह बुढ़िया है जो बत्ती सी बनाती है, गारे का खेल-खिलौना बनाती है तो लड़का बन जाता है और जो लड़की होती है तो जवान होती है और जल्दी से आकर थापा मार कर चली गई तो लड़की हो जाती है।

सीकरी देवी—मेरठ में बहुत प्रसिद्ध है। इसे बकरा चढ़ता है।

चामुडा—यह हापुड में है। इसे कच्चा सीधा चढ़ता है।

साझी—की नवरात्र में यहाँ के ग्रामों में विशेषतया लड़कियाँ लीपपोत कर मिट्टी के गहनो को खड़िया व रामरज से पोत, गोबर की एक नारी-मूर्ति का शृंगार करती हैं। इसी को साझी कहते हैं। यह दुर्गा का ही एक स्वरूप माना जाता है। मोहल्ले की सभी कन्याएँ सध्या को इकट्ठी होकर इसकी आरती करती हैं। इसका सबंध राम-विजय से भी है।

भुस्ती माता—मेरठ में मैसाली मैदान में इसकी पूजा के बाद हथेली पर गेहूँ की भुस्ती रखकर मुँह की फूँक से उड़ाते हैं। इसी से यह नाम भी पड़ा है।

बाराही—यह सप्त मातृकाओं में से एक है। किशनपुर व फिटकरी में इसकी जात लगती है। इसका विगडकर 'बराई' हो गया है। फोडे-फुसी जैसे चर्म

रोगों के सबध में पूजी जाती है। थान पर जाकर स्त्रियाँ मीठे पूडे चढ़ाती हैं और जोत जलाती हैं।

लोकपूज्य इन माताओं की गणना करना दुष्कर है। नगर-नगर और खेडे-खेडे की माताएँ हैं और अनेक रोगों तथा दशाओं की भी अलग-अलग अपनी देवियाँ हैं, यथा हसनी-खेलनी, अक्को-खक्को (खासी की) रेटो-फेटो (सर्दी-जुकाम) आदि हैं। अन्य ग्राम देवताओं की तरह इन माताओं में भी कुछ विजातीय माताएँ आ गई हैं उदाहरण के लिए हरिद्वार की तुरकन माता ऐसी ही है। डब्लू-क्रूक के अनुसार यह किसी मुगल शहशाह की हिन्दू पत्नी की सनान थी जो अपने पूर्व-संस्कारों के प्रभाववश बर्द्रीनाथ यात्रा के लिए गयी थी। उमें वहाँ स्वप्न हुआ कि उसे तुरत वहाँ से लौट जाना चाहिए अन्यथा विधर्मी लोग उस स्थान पर जाकर उसे अपवित्र करेंगे। देवाज्ञा स्वीकार कर वह बर्द्रीनाथ से लौट पड़ी और कनखल में निवास किया। उसे वरदान मिला था कि उसकी श्रद्धा के फलस्वरूप मृत्योपरान्त वह शिशुरक्षिका देवी के रूप में पूजी जायेगी। इसलिए उसकी समाधि पर मन्दिर बना दिया गया और लोग उसे तुर्कन माता कह कर आज तक पूजते हैं।

मेरठ में चैत्र शुक्ला द्वितीया पर पडासौली और सरधने में जात लगती है। देवबद (सहारनपुर में) बहुत प्रसिद्ध बालासुदरी देवी का मंदिर है जहाँ पर जात लगती है। सूरजकुंड पर सती ज्ञानीदेवी की समाधि है।

चामड—पशु-देवता के रूप में मेरठ में इसकी पूजा होती है। विशेषतया भैंसे की स्वामिनी कही जाती है। विवाह के उल्लो में से यह एक है।

देवता—देवताओं में प्रमुख सनातन देव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, राम, कृष्ण हैं, जिनका लोक समाज तथा समस्त आस्तिक हिन्दू समाज में पर्याप्त महत्व है। इनके मंदिर ग्राम-ग्राम में स्थान-स्थान पर मिलते हैं जिनमें विधि-विधान से पूजन होता है, लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ लोक-देव भी हैं जो लोकजीवन के अधिक निकट हैं। इनका अपना-अपना विशिष्ट महत्व है। इनके नाम इस प्रकार हैं—भूमिया, भैरो, चामुडा, हनुमान, जाहर, बूडे बाबू, उलग, (उग्रदेवता) ऊत, भैरो, मीरा, ख्वाजाखिजर, बालेमियाँ, प्यारे जी, तेजनाथ जी, वीर बब्रुवाहन, सकट।

भूमिया—इनका एक थान होता है, यहाँ जाकर लोग होली खेलते हैं तथा दीवाली को दीपक रखते हैं। विवाह के बाद घर-बघू को सटी खिलवाने में वही ले जाते हैं तथा पुत्रजन्म पर भी स्त्रियों को ले जाया जाता है। पशु के पहले ब्याने

पर दूध सर्वप्रथम भूमिया को भेंट किया जाता है। विवाह के अवसर पर 'दई' देवता के गीतो में इनका भी विशेष स्थान होता है। भूमिया ग्रामदेवता माना जाता है। ग्रामवासी की सुरक्षा तथा पालन भूमिया के द्वारा होता है।

भैरो—मेरठ में सूर्यकुंड पर तथा काली प्लटन के शिवमन्दिर में भैरो का थान है। यह भी सभी प्रदेशों में हर स्थान पर मिलते हैं। विवाह में गाये जाने वाले १६ उलंगों में एक उलग भैरो के नाम का अवश्य होता है। कहा जाता है भैरो शकर का कोतवाल होता है जो रात्री में कुत्ते पर चढ़कर पहरा देता है।

हनुमान की मढ़ी—हर ग्राम में मिलती है। यह सकटमोचन है। अतः इनके आराधन पूजन से 'भूत, पिशाच निकट नहीं आते' अलाबला हनुमान का नाम लेने से टल जाती है। ऐसा लोक-विश्वास है कि हनुमान की पूजा—रात को १० बजे से सुबह चार बजे तक नहीं करनी चाहिए क्योंकि उस समय स्वयं हनुमान राम की सेवा में रहते हैं उस समय पूजा करने से उनकी सेवा में विघ्न पड़ता है। पहलवान और अखाड़ेबन्द लोग हनुमान की पूजा करके तथा 'जय बजरंग बली' कह कर ही अखाड़े में उतरते हैं।

जाहर—गूगा तथा जाहर पीर की भी मेरठ जनपद में बड़ी कामना की जाती है। छड़ियों का मेला इसी से संबंधित है। जाहर की छड़ी के ऊपर मोरछल बाधा जाता है। मोर सर्प का स्वाभाविक शत्रु है। स्त्रियाँ सावन में झूले पर गीत गाती हैं वह देवता सर्पों से रक्षा करता है। जाहर पूजा के लिए मुख्य वस्तुएँ आटा और गुड़ एक सराई में ले जाते हैं, एक टका और बाँस में बधी एक सफेद कपड़े की झड़ी लेकर आते हैं। 'जाहर का साका जोगी' लोग गाते हैं, जो गुग्गे के सोहले भी कहलाते हैं। बच्चों का निशान भी जाहर पीर पर चढ़ाया जाता है। निशान के लिए एक बास में पीला या नीला झंडा, पखा बांध कर रखते हैं। गुड़-आटा आदि साथ ले जाते हैं। दीपक से जोत करते हैं। जोगी लोग मोर पखों से बाछिछ देते हैं। बाछिछ 'वाछा' का बिगड़ा हुआ शब्द है।

मीरा—डबलू कूक के अनुसार बगदाद के निकट जलगाँव के अब्दुल कादिल जिलानी ही मीरा साहब के नाम से उत्तर भारत में पूजे जाते हैं। यह एक महात्मा थे जिन्हें प्रेत सिद्धि थी। आज भी स्त्रियाँ बालकों का प्रेत-बाधा से बचाव करने के लिये मीरा की बड़ाई करती हैं और तेल के मीठे पूड़े (पाच पाच पूड़े सात ढेरियों में लगाकर भिनसने के बाद मिश्री को दे देती हैं। विवाह में गाये जाने वाले दई-देवता में भी मीरा को लिया जाता है। स्त्रियाँ मीरा से सुख सौभाग्य और संतति की कामना करती हैं।

बूढ़े बाबा—यह त्वचा रोग के देवता हैं। इनकी मीठे पूड़ों से पूजा करते हैं। इस दिन बच्चों को मीठे पूड़ों से अवश्य मुख बिटारना पड़ता है। इनको सृष्टिकारी ब्रह्मा भी माना जाता है। परन्तु इनकी पूजा बच्चों को फोड़े-फुन्सी से बचाने के लिए की जाती है।

ऊतो—इनको प्रसन्न करने के लिए बरुआ (अवविवाहित ब्राह्मण बालक व युवकों) को दूध पेड़े खिलाते हैं तथा बोल कबूल कर लेने पर वस्त्रादि तक देते हैं।

उलग—यह उग्रदेवता है जो अगर रुठ जाये तो मनाना कठिन हो जाता है किन्तु आरम्भ में ही यदि उनकी पूजा कर दी जाय तो सहज प्रसन्न होने वाला तथा सिद्धिदायक भी है। ऊतो तथा उलग की पूजा विवाह के समय होती है।

बब्रुवाहन—विवाह के मंडप में हलद के ऊपर रखे जाने वाले कशण को बब्रुवाहन का शिर बतलाया जाता है। बब्रुवाहन को श्रीकृष्ण जी का वरदान है कि वह कटे हुए शिर से सब कुछ देखेगा। इनके अतिरिक्त कुछ रोगों का देवता भी माना जाता है। निम्नजाति एवं असम्य लोगों का विश्वास रहा है कि रोग और मृत्यु किन्हीं प्रकृत कारणों से न होकर क्रूर आत्मा भूत प्रेतादि अथवा जादू-टोने का परिणाम है। इसी हेतु कार्य-कारण के सबध का निश्चय कर पाने में असमर्थ यह भोले-भाले लोग सहसा उत्पन्न होने वाले भयकर रोगों के विविध देवताओं की कल्पना कर उन्हें नाच गाकर अपनी मेट-पूजा से प्रसन्न कर अपनी सुरक्षा और कामनापूर्ति की याचना करते हैं।

शीतला माता, वाराही माता तथा बूढ़े बाबू इन्हीं के अन्तर्गत मुख्य रूप से आते हैं। झाड़-फूंक करने वाले, पीरो के उपासक 'स्याने' कहलाते हैं। ये लोग गाँवों में रोगों के चिकित्सक और प्रेत-बाधा निवारण करने वाले माने जाते हैं। यहाँ के गाँवों में चारों दिशाओं में देवता हैं। इनकी प्रशंसा में तथा स्तुति में योगी लोग 'साके' गाते हैं।

लोकविश्वास है कि देवी-देवता पितरों के रुष्ट हो जाने पर रोगों का डर रहता है उदाहरण के लिए—१—आख दुखना, २—बाय, ३—स्वेत कुष्ठ, ४—मुख तथा गुदा मार्ग से रक्त गिरना, ५—पागलपन, ६—शरीर का पकना।

इसी कारण ग्रामीण नर-नारी अपने इन मान्य, पूज्य देवी-देवताओं को किसी भी शुभकार्य से पहिले तथा किसी भी अशुभ की आशंका के अवसर पर सर्वप्रथम पूजा से सतुष्ट कर तथा स्तुति कर मन से निश्चिन्त हो जाते हैं। लोक-मानव उपचार अथवा चिकित्सा में इतना विश्वास नहीं करता जितना इसमें

विश्वास रखता है कि यदि देवी-देवता की पूजा यथासमय सुचारु रूप से करता रहेगा तो कोई कष्ट अथवा व्याधि उसे व्यापेगी नहीं ।

वनस्पति पूजन—प्रकृति, जीवन से भिन्न नहीं है अपितु लोक-समाज में इसका जीवन से गहन संबंध है । लोक-जन का रहन-सहन, खान-पान, क्रिया-कलाप तथा कोई भी दैनिक कार्य प्रकृति विधान के विपरीत नहीं होता । उनके सब कार्य स्वाभाविक रूप से समयानुकूल होते हैं इसी से वे स्वस्थ रहते हैं । यहाँ मानव संपूर्ण प्रकृति की ही पूज करता है, मौसम, पर्वत, नदी, वनस्पति सभी में लोकमानव की आस्था रही है । स्त्री समाज में तो वनस्पति पूजन का बहुत महत्व है, यद्यपि इसका आधार वैज्ञानिक ही है पर स्त्रियाँ तो वैज्ञानिक पक्ष जानती नहीं और इसको परंपरागत आस्था के रूप में ही अपनाती रही है ।

वनस्पतिजगत से मानव का संबंध उतना ही प्राचीन है जितनी यह सृष्टि । सम्यता के आदिकाल से ही वृक्ष, लताएँ, पुष्प, घास, आदि मानव के सहचर रहे हैं । आदिम मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं, आवास, भोजन, वस्त्र की पूर्ति इन्हीं वृक्षों के द्वारा हुआ करती थी । इन्हीं कारणों से यदि उसने वृक्षों को देवता के रूप में पूजना आरम्भ कर दिया हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

वृक्षों के प्रति साधारण जनता में पूजा भावना का होना स्वाभाविक ही है । धीरे-धीरे लोगों में इन वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों के प्रति अपने लोकविश्वास प्रचलित हो गए और उन्होंने रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया । विशेष वृक्षों की पुत्र देने वाली, धन-धान्य प्रदान करने वाली अथवा मनोमिलाषा की पूर्तिकारक पूजा मानी जाने लगी । इन वृक्षों तथा पौधों में विशेष उल्लेखनीय है—पीपल, बड़, नीम, आम, आवला, केला, बेल, आम, कीकर और कुशा घास । हर वृक्ष की अपनी आत्मा होती है अतः उसे चेतन की तरह समझना चाहिए ।

पीपल—यह परम पवित्र वृक्ष माना गया है । इसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश निवासा करते हैं । अनेक प्राचीन मन्दिरों के ऊपर यह वृक्ष उगता हुआ दिखायी पड़ता है । जहाँ इसकी जड़ उस मंदिर की दीवाल में घुस कर अपनी स्थिति बना लेती है । मंदिर के पास पीपल के पेड़ को लगाने की भी प्रथा है । इसलिए देवी-देवताओं के मंदिरों से संबंधित होने के कारण भी यह पवित्र माना जाता है । इस वृक्ष को जलाया जाना निषिद्ध मानते हैं क्योंकि लोगों की ऐसी धारणा है कि इस वृक्ष पर देवताओं का निवास है और काटने से उन्हें कष्ट होता है । इसलिए कोई भी हिन्दू इसे काटना पाप समझता है । हर शनिवार को पीपल की पूजा इसलिए की जाती है क्योंकि शनिवार को सब देवताओं का वास पीपल के

पेड़ के नीचे होता है इसलिए जो लोग रोज पूजा नहीं करते वह भी गनिवार को पीपल की पूजा करके सब देवी देवताओं की पूजा करते हैं ।

स्त्रियाँ सोमवती अमावस्या को स्नान करके वामदेव के रूप में इस वृक्ष की पूजा करती हैं । वे इसकी जड़ में जल चढ़ाती हैं, चन्दन, रोली और फूल से इसकी पूजा करती हैं । १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं । इस वृक्ष की पूजा दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाली मानी जाती है । लोगों का विश्वास है कि यह सतान को देनेवाली भी है । यह प्रेत-बाधा से रक्षा करता है । गुड़, चंदन, धूप, हल्दी आदि से इसका पूजन करते हैं । पीपल की लकड़ी केवल हवन के लिए प्रयोग में लायी जाती है ।

बरगद-वटवृक्ष—वटवृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है । इसकी आयु बड़ी होती है । वाल्मीकि रामायण तथा उत्तररामचरित में स्थित अक्षयवट का उल्लेख पाया जाता है । प्रलय के समय भी वह जल में निमग्न होने में बचा रहा । इसकी शाखा की पत्ती पर बालरूप में भगवान् विराजते रहे । गया में बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी । इसीलिए वटवृक्ष को काटना निषिद्ध समझा जाता है । अनेक बीमारियों में इसका दूध प्रयोग में लाया जाता है ।

बडमावस के दिन स्त्री समाज में बड़ की पूजा बहुत श्रद्धा से होती है । सती सावित्री जिस समय जंगल में थी और यमराज उसके पति के प्राण लेने को आये उस समय वह वटवृक्ष के नीचे बैठी हुई अपने पति की सेवा कर रही थी । उसी पेड़ के नीचे उसके पति के प्राण यमराज ने ले लिए थे और सावित्री की पवित्रता व सत्य के बल पर उसके प्राण यमराज ने लौटाए । इसलिए स्त्रियाँ बड़ के पेड़ की पूजा करती हैं उनका विश्वास है कि यह सौभाग्य का देने वाला है ।

नीम—इस पेड़ को संस्कृत में 'निम्ब' कहते हैं । यह वृक्ष बहुत ही पवित्र समझा जाता है, क्योंकि शीतलादेवी का यह निवास स्थान माना जाता है । चैत्र मास में नवरात्र के समय इस वृक्ष की पूजा विशेष रूप से होती है । अगर इस समय इसकी पूजा न करे तो देवी रुष्ट हो जाती हैं । इसका वृक्ष बहुत विशाल होता है तथा इसकी छाल बहुत शीतल होती है । इसके फल को 'निम्बोली' कहते हैं । नीम के फूल व गोद भी खाने के काम में लाये जाते हैं और वैद्यक शास्त्र में इसकी बहुत प्रशंसा है ।

लोकविश्वास है कि नीम पर शीतला माता का निवास रहता है और भक्त के द्वारा आवाहन करने पर यहाँ से जाती है । नीम की पत्तियों का उपयोग चेचक की बीमारियों में विशेष रूप से किया जाता है नीम की टहनी से 'झाड़ा'

जाता है और नीम की पत्तियों पर उसको सुलाया जाता है । इसके फूलों को रोगी की चारपाई के पास बिखेर देते हैं क्योंकि इसकी सुगंध उनके लिए हितकर होती है । इसकी हवा स्वास्थ्यप्रद होती है ।

नीम वृक्ष का सबध सर्प से भी है । भूत भगाने के लिए भी नीम की पत्तियों का प्रयोग किया जाता है । नीम का वृक्ष अपनी उपयोगिता तथा शीतला एव काली देवी का निवास-स्थान होने के कारण पवित्र माना जाता । सूर्य और शीतला के सबध में इसे पूजते हैं ।

बेला—श्रीफल को संस्कृत में 'बिल्व' कहते हैं बेल उसी का अपभ्रंश है । इसकी बहुत-सी पत्तियाँ भगवान् शिवलिंग के ऊपर चढ़ायी जाती हैं । लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन पत्तियों को शिव के ऊपर चढ़ाने से हलाहल (विष) के पान करने से उत्पन्न भगवान् शिव की गर्मी शांत होती है । खडित पत्तियों को नहीं चढ़ाया जाता । बहुत से लोग बेल की पत्तियों पर चन्दन को पीस कर, उसके द्वारा इसकी डठल से राम-राम लिख कर शिव जी पर चढ़ाते हैं । ऐसा करना अत्यन्त पुण्य का देने वाला समझा जाता है । पूरे सावन के महीने में ही विशेष रूप से बेलपत्र शिव जी पर चढ़ाये जाते हैं । इसी महीने में शिवरात्रि होती है ।

इस वृक्ष का लकड़ी पवित्र होने के कारण मृत व्यक्ति के जलाने के काम में लाना अत्यन्त निषिद्ध है । इस वृक्ष के नीचे मलमूत्र त्यागना मना है । इस वृक्ष की पत्तियों का उपयोग अनेक प्रकार की औषधियों में किया जाता है ।

आवला—यह बहुत पवित्र वृक्ष माना जाता है । कार्तिक मास में इस वृक्ष की (आवला एकादशी के दिन) विशेष रूप से पूजा की जाती है । पुत्र की प्राप्ति के लिए इस वृक्ष की पूजा का विधान है । अक्षयनवमी को कार्तिक में इसकी पूजा का विशेष महत्व है । इस दिन इस वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों को भोजन कराना बड़ा ही पुण्यदायक माना जाता है । इसको सुख, सौभाग्य, सतान देने वाला माना जाता है । आवले के फल का उपयोग अनेक रोगों में किया जाता है । आवला शीतल होता है । लोक-जीवन में आवला भोज्य पदार्थ भी है ।

केला—'कदलीफल' बहुत पवित्र माना जाता है । कार्तिक मास में इसकी विशेष रूप से पूजा होती है । केले के एक ही चरखे पर अनेक फल लगते हैं अतएव यह सन्तानोत्पत्ति का प्रतीक समझा जाता है ।

लोक-सभाओं में इसका बहुत उल्लेख मिलता है । इसका पूजन स्त्रियाँ सौभाग्य तथा सतान की कामना के लिए हर वृहस्पतिवार को करती हैं । इसका पूजन चने की दाल, दूब तथा हल्दी के छोटों से किया जाता है । इस दिन व्रत रख कर पीला भोजन ही करती हैं ।

आम—हिन्दू संस्कृति में आम का बड़ा महत्व है। कोई भी मांगलिक कार्य आम की डाली के बिना नहीं होता परन्तु आम की पूजा नहीं होती। विवाह के समय आम की पत्तियों से तोरण बदनवार बनाई जाती है। मंगलघट में इसकी पत्तियाँ लगाते हैं।

आम की लकड़ी का प्रयोग हवन की समिधा के रूप में होता है। विवाह तथा यज्ञोपवीत में हरी लकड़ी का पीड़ा बनाया जाता है। आम के बौर को लोक मानव बहुत पवित्र समझता है। आम के बौर को जब वह पहली बार देखता है तो अपनी किसी इच्छा की पूर्ति की कामना करता है।

आक—आक की पूजा तीसरे दिन का बुखार दूर करने के लिए की जाती है तथा जिगर के लिए भी इसकी पूजा करते हैं।

तुलसी—यह परम पवित्र पौधा समझा जाता है। हर घर में तुलसीचौरा होता है। विष्णु जी की पूजा का इससे घनिष्ठ संबंध है। तुलसी की पूजा माता के रूप में की जाती है इसीलिए उसे 'तुलसीमाता' भी कहते हैं। कार्तिक मास में इसकी पूजा विशेष रूप से होती है। प्रातः संध्या समय स्त्रियाँ घी का दिया जला कर पूजा करती हैं तुलसी के थावले पर दीपक जलाते समय वह एक दोहा कहती है जो इस प्रकार है—

**तुलसा माता मुक्ति की दाता
दिवला सोचू तेरा कर निस्तारा मेरा'**

कार्तिक मास में 'देवउठावनी एकादशी' तथा कार्तिक पूर्णिमा पर तुलसी-विवाह भी बहुत धूमधाम से शालिग्राम के साथ करते हैं। विष्णु भगवान की पूजा तुलसी-दल से ही की जाती है। तुलसी विष्णु भगवान की पटरानी मानी जाती है। तुलसी पूजन का सुख-सौभाग्य के लिए बहुत महत्व है। नारियाँ प्रतिदिन स्नान, पूजा के बाद तुलसी को जल से सींचती हैं तथा नमस्कार करती हैं और तुलसीदल प्रसाद स्वरूप ग्रहण करती हैं। तुलसी सींचने समय वह कहती हैं—

‘धन धन तुलसा, धन धन राम
उज्ज्वल तुलसा तेरी जात
लिप्पु पोतू चौक पुराऊ
तुलसा रानी नौत जिमाऊ
जौ का खेत, चदन की क्यारी
तुलसा सिचवे श्रीकृष्ण जी की प्यारी’

तुलसीदल तोड़ने के समय वह इस प्रकार एक दोहा कहती है—जिसके द्वारा वह तुलसीदल ले लेने की आज्ञा लेती है तथा अपना आशय भी बताती है—

‘तू क्यूँ तुलसा हाल्ली डोल्ली, क्यूँ झलोरे ले
हमे भेज्जी कृष्ण जी ने, दो दल मागो दे’

रविवार और मंगलवार को तुलसीदल तोड़ने का निषेध है। उस दिन स्वामाविक रूप से झड़ी हुई पत्तियों से ही पूजन करते हैं।

कुश—कुश की पवित्रता के कारण इसका उपयोग सभी मंगल-कार्यों में किया जाता है।

यदि कोई मनुष्य परदेस में मर जाता है और उसका अग्नि संस्कार नहीं होता तो कुश से उसकी प्रतिमा बनाई जाती है। उसे ‘कुश पुत्रिका’ के नाम से संबोधित करते हैं। इसका सबंध राम के पुत्र और लव के छोटे भाई कुश के जन्म की कथा से है।

दूध फट न जाए इसलिए उसमें कुश डाल देते हैं। कुश में भूत को भगाने की शक्ति मानते हैं। ग्रहण के समय यदि खाने-पीने की वस्तुओं में कुश रख देते हैं तो उसका सूतक नहीं लगता। कुश से जल छिड़क कर स्थान पवित्र किया जाता है। शिखा में भी कुश बाधते हैं तथा देवपूजन में कुश से ही स्नान कराते हैं। कहा जाता है कि सागर मथन के बाद अमृत घट ले जाते समय कुश पर ही रखा गया था तब से कुश अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।

दूब—सभी मंगलकार्यों में दूब का प्रयोग होता है। दूब सदा हरी रहती है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान विष्णु ने अमृत का घड़ा एक स्थान पर रख दिया था। कौवे ने आकर उसे पी लिया और उसका कुछ अंश जमीन पर गिरा दिया जो दूब पर पड़ा। दूब स्त्रियों के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। कुएं पर उगी हुई दूब अधिक पवित्र समझी जाती है।

दूब इसलिए भी पवित्र मानी जाती है कि वह सदा अपना वंश बढ़ाया करती है। दूब के नाल सदा फैलते रहते हैं। इसलिए समृद्धि शाली तथा दीर्घायु की भी प्रतीक है।

पंचतत्व पूजन—मनुष्य का यह पार्थिव शरीर ‘क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा’ से निर्मित है। ये जीवन के लिए आवश्यक तत्व हैं, अतः उनका उचित आदर होता है और इनको भी देवी-देवता का रूप दे दिया गया है। इसके अन्तर्गत जल देवता, अग्नि देवता, धरतीमाता, चन्द्र-सूर्य, नक्षत्र, पर्वत (गोवर्धन)

शालिग्राम का पूजन होता है। मिट्टी के गणेश बनाकर पूजन करने के पीछे धरती पूजने की ही भावना है।

नदी पूजन—नदियाँ जीवन की गति का प्रतीक हैं कि इसी प्रकार ये भी अवाधगति से प्रवाहमान हैं। भारत में गंगा, यमुना, सरस्वती, सरयू, गोमती, गोदावरी, नर्मदा का बहुत महत्व है। इस प्रदेश में गंगा लगभग हर जिले में बहती है अतः गंगा यहाँ के निवासियों के बहुत निकट है तथा अधिक पूज्य है। अनेक मान्यताएँ, प्रथाएँ, कहावतें गंगा से संबंधित प्रचलित हैं 'गंगाजली उठाना' 'गंगा चढ़ाना' आदि। गंगाजली उठाना—अर्थात् गंगा की कसम खा लेना। गंगाजली उठाने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य सत्य ही कहेगा।

जिन व्यक्तियों के बालक नहीं जीते वह बालक को गंगा में चढ़ाने की प्रथा करते हैं जो इस प्रकार होती है। सर्वप्रथम बालक का बाप बालक को गंगा की धारा में फेंक देता है और जब बालक जल में से उछल कर ऊपर आ जाता है तो लोग विश्वास करते हैं कि गंगा ने उसको बख्श दिया और इस प्रकार उसको उठा लेते हैं तथा गाते बजाते हुए घर लौट आते हैं। उस बालक का नाम भी गंगा से संबंधित होता है—गगू, गंगादीन, गंगादास आदि।

अनेक बार बोल-कबूल कर लेने पर 'गठजोड़' से पति-पत्नी को गंगास्नान कराया जाता है। बेटों का विवाह करने के बाद या कोई कठिन कार्य सम्पन्न होने के बाद गंगा नहाने की प्रथा है। गुप्तदान का भी गंगा में बहुत महत्व है। गंगा स्नान से सब पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसके जल की शुद्धता और पवित्रता तो सिद्ध है। इसी से मृतक के मुह में तथा अनेक पवित्र कार्यों में तथा शुद्ध करने के लिए गंगा जल का प्रयोग करते हैं। हर हिन्दू घर में गंगाजल और तुलसी अवश्य मिलते हैं।

लोग अपनी मनोकामना पूर्ति के लिये भी गंगा में दीपदान करते हैं। गंगा से संबंधित गीत तथा कथाएँ भी मिलती हैं, जिनको प्रबन्ध में यथाम्थान दिया गया है। गंगा स्नान करने समय प्रायः महिलाएँ यह दोहा कहती हैं—

‘गंगा बड़ी गोदावरी, तीरथ बड़े प्रयाग
महिमा बड़ी समन्द की, पाप कटे हरिद्वार’

तथा,

घोऊ सीस मिले जगदीस
घोउ नैन मिले सुख चैन
घोये कान मिले भगवान

धोये कठ, मिले बैकुंठ
धोई काया, मिली माया'

यहाँ के प्रदेश के निवासियों के जीवन पर गंगा का बहुत ही सर्वव्यापी प्रभाव है। गंगा जी को शिवजी न अपनी जटाओं में धारण किया और विष्णु जी के चरणों से उत्पन्न हुई। गंगाजल पंचतत्वों में से एक है और शरीर व आत्मा की शुद्धि करता है। गंगा में दीप-दान करते समय कहते हैं—

'गंगे माई की आरती, जै गंगे माई
सुरग लोक से गंगा आई
गंगा का दान, मैया का कल्याण
जै श्री किशन भगवान'

तथा, गंगा को माता, मइया के रूप में कल्याणकारी मानते हैं।

'गंगे माता, मुक्ति का दाता
दिवला सीचू तेरा, कर निस्तार मेरा'

नदियों के अतिरिक्त कुएँ, कुंड, चश्मे आदि की भी पूजा होती है। इनमें मुख्य है नवलदे का कुआँ (परीक्षित गढ़ में) गाधारी कुआँ, सूर्यकुंड (मेरठ) सती कुंड (हरिद्वार), भीमगोडा (हरिद्वार) देवीकुंड।

अग्नि-पूजा—अग्नि को पवित्र मानते हैं उसमें अशुद्ध वस्तु नहीं डालते तथा भोजन बनाने पर सर्वप्रथम अग्नि जिमाते हैं। ऋतुकाल में स्त्रियाँ अग्नि का स्पर्श भी नहीं करती हैं। ब्राह्मण जिमाते समय तथा श्राद्धों में सबसे पूर्व अग्नि जिमाई जाती है। तब भोजन प्रारंभ होता है।

पृथ्वी—घरतीमाता के रूप में ही जन-समाज में पूज्य है। प्रातः काल उठकर घरती को स्पर्श करके कहते हैं—

'घरती माता तू बड़ी, तुझसा बड़ा न कोय
तुझमें पाव घरू, खूट का बासा होय
गऊओ का फल होय'

अथवा,

'निर्मल घरती सीतल काया
उठ अधरमी पापी आया'

किसान जब घरती में बीज बोता है तो भी घरती तथा हल, बैल, की पूजा करता है। पीली मिट्टी के टुकड़े से गणेश जी बनाकर पूजा की जाती है, वह

भी पृथ्वी की पूजा होती है। हवन आदि भी एक प्रकार से पूजा ही है। हवन से पूर्व वेदी की पूजा करना भी पृथ्वी की पूजा ही है।

सूर्य—स्त्रियाँ स्नान करने के बाद सूर्य को अर्घ्य देकर ही अन्न-जल ग्रहण करती है। स्वस्तिक सूर्य का ही चिह्न है। किसी भी शुभ कार्य में रोली या हल्दी का स्वस्तिक चिह्न बनाया जाता है और उसका पूजन होता है। कसरत के रूप में 'दंड' यह सब आदिकाल में सूर्य पूजा के समय किया जाता था—वह आज भी उसी रूप में प्रचलित है। सूर्यग्रहण आदि पर दान-पुण्य करना भी सूर्य के सकट को टालने का उपचार है। सूर्य की धूप में ही आधा सीमी के दर्द को कीला जाता है।

चन्द्र—नारी समाज में कई व्रत ऐसे हैं जो वह सुख-सौभाग्य के लिए करती हैं तथा वह चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा को अर्घ्य देकर पूजन कर के सम्पन्न करती है। उदाहरण के लिए कच्चा चौथ, अहोड़ अष्टमी, चन्दनछठ, सकट चौथ तथा शरदपूर्णिमा। चन्द्रमा को अर्घ्य देने समय वह इस प्रकार कहती है—

‘लिकड चद्रमा बैठ सिंहासन

गल मोतियन की माला

थारे दरसन करके, जब करू जलपान’

कुछ लोगों के यहाँ सकटचौथ तथा अहोड़ अष्टमी को, गणेश-चतुर्थी को तारा देखकर पूजन व भोजन करने की प्रथा है। विश्वास है कि पूर्णिमा के दिन चद्रमा अमृत की वर्षा करता है।

पशु-पक्षी—लोकमानव जहाँ देवी-देवताओं, पंचतत्व तथा अन्य शक्तियों की पूजा करता है वहाँ वह पशु-पक्षियों को भी अपनी पूजा-उपासना के घेरे में ले आता है। लोकमानव के जीवन में जो जितना सहयोग देता है वह उतना ही उसका पूज्य है। अधिकतर वे ही पशु-पक्षी पूज्य माने जाते हैं जिनका सबंध किसी देवी देवता से है अथवा शाम्बर पुराण आदि में उनका उल्लेख हुआ है। पशु-पक्षियों की पूजा के पीछे भागनीय संस्कृति का भी बहुत बल है। भारतीय संस्कृति पशु-पक्षियों को भी मनुष्य के समान जीवात्मा ही मानती है इसीलिए उनका अकारण वध नहीं किया जाता। हिन्दू धर्म में यदि देवी-देवताओं तथा अन्य शक्तियों को पूज्य स्थान दिया है तो सृष्टि के अन्य अंग भी उसकी विशाल सहृदयता से वंचित नहीं रहे। इसीलिए प्रकृति, मानव, पशु-पक्षी सब को ही उनके अनुरूप स्थान मिला है। लोक मानव की पूजा में पशु-पक्षी भी पूज्य बन कर आए हैं। वे भी अपने देवताओं के वाहन हैं उदाहरण के लिए—हाथी, कुत्ता, उल्लू,

नीलकण्ठ, चूहा, बैल, भैंसा आदि। कुछ पशु-पक्षियों के धार्मिक तथा पौराणिक महत्व है जैसे गाय, कछुआ, शूकर आदि। इनमें गाय सब से अधिक पूज्य मानी जाती है। लोग गाय का पूजन करते हैं। गाय के पूजन के कई कारण हैं। सर्वप्रथम तो शास्त्रों के अनुसार गाय के विभिन्न अंगों में विभिन्न देवताओं का वास होता है। लगभग सब ही देवता गाय के शरीर में व्याप्त हैं। इसका कारण यह है कि पृथ्वी गाय के सींग पर टिकी हुई है। इसका सहयोग भी लोकमानव के जीवन से बहुत अधिक है। प्रातः उठकर गाय के पैर छूना बिस्तर से उठकर आँख बन्द कर गाय के पास जाकर नेत्र खोलना अर्थात् प्रथम दर्शन 'गऊमाता' के करना लोक-समाज में बहुत प्रचलित है। गाय ही की हर वस्तु, मल-मूत्र तक उपयोगी होता है। स्वस्थ गाय का पेशाब प्रतिदिन पीने से काया निरोग्य रहती है। बच्चों को जिगर की बीमारी में पिलाया जाता है। विवाह अथवा यज्ञोपवीत स्स्कार के समय गाय का पेशाब तथा गोबर को प्रसादस्वरूप लिया जाता है। जिस घर में गाय रहती है वह पवित्र माना जाता है।

जब गाय घर में प्रवेश करती है तो उसकी पूजा की जाती है जब व्याती है तब एक लडका और एक लडकी जिमाते हैं तथा गाय के बच्चे की पूजा करते हैं। गाय को मारना पाप समझा जाता है। गाय को प्रथम रोटी खिलाने से दुष्ट-ग्रहों की शान्ति होती है। हिन्दू परिवार में गौ-प्रास सदैव ही निकालने की प्रथा है। लोक-विश्वास है कि यदि मृत्यु से पूर्व ब्राह्मण को गऊदान कर दी जाय तो वह मृत्यु के बाद वैतरणी पार कराती है। वैसे धनीमानी व्यक्ति तो हर वर्ष ही एक गाय दान करते हैं। जो लोग गाय दान करने में आर्थिक दृष्टि से असमर्थ होते हैं यह ११ रु० २१ रु० आदि की सख्या में धनराशि ही गाय के नाम पर सकल्प करके दे देते हैं।

• हाथी—हाथी भी लोकसमाज में पूज्य माना जाता है। हाथी का सम्बन्ध गणेश जी से जोड़ा जाता है। साथ ही यह इन्द्र का वाहन भी है। इसी से हाथी को देख कर वह नतमस्तक हो जाता है। जब हाथी किसी गाँव में जाता है तो ग्राम की स्त्रियाँ उसके पावों पर जल चढ़ाती हैं तथा फूल-पत्र आदि से पूजा करती हैं। दशहरे के दिन हाथी की पूजा रामचन्द्र जी की सवारी में जाते समय भी की जाती है। विवाह में दूल्हे की सवारी में चढ़त पर जाते समय भी हाथी की पूजा की जाती है।

घोड़ा—घोड़े को भी पूज्य माना जाता है। शास्त्रीय विश्वास के अनुसार घोड़ा कल्कि अवतार का वाहन होगा। लडके के विवाह में घोड़चढ़ी के समय घोड़े की पूजा की जाती है। मुसलमानों में मोहर्रम के दिनों में हसन के घोड़े अर्थात् दुलदुल

की लोवान आदि से स्त्रियाँ पूजा करती हैं तथा उस घोड़ के नीचे में बच्चों को निकालते हैं इससे बच्चों की आयु बढ़ती है। ऐसा लोक-विश्वाम है।

चामड—मेरठ जनपद में इसकी पूजा होती है। कहा जाता है कि ये पशुओं की देवी हैं। विशेष रूप से इसको भैंसे की देवी माना जाता है। इसकी पूजा के पीछे पशुओं की सुरक्षा की भावना रहती है।

काला कुत्ता—वैसे तो श्वान योनि सबसे कष्टदायक व बुरी मानी जाती है परन्तु उसकी भी पूजा होती है। कुत्ता भैरों का वाहन भी माना जाता है। जिस दिन माना की पूजा की जाती है उस दिन काले कुत्ते को जिमाया जाता है। माघ ही जब किसी बालक को माता निकल आती है तो कुत्ते को दही पेटे में जिमाते हैं।

नीलकण्ठ (गरुड)—यह लोकमानव के लिये बहुत पूज्य है। यह विष्णु भगवान का वाहन माना जाता है। दशहरा के दिन लोग नीलकण्ठ के दर्शन करना पुण्य समझते हैं तथा नीलकण्ठ की खोज में मीलों तक निकल जाते हैं। नीलकण्ठ सर्प का शत्रु माना जाता है इसलिए उसको पाप तथा शत्रुनाशक भी माना गया है। कहा जाता है कि नीलकण्ठ भगवान का पटवारी है जो उन तक भगवान की सब सूचनाएँ पहुँचाया करता है। किसी व्यक्ति को शुभ कार्य के लिए जाते हुए यदि नीलकण्ठ के दर्शन हो जाएँ तो बहुत शुभ माना जाता है। यदि नीलकण्ठ दायें या बायें आ जाय तो भी शुभ माना जाता है।

कौवा—पितृपक्ष में कौवा भी पूजनीय हो जाता है। इसको ग्राम देकर इसका मान किया जाता है। केवल पितृपक्ष में ही कौवे की पूजा होती है।

हंस—पवित्रता तथा सत्य का प्रतीक माना जाता है। ये ब्रह्मा तथा मरस्वती का वाहन माना जाता है। ये पक्षी इस देश में उपलब्ध तो नहीं हैं परन्तु महर्षियों में तथा अन्य कृतानियों में श्रद्धा से हंस का नाम लेते हैं। हंस में दूध तथा पानी को अलग-अलग कर देने की क्षमता कही जाती है। वास्तव में सत्य दूध है और असत्य पानी है। हंस बुद्धि है इसलिए ब्रह्मा जैसे वद्व-ज्ञानी-देवता तथा विद्या की देवी मरस्वती का वाहन है। यह मानसरोवर में मोती चुगता है। मानसरोवर मनुष्य का मानस है मोती ज्ञान है। इसलिए लोकसमाज में यह पूज्य है।

मोर—मोर स्वामी कार्तिकेय जी का तथा मरस्वती जी का वाहन है। यह साँप को मार डालता है। साँप अज्ञान के रूप में माना जाता है, मोर लोकमानव के सामने ज्ञान के रूप में आता है। मोर के पंख भी पवित्र मानते हैं। इसके पंखों की वाच्छी, बनावर साईं अपने पास रखते हैं। जाह्नपीर पर भी इसी से आशीर्वाद दिया

जाता है। मोरपखो का सम्बन्ध कृष्ण भगवान से भी प्रत्यक्ष रूप से पाया जाता है।

इन पूज्य पशु-पक्षियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे पशु-पक्षी भी हैं। जिनकी पूजा तो नहीं की जाती पर उनका वध करने का निषेध है। इसके पीछे दो कारण हैं या तो इन पशु-पक्षियों का पौराणिक महत्व है अथवा वे बहुत उपयोगी हैं। पौराणिक महत्व वाले पशु-पक्षियों में शूकर, कछुआ, भैंसा, उल्लू, बन्दर, लगूर, कबूतर, आदि हैं। कछुवे का सम्बन्ध भगवान के कच्छप अवतार से माना जाता है। भैंसा भी वाहन है। पहिले भैंसे को खेती के काम में नहीं लाया जाता था। शनिश्चर के दान में दिया जाता है। उल्लू लक्ष्मी का वाहन है। उल्लू का वध करने वाला पाप का भागी होता है। दिवाली के दिन कुछ जातियों में शराब पिलाकर इसकी पूजा की जाती है। कहा जाता है कि ये मनुष्य की बोली में बातें करने लगता है तथा छिपा हुआ धन बतला देता है। इसके शरीर के विभिन्न अंग भी बहुत उपयोगी होते हैं। उल्लू का नाम लेना, बोलना, तथा किसी भी घर पर बैठना बहुत अशुभ मानते हैं लेकिन फिर भी इसका वध नहीं करते हैं।

बन्दर तथा लगूर का सम्बन्ध रामचन्द्र जी से माना जाता है। इन्होंने राम-रावण के युद्ध में सहायता की थी। मंगल के दिन बन्दरो को गुड, चने खिलाते हैं विश्वास है कि इससे मनोकामना पूर्ण होती है।

कबूतर के पखो की हवा बच्चों के लिये स्वास्थ्यप्रद होती है। यह वैसे भी पक्षियों में सबसे सीधा माना जाता है। बिल्ली को देखकर नेत्र बन्द कर लेता है समझता है कि मैंने आँखें बन्द कर ली हैं तो बिल्ली को दिखलाई नहीं देगा और वह चट कर जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक-समाज में पशु-पक्षी तथा अन्य जीव-जन्तुओं का पूजा की जाती है या मान्यता है। इस प्रदेश का लोक-मानव बहुत धर्मभीरु है तथा वह अहिंसा का पुजारी है। उसका हृदय सहृदय है इसलिये उसके जीवन में सब का ही महत्वपूर्ण स्थान है।

मिश्रित—इस वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे पूजा के अंग आते हैं जिनको लोक-मानव समय-समय पर पूजता है। यह न तो देवी-देवताओं के अन्तर्गत आते हैं और न पशु-पक्षियों में तथा वनस्पति में। यह जन-जीवन से सम्बन्धित तथा सहयोगी जड पदार्थ हैं उदाहरण के लिये—चाक पूजना, देहली पूजना, दीपक, कलम, तख्ती तथा पुस्तकें आदि पूजना।

चाक पूजना—कुम्हार का चाक लडके तथा लडकी दोनों के विवाह में पूजा जाता है। चाक पूजने के पीछे घरती को पूजने की भावना रहती है। सृष्टिचक्र

पूजने का भाव भी इसके अन्तर्गत है। जिस प्रकार सृष्टि का क्रम अबाधगति से चलता रहता है, उसी प्रकार कुम्हार का चाक भी चलता रहता है।

चाक पर सतिया बना दिया जाता है एक कछवे के अन्दर मूषकारूढ गणेश की मूर्ति जमाकर रखी जाती है तथा लडका अथवा लडकी की माँ रोली का छीटा देकर चाक पूजते हैं। अन्य स्त्रियाँ भी छीटे लगाती हैं। कुम्हारी की लटो में कलावा बाँधा जाता है। कुम्हारी के घर से चाक पूजने वाले पाँच या सात वर्तन अपने पतले में लेकर आते हैं, लाकर थापे के सामने रख देते हैं। साथ जाने वाली अन्य महिलाओं को भी रोली की बिन्दी लगाई जाती है तथा एक एक हडिया दी जाती है। चाक पूजने के बाद लौटने के समय स्त्रियाँ बूढ़े बाबा का उलग गाती हैं।

ढोलक पूजना—वैश्य जाति में टेहले आरम्भ होने के दिन से ही गीत आरम्भ हो जाते हैं। जब-जब गीत आरम्भ होते हैं तो ढोलक की रोली-चावल से पूजा की जाती है तथा मीठा चढ़ाया जाता है। ढोलक पर चढ़ाया हुआ मीठा तथा पैमे नायन को दे दिये जाते हैं। ढोलक पूजने की भावना यही है कि यह गीत जो आरम्भ हो रहे हैं निर्विघ्न समाप्त हो जायें तथा सब प्रकार कल्याण हो। प्रायः नायन ही ढोलक बजाती हैं इसीलिये ढोलक पूजने का सामान व नेग उसी को देने की प्रथा है।

कुआँ पूजना—कुआँ विवाह के समय भी पूजा जाता है तथा पुत्र जन्म के १०-वे दिन भी तथा कुछ घरों में ४० दिन बाद। दसूठन के दिन बच्चे का नामकरण सम्कार के पश्चात् नवप्रसूता नहा धोकर कुआँ पूजने जाती। नवप्रसूता के सिर पर इदुरी रख कर तथा उसके ऊपर लोटा रखा जाता है। उसमें आम की टहनी डाल दी जाती। स्त्रियाँ गीत गाती हुई उसको कुएँ पर ले जाती हैं। प्रसूता के आँचल में चावल बँधे रहते हैं। कुआँ पूज कर जब वह लौटती है तो कौले खींच कर अन्दर आती है। लौटते समय बच्चे के आँचल पर सतिया बना दिया जाता है। वह लौटकर अपने कपड़े आग के ऊपर झाड़ देती है तब अपने बच्चे के पास जाती है।

कुएँ का पूजना प्रसूता की मातृभावना से सम्बन्धित है। जिस प्रकार कुएँ में से सदैव जल निकलता रहता है, कभी जल विहीन नहीं होता उसी प्रकार माँ जलदेव से अपने नवजात शिशु के लिये प्रार्थना करती है कि उसके बच्चे की आयु भी इसी तरह कभी समाप्त न हो। जिस प्रकार कुएँ का जल सब को शीतलता प्रदान करता है उसी प्रकार उसका बालक भी सब को सुख पहुँचाता रहे। मगल, कलश, नीम की टहनी, यह सब मगल प्रतीक हैं इसीलिये शुभ-कार्यों के समय इनको साथ रखा जाता है।

कुएँ का विवाह भी किया जाता है। जब नया कुआँ बनता है तो पण्डित को

बुलाकर कुएँ की पूजा करते हैं, साथ ही एक पत्थर पर स्त्री का चित्र बनाकर कुएँ की मन पर लगा देते हैं, ऐसा करने से कुएँ का जल नहीं सूखता। कुएँ के विवाह के अवसर पर ब्राह्मण जिमाये जाते हैं तथा मिठाई आदि बँटती है।

चौराहा पूजा—माता निकलने पर चौराहे पर दीपक जलाया जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। टोना, टोटका करते समय भी चौराहे पर चौमुखा दीपक जला कर उर्द, दही आदि चढाये जाते हैं।

कलम, खाता, पुस्तक तथा तराजू, हथियारो, दूध विलोने की रई आदि की पूजा दशहरे के दिन होती है। उस दिन रामचन्द्र जी के 'पायते' की पूजा करते समय इन सब की पूजा भी करते हैं।

पट्टी पूजा—तख्ती कलम, पुस्तक की पूजा बच्चे की विद्या प्रारम्भ करते समय होती है। उस समय बच्चे को पीले कपडे पहनाये जाते हैं। पण्डित पूजा कराते हैं तथा बच्चे का हाथ पकड़ कर तख्ती पर किसी देवता का नाम सबसे पूर्व लिखवाते हैं। फिर उससे देवात, कलम, तख्ती, पुस्तक की पूजा कराते हैं। पूजा कराने वाला पण्डित बच्चे को विद्वान होने का आशावादि देना है तथा कामना करता है कि सरस्वती उस बालक पर सदा प्रमन्न रहे, फिर वृन्दी के लड्डू बाँटते हैं। स्कूल में जाकर बच्चो को लड्डू बाँटे जाते हैं।

देहली पूजा—बेटी के विदा होते समय उगसे घर की देहली पुजवाई जाता है। इसके पीछे यही आशय है कि जिस गृह में वह इतनी बड़ी हुई है उसकी देहली भी इसके लिये पूज्य है। देहली पूजते समय लडकी यह भी कामना करती है कि यह घर सदा धन-धान से पूर्ण रहे। देहली की पूजा पूरी-शक्कर से की जाती है तथा रोली या हन्दी का छीटा दिया जाता है।

दीपक पूजा—किसी भी अनुष्ठान के समय अथवा किसी देवता के पूजन करते हुए दीपक को चावल पर स्थित करते हैं। दीपक का पूजन किया जाता है। उस पर जल के छीटे दिए जाते हैं तथा रोली का छीटा दिया जाता है। आरती के पश्चात् लोग दोनो हाथो से आरती लेकर हाथ जोड़ते हैं तथा पैसे चढाते हैं, ये पैसे ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं। होई पर तेल का दीपक जला कर होई के सामने रखते हैं। छोटी दिवाली के पहिले दिन लूच्चा दीपक जलाया जाता है। नरक चतुर्दशी (छोटी दिवाली) पर पितरो के नाम के दीपक मिनसे जाते हैं तथा हाथ जोड़े जाते हैं। बड़ी दिवाली को रात्रि भर घी का दीपक जलाया जाता है। यह लक्ष्मी का दीपक कहलाता है और इसे रात भर जलाते हैं। अगले दिन दरिद्र देवता के घर से भगाने की प्रथा है। इस दिन स्त्रियाँ प्रात ही घर को बुहार कर कूड़ा पखे पर रख

कर उस पर एक ही दीपक जलाते हैं तथा उस पर पैसा रख कर घर के द्वार के बाहर रख आती है। इस समय भी दीपक का महत्वपूर्ण योग होता है। दीपक दरिद्र को घर में भगाता है। हवन के बाद भी पत्ते पर चौमुवा दीपक रख कर जलाया जाता है। उस पर दही-बड़ा रखा जाता है तथा पैसा चढ़ाया करने हैं। सन्ध्या समय दीपक जलाने समय सब हाथ जोड़ते हैं। रात्रि के समय दिया बढाते समय ये पक्तियाँ कही जाती हैं—

‘जा दिया घर आपने, तेरी मा देखे बाट
तेरी धनी (बहू) बिछावें खाट
अबेरा जाइयो, सबेरा आइयो
तू इस घर तैं कभी ना जाइयो
लक्ष्मी लैं कै अइयो’

दीपक बुझाना नहीं कहा जाता बल्कि दीपक बढाया जाता है। बुझाने शब्द का प्रयोग मृत्यु-दीपक के लिये करने है। दीपक का लोक-जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। ये ज्योतिमय है। दीपक का ईश्वर का रूप मानते हैं।

धान बोना—विदा के पूर्व कन्या पक्ष वाले वर-वधू की पूजा करते हैं। पहिले सब कन्या पक्ष वाले वर को तिलक लगाते हैं। कुछ विशेष सम्बन्धी कन्या को तिलक लगाते हैं। तथा दोनों वर-वधू के चरणों में सिर रखते हैं। उसके पश्चात् वधू के माता-पिता, भाई-भामो फूफा-बुआ, मामा-मामी, बहन-बहनोई सभी गठबन्धन करके जोड़ से धान बोते हैं। वह पानी डालते चलते हैं तथा धान बोते चलते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि धान कन्या पक्ष के घर बोये गये हैं परन्तु इनका सुख दूसरे के घर में उपजे। जिस प्रकार से धान पहिले एक स्थान पर बोये जाते हैं फिर उनकी पौध दूसरे स्थान पर लगायी जाती है तब ही धान के पौध फलते फूलते हैं। इस प्रकार से कन्या के साथ होता है। कन्या भी दूसरे के घर ही फलती फूलती है। धान बोते समय में यह दोहा कहा जाता है इसे पलग-पूजना भी कहते हैं।

‘धान बोवें मेरी श्याम सुदरी
धान बावें लाड्डो बावरी
उसके बाबुल के घर धान उपजे
सौरे के घर उपजे कागनी’

मनुष्य पूजा—वर-वधू के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की भी भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न समय पर पूजा होती है। ब्राह्मण को भूदेव कहा जाता है। किसी भी

पूजा-पाठ के समय देवी-देवता के नवग्रह आदि के पूजन के तुरन्त पश्चात् भूदेव की पूजा होती है। तिलक लगाकर बाई कलाई में कलावा बाँधा जाता है तथा हाथ जोड़ कर दक्षिणा दी जाती है। ब्राह्मण को श्राद्धो में अथवा अन्य अवसरों पर खिलाने के पश्चात् तिलक लगाया जाता है तथा दक्षिणा दी जाती है। चरण-स्पर्श भी किए जाते हैं। अतिथि भी पूज्य होता है। अब उसकी विधिवत् पूजा तो नहीं होती परन्तु हाथ जोड़ कर उसका सम्मान किया जाता है तथा भोजन कराने के पश्चात् कृतज्ञता प्रकट की जाती है।

विवाह के समय वर-वधू जब द्वार पर आते हैं तो उनकी आरती उतारी जाती है। वधू जब समुराल पहुँचती है तब वर-वधू दोनों की आरती उतारी जाती है उस समय वधू को लक्ष्मी के समान माना जाता है।

क्वार में तथा चैत्र में देवी अष्टमी के दिन कुवारी कन्याओं की पूजा होती है। कन्या को देवी का रूप माना जाता है। ग्राम में सर्वप्रथम प्रातः कन्या के दर्शन करते हैं।

झाड़ू व छाज पूजना—प्रायः झाड़ू बाँधते समय यह कहा जाता है—

‘समन्दर की बेटा, बिसन्दर को व्याही’

इसके अर्थ है कि तू जल से उत्पन्न हुई है और तेरा सयोग पृथ्वी से हुआ है। उपरोक्त वाक्य को बोलते हुए झाड़ू के अग्नि से सात फेरे कराये जाते हैं इसके बाद ही उसको प्रयोग में लाया जाता है। विवाह में रोली या हल्दी से छाज भी पूजा जाता है। छाज पूजने के सम्बन्ध में यह भावना है कि छाज जिस प्रकार से कूड़े को अलग कर देता है उसी प्रकार हमारी बुद्धि की गन्दगी भी दूर कर दे। साथ ही यह अन्न पछोड़ने के लिए सदा घर में बना रहे। अतः घर धनधान्य से सदैव भरपूर रहे। झाड़ू दरिद्रता को घर से दूर करती है।

मूसल पूजना—लडकी के विवाह में मूसल की भी पूजा होती है। उसमें कलावा बाँधा जाता है।

लोकसमाज की पूजा व विस्तृत क्षेत्र की विवेचना करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ से ही लोकमानव इतना सरल तथा अन्धविश्वासी रहा है कि जिस वस्तु ने जिस प्रकार भी उसके जीवन को प्रभावित किया उसको उसी रूप में वह पूज्य मानने लगा। देवी, देवता, वनस्पति, पक्षतत्वों के अतिरिक्त उसके दैनिक जीवन से सम्बन्धित अन्य साधारण वस्तुओं को भी वह प्रतीकों के रूप में देखता है। धान बोने में उसकी कितनी गहरी कल्पना है तथा उसमें बेटा को कितने साग-रूपक प्रतीक में बाँध कर खड़ा किया है। इसी प्रकार वह छाज की पूजा भी

कवीर के रूप के रूप में करता है। मूसल को पुरुष का प्रतीक माना जाता है। रूप, मूसल तथा झाड़ू इनका घर की समृद्धि में बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस सब के अध्ययन में ज्ञात होता है कि लोक-मानव का जीवन कितना प्रतीका में बंधा हुआ है। किमी भी वस्तु में वह कितनी शीघ्र किमी देवी-देवता तथा अन्य वस्तुओं को प्रतिबिम्ब देगने लगता है और उसको उसी रूप में मंदैव पूजता आया है। यह शास्त्र परम्परा बन जानी है।

लोककला—लोककला मानव संस्कृति के प्रथम चरण, पाषाण युग, में लेकर आज तक एक ही लीक पर चली आ रही है। ये मानव प्रकृति रही है कि वह जिस समय जो कुछ अनुभव करता है उसको उसी प्रकार अभिव्यक्त कर देता है। प्राचीन काल में अपठ व्यक्ति भावनाओं को कविता, कहानियों के रूप में व्यक्त करने की क्षमता नहीं रखता था। उस समय वह जो अनुभव करता था उसी को पथरो पर खोद कर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता था। उसी युग में लोककला ने जन्म लिया था। समय के साथ-साथ उसका स्वरूप अवश्य बदला परन्तु लोककला भावनाओं की वही भोली तथा सुगम अभिव्यक्ति है।

‘लोककला उतनी ही प्राचीन है जितनी पुरानी है मानव सभ्यता। प्राचीन काल से ही मानव अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा का आकार देकर उसे साकार करने का प्रयत्न करता रहा है।

लोककला का सबसे बड़ा उद्देश्य है व्यक्ति के द्वारा जीवन में यथार्थ को स्वीकृति देना। इसमें जीवन के विभिन्न मूल्यों को प्रतीकों में छिपा लिया जाता है जिनका निरन्तर प्रयोग होता रहता है। वास्तव में लोककला समाज के दैनिक जीवन के कार्य-कलापों को सौन्दर्यमय बनाने का प्रयत्न है। लोककला के माध्यम की अपनी परम्परा होती है। ये माध्यम जीवन तथा वस्तु के अधिक निकट होते हैं।

लोककला की जड़ें लोकमानस में बहुत गहरी जमी हुई हैं। सम्पूर्ण सामाजिकता ही लोककला की आधार भूमि है। लोककला का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसके अन्तर्गत लोकमानव के सभी रचनात्मक कार्य आ जाते हैं। समस्त कला जो लोक द्वारा निर्मित होती है लोककला के अन्तर्गत आती है। इसकी विषय-वस्तु दैनिक जीवन से ही ली जाती है। इसके अन्तर्गत सभी सौन्दर्य प्रसाधनात्मक एवं व्यवहृत लोकमिव्यक्ति के स्वरूप आते हैं।

लोककलाओं के अतिरिक्त कला का कोई रूप भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रखता। लोककला के माध्यम में मुख्य तत्त्व अनुकृति एवं अनुकरण का रहता है। यह अनुकरण कलात्मक प्रतीकों एवं अभिव्यक्तियों का होता है।

समाज ने जिन तथ्यों को एक बार नैतिक मान्यता प्रदान कर दी है। लोक-कला विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उन्हीं तथ्यों का अनुकरण करती है। कला के माध्यम से धर्म की अभिव्यक्ति भी सरलतम रूप में हो जाती है। यही कारण है कि साधारण कला की तुलना में लोककला अधिक स्थायी है।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि लोककला के माध्यम से उन दमित तथा अपूर्ण इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है जिनका सघर्ष समाज से निरन्तर चलता रहता है। वास्तव में जीवन-शक्ति ही हमारी क्रियाओं को प्रेरित करती है और कला में भी दो प्रकार की शक्ति होती है। वह एक प्रगतिशील और दूसरी प्रतिरोधक। कला की प्रगतिशील शक्ति ही वह है जो उत्साह-वर्द्धक है और जटिलता और सघर्ष से जूझने के लिये प्रेरित करती है।

प्रतिरोधक शक्तियाँ जटिलता और सघर्ष से हट कर सरलता और बचपन के सघर्षहीन और सुगम जीवन की ओर ले जातो हैं। लोककला की उत्पत्ति का कारण यही है इसीलिए इसको समाज का पूर्ण सरक्षण भी मिला है।

लोककला, जहाँ मनोरंजक है वहाँ उसमें नयी अभिव्यक्तियाँ भी हैं। लोक-मानव जीवन के आवेग इसमें मुखर हो उठते हैं। लोककला में सुगमता व सरलता होती है और सरलता से समानता मिलना सहज है। इसी कारण भिन्न-भिन्न देश की लोककलाओं में भी समान भाव-धारा ही प्रवाहित हुई है।

लोककला में अमूर्त, दुरूह रूप नहीं मिलता वरन् सरल और सहज रूप मिलता है जो शीघ्र ही समझ में आ जाता है। यह प्रत्यक्ष रूप में जीवन को समझती हैं न कि अप्रत्यक्ष रूप में। इसके द्वारा मनुष्य को रहन-सहन, रीति-रिवाज, रंग-रुचि आदि सभी का पूर्ण परिचय मिल जाता है। यह चेतन प्रयत्न नहीं वरन् स्वतः स्फूर्ति है। इनमें जीवन के गूढ़तम तथ्य उपलब्ध हैं। यह जनजीवन की स्वाभाविकता और आवश्यकता है।

ग्रामों में, जनजीवन में विशेषकर नारी ससार में आज भी लोककलाओं का शुद्ध रूप मिल जाता है। नारी के ऊपर लोककला का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। पुरुष के घर से निकलने के पश्चात् नारी ही घर में बैठकर उसकी सुरक्षा के लिये देवी-देवता मानती थी। उसके भावुक हृदय में ही कल्पनाएँ उठती थीं। उन्हीं को अधिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता पड़ी। इसीसे लोककला नारी-जीवन में व्याप्त हो गई। लोककला मानव-संस्कृति का मूल रूप है और नारी घरेलू जीवन की आत्मा। इसीसे दोनों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। नारी का तो सम्पूर्ण जीवन ही कलात्मक होता है। साधारण अर्थों में तो जीवन में सुचारु रूप से किया गया कोई भी कार्य कला के अन्तर्गत आ जाता है। स्त्री जीवन तथा कार्य की सुचारुता

मे मदा से ही पारगुन रही है। वैसे भी लोककला जीवन के प्रयोगों का माध्यम है।

नारी जीवन के सभी दैनिक कार्यों में मुचाकना रहती है, कलात्मकता दृष्टिगत होती है। खाना बनाना, पानी भरना, मिठाई बनाना, चक्की पीसना, रूई हारो पर चित्र व मिट्टी की मूर्ति बनाना, खिलौने बनाना, सीना, चरपा-कानना गीत गाना, नृत्य करना, रतजगे में तथा विवाह, हारो आदि के अवसर पर स्वाग रचना, छन कहना तथा कहलवाना आदि नारी के जीवन का सुखी बनाने के पगल गोन रहे है। चौक पूरना, गोदना, मेहदी लगाना आदि यही नारा जीवन की कलात्मकता की अभिव्यक्ति है। इनमें जीवन परिगुन हाना है तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियों को उचित दिशा मिलनी है। भारतीय लोककला के तीन मेद पाये जाते है—

१—आनुष्ठानिक—इसका प्रयोग विश्वासों और परम्परा विचारों पर आधारित सम्कारों को सम्पन्न करने में होता है।

२—समाजोपयोगी—सामाजिक रीतियों की पूर्ति के लिये आवश्यकता होती है और जिसके रूप का निर्वाण निर्माण प्रणालियों तथा भौतिक गुणों द्वारा होता है।

३—व्यक्तिनिष्ठ—इसी के द्वारा कलाकार की निजी अनुमनिया तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

कला प्रकृति से स्पष्ट तथा भिन्न नहीं है। इन भित्तिचित्रों में जो अनुष्ठान के अवसर पर बनाये जाते हैं जीवन के किसी भी वाह्य रूप के माय, किसी भी प्रकार की समानता रखने वाली, ज्यामितिय कला के प्रतिरूपण का दर्शन किया जा सकता है। इस प्रकार के चित्रों में न्यूनतम अनिवार्य आकृतियाँ मिलनी है। दो अथवा तीन रेखाओं और एक वृत्त द्वारा किसी भी मनुष्य अथवा पशु की आकृति का प्रतिरूपण हो जाता है। तीसरा मेद अमूर्तवस्तु का प्रतिनिधित्व करना है। प्रतीकनाम शैली का अमूर्त चित्र 'चौखटे' द्वारा अंकित किया जाता है तथा आलेपन कहलाता है। यह धार्मिक उत्सवों से सम्बन्धित होती है। ऐसी आकृतियाँ रूडिगन रेखाओं से निर्मित की जाती है जिनमें किसी भी प्रकार का कौशल अथवा सौन्दर्य प्रसाधनात्मक प्रयत्न का अभाव होता है। प्रायः समस्त आकृतियों के विषय निश्चित होते हैं। कला में प्रतीकों का भी बहुत महत्व है। मानव प्रतीक सांकेतिक रेखाओं में ज्यामितिय शैली से बनाया जाता है। दो त्रिकोण एक दूसरे के सिरो को सीधे स्पर्श करने हुए बनाने से धड बन जाता है। उसके हाथ, पैर, मुँह आदि अक्षरों पर मात्राएँ लगाने की भाँति अंकित किये जाते हैं। इस प्रकार का सांकेतिक अकन अभिव्यक्ति

की आदम प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। लोककला में वस्तु के प्रत्येक अंग को मोटी और स्पष्ट रेखाओं में दिखाया जाता है। आँख, नाक, कान भी स्पष्ट हाथ, पाँव की उँगलियाँ भी स्पष्ट होती हैं। इनमें अनुपात का भी ध्यान नहीं रखा जाता। यद्यपि इनमें विशेष सौन्दर्य नहीं होता। पर ये अवसर और प्रसंग के प्रतीक की तरह अपने महत्व को अवश्य सिद्ध करती हैं। इस कोटि के प्राकृतिक गति-विधि रहित सांस्कृतिक प्रतीक तथा सतति प्रदान करने वाली देवी आदि वर्ग के मक्षिप्त प्रतिनिधि हैं। इनमें कलात्मक उद्देश्य से भिन्न प्रतीकात्मक तथा धार्मिक उद्देश्य भी रहता है। इनकी रचना-विषय स्थानीय भेदों के रहते हुए भी प्रायः एक ही समान रहता है। विभिन्न कलाकृतियों में प्रधान विचार होते हैं। उनका ठीक ठीक तात्पर्य जान लेना सुगम नहीं क्योंकि एक ही विचार की विभिन्न रूपों में व्याख्या हो सकती है और एक ही कल्पना को विविध रूपों में आबद्ध किया जा सकता है। आकृतियों का प्रतीकात्मक तत्व स्वयं इन बनाने वाली सरल स्त्रियों को भी स्पष्ट नहीं रहता। इनका यद्यपि कोई भी स्वतंत्र महत्व नहीं होता पर यही आलेपन जब स्त्रियों द्वारा व्रत आदि के निमित्त किसी उत्सव व त्यौहार के अवसर पर किया जाता है तो उसका धार्मिक महत्व हो जाता है।

भित्तिचित्र, जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है वे चित्र हैं जो केवल भित्ति पर अंकित किये जाते हैं जिनके द्वारा स्त्रियाँ कहानी सुन कर तथा अनुष्ठान आदि के बाद अपना व्रत सम्पन्न करती हैं। इस अवसर पर वे उस व्रत कथा में वर्णित देवी-देवता आदि से सम्बन्धित पौराणिक तत्वों को चित्र के रूप में अंकित कर उसका पूजन करती हैं और वह भित्ति चित्र एक वर्ष तक उसी स्थान पर बना रहता है, इस प्रकार के भित्ति चित्रों में प्रामाण्य है। करवा चौथ, अहोई अष्टमी एवं दिवाली, साँझी देवी, विवाह का तथा पुत्रजन्म के अवसर पर थापा, रक्षाबन्धन के सौन भी बनते हैं। इनके चित्र हमने परिशिष्ट में दिये हैं।

अहोई अष्टमी में अहोई माता का चित्र अंकित किया जाता है। यह पुत्र तथा सुख समृद्धि को देने वाली मानी जाती है। इसी प्रकार करवा चौथ में पेड़, चाँद तथा भाई-बहन आदि चित्रित रहते हैं। साँझी देवी तथा दिवाली आदि का पूजन भी इन्हीं भित्तिचित्रों का पूजन करके होता है।

जिस स्थान पर यह चित्र बनाने होते हैं वही पर साफ करके गोबर से लीप लेते हैं। फिर मिगोए हुए चावलो को पीस तथा घोल कर उसके ऊपर दुबारा लीपा जाता है तथा गेरू के घोल से अनेक प्रकार की फूल-पत्तियाँ, बेल-बूटे बनाकर देवी-देवताओं के चित्र अंकित करते हैं। सूख जाने पर यह बहुत ही आकर्षक प्रतीत होने हैं। पहिले जब कच्ची मिट्टी के ही घर होते थे तब उन्हें सजाने का

यह ढंग कितना कलात्मक था, इसका अनुमान इन सब को प्रत्यक्ष देख कर सहज ही लगाया जा सकता है। कोई भी श्रम-कार्य लेपन के बिना पूरा नहीं हो पाता। कला को अक्षुण्ण बनाने का यह भाव ही आनन्ददायक है।

आकर्षक बेल-बूटे बनाकर दीवारों को भी सजाया जाता है। रंगों की विभिन्नता से चित्रों की आकर्षक शैली देखने की बनती है। युग-युग से प्रचलित इस कला को देख कर मन मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

जब आधुनिक शिक्षा का इतना प्रभाव नहीं था और न इतने साधन ही सुलभ थे, तब चित्रकला का यह ढंग बहुत ही सुन्दर था। चित्रों द्वारा गृहस्थियाँ समझा कर शिक्षा देने का प्रयत्न भी बुद्धिमत्ता पूर्ण था।

यह भित्तिचित्र बहुत टिकाऊ होते हैं। पर्व-त्यौहार, विवाह आदि के अवसर पर दीवारों पर या भूमि पर मंगल चिह्न अंकित करना बहुत पुरानी प्रथा है। भारतवर्ष के किसी भी भाग में चले जाये, हिन्दुओं के घरों में ऐसे चित्र अवश्य अंकित मिल जायेंगे। अब भी इन चित्रों में अपने भावों को प्रकट करने की शक्ति है लेकिन उनकी कला का हलाम, लोगों की कला के प्रति रुचि और अरुचि के अनुसार कम और अधिक देखने में आता है।

“भिन्न-भिन्न जातियों और जनपदों के थापो की तुलना से इन थापो के ही सबब को नहीं, बल्कि उन लोगों के सबब में भी कुछ-कुछ जान सकते हैं, जिनके यहाँ यह प्रचलित है। थापो के चिह्न-संकेत हमें प्रागैतिहासिक काल में ले जाते हैं जिस तरह गोदने और दूसरे संकेत। कोई आश्चर्य नहीं यदि इनमें से कुछ हमारे पुराने पंचमार्क सिक्कों में होते मिन्धु-उपत्यका के संकेतों तक पहुँच जायें।”

हाथ की उगलियों का थापा या ठापा मार कर जो चित्र दीवार पर अंकित किये जाते हैं, उन्हें ‘थापा’ कहते हैं। विवाह के अवसर पर लड़की में मण्डप के बाँमों पर लगवाते हैं तथा विदा में पर्व पिसी हुई मेहदी या गेरू का थापा कमरे के दोनों ओर लगवाते हैं। वैज्ञानिक उन्नति से पूर्व जब फोटो का विकास नहीं हुआ था, तो पुत्री की स्मृति-स्वरूप उसके हाथ की छाप माँ दीवारों पर लगवा लेती थी और उसे देख कर सतोष कर लेती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके भित्ति-चित्रों के पीछे मानव तथा स्त्री-समाज की कलात्मक भावना के साथ ही साथ उनकी सहज भावुकता भी छिपी रहती थी। दिवाली पर लक्ष्मी प्रवेश के अवसर पर, पुत्र जन्म के अवसर पर, लड़की को समुराल भोजन के लिये मिट्टी के कलशों में

मिष्ठान्न भर-भर कर भेजते हैं, उनमें भी थापा लगाते हैं। ये थापे तथा सतिये (स्वस्तिक) सरलतम शुभ सकेत की आवश्यकता का पूर्ति के लिये होते हैं।

प्रत्येक मागलिक अवसरो पर 'अल्पना' बनाने की बहुत ही प्राचीन तथा पवित्र प्रथा है। इसको लोक-भाषा में 'चौक पूरना' कहते हैं। किसी भी मगल अवसर पर स्त्रियाँ सूना आँगन या सूनी देहरी नहीं रग्वती। वे अपने भाई, पति और पुत्र के लिए परम्परागत मगल-कामना करती पाई जाती हैं। हर घर में हल्दी, आटा वरोली तो उपलब्ध होते ही हैं, इन्हीं तीनों के मिश्रणमें यह विविध आकार-प्रकारों के फूल तथा स्वस्तिक चिह्न आदि बनाकर मगल-कामना करती हुई पाई जाती हैं। विवाह के अवसर पर जब वागत लड़की वाले के घर पर होती है उस समय गृह के प्रधान द्वार पर सामने थोड़ी-सी जमीन को गोबर से लीप कर देहली सजाते हैं। यह प्रायः नायन या घर की कोई भी स्त्री या लड़की कर देती है। इसको सूखे गेहूँ के आटे से, हल्दी, रोली या सूखी मेहदी आदि से चुटकी के द्वारा पूरा जाता है। उन्हीं की सहायता से वह बहुत सुंदर वेलवूटे व डिजाइन बना लेती है। यह रचना प्रायः चौरस या वर्गाकार होती है। चौक-पूरना किसी भी अनुष्ठान, पूजा तथा मगल-काय के समय जैसे—तिलक, विवाह, यज्ञोपवीत, भइयादूज, सत्यनारायण की कथा तथा यज्ञो आदि के अवसरों पर प्रचलित है। हवन के समय मिट्टी की वेदी पर विभिन्न रंगों से अल्पनाएँ बनायी जाती हैं जो नवग्रहों तथा अन्य देवी-देवताओं की प्रतीक होती हैं।

काठ की पट्टी के ऊपर भी विभिन्न रंगों से अल्पना बनाते हैं। चावल तथा चोकर को विभिन्न रंगों से रंग कर भी बड़ी सुन्दर अल्पना बनायी जाती है। इस पर वर-वधू को बिठाते हैं तथा भाई को उमी पर खड़ा करके भइयादूज का टीका करते हैं।

भारत में सगुणोपासना के लिए मूर्तिपूजा का विशेष महत्व है। स्त्रियाँ ब्रतों आदि के अवसर पर मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसका विधिवत् पूजन करती हैं और फिर उसे जल में सिला देती हैं। यह सर्व-सुलभ है। प्रायः इन अवसरों पर होली, दशहरा, साझी, गनगौर, कार्तिक स्नान, देवउठावनी एकादशी, करवाचौथ, अहोई अष्टमी, सकट चौथ तथा गुरुगुग्गा की मिट्टी की मूर्ति बनाने का विशेष प्रचलन है। इनको रोली और हल्दी से सजाते हैं तथा फूलों के गहने पहनाते हैं और नया रंगीन रेशमी कपड़ा उढ़ाते हैं। इनका अपना सौंदर्य अनूठा होता है। देहाती कुम्भकारों के द्वारा यह कला आज भी सुरक्षित है।

मिट्टी के अतिरिक्त कपड़ों के लिखौने भी बनाये जाते हैं जो पुराने व नये कपड़ों के टुकड़ों को बड़ा सुन्दर आकार देकर बनवाते हैं। इनमें पशु-पक्षी के

अतिरिक्त गुडिया का अपना विशिष्ट स्थान है। गुडिया का कलाओं में तथा जीवन में बहुत ही उपयोगी स्थान है। इनके द्वारा वह नारी-जीवन मन्त्री, खान-पान सबधी, मिलाई, कटाई-पुनाई, विवाह, पुन-जन्म जादि की सभी प्रथाओं की कला मन्त्री और सामाजिक, सांस्कृतिक जानकारी पा जाती है। गुडिया अनेक प्रकार से और बहुत ही सुन्दर तथा आकर्षक बनती है।

कमीदा काटना, नारी जगत की बहुत प्रसिद्ध कला है। इसमें वह पशु-पक्षी, देवी-देवता, फूट-पत्ती तथा पेड़-पौधा को बहुत ही सुन्दर रंगों में काटती है। इनके नमूनों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि मनुष्य का प्रकृति में बहुत ही अभिन्न साहचर्य है। वनस्पति, पशु-पक्षी तथा मनुष्य—सभी का इसमें उल्लेख मिलता है। चादर, मेजपोश, साडी, पेट्टीकोट, तकिये के गिलाफ आदि चीजों पर वे इन्हे काटती है। इसमें इनका रंगों का चयन बड़ा मनोहारी होता है। भारतीय संस्कृति में, विशेषकर नारी के जीवन में, रंगों का विशेष महत्व है।

नारियों की हथेलियाँ भी चित्रों का स्थान देती हैं, ये चित्र मेहदी द्वारा बनाये जाते हैं। नारी के सौंदर्य प्रमाधता में मेहदी अथवा महावर का मौसम्य एवं मांगल्य की दृष्टि में विशेष महत्व है। मेहदी के हरे ताजे पत्तों को बहुत बारीक पीस कर 'नील' के द्वारा मिश्रण जगनी हथेलियों पर विभिन्न रूपों में लगाती है और ये फूट-पत्ती, पशु-पक्षी, गोलार्क, त्रिकोण, पञ्चकोण तथा विविध ज्यामिति य रेखाओं की महायना में आकर्षक शैली में बनाती हैं। हथेली पर स्थान की कमी के कारण वे बहुत बारीकी से और साथ ही स्पष्टता से बनाती हैं। सावन के महीने में हरियाली तीज पर तथा अन्य सभी आवश्यक त्यौहारों पर व विवाह के अवसर पर मेहदी लगाती है। मेहदी को अधिक तेज रंग की करने के लिये यह उसमें खटाई और सरसों का तेल भी मिला लेती है।

आरती का थाल मजाने की कला भी नारियों में बहुत पायी जाती है। आरती उतारना अथवा आरती करना, मंगल अवसरों पर तथा किसी भी शुभ-कार्य की मिट्टि के बाद विजयसूचक एवं मंगलमय है। कन्या के विवाह में जयमाला से पहिले कन्या की बटी बहिन या सभी लड़के की 'आरती' करती है। 'मैयादूज' पर भी बहिन, भाई की आरती करती है। इन अवसरों पर आरती का थाल बहुत सुन्दर सजाया जाता है। गीले आटे में चौमुखा दीपक बनाकर चारों ओर रखने हैं तथा बीच में सब से बड़ा दीपक बनाकर रखने हैं। इसको आटे में ही सजित रखने हैं। उस पर फूल की पत्ती, पत्ती आदि तथा आकर्षक रंगों को भी

लगाकर सुन्दर बनाते हैं। खाना बनाना, मिठाई बनाना यह भी अपने में पूर्ण कला है, जिसका स्वरूप हमें विवाह के पकवानों में तथा त्यौहार की मिठाइयों में मिलता है।

गोदना की प्रथा भी बहुत प्राचीन है। अगो को विभिन्न डिजाइनों के द्वारा सुन्दर बनाना ही इसकी अन्तर्निहित भावना है। प्राचीन समय में बिना गुदा अग, स्त्रियों के लिये लज्जा का विषय था। इसके अतिरिक्त गोदना गुदवाना एक धार्मिक अग माना जाता था। नारी-समाज में, विशेषकर निम्न जातियों में लोक-विश्वास था कि ऐसा न करने से अगले जन्म में हिन्दू-परिवार में जन्म नहीं होता, नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता है। विवाह के बाद हर स्त्री बहुत श्रद्धा से गोदना गुदवाती थी। गोदने के चित्र को वस्तुओं के प्रतीक रूप में लाया जाता रहा है। अगो पर प्रायः वही वस्तुएँ अंकित की जाती थी जिनका जीवन से सीधा संपर्क है। यह गोल, आयताकार, त्रिभुजाकार होने हैं तथा विभिन्न पशु-पक्षी, जीव, फूल-पौधे आदि सुन्दर-सुन्दर आकार के बनाये जाते हैं। स्त्रियाँ अपने पति का नाम व भगवान् का नाम भी गुदवाती हैं और मुँह, ठोड़ी, हाथ, पैर तथा पेट पर गुदवाती हैं।

लोक-कला के द्वारा लोक-समाज में, विशेष कर नारी-समाज में उनकी स्वाभाविक सौंदर्य-वृद्धि की प्रवृत्ति को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रोत्साहन मिला है।

स्त्रियों की कल्पना बहुत सजीव होती है तथा उनमें दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को मोड़ने के साथ-सकेंत रूप में उत्कीर्ण करने की अपार क्षमता होती है। वे अपनी कल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने में प्रवीण होती हैं। इनसे जीवन में प्रफुल्लता और दीप्तता आती है, मानवता का जागरण होता है और कलात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है एवं उनका परिष्कार भी होता है।

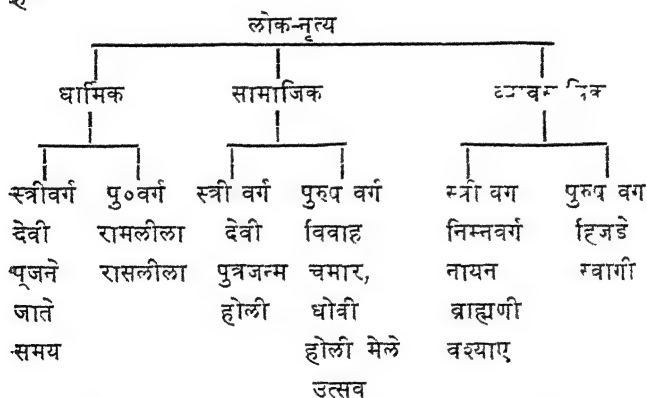
यद्यपि आधुनिक काल में लोक-कला ड्राइगरूम सजाने का साधन बन गयी है, परन्तु इसका इतिहास परम्परागत मानव के साथ ही नहीं समाप्त हो सकता अपितु वह आनेवाले आधुनिक मानव को भी परम्पराओं की मुखर कला के प्रति जाग्रत रखेगा।

खडीबोली-प्रदेश के लोकनृत्य—मनुष्य अपने गहनतम मनोभावों को शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा व्यक्त करता है जिसके अतर्गत सभी रसों का समावेश हो जाता है। इन्हीं शारीरिक चेष्टाओं को सौंदर्यपूर्ण तथा मनोहारी ढंग से, परिष्कृत रूप में व्यक्त करने को नृत्य कहते हैं। यह भावाभिव्यक्ति सामाजिक जीवन का बहुत महत्वपूर्ण अंग है तथा स्वाभाविक कला है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव में भावप्रदर्शन की आकांक्षा स्वाभाविक तथा जन्मजात होती है। लोक-नृत्य बहुत सरल होने हैं और इनमें किसी भी शास्त्रीय बंधन को नहीं माना जाता है। अतः इनमें मानव की साधारण से साधारण रागात्मक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो हर देश, काल, समाज व जाति में समान रूप से उपस्थित रहती हैं। इनके लिये बौद्धिक यत्न की कोई आवश्यकता नहीं होती, कोई भी सहृदय मवेदनशील मानव इसका आनंद उठा सकता है। नृत्य का सबसे मनुष्य जीवन से प्रत्यक्ष रूप में है। यह जीवन के सहज उल्लास व उमंग को व्यक्त करता है, इसमें कृत्रिमता का अभाव होता है।

“आदिकाल से ही मनुष्य ने अपने गीतों को श्रम और नृत्य के साथ गाया है। कुरु प्रदेश में गीतों के साथ होने वाले अनेक नृत्य हैं। पुराणों की होली, नृत्य योद्धाओं के रण-कौशल की पुनरावृत्ति मात्र है। बड़े लाघव के साथ उठने से झुकना, उछलना, कूदना, बैठ जाना, घूम जाना, पुरातनकाल की सामुहिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा वीरपुरुष अपना वचाव और प्रतिद्वन्द्वियों पर धावा किया करते थे। इस नृत्य में बड़ा जोर लगाना पड़ता है। शास्त्रीय अंगों की भाँति अंग-संचालन की विविध मुद्राएँ तो नहीं हैं परन्तु कभी-कभी प्रबल आवेगों को अनगढ़ रीति में ही सही, प्रकट अवश्य किया जाता है।”

यद्यपि खडीबोली प्रदेश के लोक-नृत्यों का कोई विशिष्ट रूप नहीं है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिये हम लोक-नृत्यों का इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं—



धार्मिक लोक-नृत्य—भारत धर्मप्रधान देश है। यहाँ पर प्रत्येक कला को धार्मिक दृष्टि से देखा जाता है। नर-नारी धर्मभरी होते हैं, अतः देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वह उनके सम्मुख विभिन्न रूप से शारीरिक भाव-भंगिमाओं के माध्यम

से स्तुति करते हैं। हमारे लोक-नृत्य अविकाशित धार्मिक ही हैं। जो सामाजिक हैं, उनकी भावभूमि भी धार्मिक ही है।

धार्मिक-नृत्यों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—स्त्रियों तथा पुरुषों के। देवी शीतलामाता पर नारियों की विशेष आस्था होती है और बालकों की तथा सुख-माभाग्य की शुभकामना के लिये वह इनकी स्तुति करती है तथा मनौती मानती है। देवी की पूजा का बहुत महत्व और प्रचार है। इसके लिये स्त्रियाँ सामूहिक रूप से गीत गाती हुई जाती हैं तथा वहाँ पर मन्दिर में जाकर देवी की भेट गाने समय नृत्य भी करती हैं। जात पूजने जाते समय भी इसी प्रकार गीत गाती हैं व नृत्य करती हैं। इन नृत्यों की भाव-भंगिमाओं का अर्थ, प्रार्थना पूजा ही होती है।

इसी प्रकार पुरुषों की टोलियाँ भी देवी की भेट गाती हैं तथा नृत्य करती हैं। यह अविकाश निम्नवर्गों के ही होते हैं। देवी के भक्त बहुत तन्मय होकर यह नृत्य करते हैं तथा अनेक बार ऐसे अवसरों पर उन्मत्त भी हो जाते हैं। तब कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति पर देवी आई है। देवी तथा जात में नृत्य करने के अतिरिक्त पुरुष तो रामलीला तथा रासलीला में भी नृत्य करते हैं। ये दोनों राम और कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित होती हैं तथा भक्तिभाव से ओत-प्रोत रहते हैं। इनमें शान्त-रस होता है जिसमें दर्शकों में सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। स्त्री तथा पुरुषों को कीर्तन में नृत्य करता हुआ पाया जाता है। ये नृत्य, व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही रूपों में होते हैं। ये युन के साथ भावपूर्ण नृत्य करते हैं।

सामाजिक लोक-नृत्य—सामाजिक नृत्य, हर्ष-उल्लास तथा उमग के अवसरों पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से नृत्य करना स्वाभाविक है। इसी के द्वारा सामाजिक भावों का आदान-प्रदान होता है। समाज में उमग के अवसर पर होने वाले नृत्य मुख्य रूप से दो-तीन ही हैं जिनमें विवाह प्रमुख है। विवाह में निकट सम्बन्धी महिलाएँ तथा अन्य परिचित आगन्तुक नाच उठते हैं। इसका असली रूप बारात जाने के अगले दिन होने वाले समारोह में दृष्टिगत होता है जिसे इस प्रदेश में 'खोडिया' कहते हैं। यह नाचने-गाने का सामूहिक अवसर होता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ वेश बदल कर स्वाँग भी करती हैं। इसी प्रकार पुत्र-जन्म के बाद दशूदन पर नामकरण के बाद गाना-नाचना होता है। पुत्र-जन्म हिन्दू परिवारों में चरमहर्ष का अवसर होता है।

होली के अवसर पर ऋतु के प्रभाव से स्त्री-पुरुष सभी में अजीब प्रकार का उत्साह व उन्माद आ जाता है। यह स्फूर्ति मादकता ला देती है जिससे अग-अग थिरक उठता है, नाच उठता है। इस अवसर के नृत्य व गीत, शृंगार रस

पूर्ण होते हैं तथा उनमें हास्य, व्यंग्य का भी बहुत योग रहता है। इस समय यह मडल बनाकर नाचती है जिसे 'झाबूके' कहते हैं।

इस प्रदेश की स्त्रियों का नृत्य बहुत स्वाभाविक और प्राकृतिक है। यह अधिकतर धीरे-धीरे नृत्य करती है, अधिक गतिवती नहीं होती। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये अपने अंग-प्रत्यंग को मटक रही हैं। कभी-कभी अवश्य वे ढोलकी की टोक पर जोर-जोर से नृत्य करती हैं। इनमें स्त्रियोचित कोमल भावाभिव्यञ्जना रहती है।

गूजर और जाट जाति की स्त्रियाँ बहुत लम्बी और सुडौल शरीर की बलिष्ठ महिलाएँ होती हैं। इनमें कोमलता के स्थान पर पौरुषता अधिक होती है। इसका कारण उनके जाति ही है। इनके नृत्य में कूद-फाँद, आंगिक क्रियाओं की तीव्रता और गति ही अधिक रहती है। गति बहुत बुलन्द आवाज में टेर-टेर कर जाती है। उनको इसके लिये ढोलक की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। इनके पहरावे में जो बहुत अधिक घेर के, ऊँचे-ऊँचे लहंगे होते हैं, नृत्य करते समय बहुत अच्छे प्रतीत होते हैं। इनका नृत्य व गान अपना विशिष्ट ही होता है जिसका साथ देना भी साधारण स्त्रियों के वेश की बात नहीं होती। यह सामूहिक कम, अधिकतर व्यक्तिगत ही होता है।

पुरुष-वर्ग के सामाजिक नृत्यों के अन्तर्गत होली के नृत्य मुख्य हैं। ये नृत्य मुख्यतः निम्नजाति के लोग चमार-बोबी ही करते हैं। ये होली पर घोड़े का नृत्य करते हैं जो इस प्रदेश का मुख्य नृत्य माना जा सकता है। इनमें पुरुषोचित भावनाओं का चित्रण रहता है तथा ये द्रुत-लय वाले होते हैं। ये उत्सवों तथा मेलों के अवसर पर भी नृत्य करते हैं। इनके नृत्य अधिकतर सामूहिक होते हैं। इनमें ताल व लय का कोई विशेष ध्यान नहीं होता। इस नृत्य में घूमना, घुघरूवाले पैर से ठुमके लगाना तथा किसी लोक-कथा-गीत के ऊपर राजा अथवा रानी का अभिनय करना होता है। इस नृत्य में अधिकतर एक व्यक्ति पुरुष का अभिनय करता है, दूसरा स्त्री के वस्त्र पहन कर उसकी भावभंगिमा से पुरुष के वाक्-बाणों का उत्तर देता है। कभी-कभी इस नृत्य में अश्लीलता भी आ जाती है।

व्यावसायिक नृत्य—इस तरह के नृत्य करने वाले भी होते हैं, जिनके जीवन-यापन का साधन ही नाचना-गाना होता है। ये व्यवसाय के रूप में इसको अपनाते हैं, अतः नाचने में सिद्धहस्त भी हो जाते हैं। स्त्री-वर्ग में तो नायन, ब्राह्मणी ही मुख्य हैं जो हर शुभ अवसर पर नृत्य करती हैं तथा गीत गाती हैं। इस प्रकार कोई भी 'देहला' गूगा नहीं होता। ढोलक मधुर लयपूण ध्वनि के साथ बजती है तथा

नाच-गाना भी होता है। इस प्रकार मोहल्ले भर को पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति के यहाँ कोई समारोह है और ढोलक बजी या खडकी है।

पुरुष-वर्ग में भड्डेले, सागी लोग खूब नाचते गाते हैं। इनको नृत्य, विवाह आदि किसी भी अवसर पर बुलाया जा सकता है। ये उत्सव में चार चाँद लगा देते हैं तथा मनोरंजन के प्रमुख साधन होने के कारण जनता का आकर्षण केन्द्र होते हैं।

वेश्याएँ—इनका तो व्यवसाय ही गाना और उसके अनुरूप नृत्य करना होता है।

इन सबसे पृथक् एक और जाति है जिनका समाज में पृथक् और विशिष्ट स्थान है—वह है नपुंसक-लिंग में आने वाली हीजडा जाति। यह स्वयं सम्मानित जाति नहीं मानी जाती है पर इनको शुभ अवसरों—विवाह, पुत्रजन्म आदि पर अवश्य बुलाया जाता है या स्वयं पता लगाकर आ जाते हैं। हर सम्भ्रान्त परिवार में इनका परिचय रहता है व पहुँच भी।

खडीबोली-प्रदेश में स्त्री-पुरुषों के सामूहिक नृत्यों का प्रचलन नहीं है। स्त्रियों और पुरुषों के नृत्य भिन्न-भिन्न होते हैं। कहीं-कहीं वेश बदल कर भी करने की प्रथा अवश्य प्रचलित है। उदाहरण के लिये विवाह आदि के अवसर पर 'खोडिये' में स्त्रियाँ पुरुषों का वेश धारण कर गाती, नाचती हैं जब कि पुरुष होली पर तथा साग आदि में अनेक अवसरों पर स्त्रियों का वेश धारण कर नाचते हैं।

जैसा कि हम स्वभाव बतलाते समय कह आये हैं कि इस प्रदेश का लोक-मानव अधिक गम्भीर है, अतः यही कारण है कि यहाँ के लोग नृत्य के प्रति भी उदासीन हैं, और इस प्रदेश का अन्य प्रदेशों की भाँति कोई भी विशिष्ट नृत्य नहीं है।

खडीबोली प्रदेश की वेशभूषा तथा खान-पान—विचारों की भाँति पहरावे में भी यहाँ के लोग सरल हैं। जैसा कि हम पहले कह आये हैं, इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति के कारण विभिन्न सभ्यताओं का प्रभाव लोक-मानव के जीवन के हर अंग पर पड़ा है। परन्तु फिर भी खडीबोली प्रदेश केवासियों का एक सबसे बड़ा गुण यह रहा है कि उन्होंने हर प्रभाव को अपने स्वभाव तथा परिस्थितियों के अनुसार ही अपनाया है। इनके वास्तविक जीवन पर चाहे किसी सभ्यता का प्रभाव पड़ा हो परन्तु जब जीवन के आन्तरिक तथा धार्मिक पक्ष पर आघात होने लगा है तो लोक-मानव सजग हो उठा है।

यदि हम वेशभूषा तथा खान-पान के ऊपर दृष्टिपात करें तो ऊपर कही गई बात की पुष्टि हो जायगी। पहिले हम वेशभूषा को ही लेते हैं। ग्रामीण जीवन में वेशभूषा का परिवर्तन जाति के अनुसार भी पाया जाता है। किसान, विशेषरूप से चमार, गडरिए, धीवर तथा अन्य जाति वाले लोग धोती, कुरता, टोपी पहनते

है। ग्राम से बाहर जाते समय ये लोग चमड़े का देशी जूता पहन लेते हैं जिसे चमरौधा भी कहते हैं। ये आगे से चौड़े पजे का होता है। इसको ये लोग तेल में भिगोकर तैयार करते हैं अथवा इसमें मट्ठा भी भरते हैं।

भगियो की वेशभूषा सब लोगो से भिन्न होती है। ये कुरता, धोती, तो पहनते ही हैं लेकिन उनकी धोती शलवार की भाँति बनी होती है तथा घुटनो तक नीची होती है। यह ऊँची कुरती पहनते हैं तथा कमर पर चादर अथवा अन्य कपड़ा कस कर लपेटे रहते हैं, अधिकतर इनकी धोतियाँ चौड़ी किनारियो की होती हैं।

जाट, गूजर तथा अन्य लोग सफेद पगडी भी बाँधते हैं। ये आकार में बहुत बड़ी होती है, इसलिए इसको पगगड भी कहा जाता है। कुछ ऊँचा कुरता तथा लॉघदार धोती भी पहनते हैं। ये धोती घुटनो से कुछ ही नीची होती है। समृद्धि-शाली लोग घुटनो से नीचे तक बन्द गले का खदर का कोट भी पहनते हैं तथा कंधे पर चादर रखते हैं।

वैश्य जाति के लोग टोपी, कुरता तथा बनियाइन के स्थान पर जवाहर जाकेट की भाँति बनी हुई 'बडी' पहनते हैं। इसमें पैसे आदि रखने की सुविधा रहती है। ये भी ऊँची धोती बाँधते हैं लेकिन इनकी धोती घेरदार होती है तथा नीचे को ढलकी रहती है। इनका जूता भी देसी ही होता है लेकिन ये जाटो तथा निम्न जातियो के जूतो की भाँति भारी तथा अधिक चौड़े पजे का नहीं होता है। ये लोग पहनावे में सीधे और सरल हैं। बनियो के सम्बन्ध में कहावत है—'बनियो का छैला, आधा उजाला, आधा मौला।'।

पगडी ग्रामीण ब्राह्मण भी बाँधते हैं। कहीं-कहीं पर ऐसा भी होता है कि सिवाय चोटी के उनका सिर घुटा हुआ होता है। ये लोग गले में रामनामो या सफेद चादर भी डालते हैं।

बड़े-बूढ़े अगरखा तथा धोनी पहनते हैं। आजकल अचकन भी पहनी जाती है। धनी बनियो जो शहर के आस-पास रहते हैं, अचकन तथा पाजामे भी पहनते हैं, यद्यपि इस वेशभूषा पर मुसलमानी प्रभाव भी देखने को मिलता है परन्तु उस प्रभाव ने लोक-जीवन को पूर्णरूप से आच्छादित नहीं किया केवल स्पर्श किया है। आधुनिक युवक समाज पर पाश्चात्य वेशभूषा का अधिक प्रभाव है, परन्तु लोक-जन इतना अधिक किसी भी सभ्यता से प्रभावित नहीं हुआ। धोती-कुरता जो युगो से भारत का पहनावा रहा है, लोक-जीवन में आजकल भी उसी प्रकार सुरक्षित है।

महिलाओ की वेशभूषा—महिलाओ की वेशभूषा में भी जातिगत भेद मिलता है। निम्न जाति की महिलाएँ टुकड़ी पहनती हैं तथा यह बहुत ऊँची होती है और ऊँचे

ऊँचे कमीज पहनती है। उनके पावो मे चाँदी अथवा गिलट के जेवर रहते है, बिलुवे, लच्छे, तथा पिडलियो मे भिन्न प्रकार के कडे रहते है। छोटी लडकियाँ भी इस प्रकार की वेशभूषा पहनती है। हाथो मे भी ये लोग कडे पहनती है। कोहनी के ऊपर भी एक प्रकार के कडे पहनते है, ये भी चाँदी के ही होते है।

जाटिनियो का ऊँचा घूम-धाघरा कानो की बाली और गले का कठा, उनके दैनिक व्यवहार की प्रसिद्ध चीजे है। ये कमीज ऊँची-ऊँची पहनती है तथा पैरों मे जूता भी पहनती है जो मर्दों के जूतो की भाँति भारी होता है। ये पावो मे कडे पहनती है, गले मे रुपयो का तथा सोने के दानो का हार पहनती है। सिर पर जूडे के स्थान पर भी एक जेवर पहनती है, जो ऊपर को उठा हुआ होता है। हाथों मे तथा कोहनियो के ऊपर भी वह एक विशेष प्रकार के कडे पहने रहती है। ये सिर मे एक प्रकार का आभूषण और भी पहनती है जिसे माँग कहते है और जो सारे जेवरो को कसे रहता है।

वैश्य तथा ब्राह्मण महिलाएँ धोती और कमीज पहनती है। ये पावो मे पायजेब पहनती है। कहीं-कहीं पर लच्छे भी पहने जाते है। हाथो मे दस्तबन्द, छन, पहुँची, आरसी, अँगूठी आदि पहनती है। कोहनी के ऊपर बाजबन्द पहनती है। गले मे फूलदार, मटरमाला, लड्डियो की जजीर तथा हँसली, कालर, झिलमिली आदि पहनती है। यहाँ तगडी पहनने की भी प्रथा है। यह प्राय चाँदी की होती है पर अमीर लोग सोने की भी पहनते है। पावो मे सैल तथा चप्पल पहनती हैं। इनके दावन अधिकतर बहुत कीमती और रेशमी होते है तथा लम्बाई मे नीचे होते हैं। धीवर आदि जाति मे शलवार तथा कुर्ती भी प्रचलित है।

इस प्रदेश मे स्त्री-पुरुषो दोनो ही की पोशाक मे गाढे (खदर) का बहुत प्रयोग होता है—पुरुष सफेद गाढे (मोटा खदर) का कुर्ता, धोती पहनते हैं और स्त्रियाँ लहंगा, कुर्ता ओढनी आदि गहरे लाल पीले रंगो की पहनती है।

खान-पान—इस प्रदेश का खान-पान अधिकतर श.काहारी तथा सात्विक है। केवल वही जातियाँ सामिष हैं जो धार्मिक रूप अथवा जातीय कारणो से पहिले ही से सामिष रही है। इन जातियो मे मुसलमान, ईसाई, सरदार, मछवे, धीवर आदि आते है। मछवे, धीवर आदि अधिकतर जल-जन्तु ही खाते है, अन्य जातियाँ पून-तथा निरामिष है। ये लोग अधिकतर बाजरा, चना तथा मक्का खाते है। गेहूँ का प्रयोग केवल विशेष त्यौहारो तथा अवसरो पर ही किया करते है। रोटी के साथ ये लोग अधिकतर मूँग तथा उडद की दाल, मट्ठा, मक्खन आदि का प्रयोग करते हैं। इस प्रदेश का लोकजन अधिकतर खेतिहर है और समृद्धिशाली है। इसीलिये यहाँ पर दूध के जानवर पालने का बहुत प्रचलन है। शहरो मे भी लोग गाय-भैंस

रखते हैं, इसलिये ये लोग मट्ठे तथा मक्खन का प्रयोग करते हैं तथा गन्ने की खेनी के कारण गुड शक्कर का भी बहुत प्रयोग होता है। इस प्रदेश का खाना बहुत पौष्टिक होता है। यहाँ पर दूध-दही का खाना है। बेला भरा दूध, रम की खीर, चावल, उडद की दाल, गेहूँ के फुलके तथा मक्की की रोटी और चने का साग यहाँ का विशेष खाना है। यहाँ पर जिनके घर मट्ठा होता है वह मट्ठे को खूब बाँटते हैं। किसी को मट्ठा के लिये मना करना कमबख्ती की निशानी समझी जाती है। अधिकतर हरे साग ही खाये जाते हैं—उदाहरण के लिए सरसो की गाँडल, चने का साग, बथुआ, सींगरे, पालक, कचनार, ग्वार की फली आदि।

मीठे में खीर, मेवे तथा हलवे का अधिक प्रचलन है। कड़ी चावल भी यहाँ का विशेष खाना है। कड़ी अवकाश के समय अथवा विशेष अवसरो पर ही बनती है। पक्का खाना त्यौहारों पर तथा अन्य विशेष अवसरो पर बनता है। कचौरियाँ यहाँ पर अधिक प्रचलित हैं।

इधर के बनिये, ब्राह्मण विशेष शुद्धि से खाते हैं। इन लोगों की रसोइयों में चोके होते हैं तथा कच्चा खाना चौको में ही खाया जाता है। ब्राह्मण अधिक शुद्धि रखते हैं। ये दूसरी जातियों के घर कच्चा खाना नहीं खाते, खीर भी मुने हुए चावलों की ही खाते हैं, ऊँची जातियों में छुआछूत बहुत प्रचलित है।

यहाँ के लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि भोजन और स्थान का व्यक्ति के मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, इसीलिये दूसरों के घर भोजन करने में यहाँ के व्यक्ति बहुत कम विश्वास करते हैं।

इस प्रदेश के सभी पुरुष घूम्रपान करते हैं। ये अधिकतर हुक्का और चिलम पीते हैं। खेतों में काम करने वाले प्रायः नारियल पीते हैं। हुक्का जातीय रूप से अलग-अलग होता है, कहीं-कहीं व्यक्तिगत रूप से भी हुक्का अलग रखा जाता है। हुक्का जातीय एकता का प्रतीक माना जाता है। हुक्का पानी बन्द हो जाना—कहावत इसी बात की पुष्टि करती है। 'पक्का-खाना', 'पक्की पक्की हवेली' यह लौकिक समृद्धि की पराकाष्ठा समझी जाती है।

लोकसाहित्य के कथा-गीतों में आने वाले शब्दों से वहाँ की सम्पन्न खान-पान की प्रथाओं का आभास होता है—उदाहरण के लिए—'सोने का गडुवा, गंगाजल पानी, दूध कटोरा, धौली गाय तले बछरवा चूखता, हाथ रकेबी तत्ती जलेबी आदि। इस प्रकार खान-पान का दृष्टि से यहाँ पौष्टिक पदार्थ खाये जाते हैं, जो प्रदेश की सुख-समृद्धि के द्योतक हैं।

भाषा और लोकशब्द—इस प्रदेश की लोक-भाषा का अध्ययन करना, भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित अपने में पूर्ण विषय है। परन्तु खडीबोली प्रदेश ही मेरा कार्य-

क्षेत्र रहा है तथा उसकी लोक-भाषा से मेरा हर समय का सम्बन्ध रहा है इसलिये इस प्रदेश में प्रयोग किये जाने वाले लगभग ६०० शब्दों का संग्रह किया है, जिसको कि परिशिष्ट में दिया है। ये शब्द वहाँ की अभिव्यक्ति के साधन हैं तथा इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण लोकसाहित्य ने यह रूप पाया है। इन शब्दों का व्याकरण की दृष्टि से भी बहुत महत्व है। आज की हिन्दी का उद्गम तथा उसका अपभ्रंश रूप दोनों ही इन शब्दों में हैं। कुछ शब्द अजमत, अल्लाबेली, आदमजून, आला, इकला, इमाण, खबोई, गाढ़ेहराम, ग़मान आदि उर्दू से सम्बन्ध रखते हैं। आदमजून में आदमशब्द उर्दू का है यथा जून, योनि का बिगड़ा हुआ रूप है इस प्रकार गाढ़े-हराम शब्द का भी उर्दू से सम्बन्ध है। इसमें भी 'हराम' शब्द उर्दू से ही आया है। शिवात्ला, कौत्तक, पडवा, आट्टे आदि शब्द साहित्यिक हिन्दी के बिगड़ेरूप हैं। वास्तव में खड़ीबोली ने अनेक शब्दों को साहित्यिक भाषाओं से लेकर अपने रंग में रँग लिया है। सामाजिक शास्त्र की दृष्टि से भी इनका बहुत महत्व है, इन शब्दों से उनकी सूचारुता तथा उनके जीवन के ढंग का भली प्रकार से पता चलता है। साधारणतः सामाजिक शब्दों का प्रयोग सामाजिक परम्परा के अनुसार किया जाता है। खड़ीबोली के बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग सामाजिक परम्परा के अनुसार किया जाता है। जैसे—'टूटना' शब्द चूड़ी टटने के लिये प्रयुक्त नहीं होता अपितु उसके लिये 'मौलना' अथवा 'बिसमना' शब्द का प्रयोग होता है क्योंकि चूड़ियाँ उस समय टटती हैं जब पति की मृत्यु होती है, अन्यथा तो चूड़ियाँ नये पेड़ की भाँति मौलती हैं।

खड़ीबोली लोक-भाषा में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो अन्य किसी और स्थान में नहीं मिलते, उदाहरणार्थ—छीड, ओच्छा, समावका, ये शब्द भीड़, ऊपर तक भरा हुआ, अन्धे शब्दों के उल्टे हैं। इस प्रदेश की शब्दों की परम्परा अपनी ही प्रकार से अनोखी है। इन शब्दों के अतिरिक्त हमने उस प्रदेश में प्रचलित स्त्री-पुरुषों के कुछ विशेष रूप से प्रचलित नाम दिये हैं। स्त्रियों के नामों की संख्या ५० है तथा पुरुषों के लगभग ९० नाम हैं। ये नाम भी इस प्रदेश की अशिक्षितता तथा अन्धविश्वासों के प्रतीक हैं। कुछ नाम जैसे चूहड़, कन्, रोडा आदि उन बच्चों के रखे जाते हैं जिनके बच्चे जीते नहीं। कुछ शब्दों को बिगाड़ भी दिया जाता है जैसे किसना (कृष्ण), बिरमा (ब्रह्मा), ओम्मी (ओम) आदि।

वास्तव में इस प्रदेश की सम्यक्ता यहाँ की भाषा तथा शब्दों में प्रत्यक्ष देखने को मिलती है। ये प्रदेश का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि इन शब्दों से ही भाषा-विचार तथा व्यक्तित्व बनते हैं। इसीलिये लोकशब्दों की उपेक्षा करना

हमारे लिये कठिन था। यद्यपि समय तथा विषय की व्यापकता के कारण मैं इन शब्दों के साथ न्याय नहीं कर सकी।

खडीबोली-प्रदेश के लोगों का स्वभाव—प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य की परिस्थितियों पर उसके जीवन-दर्शन तथा भौगोलिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। हमारे इस कथन की पुष्टि खडीबोली प्रदेश के रहनेवालों के स्वभाव पर दृष्टिपात करने से उचित रूप से हो जायेगी। यहाँ के निवासी समृद्धशाली हैं। उनकी खेती के लिये जमीन उपजाऊ है, जल का बाहुल्य है तथा वे पढ़े-लिखे हैं। अधिकतर खडीबोली प्रदेश से सम्बन्धित लोग आधुनिक प्रगति से भी अपना सम्बन्ध बनाये हुए हैं। खेती करने वाले लोगों ने अपनी सुगमता के लिये यंत्रों को भी बहुत जल्दी तथा अधिक मात्रा में अपनाया है। खेतिहर लोगों के घरों पर ट्रैक्टर, कल्टीवेटर आदि सब काफी मात्रा में देखने को मिलते हैं। अधिकतर किसान इन यंत्रों का उपयोग स्वयं ही करते हैं। ये लोग गन्ने की खेती करते हैं, इसलिये यहाँ पर चीनी की मिलें भी बहुत हैं। छोटे-छोटे गाँवों में भी फ़ैशर बहुतायत से मिलते हैं जिन्होंने इनको और भी समृद्धिशाली बना दिया है। यही कारण है कि खडीबोली प्रदेश के निवासियों में एक प्रकार की आत्म-निर्भरता है, आर्थिक सुरक्षा है। इसीलिये वे निडर हैं तथा आन-बान की भावना भी उनमें बहुत अधिक है। वे झगडालू प्रकृति के हैं तथा सहनशक्ति भी कम है। मुकदमों-बाजी का भी बहुत शौक है। इनके व्यवहार में एक प्रकार का अक्खडपन उभर आया है। किसी के सामने झुकने में इनको अपमान का अनुभव होता है। यह अक्खडपन वास्तव में इनके स्वाभिमान का द्योतक है। अच्छा खाने-पीने के कारण इनमें बल होता है जिसके कारण वे साहसी रहते हैं। इतना सब होते हुए भी इनमें एक गुण बहुत बड़ा है कि ये आतिथ्य-सत्कार हृदय खोल कर करते हैं। इन लोगों के जीवन में कोई ऐसी चीज ही नहीं जो अतिथि के लिये उपलब्ध न हो सके। जिन स्थानों पर मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव पड़ा है, वहाँ पर उनके व्यवहार में एक अजीब प्रकार की लोच तथा कोमलता आ गयी है परन्तु उस कोमलता में भी उनकी स्पष्टवादिता उग्ररूप से छलक पड़ती है।

ये लोग बहुत धर्मभीरु हैं, इसलिये इनके घरों में धर्म-कर्म बहुत अच्छी भाँति सम्पन्न किये जाते हैं। शिक्षित व्यक्ति भी लौकिक-अलौकिक शक्ति से डरता है। खडीबोली प्रदेश में अपने सम्मान के लिये भी बहुत से धर्म-कर्म किये जाते हैं। विवाह-शादी में भी वे लोग खुले हाथ से खर्च करते हैं परन्तु खर्च करने में सचाहता नहीं होती अपितु समाज को एक प्रकार की चेतावनी-सी होती है। इनके स्वभाव

की परछता इनके सामाजिक क्रियाकलापों तथा सस्कारों में दृष्टिगोचर होती है। स्वभावतः ये गम्भीर और चिन्तनशील हैं। इनमें जीवन उतने उत्कृष्ट रूप से नहीं छलकता, जितना पंजाब के भागड़ा तथा राजस्थान के नृत्यों में।

उत्तरप्रदेश के लोग व्यावहारिक हैं तथा अपने कार्य को पूरी सफलता से करने में विश्वास करते हैं। यहाँ के वासिया में अड़ जाने की बहुत प्रवृत्ति पायी जाती है, ये बात पर अड़ते हैं, काम पर अड़ते हैं तथा अपने विश्वासों पर अड़ते हैं। इस प्रदेश के लोग धर्म व समाज को अधिक मानते हैं उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखना उनके लिए असम्भव है। जीवन की साधारणतया सभी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण यह मसखरे और प्रत्युत्पन्न-मति के देखे जाते हैं। इनकी बोली में तथा जीवन में हास्य और व्यंग्य तो मानो पुजीभूत हो गया है।

मनोरजन तथा मेले—प्रतिदिन के मनोरजन पर यदि दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि इस प्रदेश के मनोरजन अधिकतर परब हैं। यहाँ के मुख्य मनोरजनों में अखाड़ेबाजी ही आती है। ये अखाड़े, कुश्ती, पटा, लाठी आदि चलाने के होते हैं। अखाड़ा उस्ताद के नाम से चलता है। ये उस्ताद अपने चेलों को विभिन्न फनों में माहिर करते हैं। कुश्तियों के लिये बड़े-बड़े दगल होते हैं जिनका उत्तरप्रदेश में बहुत महत्व है। ये दगल सरकारी तथा व्यक्तिगत दोनों ही स्तरों पर होते हैं। इसी प्रकार पटा चलाने का भी अखाड़ा होता है। इसमें विचित्र प्रकार के अस्त्र चलाये जाते हैं जिनमें तलवार चलाना, पंजा लड़ाना, लाठी घुमाना आदि मुख्य हैं। अधिकतर ये कार्य कहार, सयाने आदि जाति के लोग करते हैं। पटे का प्रदर्शन जुलूसों में ही किया जाता है।

लाग—लाग भी लोक-समाज की मुख्य कला है। लाग के भी अखाड़े होते हैं। कहा जाता है कि यह बड़ा कठिन कार्य होता है। जीभ को बीच कर सलाई पिटो देना, मोरध्वज के दृश्य का सिर काट कर प्रदर्शन करना, आदमी के पेट से तलवार पार कर देना आदि लाग के मुख्य अंग हैं। लाग से लोकमानव को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। कहा जाता है कि ये जादू का काम है यदि 'लाग' को कोई बीच में तोड़ दे तो लाग वाले मनुष्य की मृत्यु होने का डर रहता है। इनका प्रदर्शन धार्मिक जुलूसों तथा अन्य जुलूसों में किया जाता है।

साग—साग भी इस प्रदेश के मुख्य मनोरजनों में से एक है। सागियों के भी अखाड़े होते हैं। इस प्रदेश के प्रसिद्ध सागी बुलाकी, मुसद्दी आदि हैं। ये लोग गद्य तथा पद्य में विभिन्न ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक गाथाओं एवं अलिफ-लैला के किस्सों को ग्रामवासियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। साधारणतया सागों में हजार-दो हजार आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। बीच-बीच में ही दर्शक किसी

कलाकार-विशेष से प्रभावित होकर रुपये देते रहते हैं। सांगियो का नक्कारा विशेष प्रकार का होता है। इसकी गूँज मात्र से ही ग्रामवासियों को ज्ञात हो जाता है कि अमुक स्थान पर स्वाग हो रहा है। इनकी भाषा लोकभाषा ही होती है। यदि साहित्यिक भाषा का कोई शब्द आ भी जाता है तो उसको भी वे अपनी तरह से तोड़-मरोड़ कर ठीक कर लेते हैं। सांग में महिलाएँ अधिक नहीं जाती। इनका विस्तृत उल्लेख हम लोकनाट्य वाले अध्याय में कर आये हैं।

मेले—इस प्रदेश में मेलों की भी बहुलता है। वर्ष में कितने ही मेले ऐसे होते हैं जिनकी प्रतीक्षा में लोक-मानव आँख विछाये रहते हैं। इन मेलों का विस्तृत उल्लेख हम आगे करेंगे। इन मेलों की सजावट क्रम से नहीं होती और न ही इन मेलों में अधिक मूल्यवान् वस्तुएँ ही आती हैं अपितु जनोपयोगी वस्तुएँ ही अधिक होती हैं उदाहरणार्थ—मिट्टी के बर्तन, बैलगाड़ी आदि के उपयोग की वस्तुएँ, ग्राम-परिधान, लोक-खिलौने तथा उसी प्रकार के खेल जैसे हिडोला, रेलगाड़ी, भागदौड़, घोड़ों का चक्कर तथा मौत का कुआ, आदि इन मेलों की विशेषता होती है। मिठाई के नाम पर भी तेल की जलेबी, खजला, नुगदी के लड्डू, चीनी के बताशे तथा थोड़ा सा खोया मिले हुए पेड़े आदि ही होते हैं। फलों में बेर, कैत, लौकाट, आम आदि मौसम के फल ही मिलते हैं।

ये तो विशेष मेले होते हैं, इनके अतिरिक्त सप्ताह में एक दिन या दो दिन पैठ भरती है। यद्यपि ये उस समय की याद दिलाती हैं जिस समय बड़े-बड़े बाजारों का अभाव था। ग्रामवासी अपना-अपना सामान सप्ताह भर बनाते थे और एक दिन निकट के कस्बे या शहर में बेचने जाते थे। लोग पैठ में अपना-अपना सामान बेच कर अपनी आवश्यकता का दूसरा सामान ले जाते थे। इसी बहाने पैठ में दूसरे ग्राम के लोगों से भी मिलना हो जाता था। लोग अपने सम्पर्क बढ़ाते थे।

यदि अब हम घरेलू मनोरंजन पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि उनमें विशेषतः चौपड़, जुआ तथा शतरंज ही हैं। ताश भी खेला जाता है, किन्तु शतरंज और ताश अधिक नहीं खेला जाता। समाज में शतरंज को इतना भी महत्व प्राप्त होने का कारण मुसलमानी प्रभाव ही है। ताश के खेलों में तिपत्ती, पत्ता माँग, कोट-पीस, दो-तीन-पाँच, चौकड़ी, लॉष, लक्वाड़ी तथा अन्वा-साझ्शी ही अधिक प्रचलित हैं।

बच्चों के मनोरंजन में चोर-सिपाही घाई-मिच्चा, तडीमार, कबड्डी, कोडा जमालशाही, अट्टी बट्टी टीलो आदि ही आते हैं। बड़ों के खेलों में कबड्डी, रस्सा-कशी, लाठी चलाना, घुड़सवारी करना आदि हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि

इस प्रदेश के मनोरजन गिनती में बहुत अधिक नहीं है, परन्तु उनके जीवन तथा स्वभाव के समान सहज और सरल हैं ।

मेले, त्यौहारों तथा अन्य उत्सवों का जितना धार्मिक महत्व है उतना ही ये लोक-मानव के लिए मनोरजन के माध्यम भी हैं । ये लोकमानव की संस्कृति की स्वास है तथा उनकी आस्था के स्तम्भ हैं । खडीबोली प्रदेश के अतिरिक्त यदि हम भारत की अन्य संस्कृतियों पर भी दृष्टिपात करें तो भी हम इस कथन को अक्षरशः सत्य पायेंगे । सबसे पूर्व हम खडीबोली प्रदेश में होने वाले मेलों का विवेचन करेंगे । इस प्रदेश में विभिन्न त्यौहारों तथा अवसरों पर अनेक मेले हुआ करते हैं जिनसे लोक-समाज का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है । इन मेलों में इस वर्ग की धार्मिक भावनाएँ, विश्वास तथा सिद्ध पुरुषों के प्रति अपार आदर का भावना समाहित रहती है । गजेटियर के अनुसार हम खडीबोली प्रदेश में होने वाले मुख्य मेलों का उल्लेख जिलों के अनुसार ही कर रहे हैं —

मेरठ जिला—

मेला	स्थान	समय
नौचन्दी (घोड़ों का मेला)	मेरठ	चैत्र की दोड़ से अथवा होली के बाद दूसरे इतवार से आरम्भ होता है ।
तिलहैड़ी (घाट का मेला)	मेरठ (सूरजकुंड के पास)	होली के बाद
रामलीला	मेरठ हापुड और सब जगह	पितृपक्ष के बाद क्वार में दशहरे तक
छड़ियों का मेला	सब जगह	सावन
शिवरात्रि का मेला	पुरा ग्राम (मेरठ) (परसराय का मन्दिर हिडन नदी पर)	फागुन
बूढ़ा बाबू जैनियों का मेला	खेकड़ा, सरयना (हस्तिनापुर मेरठ)	चैत्र सुदी २-६ कार्तिक
फीसा सन्त	बागपत (मेरठ)	फागुन
कालिका देवी सती पूजा	गाजियाबाद ”	चैत्रवदी ७ से १० तक बैसाख सुदी ५

देवी पूजा	सब स्थान पर	चैत्र तथा क्वार मे (नवरात्रि मे)
गंगास्नान	गढमुक्तेश्वर (मेरठ)	कार्तिक पूर्णिमा
रथयात्रा	मेरठ	भादो सुदी १४

मुजफ्फरनगर जिला—

मेला	स्थान	समय
घाट का मेला	मुजफ्फरनगर	चैत्र बदी २ से ९ तक
"	(बमनौली गाँव) श्यामली	" "
"	जौली जानसठ	" "
छडियो का मेला	मुजफ्फरनगर	भादो बदी—१
"	चरथावल	भादो बदी—८
"	पुरथापुर	भादो बदी —८
"	पुरकाजी	" "
"	कैराना	
"	खतौली मे सबसे बडा	" "
गुग्गापीर	बुधई कला, थाना-भवन	" "
"	थाना भवन	" "
सरवर	चर थावल	जेठ के हर बृहस्पतिवार को
मुस्तानशाह		
जाहर दीवान	दूधी हैवतपुर	जेठ का पहला इतवार
बूढा बाबू	बघरा (अमीरनगर)	चैत का पहला इतवार
जटाशकर महादेव	गोरधनपुर दयालपुर	फागुन बदी —१४
ख्वाजा जिश्त,	कैराना	" " —१
देवी	कैराना	चैत बदी—९
चेहलम	जानसठ	
उर्स हजरतशाह	झिझाना	
उर्स इमाम साहब	बनत	मोहर्रम—११
उर्स जनत शरीफ	जलालाबाद	
पीर बहरम	बिदौली	जेठ-असाढ का वृस्पतिवार
निसार अली मेला	जौली जानसठ	जेठ का दूसरा शुक्रवार
उर्स गुरीब शाह	काधला शिकारपुर	
पियारे जी	बुढाना	चैत्र बदी—६

ऊँचे सरावगियो का	खतौली
कार्तिक मेला-	शुक्रताल
गगास्नान	
जेठ का दशहरा	शुक्रताल
शाकुम्बरी देवी	जौली जानसठ
रथयात्रा	"

चैत्र
कार्तिक पूर्णिमा
जेठ की दशमी
अषाढ सुदी—१
भादो सुदी—१४

सहारनपुर जिला—

मेला	स्थान
गुग्गापीर	सहारनपुर
शाकुम्बरी देवी	मुजफ्फरबाद
चौदस	देवबन्द
पिरान किलयार	सडकी
उर्स कुतुबआलम अब्दुल	गगोह
गुग्गापीर	मानकमाऊ
	सहारनपुर के पास
(छडियो का मेला)	(बनियो-अग्रवालो का खास सत)

समय

भादो बदी—१०
क्वार सुदी—१३
चैत्र सुदी—१४

भादो मे

बाबा कालू (नीच जाति का सैनी
चमार-कहार-गूजर)

घाट का मेला	देवबन्द
देवी का मेला	"
मकर सक्रान्ति	हरिद्वार
सोमवती अमावस्या	हरिद्वार
कातकी गगास्नान	"
जेठ का दशहरा	"
बैसाखी	"
चडी चौदस	"
कुम्भ, अर्द्धकुम्भ	"

अप्रैल मे

चैत्र मे

१४ जनवरी

माघ

कार्तिक पूर्णिमा

जेठ

बैसाख

"

बैसाख मे छठे और

बारहवे वर्ष

जैनियों का मेला	ज्वालापुर
अनन्त चौदस	

बिजनौर जिला—

मेला	स्थान	समय
बूढा बाबू	बिजनौर	भादो बदी २
गगास्नान	दारानगर गज	कार्तिक पूर्णिमा
नेजा वाले सलर	"	चैत का आखिरी बुधवार
छीपियो का मेला	मडावर	चैत शुदी ७-८
देवी का मेला	अफजलगढ़	क्वार बदी ७
बलदेव का मेला	"	क्वार बदी ६
छड़ी जाहर दीवान	धामपुर	सावन सुदी ७

इन मेलो के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे मेले समय-समय पर होते रहते हैं। ऐसे मेलो मे मुजफरनगर का डल्लू देवता का मेला भी आता है। जो कुछ ही वर्षों से नागपचमी पर होने लगा है। यह मुजफरनगर के पश्चिम मे काली नदी के पार एक टीले पर होता है।

घटलूनी के मेले के नाम से एक चूड़ियो का मेला भी यहाँ पर होता है। यह भी अपनी ही तरह का होता है। भिन्न-भिन्न स्थानो पर मासिक, पाक्षिक तथा साप्ताहिक पंठ होती है। हमने यहाँ पर मुख्य मेले दिये हैं। जो मेले हैं उनमे दशहरा, गगास्नान, नौचदी, शाकुम्बरी देवी, कुम्भ, पुरा का मेला तथा चड़ी चौदस आदि के मेले कुछ जातिगत तथा स्थानीय त्यौहारगत भी हैं। उदाहरण के लिए—मडावर का छिपियो का मेला, देवबन्द का चौदस (चमार चौदस) का मेला, सहारनपुर का गुग्गापीर का मेला, अग्रवाल बनियो का मेला (बाबा कालू का मेला)। यह निम्नजाति चमार, कुम्हार, गडरियो आदि का मेला है। इसी प्रकार खतौली मे चैतबदी को सरावगी बनियो (जैनियो) का मेला होता है। ये सब मेले जातिगत मेलो के अन्तर्गत आते हैं। स्थानीय मेलो मे तो मुसलमानो के जितने भी मेले हैं वो सब स्थानीय ही हैं। इन मेलो का मुख्य ध्येय स्थानीय लोगो के द्वारा सिद्ध पुरखो के प्रति सम्मान प्रकट करना ही है। ऐसे मेले मे पिरान-किलीयर का मेला, गगोह का उर्स, कैराने झिझाने, जौली जानसठ आदि के उर्म आते हैं। प्रान कलियर के पीर की मान्यता भी बहुत दूर-दूर तक है। इमको हिन्दू भी समान रूप से मानते हैं। नौचन्दी भी इसी प्रकार के मेले मे है। नौचन्दी का मेला हिन्दुजो तथा मुसलमानो दोनो ही की धार्मिक भावना का सधिस्थल है। दोनो संस्कृतियाँ किस प्रकार समानान्तर रूप मे विकसित हुई हैं, इसका प्रतीक हे। हिन्दू इसे युगो-प्राचीन चण्डीदेवी के मन्दिर के उपलक्ष्य मे मानते हैं और मुसलमान बाले-मियाँ के मज्जार के कारण पाक मानते हैं। हजारो वर्ष पूर्व ये नवचन्डी का

मन्दिर था किन्तु ११९१ मे मेरठ पर आक्रमण के समय मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसे तुड़वा दिया । कुछ वर्ष बाद अकबर के शासन काल मे उसकी रानी जोधाबाई ने मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया । तत्पश्चात् यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगने लगा । मुसलमान गाजी सलार मसूद की याद मे इस मेले को मनाते है । गाजी-सय्यद सलार मसूद जिन्हे बाले मियाँ भी कहा जाता है, एक मुस्लिम जनरल थे । सयोग से बाले मियाँ की पुण्य-तिथि भी चैत्र के नवरात्र मे पडती है । इस प्रकार भगवती चण्डी का पूजा उत्सव तथा बाले मियाँ की पुण्यतिथि का समारोह एक ही स्थल पर हजारो हिन्दुओ तथा मुसलमानो को एक साथ एकत्र कर देता है । मेला क्षेत्र मे एक विशाल मैदान मे घोडो का भारी मेला लगता है । किसी समय मे नौचन्दी मेला घोडो के लिये देश भर मे प्रसिद्ध था ।

हिन्दुओ के धार्मिक मेले भी है । हिन्दुओ के भी कुछ मेले इस प्रकार के है जो ग्राम तथा उस स्थान के पवित्र सन्त तथा सिद्ध पुरुष के सम्मान मे मनाते है । इस प्रकार के मेलो मे बुढाने का पियारे जी का मेला, सहारनपुर का बाबू कालू का मेला तथा बागपत के फीसा सत का मेला आता है ।

गुग्गापीर, बूढाबाबू, छडियो का मेला, उल्लाव, घाट का मेला तथा देवी के मेले इस प्रदेश मे सब ही स्थानो पर होते है । इन पक्तियो मे यद्यपि हमने मेलो का यथा-सामर्थ्य वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है परन्तु फिर भी यहाँ की मिश्रित लोक-संस्कृति के समान यहाँ के मेले भी मिले-जुले है । इन मेलो को अलग-अलग पक्तियो मे खडा करके प्रस्तुत नही किया जा सकता । अलग-अलग पक्तियो मे भी कोई-कोई मेला फिर-फिर आ गया है क्योकि उसका स्थान उस पक्ति मे उतना ही महत्वपूर्ण है ।

परिशिष्ट

सहायक-ग्रन्थसूची

हिन्दी

- १ अवधी लोकगीत और परम्परा इन्दुप्रकाश पाण्डेय,
रामनारायणलाल, प्रयाग, १९५७
- २ आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीते राहुल साँकृत्यायन, राहुल पुस्तक-
प्रतिष्ठान, पटना, १९५२
- ३ ईसुरी की फागे ईसुरी कवि (भाग १) संपादक—
कृष्णानन्द गुप्त टीकमगढ़
- ४ उत्तरप्रदेश के लोकगीत भगवती सिंह बधौतिया, ओकार प्रेस,
प्रयाग, १९५८
- ५ उत्तरप्रदेश के लोकगीत संपादित—उत्तरप्रदेश, सूचना विभाग,
लखनऊ १८८१ शक
६. उत्तरभारत की लोक-कथाएँ सावित्री देवी वर्मा
भाग—१, २, ३
- ७ कनउजी लोकगीत • सतराम अनिल, लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ १९५७ ई०
- ८ कविता कौमुदी, भाग ५ • रामनरेश त्रिपाठी
९. कविता कौमुदी : भाग ३ : रामनरेश त्रिपाठी, नवनीत प्रकाशन,
(ग्राम-गीत) बम्बई १९५५ ई०
- १० कहावतों की कहानियाँ : महावीरप्रसाद पोद्दार, सत्साहित्य-
प्रकाशन, १९५५ ई०
- ११ कागडा के लोकगीत • एम० एस० घावा, अतरचन्द एड क०
दिल्ली, १९५६ ई०
- १२ कुल्लू के लोकगीत : एम० एस० घावा, दिल्ली, १९५५ ई०

१३. किस्सा तोता मैना
१४. खडीबोली का आन्दोलन शितिकठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
१५. गढवाली लोक-भाषाएँ गोविन्द चातक, मोहिनी प्रकाशन, देहरादून, १९५८ ई०
१६. ग्राम-साहित्य रामनरेश त्रिपाठी, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, १९५२ ई०
१७. ग्रामगीतो मे कहणरस सीतादेवी, युगान्तर प्रकाशन, दिल्ली, १९५४ ई०
१८. ग्रामीण हिन्दी धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९३६ ई०
१९. गौने की विदा शिवसहाय चतुर्वेदी, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली
२०. चन्द्रसखी के भजन ओर लोकगीत प्रभुदयाल मीतल, लोकसाहित्य समिति, उत्तरप्रदेश, १९५७ ई०
२१. चौबोली सम्पादक—कन्हैयालाल सहल, सस्ता-साहित्य मंडल, नई दिल्ली
२२. छत्तीसगढी लोकगीतो का परिचय . श्यामाचरण दुबे, ज्ञानमंदिर, छत्तीसगढ
२३. जब निमाड़ गाता है . रामनारायण उपाध्याय, उषा प्रकाशन-गृह, इन्दौर, १९५८ ई०
२४. जातक भदन्तआनन्द कौसल्यायन, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४१ ई०
२५. धरती गाती है . देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४८ ई०
२६. धूल-धूसरित मणियाँ : सीतादेवी, दमयन्ती और लीला, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, १९५६ ई०
२७. धीरे बहो गगा : देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९४८ ई०
२८. निमाडी-लोकगीत : रामनारायण उपाध्याय, जबलपुर, १९४९ ई०

- २९ निमाडी लोककथाएँ : कृष्णलाल हंस
भाग १, २
- ३० पजाब की प्रीति कहानियाँ : हरिकृष्ण प्रेमी, आत्माराम एड सस,
१९६० ई०
- ३१ पृथ्वी पुत्र : वासुदेवशरण अग्रवाल, सस्ता साहित्य-
मडल प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
- ३२ पाणिनिकालीन भारत . वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल
बनारसीदास, बनारस, २०१२ स०
- ३३ पाषाण नगरी . शिवसहाय चतुर्वेदी
- ३४ प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ रांगेयराधव, किताबमहल, दिल्ली
१९५९ ई०
- ३५ प्राचीन भारत के कलात्मक हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ-
विनोद रत्नाकर, बम्बई, १९५२ ई०
- ३६ पुतली की कहानी : कवीन्द्र बेनीप्रसाद बाजपेयी 'मजुल',
जाफरी ब्रदर्स, अनवर अहमदी प्रेस,
इलाहाबाद
- ३७ पोद्दार अभिनन्दन-ग्रंथ संपादक—वासुदेवशरण अग्रवाल,
अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मडल,
मथुरा, २०१० वि०
३८. ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली कपिलदेव सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर,
आगरा, १९५६ ई०
- ३९ ब्रज-लोकसाहित्य का अध्ययन डा० सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा,
१९४९ ई०
४०. ब्रज की लोककहानियाँ . डा० सत्येन्द्र, ब्रज साहित्य मडल, मथुरा,
२००४ वि०
४१. ब्रज-लोकसंस्कृति संपादित—ब्रज साहित्य मडल, मथुरा,
२००५ वि०
- ४२ ब्रज का लोकसाहित्य . पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ—सत्येन्द्र
- ४३ ब्रज की लोककथाएँ : आदर्श कुमारी
- ४४ बाजत आवैं ढोल . देवेन्द्र सत्यार्थी, एशिया प्रकाशन, नई
दिल्ली, १९५२ ई०

- ४५ बाँसुरी बज रही : जगदीश त्रिगुणायक , बिहार राष्ट्र-
भाषा परिषद्, पटना, १९५७ ई०
- ४६ विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत . श्रीचन्द्र जैन, राजपाल एड सस,
दिल्ली, १९५५ ई०
- ४७ विन्ध्यभूमि की लोककथाएँ . श्रीचन्द्र जैन, अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव,
आत्माराम एड सस, दिल्ली, १९५५
उमाशंकर शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग
१९५३ ई०
- ४८ बुंदेलखण्ड के लोकगीत वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन,
झांसी, १९५७ ई०
- ४९ बुंदेलखण्ड के लोकगीत . देवेन्द्र सत्यार्थी, राजहंस प्रकाशन,
दिल्ली, १९४८ ई०
- ५० बेला फूले आध्नी रात . वासुदेवशरण अग्रवाल, २०११
सीतादेव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली
- ५१ भारत की मौलिक एकता . इयाम परमार, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, १९५४
- ५२ भारत की लोककथाएँ
(धूमिल फूल) रत्नभानु सिंह नाहर
- ५३ भारतीय लोकसाहित्य परशुराम चतुर्वेदी
- ५४ भारतीय रीति-रिवाज . आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राजकमल
प्रकाशन, इलाहाबाद
- ५५ भारतीय प्रेमाख्यानक परम्परा
- ५६ भारतीय संस्कृति का इतिहास संपादक—नगेन्द्र, सेठ गोविन्ददास
हीरक जयन्ती समारोह समिति,
नई दिल्ली
- ५७ भारतीय नाट्य-साहित्य उदयनारायण तिवारी
- ५८ भोजपुरी भाषा और साहित्य कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य-
सम्मेलन, २००० वि०
- ५९ भोजपुरी ग्रामगीत . कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, वाराणसी, १९६० ई०
६०. भोजपुरी लोकसाहित्य का
अध्ययन दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, हिन्दी साहित्य-
- ६१ भोजपुरी लोकगीतों में कहर-रस

- १ भोजपुरी लोकसाहित्य : बैजनाथ सिंह विनोद, ज्ञानपीठ, प्राइवेट
एक अध्ययन लि०, पटना, १९५८ ई०
- ३ भोजपुरी लोकगाथा सत्यव्रत सिनहा, हिन्दुस्तानी एकेडमी,
प्रयाग, १९५७ ई०
- ४ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का : सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
लोकतात्त्विक अध्ययन १९६० ई०
- ५ मध्यदेश—ऐतिहासिक तथा धीरेन्द्र वर्मा, राष्ट्रभाषा परिषद्,
सांस्कृतिक सिंहावलोकन बिहार, पटना १९५५ ई०
६. माता-भूमि वासुदेवशरण अग्रवाल, चेतन प्रकाशन,
हैदराबाद, २०१०
- १७ मानव और संस्कृति श्यामाचरण दुबे, १९६०
- ६८ मैथिली लोकगीत रामझकबालसिंह राकेश, हिन्दी
साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९९८
- ६९ राजस्थानी कहावते— कन्हैयालाल सहल, भारतीय साहित्य
एक अध्ययन मन्दिर, दिल्ली, १९५८ ई०
- ७० राजस्थानी लोकगीत सूर्यकरण पारीक, हिन्दी साहित्य-
सम्मेलन, प्रयाग, १९९८
- ७१ राजस्थान के लोकगीत संपादक—ठा० रामकरण सिंह, सूर्य-
करण पारीक, नरोत्तमस्वामी, रिसर्च-
सोसायटी कलकत्ता, १९३८ ई०
- ७२ राजस्थानी लोकगीत . लक्ष्मीकुमारी चूडावत, राजस्थानी
स० प०, जयपुर, २०१४ वि०
- ७३ रामचरित मानस में लोकवार्ता . चन्द्रभान
- ७४ रुसी लोककथाएँ—दो भाग : श्यामू सन्यासी
- ७५ लावनी का इतिहास . स्वामी नारायणानन्द सरस्वती, ज्ञान-
मन्दिर कानपुर, १९५३
- ७६ लोकगीतों की सामाजिक श्रीकृष्णदास, साहित्य भवन लि०,
व्याख्या प्रयाग १९५६ ई०
- ७७ लोक-कला निबन्धावली सपा०—वासुदेवशरण अग्रवाल,
भा० लो० क० म०, उदयपुर, १९५४ ई०
७८. लोकसाहित्य की भूमिका सत्यव्रत अवस्थी, रामदयाल अग्रवाल
प्रयाग, १९५७ ई०

- ७९ लोक-रागिनी : सत्यव्रत अवस्थी, पीयूष प्रकाशन, प्रयाग, १९५६ ई०
- ८० लोकधर्मी नाट्य-परम्परा : श्याम परमार, हि० प्रचा० पु० वाराणसी, १९५९ ई०
- ८१ लोकसाहित्य की भूमिका : कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५७ ई०
- ८२ सांस्कृतिक भारत : भगवतशरण उपाध्याय
- ८३ सोहाग-गीत : विद्यावती 'कोकिल', ज्योति प्रकाशन, प्रयाग, १९५३ ई०
- ८४ विचार-धारा : वीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, २००५ वि०
- ८५ विस्मृत यात्री : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, प्रयाग, १९५६ ई०
- ८६ हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव : मन्मथराय, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
- ८७ हमारे लोकगीत : पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, रामरतन लाल, फर्रुखाबाद, २००७ वि०
- ८८ हमारी लोककथाएँ
भाग १, २ : हसराम रहबर,
- ८९ हरियाणा के लोकगीत : एम० एस० धावा, अतरचंद कपूर, एड सस, दिल्ली, १९५८ ई०
- ९० हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य : शकरलाल यादव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९६० ई०
- ९१ हरियाणा रगमच की लोक-कथाएँ : राजाराम शास्त्री
- ९२ हिन्दी लोकगीत : रामकिशोर श्रीवास्तव, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद १९४६ ई०
- ९३ हिन्दी भाषा और लिपि : वीरेन्द्र वर्मा
- ९४ हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार : रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, किताब महल, इलाहाबाद, १९५७ ई०
९५. हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार : कौवर कन्हैया, हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, १९५६ ई०

९६. हिन्दी साहित्य-कोष ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, २०१५
- ९७ हिन्दू सभ्यता राधाकमल मुकर्जी, अनुवादक—वासु-
देव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, १९५५ ई०
- ९८ हिन्दी-शब्दानुशासन किशोरीदास बाजपेयी
- ९९ हिन्दी प्रेमाख्यान-काव्य कमल कुलश्रेष्ठ
- १०० हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप शम्भूनाथ सिंह,
विकार
- १०१ हिन्दी नाटक—उद्भव और दशरथ ओझा
विकास
- १०२ हिन्दी साहित्य का बृहद् नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
इतिहास, १६वाँ भाग १९६१ ई०

शोध-प्रबन्ध

- १ गढ़वाली बोली की 'रवाल्डी'
उपबोली, उसके लोकगीत और
उनमें अभिव्यक्त लोकसंस्कृति गोविन्द चातक (अप्रकाशित) १९५८
- २ मेरठ जनपद के लोकगीत कृष्णचन्द्र शर्मा (अप्रकाशित) १९५८

पत्रिकाएँ

जनपद, मधुकर, ब्रज-भारती, भारतीय साहित्य, प्रतीक, त्रिपथगा, नागरी
प्रचारिणी पत्रिका, लोकवार्ता, सम्मेलन पत्रिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, हंस ।

अगे जी-पुस्तके

- | | | |
|----|---|---|
| 1 | An Introduction to Social Anthropology | Ralph Piddington,
Vol one |
| 2 | A Dictionary of Hindustani Proverbs | S W Fallon |
| 3 | Ancient Ballads and Legends of Hindustani | Toru Dutta |
| 4 | Arts and Social Life | G V Plekhanov. |
| 5 | Behar Proverbs | Christian John
Kegan Paul
London 1891 |
| 6 | Burmese Proverbs and Maxims | James Gray |
| 7 | Customs and Myths | Lang (A) |
| 8 | Dances of India | Projesh Banerji. |
| 9 | Eastern Proverbs and Emblems | Lang (J)
London 1881 |
| 10 | Elements of Folk-Psychology | W Wundt |
| 11 | English and Scottish popular Ballads | F J Child |
| 12 | Encyclopedia Britannica | |
| 13 | Encyclopaedia of Religions and Ethics | |
| 14 | Epics, Myths and Legends of India a comparative | Thomas (P) |

- Survey of the Sacred Lore
of Hindus, Buddhists
and Jains
- 15 Faith, Fairs and Festi- Buck (C H)
vals of India
- 16 Folk-tales of Mahakoshal Elwin (V)
- 17 Folk songs of Maikal Elwin (V)
Hills
- 18 Folk Songs of Chhatisgarh Elwin (V)
Oxford Univer-
sity Press, 1946.
- 19 Folk Songs of Garhwal Garrola (T)
- 20 Folk Element in Hindu Sarkar (B K)
Culture
- 21 Folk-literature of Bengal Sen (D C)
Calcutta, 1920
- 22 Faith, Hope and Charity R K Marett
in Primitive Religion
- 23 Folk-lore as an Historical Gomme
Science
- 24 Great Folk-tales of wit and James R Foster.
Humour
- 25 Hand-book of Folk-lore Burne C S
Jackson
London, 1914
- 26 Hatim's Tales Stein (A)
27. Himalayan Folk-lore Oakley and
Garrola (T D)
Allahabad, 1935
- 28 Hindi Folk Songs Sherif (A G)
- 29 Hindu Samskaras Pandey (R B)

- | | | |
|----|--|---|
| 30 | Hindu Manners, Customs and Ceremonies | Dutios and Beau-
champ, Oxford
Clarendon, 1953. |
| 31 | History of Indian Art | Coomaraswamy. |
| 32 | Introduction to the
Science of Comparative
Mythology and Folk-lore | Cox (G W) |
| 33 | Introduction to Folk-lore | Cox (M R) |
| 34 | Indian Serpent-lore | Vogel |
| 35 | India in Kalidasa | B S Upadhyaya. |
| 36 | Jatak Tales | Francis and
Thomas |
| 37 | Legends of Vikramaditya | Calcutta Oriental
Publishing Co |
| 38 | Marxism and Poetry | George Thomas |
| 39 | Meet My People | Devendra Saty-
arthi |
| 40 | Motif Index of Folk-
Literature | Stith Thompson. |
| 41 | Myths of Middle India | Elwin (V) |
| 42 | Mythology of Aryan
Nations | Cox (G W) |
| 43 | Primitive Art | Boys (F) |
| 44 | Primitive Culture | Tylor |
| 45 | Proverbs and Folk-lore of
Kumaun and Garhwal | Ganga Dutt
Upreti |
| 46 | Pocket Treasury of Ame-
rican Folk-lore | Botkin B A ,
Pocket Book,
N Y 1950 |
| 47 | Popular Religion and
Folklore of Northern
India | Crooke (W)
G Press,
Allahbad 1894. |

66	The Social Function of Art	Radha Kamal Mukerji
67.	Tales of Punjab	Steel (F A)
68	The Types of the Folk-tales	Stith Thompson
69	Totemism	Frazer
70	Village Folk of India	Boyd

JOURNALS

Indian Antiquary, Folk-lore Journal, Indian Folk-lore, Indian Historical Quarterly, Man in India The Modern Review, Indian Folk lore, Journal of Royal Asiatic Society

पुत्र-जन्म संबंधी एवं विवाहादिक अन्य गीत

मनरजना

ऐरी ननद भावज पाणी को चाल्ली मनरजना
ऐरी नणदल मुखडा देवखे, अहो मनरजना
जो भाबो तुम ललना जनमोगी, अहो मनरजना
तो हमे क्या दोग्गी नेग, अहो मनरजना
कोई देगगे गले का हार, अहो मनरजना
कोई देगगे गले की तिलडी, अहो मनरजना ,
कोई पनिया भर घर को आई, अहो मनरजना
कोई होय पडे नन्दलाल, अहो मनरजना
कोई हौले से गाओ बियाही, अहो मनरजना
कोई नणद सुन दौडी आवै, अहो मनरजना
बाजन का बाज्जा सुनकै, नणदल आई
कोई ल्याओ हमारी होड, अहो मनरजना
कोई कैसी तुम्हारी तिलडी, कोई कैसा गले का हार
अहो मनरजना

कोई पलडे मे झूले अहो मनरजना
कोई ललना को लेआ खिलाय—अहो मनरजना
कोई ले गई हठीली ललना, घर आँगन ना सुहाय
दे जा दे जा हठीली ललना, कोई ले जा गले का हार
अहो मनरजना

कोई हलकी गढा दो तिलडी, कोई हलका गले का हार
अहो मनरजना
पहर ओढ अगना ठाढी, कोई मुख भर दे आसीस
अहो मनरजना

पैरो पडती के तोड़ लई तिलडी, मिलती का तोड़ लिया हार

अहो मनरजना

राजा देखी हमारी चतुराई—पचो मे नाक कटाई

अहो मनरजना

राजा देखी हमारी चतुराई, पैरो पडती का तोड़ लाई हार

अहो मनरजना

गोरी कुछ ना करी चतुराई, पचो मे नाक कटाई

अहो मनरजना

भाब्यो तुम भी पीहर जाना, कोई लाना बैल का सींग

कोई तुम भी गधे चढ जाओ, अहो मनरजना

बूढे बाबा

[यह विवाह, शादी, पुत्रजन्म आदि मंगल अवसरो पर गाया जाता है]

स्यामी स्यामडा रंग लावै बूढा बाबू

स्यामी काहे का पोलडिया (रोटी) काहे का साग (साग)

स्यामी मैदा की पोलडिया, बथुये का साग

स्यामी है कोई जोगीडा, जो हिरना माए मिडासे

एक मे आखत, एक मे बाखत एक मे बूढा बाबू

स्यामी जौ की पोलडिया, हिरने का मास

ऐ परोस्से मेरी सदा रे सुहागण जी मै बुड्ढा बाबू

मेरी सासू ननद, मेरी बगड पडौस्सन

नू उठ बोल्ली तं यू पथ धाया चोरी

मैने पूत बहू के कारन, मैने धीय जमाई के कारन

भइया भतीज्जो के कारन, सिर साहब के कारन

मैने यो पथ चोरी धाया, घर भीतर मैने आवत देखी

धीय बहुओ पूत बहुओ की जोडी

चौबारे मैने चढती देखी, धीय जम्माइयो की जोडी

मेरी सास ननद मेरी बगड पडौस्सन पडी झक मारो

मैने यो पथ धाया चोरी, धीय जम्माइयो के कारन

इसी अवसर पर 'भूमिया' का गीत भी गाते हैं—

लीपूपी पोत्ती गोबरी खेडे की भूमिया
 ऐरी कोई चन्दन जड़े है किवाड खेडे की भूमिया
 गले जनेऊ पाटका ऐजी कोई मस्तक तिलक चढाय
 हो जग साँचे भूमिया
 गले जनेऊ पाटका, खेडे की भूमिया
 पावो चित्ती पाँवरी खेडे की भूमिया
 ऐजी कोई सोरठ री तलवार—खेडे की भूमिया
 जिन खेडो पै तुम फिरी, खेडे के भूमिया
 ऐजी कोई वहाँ ब्यूँ चौकीदार जी
 जिन खेडो पै तुम फिरो ऐ खेडे के भूमिया
 धीयो का माई बाप, ऐजी कोई बहुओ का लगवाड
 खेडे की भूमिया
 धीय रगाओ चूदडी, ऐजी खेडे के भूमिया
 ऐजी कोई बहुओ के दक्खन चीर, हो जग साँचे भूमिया

महामाई का गीत

महामाई तू मेरी जगतार
 आनन्दी माई तू मेरी जगतार
 रानी जोहड पै घर तेरा
 रानी ठडे झौल्ले दीजै, महामाई
 रानी आँबो तले घर तेरा, रानी सब डाली फल दीजै
 महामाई तू मेरी जगतार
 रानी थाली मे एकमेली, महामाई की बाँकी हवेल्ली
 रानी की थाली मेरे बतास्से, महामाई के वे हो तमास्से
 रानी थाली मे एक अधधा महामाई का फिरै पियादा
 महामाई तू मेरी जगतार

चावण

चवन्डा दूध बिलोवे री चवन्डा
 काहे के तेरा रही सै कडा
 काहे को तेरा हडा री चवन्डा

अनन्द छन्द के रही सँ कडा, माँ की तेरी हॉडी चवन्डा
 चवन्डा दूध बिलौवे री
 अनन चनन के तेरे हेरे
 सुरही गऊ का दूध री चवन्डा
 चवन्डा दूध बिलौवे जी

[भूमिया पर जाकर तीनों साथ पूजे जाते हैं—चावण को बहन मानते हैं, भूमिया को भइया तथा महामाई को अगवानी ।]

इसके बाद विवाह के अवसर पर ही सत्ती के गीत भी गाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं —

बडे बगड से सत्ती निकली भैरो रे
 भरे गोबर की हेल,
 गोबर छिटका भूँ पडा, सो धरती ने लिया है सिभाल
 चौथे, पाँचवे बगड़, से सत्ती आई,
 आग छिटकी भूँ पडी, आग मेरी जी
 कोई धरती ने लिया है बिजोख,^१
 छडे बगड से, सातवे बगड से अपने पुरखन के साथ
 मेहदी, बिछी, रोली, चुन्दडी, स्याही,
 सुरमा कलावे बिछुई, अनवट सब रग लाई
 उठी जी बहु बेटियो माँग लो, तुमारा सत्ती ने भरा है सिगार
 भैरो ने भरा है ।

दूसरे गवाँ के गोहरे, भैस्सें
 भूरी भस बिकऊ

उठी जी मोल करो, तुम्हारी सत्ती रक्खा सौ
 जिनके सोसठ घी चुबै कोई वो क्यू रक्खो ख
 मेहदी, बिन्दी कलावे, सब रग दियो जी
 मेरे भइया ग्वाललिया दो लकडी चुग दे
 मेरी मैंन महासती, दो ही चार जो ले
 सारा बत्तखड तेरे बाबल का देस

मेरे भइया ढोलिया, गुहरा ढोल बजाय, मघरा^१ ढोल बजी
माय कहै धी सासरे, कोई सास कहै पौसाले^२

हनुमान जी का जागरण-गीत

हनुमान हर के प्यारे
कौन तेरी माता, कौन पिता है, किन तेरा नाम धरा है
अजनी माता, पवन पिता है, उन मेरा नाम धरा है
मैं तुझे बुझू हे हनुमन्ता क्या तुम्हारी बल भेंट
सवा मन का सवा रोट हमारा सवा गज का लगोट्टा
सवा खूया बल भेंट का, इक्कीस पान्नों का बीडा
इक्कीस लौंग का जोडा
जिनमे इतना न होवै हनुमन्ता वे कैसे सवारे
जिन पैं इतना ना हो मेरी सखिया
हाथ जोडो विनती करौ
सवा पाँच सेर का रोट तुम्हारा
सवा पैसा बलभेंट, एक पान का बीडा, एक लौंग का जोडा
सवा पाव का रोट तुम्हारा, सवा पैसा बलभेंट
एक पान का बीडा, एक लौंग का जोडा
सवा मुट्ठी का रोट तुम्हारा, सवा पैसा बलभेंट
एक पान का बीडा, एक लौंग का जोडा

दर्ई देवता का जागरण-गीत

क्या तू बाम्मन क्या तू बनेनी
क्या तू बेट्टी राव की री
ना मैं बाम्मन, ना मैं बनेनी, ना मैं बेट्टी राव की री
घुरमल मल्याणे^३ की सकल बडाई
छज्जो बैठी तप करूँ जी

१ धीरे से । २ पीहर—माँ के घर । ३. शारदपूर्णिमा से पहले मेरठ जिले के पास एक जाट लगती है, दत्त कथा प्रचलित है कि एक अविवाहिता कन्या सती हो गई थी ।

एक दमडी का मैंने घिरत मँगाया
आई कढ़ाई सो किये जी

भात

[यह बड़ा भात कहलाता है और सब से पहिले इसे गाते हैं]

दो जने मेरे पिया मत आँवें,
धन मोढे पिया पालने
थारा खता होना मेरे पिया हमे ना सुहावे
म्हारा पीहर दूर बसे
थारे पीहर मेरी धन लिख भेज्जु
राजदुलारे तेरे भातिये
थारी चिट्ठी मेरे पिया रही डाल
म्हारा सदेशा दूर गया
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
सुनरा को गहना गढवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
बजाज्जे मे कपडा सिलवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
ठठरे के बरतन बिसवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
जडिये के गहना जडवात्ता
इब देक्खा मेरी धन तेरा बीर
पटवे के गहना बिलवात्ता
इब आये भाई जो ठीक दुपहरी
तम्बू ताने मेरे बड तले
क्या तोरे भाई मुगल पठान
क्या बनजारे उतरे
ना हम मेरी बोब्बो मुगलपठान
ना बनजारे उतरे
हम कहिये ऐ बोब्बो 'सुलक्षणा' के बीर
'बेदमित्र' के बडे भातिया

'धर्ममित्र' के बड़े भातिया
 'विश्वामित्र' के बड़े भातिया
 'शकुन्तला' के बड़े भातिया
 इब लूगी रे भाई जाय ढोल बजाय
 अपना परियर^१ जोड़ के
 इब पहले रे मेरा सुसर पहरा
 ससुर समेत्ती सास को पहरा
 इब दुज्ज रे मेरा जेठ पहरा
 जेठ जिठानी जिठौत को
 इब तिज्ज रे मेरा देवर पहरा
 देवर दुरानी देरौत को.
 इब चौथे मेरा नन्दोई पहरा—
 नन्दोई, नन्द, नन्दौत को .
 सबसे पिच्छे रे अपणी बैहण पहरा
 बैहण बहनोई अपने भान्जे को. .
 इब पहरा रे मेरा सब परवार—
 खडी लखावै मेरी गोतना
 इब जाऊँ बोब्बो बजाज्जे की दुकान
 आऊँ पहराऊँ तेरी गोतना
 इब जिम्मो तेरी गोतना
 इब जिम्मो रे मेरे देवर जेठ
 पत्तल चाट्टे मेरे भालिए
 इब भागो रे, मेरे भाई जावै आध्धी रात
 मूस्सल दे लिया काँछ मे
 मेरा मुस्सल माई जाये देता जा
 दुरानी जिठानी का साझला

सीठने

"तू तो 'प्रेम' पतला, तेरी जोरू मोटटी
 आप खावै घी चूरमा, तुझे जौ की रोट्टी

आप सोवे सुख सेज पै, तुझे दूट्टी खटोल्ली
 ऐसा काला तू बना रे प्रेम, जैसी उडद की दाल
 दाल हो तो धोय लू, तेरा रग न धोया जाय रे

बरातियो पर व्यंग्य

हमने बुलाये सुथरे सुथरे, मुडे मुडे आये री
 हमने बुलाये लम्बे लम्बे, मोटे नाटे आये री
 हमने बुलाये बडे घरो के, ओच्छे ओच्छे आये री
 हमने बुलाये गोरे गोरे, काले काले आये री
 हमने बुलाये हाथी के हौदे, गधे चढ के आये री
 छाज का चेवर डुलाया, झाडू का है सेहरा जी

बरातियो को खिलाते समय

माँ तुम्हारी नटनी, बाप तुम्हारा नटुआ जी
 तुम सारे भाई बनजारे, बहन तुम्हारी बाँदियो सी जी

लडकी के बिदा का गीत

जिद्दिन लाड्डो तेरा जनम हुआ है, जनम हुआ है
 हुई है बजर की रात

पहरे वाले लाड्डो सो गये, लग गये चन्दन किवाड
 दूट्टे खटोल्ले तेरी अम्मा पौढे, बाबल गहर गम्भीर
 गुड की पात तेरी अम्मा पीवे, टका भी खरचा ना जाय
 सौसठ दिवले बिटिया बाल धरे हैं,

तब भी तो गहन अधेर

जिस दिन लल्ला तेरा जनम हुआ है, हुई है सुरन की रात
 सूतो के पलग लल्ला अम्मा भी पौढे, सुरभि का धिरत मगाय
 बूरे की पात तेरी अम्मा तो पीवै, बाबल लुटावै दाम
 एक दिवला रे लल्ला बाल धरा है, चारो ही खूट उजाला
 जिद्दिन लल्ला तेरा जनम हुआ है, हुई है सुरन की रात
 पेट भी सून्ना, आँगन भी सून्ना लाड्डो, चली बाबल घर त्याग
 घर मे तो उसके बाबल रोवै, अम्मा बहन उदास

कोठे से निकली पलकिया, निकली पलकिया
आम नीचे से निकला डोला, भइया ने खाई है पछाड

कोयल शब्द सुनाई

खेल क्यू ना ले लाड्डो, कौले की गुडिया

मिल क्यू ना ले सग की सहेली

कैसे खेलू रे बाबा कौले की गुडिया

अब कैसे मिल लू सग की सहेली

सासू के जाये ने झगडा है डाला, अब नही मिलनहार जी

माय कहे बेटी नित उठ आइयो, बाबल कहै छठे मास

भइया कहै बीबी, काज परोजन, या भतीजे के काज

क्या आई रे बाबा काज परोजन या भाभी के जाये

क्या आई रे बाबा सावन की तीजो,

क्या रे भतीज्जो के ब्याहे

डोले के पीछे बाबा भी चलिया, रथ पकडा है डोंड

मेरी तो बेटी रे समधी के महलो की बाँदी,

हम बदे तेरे गुलाम

ऐसा बोल ना बोल मेरे लायक समधी

तुम्हारी तो बेटी मेरे महलो की रानी,

तुम हमारे सिर के ताज

लट्ठुआ खेलत बीरन छोडे, अब भैन्ना भई पराई रे

महल तले तँ निकली पलकिया, तो कोमल शब्द सुनाये रे

अब काहे बोले बन की कोयलिया,

मैन्ने छोडा बाबल का देस रे

हे अगुलिया पकड छोटा बीरन रोवे,

अब भैन्ना भई पराई रे

जा सिंदरा^१ के कारन बाबल, छोडा देस तुमारा रे

भैन्ना भई .

घनवाला दीन्हा, |दहेजवाला दीन्हा,

दीन्हीं बच्छा सग गाय रे

बाबल ने दीन्हा अन्धड सोन्ना, अम्मा ने दीन्हा अन्धड दहेज

एक न दीन्ही बाबल गगाजल झारी
 रुठा जाये दामाद रे—भैंना
 जा सिंदरा के कारन बाबल, छोडा देस तुमारा रे
 अब भैंना भई पराई रे,
 धनवाला दीन्हा, दहेजवाला दीन्हा,
 दीन्हीं बच्छा सग गाय रे,
 बाबा ने दीन्हा अन्धड सोझा
 अम्मा ने दीन्हा अन्धड दहेज
 एक न दीन्ही बाबल सिर की जो कधिया
 सास ननद के सहे बोल रे,
 जा सिंदरा के कारन बाबल, छोडा देस तुमारा रे

बधावा [बेटे, बिदा के बाद यह गाते हैं]

बधावा 'सरबती' की कोख
 बधावे रे मै बेल गई
 जिसने जाया 'बेदमित्र' पूत
 बधावा रे .

इसी प्रकार सभी बेटे, बहुओं का तथा लड़कियों का नाम लेते हैं तथा
 सब टेहले बन्द होने के समय बडाई गाते हैं जो इस प्रकार है—

सोन्ने की म्हारे 'वेदमित्र' थारी कलम
 रुपे^१ की दवात
 लिक्खा करो बादसाहो, उमराबो सा
 धन्नि जननी थारी माँ

[जितने लडके हो उनके नाम लेना]

बडाई [यह आशीर्वाद का ही एक रूप है]

थारे म्हारे चन्द्रभान बार^२ मे
 बेदमित्र-धर्ममित्र बार मे
 नीम झलारे ले

आँगन डौल खटौलना तपै
बेट्टो पोत्तो का सुख देख
चौरा सिलाने जाते समय

[लडकी के विवाह के पश्चात् सब टेहले बन्द करते हैं तथा मडप के नीचे की हवन की राख आदि सब वस्तुएँ ले जाकर—जोहड़ या नदी में सिला देते हैं। इसी समय स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं]

खड़ी महल पै कोड्डा सिवारूँ थी—

राजा जी का पाला तोत्ता जुग जुग देखे जी

उड जा रे तोत्ते राजा धोरे जइयो

मेरे मरम की तोत्ते राजा को सुनाइयो रे

खड़ी महल पै बिछी सवारूँ थी

[नेकलिस, घडियाँ, पायल, चुन्दरी आदि सभी आभूषणों का नाम लेते हैं]

धूप पडे री मेरा कोड्डा तपै

चिरे वाले असल डुपट्टे की छा करै

छाँय करै री हमे जाड्डा लगै

दिल्ली में लडे अगरैज—मेरठ में मेरा जेठ लडे

छज्जो पै लडै छोटी सौँक, हजारो रे बलमा बणज करै

[बिड़ी, टीक्का, आदि सभी आभूषणों का नाम लेते हैं]

गौना सबधी गीत

मेरी काली चोट्टी ऊण की धरी पुरानी होय

जिब देखू जिब रोय पडूँ मेरा कद मुकलावा होय

मेरे साथ की छोरियाँ गोड्डो में लाल खिलावै

जा मेरे बेट्टा, जा मेरे बेट्टा, सासरे की राणी

दाल राँबी फुलने पोये, आलू की तरकारी

ओ आज्ज जिज्जा जीमने, जिमावै छोट्टी साली

ताई चाच्चो तीहल दिखावै, मा दिखावै टूल

बडी भावज ने चाव लग रह्यो, बन्दरवार सवारै

जा मेरी बेट्टी जा मेरी बेट्टी, सासरे की राह

दरवाज्जे में यू रथ थमा, देखे मेरा बाप जिमाई

सारी छोरी कट्ठी होय के, गई सीम के भार

कौल्लो भर के रोवण लागी, म्हारा कदी कदी का प्यार

रोया नी करते, रोया नी करते
जा मेरी बेट्टी, जा मेरी बेट्टी, रोया नी करते
माँ बाप्यो का लीया दीया खोया नी करते ।

जवानी सनन न सन्नावै जैसे अगरेज्जो का राज
लिख लिख चिट्ठी सुसरे पै भेज्जु सुनो सुसर मेरी बात—जवान्नी .
गौने का गुड जल्दी भेजो पीहर डटा ना जा—जवानी .
सुनो बहुअल मेरी बात, बेटा मेरा पढे फारसी
चार महीने गम खा, जवान्नी सनन न .
लिख लिख चिट्ठीया जेट्ठा पै भेजती—सुनो बहुआ
लिख लिख चिट्ठीया सइया पै भेजती—सुनो सइयाँ
हम तो पढे है इसकूल मे,
तुम और ब्या कर लो—जवान्नी .

वृद्ध की मृत्यु पर उलाहणी

अए हए बड़्डे का मरना, हरी हरी बोल
तेरे बेट्टे मूड मंडाइयो, बुढ़्डे का मरना
बहुआँ खेस खिडाइयो री, के हरी हरी बोल
पोत्ते चवर ढुलाइयो धेबते सख बजाइयो
बुढ़्डे का मरना—

बेट्टी सीस धुनाइया नीं
बागो बीच उतारियाँ, बुढ़्डे का मरना
ए कौन परी परमात्मा रे, हरी हरी बोल
गऊओ दान कराइयाँ
सुरग बिमान चढाइयाँ, बुढ़्डे का मरना . .
चन्दन चिता चढाइयाँ गगाजल ले नह्लाइयो री,
हरी हरी बोल
फूलो का हार चढाइयो, गुलाल अबीर उडाइयो,
बुढ़्डे का मरना .

इसी समय का एक अन्य गीत —

अर धुर दिल्ली से आइयो वैं, झमक रही फौजे
अर काहै का तेरा साँतरा वैं, झमक रही फौजे
ऐ फूल्लों का मेरा साँतरा वैं, झमक रही फौजे

[जिसका पति मरा है, उसी स्त्री का नाम लेते हैं ।]

ए काट्टो का मेरा साँतरा वै, झमक रही फौजे
 ए काहे बाड बधाइय वै, झमक रही फौजे
 ए लोगो बाड बधाइयो वै, झमक रही फौजे
 ए पान्नो छप्पर छवाइया वै, झमक रही फौजे
 ए मखमल दरी मगाइयो वै, झमक रही फौजे
 ए सात्तो बाज्जे बाज्जे रे, झमक रही फौजे
 ए भरे बजारो निकले वै, झमक रही फौजे
 ए लोग सहाजन बूझै वै, झमक रही फौजे
 ए कोण मरा धर्मात्मा वै, झमक रही
 ए कौण हत्यारी री, झमक रही
 ए गोड्डा देकर मारिया रे झमक रही .
 ए गगा किनारे तारियाँ रे —झमक रही
 अरे जल का लिया अधार—झमक रही.
 ए मोत्ती का दान कराइया रे—झमक रही ..
 ए सोन्ने ताँब्रे का दान कराइया रे .
 ए गईऐं दान कराइया रे—झमक रही. .
 ए भूख्खा करके मारा रे
 ए बहुओ खेस खिडाइयाँ रे
 ए बहुओ को रोना ना आवै
 ए बेट्टो मूड मुडाइयो रे
 तेरी बहुओ की रोवै बलाय
 एक पोत्तो चँवर डुलाइयो
 धेवतो सख बजाइयो

भजन—गगा का

गगे तू मोहे मिल ले, मोहे मिल ले मेरी माँ
 गगा तू मोहे
 हाथ मे लोट्टा, बगल मे धोत्ती, सखियाँ बुलावन जायें
 मोहे मिल ले . .
 कपडे उतार धरे री पाल पै, जल मे डोब्बा है पैर
 गगे तू मोहे

पहली गुचकी मारी गगे मइया, कटे जनम के पाप

गगे तू मोहे . .

दूज्जी गुचकी मारी गगे मइया झड झड पडे है

गगे तू मोहे. . .

तीज्जी गुचकी मारी गगा मइया

पितरो की मीत, सखी सहेलियो की मीत

गगा तू मोहे. . .

देव उठावनी एकादशी

उठ नारायण बैठ नारायण

चल चने के खेत नारायण

मै बोऊँ तू सीच नारायण

मै सीचू तू गोड नारायण

मै गोडू तू ढो नारायण

मै काटू तू ढो नारायण

मै ढोऊँ तू गहाये नारायण

मै गहाऊँ तू उडाये नारायण

मै उडाऊँ तू ठाये नारायण

कोरा करवा ठडा पानी

उठो देव पियो पानी

एकादशी

बरतो मे भारी एजी इकादसी

जिसके री अगना सुच्च सगम

नित उठ आवैं री गिरधारी एकादशी, सब बरतो मे. . .

जिसके री अगना नेम धरम नी

उस घर नी आवेंगे मुरारी, सब बरतो मे.

जिसके री गगा बहत है नाहने को मीरा

आवैं, गिरधारी अरि एकादशी, सब बरतो मे

जिसके री अगना मे तुलसी का बिरवा

सिच्चन को मीरा आवेंगे मुरारी अरि

जिसके री अगना गऊँ का खुटा
अरि बुलाने को मीरा आवैं गिरधारी—बरतो मे
जिसके री अगना सिव का सिवाल्ला
अरि पूजा को आवैं गिरधारी—बरतो मे .

इतवार का गीत [उच्चापन करते समय]

क्या तून्ने पग से पग मलि धोया
बैठ के गगा जी के पाले^१ मेरे राम
क्या तून्ने उपले से उपला फोडा—बैठ रसोई के बीच मोरे राम
क्या तून्ने फूट्टि थाली मे भोजन दिया, बैठ रसोई के बीच
क्या तून्ने सास ननद सताई, क्या जिठांघ्री रहौवकी^२ मोरे राम
या तून्ने अपना पुरख उनींदा^३, बैठ सहेलियो के बीच मेरे राम
क्या तून्ने बासनी^४ बत्ती बाल्ली, सूरज कुड गये मेरे राम
क्या तून्ने मलिया के बैंगन चरोये, क्या पनवाडी के पान मोरे राम
क्या तैन्ने चोखती गऊ बिदासी^५ चौखती बछडा हटाया मेरे राम

एकी परछाछती हमको लागा
गऊ साल मे होई मेरे राम
पड्या-पडत बेगी बुलाओ,
इनका अरथ बताओ मेरे राम
सुरभी गऊ की गऊ मगाओ,
नीचे बच्छा चूखे मेरे राम
सोने की सींग चाँदी की खुरियाँ,
उप्पर पिताम्बर उढाओ मेरे राम
कासी कटोरा लोहा झारी, अन्न का पुन्न कर दिये दान
सागर ताल खुदाये सपुत्ती ,
तेरा पुन्न ले झिलोरे मेरे राम
राजा रानी दे परिकरमा, पोकरी जल भरि आया मेरे राम

१ कितारे। २ मारी। ३ बुराई की। ४ दिन झिपे। ५ हटाई।

वसौडा—माता पूजने का

आया है चैत सुहावना, मेरे मन को लगा उम्हाओ
 मैं तो जाऊँगी, ललता की जात को
 ललता का बाग सुहावना और लटक रहे नींबू अनार
 माली गूँद रहे हार और जातियो के गले में पहरा
 ललता का ताल सुहावना और हसा करै है किलोल
 मैं तो जाऊँगी, ललता की जात
 और जाति ये मल मल न्हाय री
 ललता की कूवट सुहावने और झमक रही पन्निहार
 और जानि ये पीवै ठंडा नीर मैं तो जाऊँ .
 और दोधड करवा हाथ
 मैं तो जाऊँगी ललता की जात को
 ललता का नगर सुहावना और बसै छतीसो जात री
 आधे में बाम्भन बाणिये और आधे में महाजन लोग रे
 मैं तो जाऊँगी ललता की जात को
 ललता का भवन सुहावना
 चौरासी घटा बाज्जै री मैं तो जाऊँगी, ललता की जात को
 ओर गोद झडोले पूत री और पडो की ललकार री
 ओर पडो की ललकार री, और नारियल बतास्से चढाई री
 और छतर पजी (पाँच पैसे) चढाऊँ री
 मैं तो जाऊँगी ललता की जात
 खोलो हो चदन किवाड जी, और जाति ये खडे तेरे वार जी
 ओर गोद झडोले पूत रे—मैं तो . .
 परस रही परसाय रही, और लो पुत्तर घर आओ री
 दूध अर पूत तुमै भौत री

भजन—चन्द्रहास

जल्लादो के हाथ सौंप दिया, घणा करम का हेट्टा करके
 बिना खोट क्यूँ मारण लाग्गा, बेवारस का बेटटा करके
 जो होत्ता मैं साहूकारो का बालक, तुम कौण थे हाथ उठावणवाले
 तड़प तड़प के मरा करते, गरीबो का बस मिटावणवाले
 हिरनाकुस अर कस कहाँ गये, कहाँ गये बेट्टे रावणवाले

साठ हजार सरग के मर गये, अपने को बड़ा बतावणवाले
 आनदपाल खटपाल चले गये ले गयी मौत समेटा करके
 गरीब आदमी जीओ जाओ, पर दुनिया मे आराम कहाँ है ?
 एक बात माता जब नूँ पुच्छेगी, मेरा चन्दरहास ग्लफाम कहाँ है
 ऊँची पड पड पुच्छेगी बच्चे तेरी हड्डी चाम कहाँ है
 मेरी माँ को मेरी लहास दे दियो, दिल अपने ने डेटा^१ करके
 बुनिया धोखे की टट्टी, प्रानो का एक बहाला रहग्या
 मारणवाले हाथ थामले, एक काम बतलाणा रहग्या
 नो महीने रहचा माँ के पेट मे, उसका जबर उलाहणा रहग्या
 इकलौता जब बेटा मरजा, माँ का कडे^२ ठिक्काणा रहग्या
 जब काली बदली उठा करे थी, मझे घर मे लकोव^३ थी जेटा^४ करके
 बिना खोट क्यू मारण लागा, बे बारस^५ का बेटा करके
 जल्लादो के हाथ सौप दिया, घणा करम का हेटा करके
 मारणवाले हाथ थाम ले, आँख काड कै तू मुझे डरा रहग्या
 मै तो भाई आदम देई—पर कीडी नै भी जी है प्यारा
 मेरी खबर वो लेगा जिसने हिरनाकुस को मारा
 एक भजन मे 'नृत्य' लिख दे, शकर ने शकर को तारा
 कहै 'बलवन्त' ध्यान हरी का धरले काय कमा लिया मेटा करके
 बिना खोट क्यू मारण लागा, बे वारस का बेटा करके
 जल्लादो के हाथ सौप दिया, घणा करम का हेटा करके

पूरन भगत

आज तो रे पूरण मासी के बलाव
 आज रे पूरण हाथ मिला ले
 तैं तौँ रो मास्सी धरम की रो माता
 माता तो पूरण उसने कहै रे
 जिसने पेट पाड कै जनमे
 चलते का साफा उतार लिया
 आश्रण दे उस पिता तेरे ने दो झुट्टी दो साच्चो रे लाई

१ कठोर । २ कहा । ३ छिपाती थी । ४ सबसे बड़ा लडका होने के कारण (जनविश्वास है कि सबके बड़े लडके पर बिजली गिरने का डर रहता है) । ५ बिना मा-बाप का ।

आज तो जी पूरन महलो मे आये
 तौं तू तिरिया झूठ बोलती
 लाल मेरे के दोस लगावै
 कोरा रे कागद महल मँगाया
 लिख कर खुट्टी पै रख दिया तौ
 पूरण मल ने ओ बाँच लिया अक री मासी राम दिया चारा
 पूरनमल का मू कर दिया काला
 आगगे आगगे डोला झूठ परी का, पिच्छे री घोडा पूरन मल का
 चिर भर उँगली मूगफली से पतली रे पतली हूर परी सी
 मोही रे मोरी आँख डली सी
 लम्बी रे लम्बी नाक सुआ सी

गोपीचद

बगड-बिचाल्ले^१ चदण चौक्की
 गोपीचद न्हाण सजोया हो राम
 छज्जो बैठी अम्मा रोवै उसके आँसू गिरे है राम
 ना कहौं घटा ना कही बदली बूद कहौं से आई हो राम
 आगम छोड्या पाच्छम छोड्या, देस बैहण कै पौँहचा राम
 जाये दुआरे अलख जगाई ला माई भिच्छा की जल्दी हो राम
 लै कै भिच्छा बाँदी आई, ले रे जोगो तू भिच्छा हो राम
 तेरे तो हाथ हरगिज भी न लूगा
 लूगा बैहण चन्दरावल हो राम
 उल्टी फिरकै बाँदी भिच्छा ले गई
 मेरे हाथ की ना लेता राम
 भर कै थाली कौली चन्दरावल रोई, किसपै छोडे बालक नन्हे
 किसपै कँवारी कन्या हो राम
 घर मे छोड्डे बालक नन्हे महलो मे कँवारी हो कन्या हो राम
 किसपै छोड्डी सोडस राणो, किस पै बुढिया सो माता हो राम
 कपडे पाडू केस खिडाऊँ मै बण मे ले जाओ
 जो भँझा घर मे केस खिडाऊँ मै बण मे ले जाऊँ
 जब वो भँझा महलो मे आई, बीरा रमते हो गये हो राम

१. आँगन के बीच में ।

कोट्ठे चढ़ के देखलण लागी कहीं ना दिक्खे गोपीचन्द बीर
निच्छे गिर के मर गई है, सहरो मे पडी है दुहाई

अमर कथा

[यह सबेरे के समय कभी भी गाया जाता है।]

कहे गबरजा हमे सुना दो अमरकथा सिव मेरे पती
सैल करन को चली गबरजा रस्ते मे मिल गए नारद मुनी
तेरे पती पै अमर कथा है
सुनती ब्यू ना पारबती
वहाँ से चल कै आई गबरजा
शिवशकर ज्ञानी धोरे कहे गबरजा
सिव जी बोले पारबती से
ज्ञान तुझे किसने दीना
कहे गबरजा सिवसकर से
ज्ञान मेरे गुरु ने दीना
बारा बरस तै इन्हीं बनो मे
आज हुई तम परबीना
हमी तो रह गये मरन जीवन को
आप पती तम अमर भये
अमरनाथ ने अमरकथा की
अपने दिल मे ठहराई
शेर का रूप धरा सिव जी ने
दिल भर कर गये मँमाने^१
एक हाथ त्रिशूल लिया है
जनवर सब उडा दीन्हे
कैलाशी काशी के वासी
उत्तराखड बासा छाया
लगा कै आस्सन बैठ गये हैं
उत्तराखड दरम्याने

पारबिरम का खेल हुआ
 जब पारबती को जगवाई
 आलस भर के उठी गबरजा
 नाथ मैं सुनने नहीं पाई
 इन बनों में हम तुम दोनों
 हुँकारा किसने दीन्हीं
 ध्यान लगाकर देखा शिवजी
 इक तोत्ते की बड़ी रती
 पलक उठा कै देखा सिव जी ने
 क्रोध भया सिव जी के मन में
 एक हाथ त्रिसूल लिया
 तीनलोक में फिर है तोत्ता
 कहीं ठिकाना नहीं पाया
 अपने कोट्टे व्यास की पत्नी
 उसके मुह में समाया
 बारा बरस की लगी समाधी
 तोत्ता लिकडन नहीं पाया
 व्यासदेव घर पुत्र हुए है
 पुत्र हुए बड़े जती सती
 अमरकथा का बड़ा महात्तम
 जो नारी सुनले पावै
 आप तरै और कुल को तारै
 फेर जनम नहीं आवै

भुलने का गीत

चन्द्रावली (सावन)

ननद भावजिया का प्यार, दोनों पाणी को निकली जी
 अब रत आई मारू बीजण
 बिब्बी कुएँ पै घडला उतार, फोज पडी वारे मुगलो की
 बिब्बी चन्द्रावली हुसनदार थी,

दे लई तम्बुओ के बीच वारे मुगल के न
 हार बेचू अपणा जी छुडाऊँ बिब्वी चन्द्रावली
 जैसे केले की गोब
 हार म्हारे घर घणे, बिब्वी ना छूटै चन्द्रावली
 जैसे केले की गोब
 अब हत आई मारू बीजण
 जाओ भाब्वो घर आपने थारी कुछ ननी बिसात
 खाना ना खाऊँ वारे मुगल का—

अब हत

घर पहुँची भावजिया सास से करै विचार
 फौज पडी रे वारी मुगलो की, बिब्वी लई तम्बुओ के बीच
 बाबल सुन कै रो पडे, भइया ने खाई है पछाड
 बेटी छुडवाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब

अब हत .

सोहरा सुनकै रो पडा, जेट्ठा ने खाई है पछाड
 बहू छुडाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब
 बे राजा बेदरदी सुन कर हस पडे जी
 ऐसी लाऊँ दोय चार, जैसे केले की गोब

अब हत .

बाबल बेच्चे जौ चने, भइया बेच्चे अलडी जुनार
 बहण छुड़ावै चन्द्रावली, जैसे केले की है गोब

अब हत .

सोहरा बेच्चे बाग बगीच्चा, जेट्ठा बेच्चे कृए ताल
 राजा बेच्चे कडे हसली, छुडाऊँ राणी चन्द्रावली, जैसे केले की गोब

अब हत .

बाप बोल्ला अरथ दूगा, डेढ से गडिडयो का ओढ
 बेटी बहण छुड़ावै चन्द्रावली जैसे केले की गोब

अब हत आई .

बहली^१ दूगा डेढ सौ घोडी दूगा सौ साठ
वइ छुडाऊँ चन्द्रावली, जैसे केले की गोब

अब रत

राजा कहै राणी दूगा डेढ से, रण्डियो का ओढ नाछोड^२
राणी छुडाऊँ जैसे केले की गोब, अब रत
अरथ म्हारे है घणे, गडिडयो का ओढ न छोड
बेटी बहन ना छुटै जैसे केले की गोब

अब रत

बहली म्हारे सौ डेढ से, घोडो का ओढ न छोड
बहु छुटै न चन्द्रावली—जैसे केले की गोब

अब रत .

राणी म्हारे है घणी, रण्डियो का ओढ न छोड
राणी चन्द्रावली ना छुटै, जैसे केले की गोब

अब रत .

जाओ बाबल भइयाँ घर आपणे जी
थारी कुछ ना बणै बिसात
लाज रक्खू टोप्पी की जी, खाना ना खाऊँ वारे मुगल का जी
जाओ ससुर जेठ्ठा घर आपणे,
थारी कुछ न चले बिसात
लाज रक्खू चौधर पटवारी की जी,
खाना ना खाऊँ वारे मुगल का जी
जाओ कन्या जी अपने देस लाज रक्खू थारी टोपी की
खाना न खाऊँ वारे मुगल का
जाओ रे मुगल के पाणी भर के लाए
प्यासी मरे चन्द्रावली अब रत आई
मुगल का छोकरा डोलची ढाप कै चल दिया
गया कुये के धीरे, कुये के घोरे
तम्बुओ मे दे लई आग चन्द्रावली, अब रत आई
तम्बुओ मे लग गई आग, खडी जलै चन्द्रावली

१ छोटे रथ के समान सवारी जिसका प्रयोग अब भी गावों में होता है। बहू-बेटियाँ पदों के साथ इन्हीं में बैठ कर आती जाती हैं। २ कोई श्रमाव नहीं, बहुत अधिक है।

जैसे केले की गोब
पाणी लाया मुगल का, गया खाय पछाड
क्या हुई मेरे खुदाय
देखी ना भाल्ली, देखी थी चाखी नही
ये जले चन्द्रावली, जैसे केले कैसी गोब

सावन

कचेरी बैठन्ते म्हारे ससुरे भले जी,
के आई रत सावन की
हम क्या जाणे म्हारी बाली बहू री
अपने जेठ्ठा जी से पूछो के आई .
भूरी कुहात्ते म्हारे जेठ्ठा भले जी, के आई .
मइया-जाये आये लेणेहार, कहो तो भइया सग जाऊं
के आई रत सावन की
मै क्या जाणू मेरी छोटी भावज, के आई रत
छोटे जी से, अपने देवरा जी से पूछो, के आई रत .
गंदो खेल्ले म्हारे देवरा भले,
के आई रत सावन की
कहो तो भइया सग जायें, के आई.
हम क्या जाणे म्हारी बडी भावज जी, के आई. .
अपने नणदोइया जी से पूछो के आई. . .
गद्दे बैठ्ठे दे, म्हारे नणदोइया भले जी, रत. . .
कहो तो भइया सग जायें, के आई. . .
हम क्या जाणे म्हारी बाली सलज, के रत. . .
अपने राजा जी से पूछो, के आई .
चौप्पड खिलन्ते म्हारे राज्जा भले, के आई. . .
जितणा कोठ्ठे मे का नाज, भला जी रत सावन की
सारा तो पीस के जइयो, के आई रत. . .
जितणे अम्बर मे तारे, भला जी रत सावन की
इतणी कचौरी बणा के जइयो, के आई रत. . .
जितणे पिप्पल के पात, इतणी रोट्ठी पोके जाइयो, के रत. . .

फागन

कच्ची अम्बली गदराई रे फागन मे
 राँड लुगाई मस्ताई फागन मे
 कहियो रे उस ससुर भले से, चाल्ला लेकर आ फागन का
 बिना मुकलाई ले जा फागन मे, कच्ची कली . .
 कहियो री उस बहू भली से, चार महीने गम खावै पीहर मे
 कच्ची अम्बली. -

कहियो री उस बहू भली से,
 चार महीने गम खावै पीहर मे, कच्ची . .
 कहियो री उस जेठ भले से
 चाल्ला ले करवा फागन का
 बिना मुकलाई ले जा फागन मे—कच्ची. .
 कहियो री उस बहू भली से,
 दोय महिना गम खावै रे पीहर मे—कच्ची. . .
 कहियो रे उस देवर भले से,
 चाल्ला ले करवा फागन का—बिना

कच्ची रे
 कहियो रे उस बहू भली से,
 एक महीना गम खा रे पीहर मे
 कच्ची . .

कहियो रे उस राजा भले से,
 चाल्ला ले करवा फागन का
 बिन मुकलावा ले जा फागन मे,
 कच्ची .

कहियो रे उस गोरी रे भली से,
 ठाड़ा खसम कर लेगी पीहर मे .
 कच्ची . .

चरखे का गीत [क्रिया-गत]

मैं बाणो को जाऊँगा मैं चंदन रुख कटाऊँगा
 मैं चरखा बनवाऊँगा
 मेरी पतली गोरी, कात्तेगी अक ना

कात्तूगी दिन रात, मेरे तकवा तो ना
 बिजनौर को जाऊँगा, मैं तकवा वहाँसे ल्याऊँगा
 मेरी पतली गोरी, कात्तेगी अक ना
 मेरे अच्छे राज्जा जी, मैं माल बटवाऊँगी
 मैं तेरे धोरे ल्याऊँगी
 मेरी पतली गोरी कात्तेगी अक ना
 मेरे अच्छे राज्जा जी कात्तूगी दिन रैन
 इसमे चकमक तो है ई ना
 मैं जगल कू जाऊँगा, मैं चकमक बनवाऊँगा
 मेरी पतली गोरी कात्तेगी अक ना
 मेरे अच्छे राज्जा जी कात्तूगी दिन रैन
 मेरे पै पीढा तो है ई ना
 मैं बाढी पास जाऊँगा मैं पिढला बनवाऊँगा
 मैं तेरे ताई लाऊँगा
 ऐ मेरी मिज्जाजन गोरी, नखरो कात्तेगी अक ना
 कात्तूगी दिन रात, मेरे पै रुई तो है ई ना
 मैं धुने पास जाऊँगा
 मैं रुई पिनवाऊँगा, मैं पूनी बनवाऊँगी
 मेरी अच्छी गोरी, मेरी पतली गोरी कात्तेगी
 मेरे सुध्वे राज्जा, मेरे अच्छे राज्जा मुझपै कात्ता भी ना जा
 मैं पीहर जाऊँगा, मैं तुझे लखाऊँगा
 तेरो नाड़ काटूँगा, तेरा चुड़डा पाडूँगा
 गाँ के चारो तरफो फिरवाऊँगा

चक्की का गीत

चक्की पै धरा पीसणा रे पत्थर फिरताणी
 मेरी सास बडी जल्लाद री, मैंने ठावै आध्धी रात
 कोरा सा कागद लाओ लिख्ख भेज्जू पती के पास
 सबेरा घर को अइयो री, म्हारी रात्तो ना लगती आँख
 मेरी बँहण भनेल्ली पूछ रों, कैसे थारे भरतार
 टसरी की धोत्ती कर रहे री, जिण के गल मे हरा हमाल
 गोरी सच्ची बात बता दे रे, तुम पै क्या आई जवाल
 थारी अम्मा बडी छिनाल पिसावै आध्धी रात

सामयिक एवं समाज संबंधी गीत

हिन्दू-मुसलमान सबधी [पाकिस्तान के सबध मे]

टेसन ऊप्पर छोरी रोवै मुसलमाण की
 बाबूजी मेरा टिकस काट दो पाकिस्तान की
 ना तेल्ली, ना धोव्बी की, असल पठान की
 दोधधड ठावके पाणी नै चाल्ली तेरा कब्जा ढिल्लाए
 किस आसिक को मोहेगी, ए तेरा बोल रस्सिल्ला ए
 मेरे महल मे अइयो रे देवरा बात बताऊँगी
 जो तुझे लागे प्यास मै बोत्तल ल्या दूगी
 मिट्ठी मिट्ठी बोल री भाब्बी तू मुझे बुलावेगी
 चन्दा बरगी सान के तू साही लावेगी
 महल तले ने राज्जा जा रह्या पतग उडा रह्या
 पतगा नै क्या फूक जला, व्या करावै
 चलो छोरियो छोरा नाट^१ रह्या
 बौरा^२ नी कद आवेगी या जोडा पाट लिया
 क्या कह रही तू जिज्जा जिज्जा—लागू लोग तेरा
 आज्जा चदा बैठ पिलग पै, काट्टू रोग तेरा

शराब के विरुद्ध

बिन्दी ल्याऊँ धड़ाकै ऐजी दारू के नसे मे
 दारू मे लगियो आग,
 ऐजी दौडे अइयो महलो मे
 मै बेट्टी साहूकार की, बोल्ली बोल्लो सहज मे
 मै बेट्टी थाणेदार की, सटी मारो सहज मे
 पतली कमर लबे खेस, सटी
 पतले पलग के सार, एड्डी रखो सहज मे
 नकलिस ल्याऊँ घडा के, जी दारू के नसे मे

• मना कर रहा । २ पता नहीं ।

गौवध के विरुद्ध

सहर सडक पै कसाई साङ्ङ ले रह्या री
 उसके धरी चरख पै गाँ, गऊ ने ढेर सुनाई
 कोई हो हिन्दु का जाया, गऊ की ढेर सुने
 अरी मैन्ने दे दिया गले का हार, गऊ की जाण बचाई
 मै गई सास दरबार सास मढा बिछा गई
 मै धरा कुरसी पै फेर, नजर छतियन पै पहुँची
 मेरी भले घरों की जाई हार कहाँ पै धर भूलची
 सुन सास मेरी बात, हार का हाल सुनाऊँ
 एक सहर सडक के बीच, कसाई खाडा ले रह्या
 उन्ने धरी चरख पै गाँव—गऊ .

राशन सबधी

कैसा काल पडा है दुनिया मे मैन्ना सुना ना देखा है
 घर के बच्चे खाना माँगै, गेहुँओ मे कनटरोल
 घर की लुगाई खस्ता माँगै, रोज लडाई हो
 घर के बच्चे बगड की रोटी चावल माँगै
 चावल पै कनटरोल
 घर की लुगाई चावल माँगै, चावल प कनटरोल
 घर के बच्चे कपडा माँगै, कपडे पै कनटरोल
 घर के बच्चे पैसा माँगै कागज के चले नोट
 कैसा काल...
 घर की लुगाई जेवर माँगै अरी चाँदी सोने पै है दास—
 कैसा काल

लोक-गाथा

सेवा—गुरु गुग्गा की

बाछल ले कै थाल राणी अर चल पडी वा चतुर नार
 बाछल रे एक ड्यौढी लख दूसरी लख थी—
 अर तीसरी ड्यौढी पै तेरी नणद मिली थी जी
 अर भाई मेरा रे भोला सा बीर दे बचन

सुनाय कहती बाछल राणी से
 अर भावज मेरी ए क्या किसी देवताकी तारी बावडी
 क्या पूजने चली है भूमिया को
 क्या किसी देवता का गेरा बधावा झूम
 अर भाई मेरो रे बाछल बचन सुनावै री—
 कहै थी नणदल अपनी से
 अरी नणदल री किसी देवता की तारी बावडी,
 ना किसी भूमिया को पुज्जन लगी
 ना किसी देवता का गेरा बधावा
 अर दाता री मेरा भोला सा बीर बचन सुनावै
 वा कौरारी पाल की
 अर नणदल री ले जोगी-सरूपी एक लाल साहब का
 वो म्हारे बागो पै आ उतरा उसकी मै सेवा कर दूँगीं
 अर मुझे कुछ फल मिलेगा री बागो मे
 अरे नारायण प्यारी, मै सेवा करूँगी
 मुझे फल मिलेगा, हमे मिलेगा नाम दुनिया मे
 अरी नणदल री म्हारा दुनिया मे साझा रहेगा
 अरे मेरा रे भोला सा बीर दिये बचन सुनावै तू
 कोरा रे पाल राजा की
 अर भावज मेरी पहली सेवा तेरे खेले है
 महल मे बाहर ड्यौढी के
 अर भावज ए सम्पत लइयो महलो मे
 नी साथ जाइये नागो मे
 अरी नणदल तैं नीं कही, मेरे सब नेकु हायी
 मेरी करमो मे रे नू ही रे लिखा था
 सम्पत ल्याऊँ थारे आउँ री महल मे,
 अर नीं नागो के साथ चली जाऊँ री
 तैं इतनी कहकै वहाँ तैं चल दी
 बाछल री वहाँ से चल आवै री हरियल बागो मे
 अर दादा ने मेरे रे हरियल बाग की रे परकम्मा
 अर खोल्ले किवाड दरवाज्जे
 खोल किवाड दरवाज्जे बडी थी बागो मे

अर कभी मारे थी हॉक जोगी कू
 अर गुरुजी भोजन लाई मेरा लिइयो जी नाथ
 अजमत के पूरे
 अर भोली मइया जौन सा चेल्ला री
 गया बागो मे वो ही मिल गया री महलो मे
 जब चेल्ले ने की भोली बचन सुण रख्या जी
 अर भोली मइया ले म्हारे सेवे से
 म्हारे गुरु की सेवा लगाओ
 अर भोली मइया म्हारे गुरु की सेवा करे
 ले लाल हरियल बागो मे
 तेरी सेवा भगवान पूरेगे
 अर गुरुजी ले चाँद-सा चेल्ला एक सूरत का
 मैं क्या जानू तम मे गुरु कौन सा
 अर भोली मइया खारा कुआ पेड्डा चन्दन का
 जहाँ तणे रे तम्मोटे गुरुवा के
 अगवी तम्मोटी रे जरद किनारी,
 खिचो थी डोर रेशम की
 वहाँ सोन्ने की मेख लगी हुई
 गुरु गोरख की कला जाग रही
 अर वहाँ से इतणी सुण चली रे राणी
 आवैं थी गोरख गद्दी पै
 दादा मेरे रे आती के बाछल देख्खी नाथणे
 नाथ सो रह्या तम्बू मे
 सवा पहर की ताली लगा ली
 अर बाछल डोर पकड के तम्बू हलावैं थी
 मारैं थी हॉक गुरुवा नैं
 अरी गुरु जी मै भोजन लाई रे
 मेरा भोजन लइयो रे नाथ अजमत के पूरे
 यो भोजन चेल्लो मे बरता दो
 दाता मेरा जी सवा पहर, जब बोच लिया था
 जाग उठै गद्दी पै,
 अर भोली मइया थारा तो भोजन मेरा काम का नही है

अर बाछण राणी तीन जात की मे भिच्छा नी लूगा
 सकल दुनियादारी मे
 अर भोली मइया छिप्पन धोवन बाँझ जनम की
 इन तीनों की भिच्छा ना लूगा
 अर भोली मेरी मइया तीन जात की जो
 भिच्छा लूगा दुनियादारी मे
 तो करै तीरथ म्हारे हल हो जागै
 गुरुजी छिप्पण जोणी ना धोवन जोणी
 मेरा बाँझो का क्या पिछाण
 बाँझ जनम की ऐड्डी चोचली, मात्था धमकनी
 यही बरन तेरा बाँझो का
 गुरुजी मेरे बेट्टो की अर पोत्तो की कमी ना
 मेरे कमी नहीं महलो मे
 भोली मइया बेट्टे पोत्ते जो होते महलो मे
 तो तू क्यों आत्तीरे बागो मे
 गुरुजी मेरे बेट्टे पोत्तो की कमी नहीं
 पर राज करनवाला दूसरा नी है
 तू पिछ ले जनम की माली की है बेट्टी
 तूने बिरवै नुराये बागो मे
 तेरे बाग मे कोतरी व्याही
 तँ कोतरी के अडे फोडे,
 कोतरी अपने अडो को फुट्टे देख निडाल होकै गिर रे पडी
 उसका चोला हस छूट गया
 हस दरगाह मे पाँच गया
 तो उसकी फरयाद लगी री ताला के
 तो इस गुन तुझे सात जनम ऊतनी लिखी
 तेरे मुकद्दर मे सम्पत नी मै लाऊँ कहाँ से
 दो चार चेल्ले यहाँ से लेजा, महलो मे राज करेंगे
 गुरुजी बिगानो पुत्तो कौन सपुत्ता
 सकल दुनियादारी मे
 एक बार होकै चाहे मर जा,
 पर होवै जरूर, जिससे बाँझ नाम छुट्टे

बगड पडोस ने आग पानी लेना छोड दिया मेरे महलो से
तम रमतो ने छोड्डी है भीख
एक बर हो कै धी हो या पूत गुरुजी
बाँझो का नाम छूट जा
स्यालकोट मे पूरनमल दिया तमने रानी इच्छरा के
उस दिन से मै थारी आस मे लग रहची
के मेरा दुणिया मे साझ्जा रख देंगे
गुरुजी रानी इच्छरा ने बाराबरस तक सेवा करी थी
चेल्लो को भोजन खुवावै, बस्तर दिये

चाँदी सोन्ने के पात्तर, बनवाये नाथ धड़वाये
गुरुजी तम बारा बरस तक आसन थमाओ बागो मे
बारा बरस थारी सेवा करूँगी बागो मे
चौदासौ चैल्लो के धुने सिलगाऊँगी

आस्सन झाड के बिछाऊँगी
और थारी सेवा करूँगी, भगड को भाग दूगी
सुलफइये को सुलफा पोस्ती को पोस्त फिम्मी को फीम
थारी बाग मे सेवा करूँगी
गुरु ने छोटा सा पत्तर, काढ घरा बाच्छल के आगे
भोल्ला री मइया भोजन इसमे भर दो
गुरुजी पत्तर तो है छोटा अर भोजन घनेरा

सारा इसमे आने का नीं
गुरु ठा ठाकै तुम पत्तर मे भरो और मै घर को जाऊँ
वो जो ठा ठा कै भोजन उस पत्तर मे भरने लगी
भोजन सारा सपड गया, पत्तर ना भरा गया
तो जब गुरु जी ने कहा, पत्तर भरो अर घर को जाओ
गुरुजी जो पत्तर होत्ता तो मै भर देत्ती

यो अजमत ना भरी जात्ती
अच्छा एक साफा पत्तर के अपर गेर दो
साफा पत्तर मे गेरतो ही
चेल्लो को अवाज लगाई, भोजन पै बैठा दिया
चेल्लो को परोस्तो, ए कारा रे पाल की
अरी चेल्ली री मइया भोजन जिमा दे री मइया

भाई मेरा रे ढाकके भोजन चेल्लो को जिमावै
 चौदइसौं चेल्ले सब जीम लिये
 भोजन जब भी ना सपडा उसमे तै
 भोली मइया, भोजन जिमाइयो री घर को जइयो
 अरी कौरा री पाल की
 अर बाछल राणी ले जिमाय के भोजन चल पडी
 आई घर पड कै सो गई
 हुई सुबेरे घर के कढाई भोजन बनाया
 फेर इसीतराँ भोजन जिमाया
 अर भोली मइया तेरी भी सेवा पूरी हुई
 हर बाछल रानी पेली फटेगी फजल होगी
 उस बखत फेर अखाडे मे अइयो
 अर भाई मेरा बाछल की बाँदी
 धोरे खडी सुनै थी, हरे हरे बागो मे
 हुआ राणी से पहले री बाँदी आवै महल मे जी
 अरी कहै थी बाँदी काछल रानी से
 राणी ले वा तेरी बैहण की सेवा पूरी हुई
 बाछल री अरी पेली फटेगी, दिण लिकडेगा
 सकल दुनियादारी मे
 सेवा का फल उसे मिलेगा
 फेर आध्धी रात पै अपनी बैहण पै भेजी
 अरी बाँदी री ले सेवा के कपडे
 अर मुझे ला दे बाँछल मेन्ना पैसे
 अरी मै भी सेवा कर जाऊँगी री
 अर दाता मेरे इतना सुण के चल पडी थी
 अर आवै थी वो बाछल राणी पै
 जब बाछल से बाँदी बचन सुनावै
 हे रानी जी वो तेरी बैहण ने कपडे माँगे
 रग महलो मे
 अरी सेवा के बस्तर माँग रही थी री
 अर भाई मेरा भोली अद्भुत जमाने की
 नहीं जाने थी छल दुनिया के

अर भाई सेवा के बस्तर दे दिये थे
 उस काँछल की बाँदी को
 लेकर बस्तर बाँदी आवै महल मे
 अर बाँदी आध्धी रात को चल पड़ी
 थी कौरा रे पालकी
 लेकर भोजन
 आई गोरख के धोरे
 आध्धी रात पै सोत्ते मे जगावै
 अर गुरुजी ले मै भोजन लाई
 मेरा भोजन जीमो री अजमत के पूरे
 अर भोली मइया रे जुलम करे, बडे चाल पडे
 आई नागो के अखाडे मे, आध्धी रात मे
 कैसे आई, तुझे तो पेले फटे बुलाई
 भोली मइया आध्धी रात आकै मेक जगा दिया
 आकै हरियाल्ले बागो मे
 अरी गुरुजी मुखे कुछ भी खबर ना रही थी
 अजी अजमत के पूरे
 अजी मै जाणा गुरु जी दिण लिकड आया जी
 अर भाई मेरा री ले कै भोजन गुरु ले बैठ गया
 अर दाता मेरा ठा कै झोल्ली रे बैठ गया
 रात अजमत का पूरा
 अर जोगी बाबा दो जौ काढे झोली से
 नाथ गोरख नाथ जोगी ने
 अर जब काँछल के रे दिये उसने हाथ जी
 अर भोली मइया री ये जौ ले के तू जइये
 अपने रग महलो मे
 न्हा धोकै जीमियो,
 इनके खाये से तुझे आस रहेगी
 दो जुडवा पैदा होंगे
 उरजुन सुरजुन इनका नाम होगा
 अर भोली मइया लेकै जा चल पड़ी थी
 आवै महलो मे

अर भाई ले सेवा के बस्तर तार लिए
काछल राणी ने
अर जब बाही के हाथ मे दिये
बाछल को दे आ
पेली फटी बाछले ले कै अर चल दी

लोक-शब्दावली

लोक-शब्द

शब्दार्थ

अघाई	पेट भरे पर मस्ती आना
अन्दी	घोती की फेंट में पैसे लगाने का स्थान
अक	संबोधनवाचक शब्द
अकडू	अकड़नेवाला
अकूर	अक्षर
अछवाई	अच्छा
अजमत (उर्दू शब्द)	ज्ञान, इज्जत
अटकल	अन्दाज
अडियल	अडने वाला
अतलाड्डो	अत्यन्त लाडली
अतेकसा	थोड़ा-सा
अधबिच	बीच में, आधे में
अनभी-पनभी	ऐसे भी, वैसे भी, हर तरह से
अनाप-सनाप	ऊँटपटाँग, अनर्गल
अफारा	पेट फूलना
अबरन-सबरन	आभूषण
अबेर-सबेर	देर, जल्दी, अनिश्चितता
अमरौती	अमर फल
अल्ला बेली	इश्वर ही रक्षक है
अलसेठ	आलस्य के कारण देर या टाल
आवाज्जें	आवाज
आट्ठे	अष्टमी
आदमजून	मनुष्य की योनि

आध्धोआध	आधा
आध्धी पिछली रात	रात्रि का पिछला पहर
आन्सु	आँसू
आप्पा	अपना शरीर
आरबल	आयु
आरता	बड़ी आरती
आला	दिवारों में बनाया हुआ स्थान
आसन्नपाट्टी	रूठने का प्रतीक
ओघना	ऊँघना
ओच्छा	कम भरा हुआ, छिछोरा
ओड बड़ी	इतनी बड़ी
ओपरा	ऊपर का
औपरी असर	ऊपरी प्रभाव (भूत-प्रेत आदि का प्रभाव)
ओरे धोरे	आस-पास
औकलू, औकल	बेचैनी, न सुहाना
औगण	अवगुण
केल्ला	अकेला
इकलौत्ती	एक मात्र
इकादसी	एकादशी
इघै	इधर, यहाँ
इतबार	एतबार, विश्वास
इतणा	इतना
इतराना	शेखी में आना, बनना
इमाण	इमान
इबजा	अब
उरे	इधर या पास
उघाडना	खोलना
उडकाना	थोड़ा बन्द करना, बिना कुडी लगाए हट्के
उनींदा	बुराई करना
उठाईगिरा	चलता जाता या महत्वहीन आदमी
उत्ता	जिसके आगे पीछे कोई न हो
उत्ती का	गाली-विशेष

उद्घापण	उद्घापन
उम्हाना	उत्साह
उमर-पट्टा	जीवन भर का अनुबन्धन
उलखना	लॉघना
एल्लेले	यह देखे (आश्चर्यवाचक भाव)
ऐट्ठू	ऐठने वाला
एड लगाना	टाँग फँलाकर आलस्य में लेटना
ऐड्डा-टेदुदा	तिरछा—बिका
कजरी	जाति-विशेष, गँवार, शोर मचाने वाली
कचेहड़ी	कचहरी
कटखना	काटने वाला
कट्ठा	इकट्ठा
कदी-कदाक	कभी-कभी
कद्दू दाना होना	लुडक जाना
कढाना	औटना
कनकी, कन्नो उँगली	सबसे छोटी उँगली
कनखियो से	तिरछी नजर से
कनागत	श्राद्ध
कमचोट्टा	काम करने से मन चुरानेवाला
कमेरा	काम करने वाला
कमीण	नीच जाति का
करेक	थोडा-सा, तनिक-सा
कलखोरा	अकेलापन पसंद करने वाला, कलह करने वाला
काँवर, काँछ	बगल
काढना	निकालना, कसीदा करना
काढा	अत्यधिक औटाई हुई वस्तु
काँधा	कधा
काभाफुस्सी	कान में बात करना
किधं	किधर
किच्चड़	कीचड़
किचकिचाना	दाँत मीँवकर गुस्सा करना

किनचना	जोर लगाना
कीच	कीचड़
कुक्कर	क्योकर, कैसे
कुचाल	बुरे तरीके से
कुचा देना	आग लगाना, नष्ट करना
कुडा	सॉकल, दही के लिए मिट्टी का खाली बर्तन
कुसैनी	कमबख्त
कुहाना	कहलाना
कुणबा	कुटुम्ब
कूडी	कूडा डालने का स्थान
कूल्हना	कराहना
कैडी	सख्त
कोट्ठा	घर के अन्दर का सामान रखनेवाला कमरा, छन, वेश्या का चौबारा
कोसना	गाली देना
कौत्तक	कौतुक, घृणास्पद कार्य
कौल, करार	बातचीत पक्की करना
कौली भरना	हाथों से बाँधना
क्यनै	शायद (विस्मयादिबोधक)
खटोल्ला	छोटी चारपाई
खरसा जा खरसाव	गर्मी
खवा	कधा
खसबोई	सुगन्ध
खस्सी	कमरे के अन्दर की नाली
खाडा	तलवार
खात्तर	लिये, वास्ते
खिंडाना	गिराना
खुदाण	कुम्हारों के मिट्टी खोदने का स्थान
खोऊबखेडू	खोने, बखेरनेवाला, नष्ट करने वाला
खोडिया	बारात जाने के बाद होने वाला नाचगान
खोसना	छीनना
खोप्पे	काँटे

गट्ठड	बडी गठरी
गडूलना	बच्चो का खडे होकर चलानेवाला लकड़ी का खिलौना
गड्डी	बहुत सी चीजो का एक जगह बधा समूह
गद्दर	मोटा, आधा पका
गजबण	गजगामिनी नारी
गदबद भागना	उलटे-पुलटे भागना
गद्देसी	एकदम
गाड्डन जोगगा	जमीन मे गाडने योग्य 'एक प्रकार की गाली'
गाँड्डा	गन्ना
गाही	मन
गाढ़ेहराम	कमचोट्टा, आलसी
गाम	गाँव
गाबरू-गबरू	पुष्ट युवक
मल्होर-गाहा	मल्होर, पल्हाया, दोहा-विशेष
गिरे पडे	अनावश्यक वस्तु या व्यक्ति
गुन्ठी	अँगूठी
गुचकी	डुबकी
गुद्दी	गर्दन के पीछे का भाग
गुमसुम	चुपचाप
गुमान	घमण्ड
गू	पाखाना
गूनमथून	कुछ न कहनेवाला
गेरना	गिराना, डालना
गेल्लोगैल	साथ-साथ या हाथ के हाथ
गोड्डा	घुटना
गोत्तीभाई	एक ही गोत्रवाले व्यक्ति
गोस्सा	उपला, कडा
गौनियाई	गोने मे आयी हुई वधू
ग्यारस	एकादशी
घणी	अधिक
घडौँची	घडा रखने के लिए लकड़ी की बनी तिपाई

घालना	डालना
घालमेल	गडबड करना, मिलावट करना
घुट्टी	बच्चों को जन्म देने के समय व बाद में दी जाने वाली औषधि विशेष ।
घुन्ना	मन में बात रखनेवाला व्यक्ति
घूरा	कूड़ा डालने का स्थान
चग्गी	अच्छी
चदा	चाँद
चबोली	एक छंद विशेष
चकचाल	चालबाज
चम्मासा-चौमाम्सा	बरसात के चार महीने चातुर्मास
चटोरा	चटपटी वस्तुओं में रुचि लेने वाला
चिचराडा	झगडा, रोने रोना
चमक नींद	जल्दी खुल जाने वाली नींद
चड्डी गाँठना	कमर पर चढ कर सवारो करना, (मुहावरा)
चाम	चमड़ी
चाव	शौक
चार खूट	चारों दिशाएँ
चाल्ला	गोना, आश्चर्यजनक कार्य, कौतुक
चाहना	आवश्यकता, इच्छा, प्रेम
चिक्कट्ट	चिकनाई से गदी हुई वस्तु
चिकनी-चुपडी	चापलूसी की बात
चिट्टा	सफेद
चिडा-चिडी	नर, मादा चिड़िया
चित्त भी, पट्ट भी	हर प्रकार से
चिलत्तर	बनावटी व्यवहार, चरित्र
चुडा पाडना	चोटो खींचना, लडना (मुहावरा)
चुम्बा	चुम्बन
चुमकारना	पुचकारना, प्यार करना
चुबारा	चोबारा, सडक के ऊपर का कमरा
चून माँडना	आटा गूदना

चूरमा	रोटी या परावठे का चूरा करके उसमे घी और चीनी डाल कर बना व्यजन
चूढा	भंगी
चैत्ती	चंद्र से सम्बन्धित
चोक्खा	साधारण अच्छा
चोचले	नखरे, स्वयं को आराम देने के लिए अनावश्यक काम एव दिखावा करना
चोल्ला	शरीर, ऊपर से नीचे तक एक ही ढीलाढाला वस्त्र
चौक पूरणा	त्यौहार आदि पर आटे या रोली से जमीन पर अल्पना बनाना
चौरा	विवाह मंडप मे वेदी के पास वाली यज्ञ की राख आदि
चौथ	चतुर्थी
चौदस	चतुर्दशी
छकना	पेट भरना, तृप्त होना
छक्कड	चपत
छडी-छटॉक	अकेली
छड	षष्ठी
छडे-छमास्ते	कभी-कभी
छापपा	छपा हुआ, छाप
छिक्कल	छिलका
छिनाल	गाली-विशेष
छीड	जहाँ भीड़ न हो
छेनना	मारना
छोरियाँ	लडकियाँ
छोह	क्रोध
जकडी	विवाह से पहले रात्रि को गाया जाने वाला गीत-विशेष
जग-जुनार	प्रीति-भोज
जद	जब
जनो	मानो
जलगा	जलनेवाला, ईर्ष्या, गाली-विशेष
जली मिराड	क्रोधी, ईर्ष्या

जवाल	मुसीबत
जावखत या जात्तक	बालक
जाड्डा-पाला	जाड़ा, बहुत सदीं
जान-लेवा	प्राण लेनेवाला, दुख देनेवाला, गाली-विशेष
जाम्मे	पैदा हुए, जन्म लिया
जिज्जा	बड़ी बहन के पति—जीजा
जिजमान	यजमान
जिब	जब
जिभी	जब भी
जिवाना	जीवित करना
जीमना	भोजन करना
जीम्मन	दावत
जुगत	युक्ति
जुनार	३६ जातियो को भोजन कराना
जुल्म	जुल्म करना—आश्चर्यजनक कार्य करना
जट्ठा	सबसे बड़ा बेटा
जेवडी	रस्सी, जकडनेवाली
जोकखो	भय, खतरा
जोग्गा	योग्य
जोट	जोड़ी
झटदेसी	तुरन्त
झबरझल्लो	जल्दी-जल्दी में उल्टा-सीधा काम करने वाली
झिगला	ढीली खाट
झुरना	तिल-तिल करके कमजोर होना
झुलसा	गाली-विशेष
झूलणी	झूलते समय हाथ से झुलाना, झूला
झोट्टा	चोटी, झूले पर बैठे व्यक्ति को हाथ से बढ़ाना
टंडीरा	सामान
टका	दो पैसा, अधन्ना
टपका	टपकने वाला आम
टहल	सेवा
टॉय-टॉय फिस	हारने पर बच्चों द्वारा चिढ़ना
टिक्कड़	मोटी रोटी

टुड्डा	एक हाथ वाला आदमी
टुस्सी	फुनगी, सबसे ऊपर का भाग
टेहले	विवाह में होने वाला लोकाचार
टेवा	लग्न
टोन्टा	नुकसान, कमी
ठकुरसुहाती	मालिक को अच्छी लगने वाली
ठलुआ	बेकार आदमी
ठाके	उठाकर
ठाढा या ठाड्डा	मजबूत, तगड़ा
ठाल्ली	खाली
ठौर	जगह
ढब	ओर, हाल
ढाल	तरीका
ढिमकाना	अमुक
ढीड	आँख में आनेवाला मैल
ढुग्गे	कुल्हे
	ढेर
ढुकाना	दरवाजा आधा बन्द करना
ढू-पडना	गिर पडना
ढेट खुलना-पडना	हिम्मत बढना
ढेर सारा	बहुत सा
डगगर-ढोर	जानवर
ढोना	सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना
डॉगर	पशु
डार	डाल, हिरनो का झुंड
डोबना	डुबोना
डौल	मौका
तइया	तीसरे दिन का बुखार
तत्ता	गर्म
तडके	बहुत सुबह
तनक मनक	तनिक सा
तलकाट	कटुता

तागडा	साधुओं द्वारा बाँधी जाने वाली मूँज की तगड़ी
तायस	पति की ताई
ताबली या तावल	जल्दी
तिरोदसी	त्रयोदशी
तिसाल्ला	तीसरे साल में
तिस	प्यास
तिसाना	प्यासा होना
तीज	तृतीया
तीजन	तीजों की
तीहल	तीन कपड़ों का जोड़ा
तैन्ने	तूने
थान	सती या देवता का पवित्र स्थान
थारा	तुम्हारा
थूथडी	मुँह
थोथथा	बीच में से खाली, खोखला
थोबडा	विकृत चेहरा
दडबडाना	धमकी देना, रोब देना
दर में	दरवाजे में
दसमी	दशमी
दसोहा	घर से निकाल देना
दात	दहेज
दिक होना	तग होना
दिकै	देख (सम्बोधन)
दिहे	आँख
दिहा	मन
दिलद्दच	दरिद्रता
दुक्खे	दुखना
दीवा	दिया, दीपक
दुत्तेखाना	शिकायत करना, चुगली करना
दुल्हेडी	फाग का दिन
दुत्ती	इधर की उधर लगाने वाली

दुबकना	छिपना
दुहाग	जान बूझकर वियोग कराना
दूजा	दूसरा
देहली	दरवाजे की चौखट का निचला हिस्सा
दोहता	लडकी का लडका
दौज	दोयज
धन	गाय-भैंस आदि दूध देने वाले जानवर
धनी	पति या पत्नी का सम्बन्ध
धरम भैन	माँनी हुई बहिन
धरमी	धार्मिक
धरमाप्पा	धरम सम्बन्ध स्थापित करना, धर्म-बहन
धग्गा	धागा
धाड मारना	जोर-जोर से सोना, फूट-फूट कर रोना
धिकपडना	भीड का एकदम से आना
धिगामस्ती	जोर, जबरदस्ती
धी, धीम	बेटी
धिधाना	जहाँ लडकी या ननद का विवाह हुआ हो
धोरे	पास
धौले	सफेद
नक्कू बनना	हर बात में आगे बढ़ कर बदनाम होनेवाला
नक्को	नखरो वाली, नाक चढ़ाने वाली
नदिद्दा	जिसकी नियत खराब हो
नन्दोत	नन्द की लडकी
ननसाल	नाना का घर
नाज्जो	नखरेवाली
नवा	नया
नाटना	मुकरना, बात से हटना
नस्सो	दूल्हा
नाड	गर्दन
नाडा	कमरबन्द
नावा	धन
नासपिट्टा	गाली-विशेष, नाश करनेवाला

निखट्टू	काम न करनेवाला
निखालिस	शुद्ध
निगोडा	गाली-विशेष
निचलवाई या निचलाई	निश्चल, स्थिर
निठल्ला	बेकार
निमुत्ती	पुत्र-विहीना
निफराम	निश्चिन्त
निमाना धन	अग्राह्य धन
निवाया	कम गर्म
निवाच	हल्की गर्माई
निसाखातिर	निश्चिन्त
निरनो	बिना कुछ खाए-पिए
निर-भाग	भाग्यरहित, अभागी
नुकस निकालना	दोष निकालना
नू या नू	इस तरह
नून	नमक
नेट्ठम	बिल्कुल या पूरी तरह
नेडे	पास
नेज्जू	रस्सी
नेग	विवाह आदि शुभ अवसरो पर व्यक्तियों को उनका भाग देना
नियम-धरम	नियम-सयम
नौआ	नाई
नौतना	निमन्त्रण देना
नौनी	मक्खन
नौम्मी	नवमी
नौरते	नवरात्र के नौ दिन, या उस समय पर उगने वाले जौ के छोटे पौधे
न्हुलाना	नहलाना
परके	पिछले साल
परारके	पिछले साल से पहले साल
पत	लाज, विश्वास

पचपात्तर	पूजा का बरतन
पडवा	प्रथमा
पडना	लेटना
पडिया	श्राद्ध आदि लेने वाले ब्राह्मण या बछिया
पट्टी पढाना	सिखाना, बहकाना
पोंच्चे	पचमी
पाडना	उखाडना, फाडना
पायत	चारपाई का निचला हिस्सा, पैरो की ओर
पाल्लर	राई के पानी में डाले गए बड़े-पकौड़ी
पाहुना	अतिथि
पिछान	पहचान
पिरोह त	पुरोहित
पितसरा	पति का चाचा
पीहर	बहू के माता-पिता का घर
पुआ'	मीठा पूडा
पुन्न	पुण्य
पुन्नो	पूर्णमासी
पुजाप्पा	पूजा में चढाई गयी वस्तुएँ
पुरखा	पूर्वज
पूत	पुत्र
पुरमपूर	सम्पूर्ण
पेला	पीला
पेलना	कोल्हू में लगाकर निकालना (तेल या रस)
पैड	नामोनिशान या पाँव का निशान
पैडी	सीढी
पैर भारी होना	गर्भवती होना
पोत उतारना	बारी उतारना
पोना	रोटी बनाना
पोटली	छोटी गठरी
पोतडे	छोटे बच्चों के नीचे बिछाने के कपड़े
पोत्ता	पौत्र, पोचा
पौ	प्याऊ

फलाने	अमुक
फुआ	बुआ, पिता की बहन
फूल	मिश्रित धातु
फैल भरना	अपनी बात मनवाने के लिये बहाना करना
फोकट	मुफ्त में
फोल्ला	छाला
बझौटी	बाँझ
बगड-बिचाल्ले	आँगन के बीच में
बजरकिवाड	मजबूत किवाड
बदकार	बदमाश
बर्णैनी	वैश्य-स्त्री
बटले	इकट्ठे होना
बटियामार	ठग
बरजना	मना करना
बन्नो	कन्या-जिसका विवाह होने वाला हो
बरत	ब्रत
बरती रहना	ब्रत रखना
बलाय	बाहरी प्रभाव, भूत-प्रेत से सम्बन्धित
बरदा	आदमी
बरी	लडके के विवाह में लडके के घर से आनेवाली मामूरी
बाँछा	इच्छा
बाडना	घुसाना
बामनी	ब्राह्मणी
बाय	वायु (रोग)
बायना	ब्रत-त्योहार आदि पर अपनी पूज्य स्त्रियों को
	मिनसकर वस्तुएँ भेंट करना
बार-द्वारी	द्वार पर दूल्हे की पूजा करना
बारजा	सड़क की ओर निकला हुआ ऊपर का तीन खिडकियों
	वाला कमरा
बालना	दीपक आदि जलाना
बाली उमर	कम अवस्था

बावला	पागल, भोला, प्यार में कहा जाने वाला शब्द
बास्सण	बर्तन
बास्सी	पहले दिन का बचा हुआ भोजन
दिन बाहुडना	अच्छे दिन लौटना
बिगान्ना, बिराणा	पराया, बेगाना
बिलौट्टा	बिल्ली का बच्चा
बिनारना	काटना
बिरमा	ब्रह्मा
बिरादरी	जाति
बिसात	सामर्थ्य
बिसनी	वैश्य उपजाति
बिजार	छोड़ा हुआ बैल
बिसभना, मौलना	चूड़ी टूटना
बीच-बिचाल्ला	बीच में पड़ कर फैसला कराना
बीर	भाई
बीस्से	वैश्य अग्रवाल
बुक्कल	पृथ्वी की माप, रजाई लपेट कर बैठना
बुडक मारना	काट खाना
बुहारी	झाड़ू
बुहारना	झाड़ू लगाना
बुसना	रात के रखे भोजन में दुर्गन्ध आने लगना
बूझ	पहेली, पूछना
बूरा	साफ की हुई खाँड
बेड	मोटी, बड़ी रस्सी
बेल्ला	काँसी का बड़ा कटोरा-विशेष
बेसबरा	धैर्यहीन
बैड देना	होनेवाली बात का इशारा देना, अललटप्प बात करना
बैयरबात्री	स्त्री या महिला
बैहली	बैलो का रथ
बोहिया	सीक से बनी हुई छोटी टोकरी, जिसमें शादी में मिठाई आदि दी जाती है
बोई आना	दुर्गन्ध आना

बोचना	बन्द करना या दबाना
बोद्दा	कमजोर
बोब्बो	बड़ी बहन
बौत	सामर्थ्य, अवसर, मौका
ब्याहना	बच्चा देना
ब्याही	पुत्र-जन्म के अवसर पर गाया जानेवाला गीत
ब्यौरा लाना	समाचार लाना
भकाना	बहकाना
भणेली, भनेल्ली	सखी
भडवा	गाली-विशेष
भतेरा	बहुत-सा
भरपाया	उबना
भरतार	पति
भाडे	बरतन
भाजी मारना	किसी के बनते हुए काम में उल्टी-सीधी बात कहकर रुकावट पैदा करवा देना
भाजना	छोड़ कर भागना
भाज्जी	सब्जी, विशेष अवसरों पर एक दूसरे के यहाँ भेजना
भात	लडके-लडकी के विवाह में मामा की ओर से दी जाने वाली वस्तुएँ
भातई, भात्ती	भात देनेवाला
भिडना	टक्कर होना
भिनकना	गन्दगी होना
भीचना	कस कर दबाना
भोनाजी	बड़ी बहन के पति, जीजाजी
भुडा	गन्दा
भुज्जी	पत्तो की बनी हुई सब्जी
भूट्टू	बेवकूफ
भूमिया	ग्रामदेवता
भेल्ली	गुड़ का पाँच या ढाई सेर का टुकड़ा
भैन्ना	बहन
भैमारा	भयभीत

भैंकड़ा	मुँह फाड़ कर रोना
मगता	भिखारी
मढा	बारात के जाने के एक दिन पहले एक प्रकार का लोकाचार
मलगा	उदड़
मत	बुद्धि, नहीं
मतइ	विमाता
मनरा	मनिहार
मरद-मानस	पुरुष
भरजानी	एक प्रकार की गाली
माँ-जाया	सगा भाई
माडा	कमजोर
मातबरी	विश्वास
मालमता	धन
मारू	मारने वाला
मावस	अभावस्था
मिगन	बकरी का पाखाना
मिट्ठो, मिट्ठी	बच्चे का चुम्बन
मिम्मा, मिम्मी	छोटा लड़का, लड़की
मियाँ मिट्ठू	अपनी तारीफ करना
मिनसना	मन सकल्प करके किसी को देना
मिसरानी	ब्राह्मणी—रोटी बनाने वाली
मिस्सर	रोटी बनाने वाला ब्राह्मण
मिस्सी-कुस्सी	रुखी-सूखी
मींडना	गोदना
मीं	वर्षा
मुई	गाली-विशेष
मुकलावा	गौना
मुल्क	मुल्क
मूझौसी	मुँहजली
मूतना	पेशाब करना
मू बिटलाना	त्यौहार आदि पर मीठी वस्तुओं से मुँह जूठा करना

मोरी	खिडकी, कमरे की एक अन्दर की नाली
मोतीझडा	बढिया चावल
मोड	ढूल्हे के सिर पर बाँधा जानेवाला विशेष प्रकार का मुकुट
याणी	छोटी अवस्था की
याणयत	बचपना
याणा	कम अवस्था का
रबत	आदत
रवा	सूजी, दाना
राँधना	पकाना
राड	झगडा
राड-रोना	दुनिये की बुराई-भलाई करना, या अपना दुख रोखे जाना
राजी	राजी-खुशी, इच्छा
राबला	होशियार
रक्के मचाना	शोर मचाना
रिजक	रोटी
रेवड	भेंड-बकरियो का झुंड
लखाना	देखना
लगोटिया यार	अभिन्न मित्र
लच्छन	लक्षण
लपालपी	बेकार की बातें बोलना
लपडधोधो	फूहड
लम्डा	लडका
लत्ते	कपडे
लाड्डो	प्यारी बेटि
लाही	बोझ
लाम	युद्ध
लाल	प्यारा लडका, सम्बोधन
लाल्ला	छोटा भाई, देवर का प्यार भरा सम्बोधन या बच्चा
लुकना	छिपना

लुगाई	पत्नी
लुभाव मे	मुफ्त मे
लौंडी-लारे	लडके-लडकी
लौवडा	लडका
वारी	सम्बोधन का शब्द, (लडकियाँ आपस मे इसका प्रयोग करती है)
शिवाल्ला	शिवालय, मन्दिर
सकेरना	इकट्ठा करना, साफ करना
सजोग	सयोग
सजोना	सजा कर रखना
सतोखी	सतोषी
समाक्की	दोनो आँख वाली
सच्चोसच्च	वास्तव मे सत्य
सत	सत्य की शक्ति
सदरोई	सदा रोनेवाली
सपडना	समाप्त होना
सपुत्ती	पुत्रवती
सरावगी	जैन वैश्य
सरना	काम चलना, गुजारा होना
सलज	साले की पत्नी
साँझ	शाम
साढ	आषाढ़
साढसती	शनि की साढ़े-सात वर्ष की दशा
साढढू	साली के पति
सासरे	ससुराल
सास्सू	सास
सिंगवाना	सम्भाल कर रखना
सिट्ठा	स्वादहीन या फीका
सिद्धा देना	ब्राह्मण को खाने की बनी हुई सामग्री दान देना
सिंदारा	लड़की को भेंट भेजना, सावन या तीजो आदि पर एक लोकाचार
सिमरक	सिंदूर

सिनक	नाक की गन्दगी
सिलगना	जलना
सीठने	विवाह के अवसर पर गीतो मे मजाक मे गाली देना
सीत	ठड
सुवाना	सिलवाना
सुड्डा	स्त्रियो के धोती के सामने की चुन्नट
सुडकना	आवाज करके पीना
सुथना	गरारे की तरह लडकियो की पोशाक
सुथरा	साफ
सुदा	साथ
सुधधी ढाल	सीधी तरह
सुल्टा	सीधा
सुल्लो	सीधी तरह से
सुसरा, सौरा	ससुर
सुहाग पिटारी	सुहाग सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएँ
सुआ	नोता
सूठिया सर्राफ	अपने आपको अमीर समझने वाला
सेत्ती	साथ
मेल्ला	स्त्रियो द्वारा ओढ़ी जानेवाली चादर
संडदेसी	तीर की तरह निकलना
सैल सपाटा	बिना ध्येय के घूमना
सोट्टा	हाथ मे रक्खा जानेवाला डडा
सोब्बा	शोभा, विवाह आदि मे दी जानेवाली वस्तुएँ
सोबता	फुरसत
सोरनकाया	स्वर्ण की काया
सौण कुसौण	शकुन-अपशकुन
सोणा	सुन्दर
सोहणा	सुन्दर
सोहिले	पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जानेवाले गीत
सौक	शौक
सौकार	साहूकार, धनी जो रुपया सूद पर चलाते है
सौड़ बिछाने	लिहाफ, गद्दा

सयाऊ	साँप के बच्चे
स्याणा	बड़ी अवस्था का—समझदार
हगना	पाखाने जाना
हडकल	शरीर में दर्द होना
हडफुटनी	हड्डियों में दर्द होना
हड्डे, हाड	हड्डियाँ
हटकौ	दुबारा
हबेल्ली	हवेली
हलहल	बहुत जोर से
हाँक मारना	आवाज़ देना
हाँकना	जानवर को चलने के लिये टिटकारना
हाली	हल चलाने वाला
हिन्लेसिर	कार्य से लगे हुए होना
हिरस	नकल
हिरसल्ला	नकल करने वाला
हीनमत	दुर्बुद्धि
हुडक	तलब लगाना, इच्छा होना
हूर	सुन्दरी
होल्लर	छोटा बच्चा
हेकडी	शेखी
हेट्टा	कमजोर



स्त्री-पुरुषों के प्रचलित नाम

स्त्रियो के नाम

अनारो, असरफी, इमरती, कटोरी, कबूली, कसमीरी, किरनो, कैलासो, ग्यानो, गिगी, गेंहो, गुलाबो, चन्दो, चम्पा, चमेली, छीमा, छोट्टी, जनको, डुल्लो, परकासो, परेम्नो, फुल्लो, बुधो, बिरमो, बिल्लासो, बिसम्बरी, मनसा, मिन्नो, मुकन्दी, मुल्लो, कटोरी, रामकली, रामप्यारी, रिसाल्ली, रतनो, रूपो, लक्खो, लच्छो, साम्मो, सन्नो, सरबती, सत्तो, सुक्को, सुरजो, सोन्ना, हसो ।

पुरुषो के नाम

अतरा, अमीचन्द, अमोलक, अल्लारखा, अलगू, ओम्मी, कबुल्ले, कयुम, रोडा, कालू, किसना, केसो, खिलाडी, गफूरा, गुलमा, गेदा, चूहड, चौहल, छागा, छागू, छज्जू, छेदी, जगू, जादो, जाहना, जुम्मन, टेक्कु, तिरखा, दरबा, दिवल्ला, धन्न, फरमा, फरमी, नकली, ननकू, नूरा, निहाल्ला, फत्तू, पुद्दन, बदलू, बन्ने, बखतावर, बाँक्के, बल्लू, बिरमा, बिसनू, भुल्लू, भुल्लन, भोक्खन, भैरो, मक्खन, मलखान, मिट्ठन, मितरू, मिसिरी, मुकन्दा, मुत्तयारा, मुन्नन, मूगा, मूला, मोट्टू, मोल्हड, रतनू, रहमत, रामखेलावन, रामरक्खा, रिसाल्ली, रोडा मल, लक्खी, लालू, समसू, सलमू, सालग, सिमरू, सीतल, सुक्खन, सुक्खा, सुरजा, सुद्दू, सोल्हड, हरदेबा, हरद्वारी, हरफूल, हुक्मा, हुसियारा ।

प्रकाशित लोककथाएँ एवं अन्य सामग्री

- १ भजन निर्गुन ब्रह्मज्ञान
ले०—चौधरी घीसाराम, भटीपुर
प्रकाशक—घुरूसहाय व प्रभुदयाल
बासदेव गोकुलचन्द बुक डिपो, गूदडी
बाजार—मेरठ
- २ भजन बबूवाहन और अर्जुन-युद्ध
लेखक—शकरदास ठाकुर प्रेमासिंह
जिठौली, डा० मऊ, मेरठ
- ३ गजनागोरी—संगीत शाही
चन्द्रभार उर्फ बादीदत्त, नगर जवाहर
बुकडिपो, गूदडी बाजार, मेरठ
- ४ गृह-चेला सवाद (ससार चक्कर)
महात्मा गंगादास जी, गङ्गमुक्तेश्वर,
जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- ५ ब्रह्मज्ञान—ज्ञान पकड़
(प्रश्नोत्तरी)
गंगादास जी, जवाहर बुकडिपो,
मेरठ
- ६ ख्याल—तर्ज शीशराम—
दूसरा भाग
जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- ७ साँगीत कृष्ण भात
सगुवासिंह, सिखैडा निवासी, जवाहर
बुकडिपो, मेरठ
८. फूला जाट नसीब
सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
९. भजन तरंग
लेखक—कालूराम, लोकनाथ, मेरठ
१०. पान की बेगम
लेखक व प्रकाशक—प्रभुदयाल,
बुकसेलर, खतौली
- रागनियो का रसगुल्ला
- ११ हुकम का बादशाह
प्रभुदयाल बुकसेलर, खतौली
- रागनियो का गुच्छा
- १२ चिडी का इक्का
प्रभुदयाल—बुकसेलर, खतौली
- रागनियो का गुच्छा

- १३ नरसी का भाव चो० नत्थूदास, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- १४ साँगीत रूप-बसत गुरु बिन्दू मीर (खानपुर) जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- १५ साँगीत कृष्ण-सुदामा रघुबीरशरण, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- १६ साँगीत नारसी भात रघुबीरशरण, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- १७ सौदागर बच्चा प्रेमवती नत्थूदास, मीरपुर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- १८ आल्हा (खडीबोली मे प्रसिद्ध)
असली आल्हा-खड
बावनगढ की लडाईं एल० सी० मटरूमल, जवाहर बुक-
डिपो, मेरठ
- १९ सगीत लीलो चमन सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- २० झूलने कवर निहालदे मीरदाद (हापुड) बासदेव गोलचन्द
बुक डिपो, गूजरी बाजार, मेरठ
- २१ झूलते लवकुश सुल्लामल गाजियाबाद
बासदेव गोकुलचन्द बुक डिपो, गूजरी
बाजार, मेरठ
- २२ शीलादे राजा रिसालू (४ भाग)
(दीवान महेशाह—१) हरबस लाल बिजगौल, जवाहर बुक-
डिपो, मेरठ
- २३ निहालदे परवाना प० रामशरण दीवानदत्त, जवाहर
बुकडिपो, मेरठ
- २४ होली बहन भाव हरवलाल (बिजरोल) दो भाग,
जवाहर बुकडिपो, मेरठ
- २५ होली सीता बनोबास हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो,
मेरठ
- २६ राजा रघुबीर सिंह हरवम लाल, जवाहर बुकडिपो
मेरठ

२७ कवर निहालदे बाग	प० रामसरन दिवानदास, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२८ पूरनमल भक्त	वालकराम, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
२९ ढोला नरवर गढ	ठा० गजावरसिंह फतेहपुर निवासी, दीपचन्द बुकसेलर, नयागज, हाथरस
३० गोपीचन्द	बालकराम, शिक्षाग्रन्थागार, मथुरा
३१ महाराजा प्रताप	महात्मा लटूरसिंह के शिष्य, खिम्मन सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३२ चत्तर बित्तर	अरजुन सिंह, वागपुर, प्रकाशक बुकडिपो, बुलन्दशहर
३३ जयमल फत्ता	कुन्दनलाल पाधा, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३४ साँगीत देवर-भाभी	सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३५ चन्द्रहास	बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३६ मोरध्वज	गुह बुन्दू मीर (अवे) जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३७ अमरछडी	गुह बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३८ महाराज अशोक	गुह बुन्दुमीर, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
३९ निदने का भाव	मशहूर साँगी, सगुवासिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४०. साँगीत देवर-भाभी	सगुवा सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४१ होली लक्ष्मण मूर्छा	छज्जूमल, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४२. होली भानमती सती	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४३ महाभारत कर्णपर्व	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४४ होली द्रोपदी स्वयंबर	हेमराज सिंह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
४५ महाराज भीष्मपर्व	प० रामसरन बैद, जवाहर बुकडिपो, मेरठ

- ४६ चन्द्रकिरण मदनसैन
 ४७ होली हीर रंझा
 ४८ असली बारहमासा रामायण
 ४९ चन्दना
 ५० मदनपाल चन्द्रप्रभा
 ५१ बित्तव मगल
 ५२ होली जर्मन जग (वसत के गीत)
 ५३ साँगीत कृष्ण-सुदामा
 ५४ होली लैला-मजनू
 ५५ गुलजार सखुन तुरा
 (चार भाग)
 ५६ भरतरी विंगला
 ५७ झूलने जाहर पीर
 ५८ होली राजा कारक
 ५९ सुलतान निहालदे
 ६०. वीर नाहरसिंह गूजर
 ६१. शाही वजीर
- सगुवासिह, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
 घीसाराम, जवाहर बुकडिपो, मेरठ
 चौ० घीसाराम मटीपुर, वासदेव गोकुल-
 चंद बुकडिपो
 वासदेव गोकुलचन्द, गुजरी बाजार,
 मेरठ
 अखाडा—नत्थूलाल, गुजरी बाजार
 मेरठ
 नत्थूलाल, गुजरी बाजार, मेरठ
 चौ० घीसाराम, मटीपुर, निवासी,
 गुजरी बाजार, मेरठ
 रघुबीर शरण गुजरी बाजार मेरठ
 गुरु घीसाराम, गुजरी बाजार, मेरठ
 मटीपुर निवासी
 मुशी सुखलाल सिंह, शागिर्द लाला
 भैरोसिंह, गुजरी बाजार, मेरठ
 नत्थूलाल, जावली निवासी, गुजरी
 बाजार, मेरठ
 ला० सुल्लामल, गुजरी बाजार, मेरठ
 प० रामशरण, बड़े निवासी, गुजरी
 बाजार, मेरठ
 रामकिशन व्यास, गुजरी बाजार,
 मेरठ
 (१८५७ की झाकी) चौ० बेगराज
 सिंह, गुजरी बाजार, मेरठ
 मोहना देवी, चन्द्रलाल भाट, गुजरी
 बाजार, मेरठ

खड़ीबोली प्रदेश के विभिन्न स्थानों का महत्व और संक्षिप्त तत्संबंधी दन्तकथाएँ

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबंधी दन्तकथाएँ
मेरठ	मेरठ	१ बाबा औषडनाथ का मन्दिर-मैसाली-ग्राउंड	पौराणिक	१ हस्तिनापुर के निर्माता मय दानव ने इसका निर्माण किया था, अंत इसका नाम मयराष्ट्र था, जो बिगड़ कर मेरठ हो गया है ।
		२ शाहजहाँ के गुरु का मकबरा	ऐतिहासिक	२. ३०० वर्ष ई० पू० अशोक ने एक स्तम्भ की स्थापना की थी, जिसको १२०६ में फिरोजशाह देहली ले गया ।
		३ नवचंडी का मन्दिर		३. १८५७ का स्वतन्त्रता संग्राम बाबा औषडनाथ के मन्दिर से प्रारंभ हुआ ।
		४ बाले मियाँ का मन्दिर		
		५ सरस्वती का मन्दिर (सूर्यकुंड)		
मेरठ	परीक्षितगढ़ या किला	१ गोपेश्वरनाथ का मन्दिर	पौराणिक	१ इसको पाण्डवों के वंशज महाराज परीक्षित ने बसाया था ।
				२ कौरवों से बात करने जाते समय जिस स्थान पर वे ठहरे थे तथा विदुर से गुप्त मन्त्रणा की थी वही गोपेश्वरनाथ का मन्दिर है ।

१ जिला	२ स्थान	३ विशेषस्थल	४ महत्व	५ तत्संबंधी दन्तकथाएँ
मेरठ	परीक्षितगढ़	२ शृंगी ऋषि का आश्रम	पौराणिक	३ शृंगी ऋषि के आश्रम में ही लोमश ऋषि के गले में राजा परीक्षित ने मरा हुआ साँप डाला था । ४ रण से भाग कर दुर्योधन ने गाँधारी तालाब में ही आश्रय लिया था ।
		३ गांधारी कुंड		५ नवलदे के कुएँ में भीम ने पाताल से अमृत लाकर रखा था । वासुकी की पुत्री नवलदे ने यही से जल ले जाकर अपने पिता का कोढ़ ठीक किया था । लोकविश्वास है कि इस कुएँ के जल से स्नान करने से कोढ़ ठीक हो जाता है ।
परठ	पुराग्राम	शिवमन्दिर	धार्मिक (शिवरात्रि के दिन लोग हरिद्वार से काँवरी में गगाजल लाकर पुरा महादेव पर चढ़ाते हैं ।)	रावण ने शकर भगवान् को प्रसन्न करके अपने साथ चलने का वर माँगा था । शकर भगवान् इस शर्त पर चलने के लिये तैयार हुए कि वह अपने हाथों पर ही उन्हे ले जायेगा । परन्तु इस स्थल पर आकर रावण को लघुशका की आवश्यकता हुई और रावण प्रतिज्ञा भूल गया और शकर भगवान् को पृथ्वी पर टिका दिया । तब से शकर भगवान् का यही पर बास माना जाता है ।

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबधी दन्तकथाएँ
मेरठ	गढमुक्तेश्वर	१ राजा नृग का कुड या नरक कुड	पौराणिक	१ नारद जी द्वारा दिये गये शाप से शापित शिव के गणों की यही पर मुक्ति हुई थी ।
		२ अस्सी सतियों की लाट		२ राजा नृग को यही पर गिरगिट की योनि मे रहना पडा था ।
मुजफ्फरनगर	मुजफ्फरनगर	३ पचमहादेव का मन्दिर डल्लू देवता का मन्दिर	ऐतिहासिक	मुगल साम्राज्य के एक दस हजारिमानसब नवाब मुजफ्फर खाँ ने इसको बसाया था ।
		शुक्रताल		शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत का उपदेश यही पर ७ दिन तक दिया था ।
मुजफ्फरनगर	शुक्रताल	शुकदेवजी का मन्दिर तथा गंगा घाट	धार्मिक	जब राजा परीक्षित को तक्षक नाग डसने वाला था तो धन्वन्तरि उनको बचाने के इरादे से चले । इसी स्थल पर तक्षक ब्राह्मण का रूप रख कर उन्हें मिला ।
		गंगा घाट		तक्षक के पूछने पर उन्होने अपना उद्देश्य उसे बता दिया । तक्षक ने एक पीपल के पेड को अपनी फुकार से भस्म कर दिया और धन्वन्तरि के हरा कर देने पर तक्षक ने 'होनी प्रबल है' की बात समझा कर उनसे लौट जाने की प्रार्थना की—धन्वन्तरि लौट गये ।
मुजफ्फरनगर	मोरना	मोरना	धार्मिक	मोरना-मोडना से बना है ।

१
जिला
सहारनपुर

२
स्थान
देवबद

३
विशेषस्थल

- १ पाडवो का किला
- २ बालासुदरी का मंदिर
- ३ सिकन्दर लोदी द्वारा बनवाई गयी मस्जिद
- ४ अरबी विद्यालय
- ५ हितहरिवशराधावल्लभ का मन्दिर

सहारनपुर

तल्लेडी बुजुर्ग

सहारनपुर

पिरानकलियर

मरहूम पीर का मकबरा

धार्मिक

४

महत्त्व

ऐतिहासिक
धार्मिक

ऐतिहासिक
पौराणिक
साहित्यिक

धार्मिक

५

तत्संबंधी दन्तकथाएँ

देवबन्द किले को पाडवो ने बनवाया था तथा प्रथम बनवास यही पर किया था । पहले इसका दूसरा नाम था— देवी बन ।

(५९३)

दिवाली की रात को वाममार्गी एकत्र होते हैं तथा पूजा करते हैं । इसके पश्चात् स्त्रियाँ अपनी-अपनी चोलियाँ एक कुंड में डाल देती हैं । एक-एक पुरुष एक-एक चोली उठाता है और जिस स्त्री की चोली जिस पुरुष को मिलती है वह उसी के साथ नृत्य करती है—कहा जाता है, भाई-बहन आदि का भी भेद नहीं रहता ।

यहाँ पर मुसलमानों के सिद्ध पुरुष का मञ्जार है । उनके सबध में कहा जाता है कि वे खुदा के बदे थे । यहाँ पर सब की मनोवाँछा पूरी होती है । दूर-दूर से इस्लाम देशों के लोग यहाँ आते हैं ।

१	२	३	४	५
जिला	स्थान	विशेषस्थल	महत्व	तत्संबधी दत्तकथाएँ
सहारनपुर	शाकुम्बरी देवी	शाकुम्बरी देवी का मन्दिर	धार्मिक	कहा जाता है कि शाकुम्बरी देवी से मनोवांछित फल प्राप्त होता है ।
सहारनपुर	हरिद्वार	१ हर की पैड़ी-ब्रह्मकुण्ड २ चण्डीदेवी ३ मनसा देवी ४ गंगा मन्दिर ५ प्रजापति दक्ष का मन्दिर ६ भीमगोडा ७ सप्तसरोवर ८ सती कुंड ९ गुरुकुल काँगड़ी	धार्मिक	यहाँ पर रह कर सम्राट चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने अपनी सेनाएँ एकत्र की थी । समुद्रमथन के बाद ले जाते हुए एक बूढ़ अमृत यहाँ भी गिरा था । इसीलिए यहाँ पर हर १२ वें साल कुम होता है ।
सहारनपुर बिजनौर	सरसावा दारानगरगंज	सरसावा दारानगर गंज विदुर-कुटी	धार्मिक पौराणिक	यहाँ पर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ किया था । दुःशासन का वध करके भीम ने जहाँ अपना गोडा टिका कर गंगाजल का आचमन किया था—उस स्थान का नाम भीमगोडा है । गुगापीर का जन्म-स्थान यहाँ माना जाता है । यहाँ पर मालिनी नदी के किनारे कण्व ऋषि का आश्रम था तथा शकुन्तला की दुष्यन्त से भेंट हुयी थी ।

यहाँ पर विदुर जी की छोटी-सी कुटिया है। यही दुर्योधन के व्यजन तज कर भगवान कृष्ण ने बथुए का साग ग्रहण किया था।

कुरुक्षेत्र-युद्ध के समय कौरवों और पाण्डवों की सब स्त्रियाँ सुरक्षा के हेतु यही पर रक्खी गयी थी। इसीलिए इसका नाम दारानगर गज पडा है।